मार्कण्डेयपुराण द्वितीयखण्ड का सूचीप[त्र]

वे लो... ल ... को

मार्कण्डेयपुराण द्वितीयखण्ड का सूचीपत्र।

मार्कण्डेयपुराण द्वितीयखण्ड का सूचीपत्र।

मार्कण्डेयपुराण द्वितीयखण्ड का सूचीपत्र

विषय पृष्ठ

इति मार्कण्डेयपुराणस्यसूचीपत्रंसमाप्तिंप्रकाश ॥

वे लो॰ल
को



अथ मार्कण्डेयपुराणसटीकस्य द्वितीयोभागः ॥

अथ साठवां अध्याय ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू॰ यत्तु किम्पुरुषं वर्षं तत्प्रवक्ष्याम्यहं द्विज ।
यत्रायुर्दशसाहस्रं पुरुषाणां वपुष्मताम् १ ॥

टी॰ । मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे ब्रह्मन् ! किम्पुरुष नाम जो वर्षहै उसका वृत्तान्त मैं कहता हूं सुनो कि जिस वर्ष में डीलडौलवाले मनुष्यों का आयुर्बल दश हज़ार वर्ष का होता है १ ॥

मू॰ अनामया ह्यशोकाश्च नरा यत्र तथा स्त्रियः ।
वनखण्डश्च तत्रोक्तः सुमहानन्दनोपमः २ ॥

टी॰ । और जहांके स्त्री और पुरुष सब अनामय (नीरोग) हैं अर्थात् किसी को कोई बीमारी नहीं होती है और उस वर्ष में वनखण्ड नाम एक बड़ाभारी वन है जोकि नन्दनवन के सदृश कहागया है २ ॥

मू॰ तस्य ते वै फलरसं पिबन्तः पुरुषाः सदा ।
स्थिरयौवननिष्पन्नास्त्रियश्चोत्पलगन्धिकाः ३ ॥

टी॰ । उसी वन के फलों का रस पान करके वे लोग सदा युवा बने रहते हैं और उसी रसके पान करने से वहां की स्त्रियों के शरीर से कमल की ऐसी गन्ध निकलती है ३ ॥

अतःपरं किम्पुरुषाद्धरिवर्षं प्रचक्ष्यते ।
महारजतसंकाशं जायन्ते तत्र मानवाः ४ ॥

टी० । अब इस किंपुरुषवर्ष के उपरान्त हरि नाम वर्ष का वृत्तान्त कहा जाता है उसको सुनो कि वहां के मनुष्योंकी कान्ति सोने के समान होती है ४ ॥

मू० देवलोकच्युताः सर्व्वे देवरूपाश्च सर्व्वशः ।
हरिवर्षे नराः सर्व्वे पिबन्तीक्षुरसं शुभम् ५ ॥

टी० । वहां के लोग देवलोक से च्युत होकर अर्थात् गिरकर सब देवतों के समान रूपवान् होकर उस वर्षमें आते हैं और वे सब लोग सुन्दर ऊख का रस सदा पिया करते हैं ५ ॥

मू० न जरा बाधते तत्र न जीर्य्यन्ते च कर्हिचित् ।
तावन्तमेव ते कालं जीवन्त्यथ निरामयाः ६ ॥

टी० । और वहां किसी को जरा अर्थात् बुढ़ापा कभी नहीं आता जब तक जीते हैं उतने वक्त तक सदा युवा और आरोग्य रहते हैं ६ ॥

मू० मेरुवर्षं मया प्रोक्तं मध्यमं यदिलावृतम् ।
न तत्र सूर्य्यस्तपति न ते जीर्य्यन्ति मानवाः ७ ॥

टी० । अब मेरुवर्ष जो बीच का इलावृत खण्ड है उसका वृत्तान्त सुनो कि वहां सूर्य्य नहीं तपते हैं और वहां के मनुष्य कोई वृद्ध नहीं होते हैं ७ ॥

मू० लभन्ते नात्मलाभञ्च रश्मयश्चन्द्रसूर्य्ययोः ।
नक्षत्राणां ग्रहाणाञ्च मेरोस्तत्र परा द्युतिः ८ ॥

टी० । और वहां सूर्य्य और चन्द्रमा की किरणें अपने प्रकाशरूप लाभको नहीं प्राप्त होती हैं और नक्षत्र और ग्रहों की उत्तम द्युति यानी प्रकाश मेरु पर्व्वतके बाहर होताहै ८ ॥

मू० पद्मप्रभाःपद्मगन्धा जम्बूफलरसाशिनः ।
पद्मपत्रायताक्षास्तु जायन्ते तत्र मानवाः ९ ॥

टी० । और वहां के मनुष्यों की कान्ति कमल के समान है और

कमलही की ऐसी सुगन्धि उन लोगों के अङ्ग से आती है और वे लो ल
जम्बूफलों का रस पीते हैं और सब लोग कमलनेत्र हैं ६ ॥ को

मू० वर्षाणान्तु सहस्राणि तत्राप्यायुस्त्रयोदश ।
शरावाकारसंस्तारो मेरुमध्य इलावृते १० ॥

टी० । और वहां भी उन लोगों का आयुर्बल तेरह हजार वर्ष का होता है और मेरु नाम जो पर्व्वत है उसके बीचमें इलावृत खण्ड है उस का आकार प्याले के समान है १० ॥

मू० मेरुस्तत्र महाशैलस्तदाख्यातमिलावृतम् ।
रम्यकं वर्षमस्माच्च कथयिष्ये निबोध तत् ११ ॥

टी० । उस वर्ष में महापर्व्वत मेरुही है उसीसे इलावृत भी कहलाताहै अब इसके बाद रम्यक वर्ष का हाल कहताहूँ उसको सुनो ११ ॥

मू० वृक्षस्तत्रापि चोत्तुङ्गो न्यग्रोधो हरितच्छदः ।
तस्यापि ते फलरसं पिबन्तो वर्त्तयन्ति वै १२ ॥

टी० । कि उस वर्ष में भी बहुतही ऊंचा एक वृक्ष बरगद का है कि जिसके पत्ते सदा हरित बने रहतेहैं वहां के लोग उसी वृक्षके फलका रस पीते हैं और उसी से जीते हैं १२ ॥

मू० वर्षायुतायुषस्तत्र नरास्तत्फलभोगिनः ।
रतिप्रधानविमला जरादौर्गन्ध्यवर्ज्जिताः १३ ॥

टी० । और उसके फल खाते हैं इससे दश हजार वर्ष उन सबों का आयुर्बल है और वे लोग रति में बड़े प्रवीण हैं और जरा और दुर्गन्धि से वर्ज्जित हैं १३ ॥

मू० तस्मादथोत्तरं वर्षं नाम्ना ख्यातं हिरण्मयम् ।
हिरण्वती नदी यत्र प्रभूतकमलोज्ज्वला १४ ॥

टी० । उसके उत्तर तरफ़ हिरण्मय नाम वर्ष है जहां हिरण्वती नाम नदी बहती है जो बहुत कमलों से शोभित रहती है १४ ॥

मू० महाबलाः सतेजस्का जायन्ते तत्र मानवाः ।
महाकाया महासत्वा धनिनः प्रियदर्शनाः १५ ॥

टी०। और वहाँ के सब मनुष्य महाबलवान् और तेजस्वी होते हैं [और] बड़े डीलवाले और धनवान् व बलवान् और प्रियदर्शन हैं अर्थात् [स]ब कोई देखने में अच्छे लगते हैं १५॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भुवनकोशसमाप्तिर्नामषष्टितमोऽध्यायः ६०॥

अथ इकसठवां अध्याय॥

कौष्टुकिरुवाच॥

मू० कथितं भवता सम्यग् यत्पृष्टोसि महामुने।
भूसमुद्रादिसंस्थानं प्रमाणानि तथा ग्रहाः १॥

टी०। फिर क्रौष्टुकि ने कहा कि हे मुनि! जो जो बातें मैंने आप से पूंछी उनको आपने विस्तारपूर्वक वर्णन किया कि पृथ्वी और समुद्र इत्यादि की स्थिति और प्रमाण और ग्रह १॥

मू० तेषाञ्चैव प्रमाणञ्च नक्षत्राणाञ्च संस्थितिः।
भूरादयस्तथा लोकाः पातालान्यखिलान्यपि २॥

टी०। और ग्रहों का प्रमाण और नक्षत्रों के स्थान और भूःभुवःआदि लोक और सब पाताल भी २॥

मू० स्वायम्भुवन्तथाख्यातं मुनेर्मन्वन्तरं मम।
तदन्तराण्यहं श्रोतुमिच्छे मन्वन्तराणि वै॥
मन्वन्तराधिपान् देवान्रृषींस्तत्तनयान्नृपान् ३॥

टी०। और स्वायम्भुव मन्वन्तर का भी वृत्तान्त कह चुके अब हे मुने! इसके उपरान्त मन्वन्तर और मन्वन्तरों के राजा व उनके पुत्र और ऋषि और देवता इत्यादिकों का हाल सुना चाहता हूँ सो वर्णन कीजिये ३॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० मन्वन्तरं मयाख्यातं तव स्वायम्भुवञ्च यत्।
स्वारोचिषाख्यमन्यन्तु शृणु तस्मादनन्तरम् ४॥

टी०। तब मार्कण्डेयजी कहने लगे कि स्वायम्भुव मन्वन्तर का हाल जो मैंने तुम से कहा है उस के बाद स्वारोचिष मन्वन्तर है उस को सुन्यिे ४॥

मू० कश्चिद्द्विजातिप्रवरः पुरेऽभूदरुणास्पदे।
वरुणायास्तटे विप्रो रूपेणात्यश्विनावपि ५॥

टी०। उसी मन्वन्तरमें वरुणा नाम नदी के किनारे पर एक नगर अरुणास्पद नाम था उस नगर में एक श्रेष्ठ ब्राह्मण अत्यन्त रूपवान् था कि जिस रूप से अश्विनीकुमार को उल्लंघन करता था ५॥

मू० मृदुस्वभावः सद्वृत्तो वेदवेदाङ्गपारगः।
सदातिथिप्रियो रात्रावागतानां समाश्रयः ६॥

टी०। और वह बड़ा कोमल स्वभाव और सद्वृत्त याने उत्तम आचरणवाला और वेद और वेदाङ्ग में प्रवीण और सदा अतिथिप्रिय था और जो अतिथि रात्रि के समय आता था वह उसीके यहां ठहरताथा ६॥

मू० तस्य बुद्धिरियं त्वासीदहं पश्ये वसुन्धराम्।
अतिरम्यवनोद्यानां नाना नगरशोभिताम् ७॥

टी०। एक दिन उस ब्राह्मण के चित्तमें यह आया कि मैं सम्पूर्ण पृथ्वी की सैर करता और देखता कि इस पृथ्वी पर कैसे कैसे नगर और वन और फुलवाड़ी रमणीक हैं जिनसे यह पृथ्वी शोभित है ७॥

मू० अथागतोऽतिथिः कश्चित् कदाचित्तस्य वेश्मनि।
नानौषधिप्रभावज्ञो मन्त्रविद्याविशारदः ८॥

टी०। इसी चिन्ता में था कि इतने में एक अतिथि आया जो तरह तरह की ओषधियों के प्रभाव का जाननेवाला और मन्त्रविद्या में निपुण था ८॥

मू० अभ्यर्थितस्तु तेनासौ श्रद्धापूतेन चेतसा।
तस्याचख्यौ सुदेशांश्च रम्याणि नगराणि च ९॥

टी०। उस ब्राह्मण ने इस अतिथि से जब श्रद्धा से पवित्र चित्तकरके पूंछा तब उससे उत्तम देश व मनोहर नगरों को कहा ९॥

मू० नदीर्वनानि शैलांश्च पुण्यान्यायतनानि च ।
स ततो विस्मयाविष्टः प्राह तं द्विजसत्तमम् १० ॥

टी० और बहुत नदियां और वन और पहाड़ और पुण्यदायक स्थानों का हाल जहांतक वह फिराथा वर्णन किया तब ब्राह्मण ने आश्चर्य्य संयुतहो उस द्विजोत्तम से पूंछा १० ॥

मू० अनेकदेशदर्शित्वे नातिश्रमसमन्वितः ।
त्वं नातिवृद्धो वयसा नातिवृत्तश्च यौवनात् ॥
कथमल्पेन कालेन पृथिवीमटसि द्विज ११ ॥

टी० । कि हे ब्राह्मण (अतिथि) ! आपने तो बहुत देशों की सैर की है पर आपके शरीर में उसका कुछ परिश्रम नहीं मालूम होता और आप उमर से बूढ़े भी नहीं हैं और न बहुत जवान हैं उमर आपकी थोड़ीही देख पड़ती है फिर थोड़ेही दिनों में सम्पूर्ण पृथ्वी को किसतरह आपने भ्रमण किया है यह कहिये ११ ॥

ब्राह्मण उवाच ॥

मू० मन्त्रौषधिप्रभावेण विप्राप्रतिहता गतिः ।
योजनानां सहस्रं हि दिनार्द्धेन व्रजाम्यहम् १२ ॥

टी० । यह सुनकर वह ब्राह्मण अर्थात् अतिथि बोला कि हे विप्र ! ओषधि और मन्त्रों के प्रभाव से मेरी गति अप्रतिहता है अर्थात् रोक नहीं है आधे दिनमें चार हज़ार कोस मैं चलताहूँ १२ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० ततः स विप्रस्तं भूयः प्रत्युवाचेदमादरात् ।
श्रद्दधानो वचस्तस्य ब्राह्मणस्य विपश्चितः १३ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी कहते हैं कि वह ब्राह्मण उन महात्मा की बातें सुनकर और उस बिद्वान् ब्राह्मण के वचन का विश्वास और श्रद्धा करके फिर उस ब्राह्मण से आदर समेत बोला १३ ॥

मू० मम प्रसादं भगवन् कुरु मन्त्रप्रभावजम् ।
द्रष्टुमेतां मम महीमतीवेच्छा प्रवर्त्तते १४ ॥

टी० । कि हे भगवन् ! कृपा करके और प्रसन्न होकर मुझे भी वह मन्त्र बतादीजिये कि जिससे मैं भी अपनी इच्छानुसार पृथ्वी की सैर करूँ १४ ॥

मू० प्रादात्स ब्राह्मणश्चास्मै पादलेपमुदारधीः ।
अभिमन्त्रयामास दिशं तेनाख्याताञ्च यत्नतः १५ ॥

टी० । तब उदार बुद्धिवाले उस अतिथि ने प्रसन्न होकर इसके लिये पादलेप देदिया कि जिसको पांव में लगालेने से मनुष्य हज़ारों योजन जा सक्ता है और उससे कही हुई दिशा को अभिमन्त्रित किया १५ ॥

मू० तेनानुलिप्तपादोऽथ स द्विजो द्विजसत्तम ।
हिमवन्तमगाद्द्रष्टुं नाना प्रस्रवणान्वितम् १६ ॥

टी० । हे द्विजोत्तम ! एक दिन वह ब्राह्मण उस पादलेप को अपने पांवों के तलवों में लगाके हिमवान् पहाड़ के देखने को चला जो कि अनेकों प्रकार के झरनों से संयुत था १६ ॥

मू० सहस्रं योजनानां हि दिनार्द्धेन व्रजामि यत् ।
आयास्यामीति सञ्चिन्त्य तदर्द्धेनापरेण हि १७ ॥

टी० । और अपने दिलमें यह कहता था कि मैं आधे दिन में चारहज़ार कोस जाऊँगा और दूसरे आधे दिन में फिरकर चला आऊंगा १७ ॥

मू० सम्प्राप्तो हिमवत्पृष्ठं नातिश्रान्ततनुर्द्विज !
विचचार ततस्तत्र तुहिनाचलभूतले १८ ॥

टी० । हे द्विज ! इतनेही में वह ब्राह्मण हिमवान् पर्व्वत पर विना परिश्रम पहुँच गया और वहां की भूमि में टहलने लगा १८ ॥

मू० पादाक्रान्तेन तस्याथ तुहिनेन विलीयता ।
प्रक्षालितः पादलेपः परमौषधिसम्भवः १९ ॥

टी० । उस पहाड़ पर चलने और फिरने पर बर्फ़ के सबबसे वह उत्तम ओषधि से उपजा हुआ चरणलेप सब धोगया १९ ॥

मू० ततो जडगतिः सोऽथ इतश्चेतश्च पर्य्यटन् ।
ददर्शातिमनोज्ञानि सानूनि हिमभूभृतः २० ॥

टी०। उस ओषधि के धोजाने से वह ब्राह्मण जड़गति होकर अपनी पहिली चाल से इधर उधर घूमने लगा तो उस हिमवान् पर्वत के बड़े मनोरम्य शिखरों को देखा २०॥

मू० सिद्धगन्धर्वजुष्टानि किन्नराभिरतानि च।
क्रीडाविहाररम्याणि देवादीनामितस्ततः २१॥

टी०। कि जहां पर सिद्ध और गन्धर्व्व और किन्नर गण विहार कर रहे हैं और उस पर्व्वतके इधर उधर देवतों की क्रीड़ा और विहार के वास्ते रमणीय स्थान बने हैं २१॥

मू० दिव्याप्सरोगणशतैराकीर्णान्यवलोकयत्।
नातृप्यत द्विजश्रेष्ठः प्रोद्भूतपुलको मुने २२॥

टी०। हे मुनि! वह उत्तम ब्राह्मण दिव्य अप्सराओं के सैकड़ों समूहों से उस स्थान को घिराहुआ देखता था कि जिसके देखने से उस के रोम खड़े होगये व मन को तृप्ति नहीं होती थी २२॥

मू० क्वचित् प्रस्रवणाद्भ्रष्टजलपातं मनोरमम्।
प्रनृत्यच्छिखिकेकाभिरन्यतश्च निनादितम् २३॥

टी०। कहीं तो झरनों से पानी बहरहा है वह उत्तम स्थान है और अन्यत्र कहीं मोर नाचरहे हैं और सुहावनी बोलियां सब बोलरहे हैं २३॥

मू० दात्यूहकोयष्टिकाद्यैः क्वचिच्चातिमनोहरैः।
पुंस्कोकिलकलालापैः श्रुतहारिभिरन्वितम् २४॥

टी०। और कोकिला इत्यादि के कानों को मनोहर मधुर आलाप से वह वन संयुक्त व अतिमनोहर काले कौवों व टिटिहिरी पक्षियों से अत्यन्त रमणीय और मनोहर होरहाहै २४॥

मू० प्रफुल्लतरुगन्धेन वासितानिलवीजितम्।
मुदायुक्तः स ददृशे हिमवन्तं महागिरिम् २५॥

टी०। और फूलेहुये वृक्षों की सुगन्धि के साथ मन्द मन्द पवन चल रही है यह शोभा हिमवान् महापर्व्वत की देखकर वह ब्राह्मण बहुत आनन्दित हुआ २५॥

मू० दृष्ट्वा चैतं द्विजसुतो हिमवन्तं महाचलम्।

श्वो द्रक्ष्यामीति सञ्चिन्त्य मतिञ्चक्रे गृहं प्रति २६ ॥

टी० । और इस हिमवान् महाचल को देखकर वह ब्राह्मणकुमार अपने जी में कहने लगा कि कल फिर सुबह के वक़्त आकर देखूँगा यह बात अपने चित्त में ठहराकर घर चलने की इच्छा की २६ ॥

मू० विभ्रष्टपादलेपोऽथ चिरेण जडितक्रमः ।
चिन्तयामास किमिदं मया ज्ञानादनुष्ठितम् २७ ॥

टी० । जब चलने पर मुस्तैद हुआ तो जड़गति होगया यानी चाल रुकगई क्योंकि चरण में जो चरणलेप था वह चलने फिरने से मिट गया था इससे चिन्ता करने लगा कि मैंने अनजान से ऐसा काम क्यों किया २७ ॥

मू० यदि प्रलेपो नष्टंमे विलीनो हिमवारिणा ।
शैलोऽतिदुर्गमश्चायं दूरश्चाहमिहागतः २८ ॥

टी० । अब अगर इस हिम के जल से मेरा चरणलेप नष्ट होगया तो अब यहां से जाना बहुत कठिन है क्योंकि यह पर्व्वत दुर्गमहै और बहुत दूर मैं यहां आगया २८ ॥

मू० प्रयास्यामि क्रियाहानिमग्निशुश्रूषणादिकम् ।
कथमत्र करिष्यामि सङ्कटं महदागतम् २९ ॥

टी० । और यहां के आने से मेरा नेम इत्यादि भी छूटा क्योंकि यहां पर मैं अग्नि की पूजा वग़ैरह किस तरह करूंगा बड़ा सङ्कट तो मुझको एक यही आपड़ा है २९ ॥

मू० इदं रम्यमिदं रम्यमित्यस्मिन् रम्यपर्व्वते ।
सक्तदृष्टिरहं तृप्तिं न यास्येऽब्दशतैरपि ३० ॥

टी० । और इस पहाड़ पर जो अच्छे २ पदार्थ और रम्य रम्य स्थान हैं उन को यदि सैकड़ों वर्ष तक देखता रहूँ तो भी मेरा जी उचाट न होगा ३० ॥

मू० किन्नराणां कलालापाः समन्ताच्छ्रोत्रहारिणः ।
प्रफुल्लतरुगन्धांश्च घ्राणमत्यन्तमृच्छति ३१ ॥

टी० । क्योंकि किन्नर गणों का सुन्दर आलाप जो चारों तरफ़ से

आता है उस को सुनकर मेरे कान हरे जाते हैं और वृक्षों के फूलों से जो सुगन्धि आती है इसके सूँघने से मेरी नाक भी आसक्त होरही है ३१॥

मू० सुखस्पर्शस्तथा वायुः फलानि रसवन्ति च ।
हरन्ति प्रसभं चेतो मनोज्ञानि सरांसि च ३२ ॥

टी० । इसी तरह यह शीतल मन्द सुगन्ध संयुक्त सुखद वायु का स्पर्श अच्छा लगता है और यहां के रसीले फल और मनोरम्य सरोवरों ने भी मेरे मनको ज़बरदस्ती हर लिया है ३२ ॥

मू० एवं गते तु पश्येयं यदि कञ्चित् तपोनिधिम् ।
स ममोपदिशेन्मार्गं गमनाय गृहम्प्रति ३३ ॥

टी० । ऐसा तो होचुका अब जो मुझे वैसाही कोई तपस्वी महात्मा देख पड़े तो अलबत्ता घरजाने के लिये मुझको राह बतलावै ३३ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० स एवं चिन्तयन् विप्रो बभ्राम च हिमाचले ।
अष्टपादौषधिबलो वैक्लवं परमं गतः ३४ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि ! ऐसी चिन्ता में वह ब्राह्मण उस हिमवान् पर्व्वत पर भ्रमण करता था और चरण की ओषधि के खोजाने से बड़े शोच में था ३४ ॥

मू० तं ददर्श भ्रमन्तञ्च मुनिश्रेष्ठं वरूथिनी ।
वराप्सरा महाभागा मौलेया रूपशालिनी ३५ ॥

टी० । कि इतने में एक उत्तम अप्सरा वरूथिनी नाम महाभाग्यवती और रूपवती जो जूड़ा बांधे थी उसने उस श्रेष्ठ मुनि को उस पर्व्वत पर फिरते हुये देखा ३५ ॥

मू० तस्मिन् दृष्टे ततः साभूद् द्विजवर्य्ये वरूथिनी ।
मदनाकृष्टहृदया सानुरागा हि तत्क्षणात् ३६ ॥

टी० । और उस उत्तम ब्राह्मण के रूप को देखकर उसके बाद वह अप्सरा जिसके मन को कामदेवने खींचलिया था उसी क्षण आसक्त होगई ३६ ॥

मू० चिन्तयामास कोन्वेषरमणीयतमाकृतिः।
सफलं मे भवेज्जन्म यदि मां नावमन्यते ३७॥

टी०। और अपने मनमें कहनेलगी कि ऐसा अतिरूपवान् पुरुष यह कौन है जो यह पुरुष मुझपर प्रसन्न होता तो मेरा जीवन सफल होजाता ३७॥

मू० अहोऽस्य रूपमाधुर्य्यमहोऽस्य ललितागतिः।
अहोगम्भीरता दृष्टेः कुतोऽस्य सदृशो भुवि ३८॥

टी०। बड़े आश्चर्य की बातहै कि इसके रूपकी माधुर्य्यता और इस की ललित गति अर्थात् चाल और चितवन की गम्भीरता अत्यन्त मनोहर है किन्तु इस पृथ्वी में इसके सदृश दूसरा रूपवान् कहीं नहीं है ३८॥

मू० दृष्टा देवास्तथा दैत्याः सिद्धगन्धर्व्वपन्नगाः।
कथमेकोऽपिनास्त्यस्य तुल्यरूपो महात्मनः ३९॥

टी०। क्योंकि मैंने कितने देवता और दानव और सिद्ध और गन्धर्व्व और नागोंको देखा है पर इस महात्माके समान सुन्दर कोई एक भी नहीं है ३९॥

मू० यथाहमस्मिन्मय्येव सानुरागस्तथा यदि।
भवेदत्र मया कार्य्यस्तत्कृतः पुण्यसञ्चयः ४०॥

टी०। जिस तरह मेरा मन इसपर लोभित हुआहै इसी तरह इसका मन भी मेरे ऊपर मेरे पूर्व्वजन्मके संचित पुण्योंसे जो मोहित होजाय तो यहांपर मेरा कार्य्य सिद्ध होजायगा ४०॥

मू० यद्येष मयि सुस्निग्धां दृष्टिमद्य निपातयेत्।
कृतपुण्या न मत्तोऽन्या त्रैलोक्ये वनिता ततः ४१॥

टी०। जो यह महात्मा प्रसन्न होकर मेरी तरफ़ देखदे तो मैं जानूं कि मेरी बराबर पुण्यवाली स्त्री त्रैलोक्य में नहीं है ४१॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० एवं सञ्चिन्तयन्ती सा दिव्ययोषित् स्मरातुरा।
आत्मानं दर्शयामासकमनीयतराकृतिम् ४२॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि इस तरह वह सुन्दरी कामातुरा

अपने मनमें चिन्ता करती हुई नखशिखसे शृङ्गारकर सुन्दररूपवाले अपने शरीरको उस ब्राह्मणकुमारको दिखलाया ४२ ॥

मू० तां तु दृष्ट्वा द्विजसुतश्चारुरूपां वरूथिनीम्।
सोपचारं समागम्य वाक्यमेतदुवाच ह ४३ ॥

टी०। तब वह ब्राह्मणकुमार भी उस वरूथिनी का सुन्दर रूप देख कर क़ायदे समेत जाकर उससे यह वचन कहने लगा ४३ ॥

मू० का त्वं कमलगर्भाभे कस्य किंवा नु तिष्ठसि।
ब्राह्मणोहमिहायातो नगरादरुणास्पदात् ४४ ॥

टी०। हे कमल के गर्भकी कान्तिवाली ! तू किसकी स्त्री है व कौनहै और तू क्या करती है और कहां तू रहती है और मैं तो ब्राह्मण हूँ अरुणास्पद नगर से यहां आयाहूं ४४ ॥

मू० पादलेपोऽत्र मे ध्वस्तो विलीनो हिमवारिणा।
यस्यानुभावादत्राहमागतो मदिरेक्षणे ४५ ॥

टी०। यहांपर आनेसे मेरे चरणकी ओषधि इस हिम (बर्फ़) के जल से धोगई जिसके प्रभाव से हे सुन्दरी ! मैं इस स्थान पर आयाथा ४५॥

वरूथिन्युवाच ॥

मू० मौलेयाहं महाभागा नाम्नाख्याता वरूथिनी।
विचरामि सदैवात्र रमणीये महाचले ४६ ॥

टी०। यह सुनकर वह वरूथिनी बोली कि हे ब्राह्मण ! मैं महाभाग्यवती व सब से उत्तमहूं मेरा नाम वरूथिनी अप्सरा विख्यात है इस रमणीय पर्व्वत पर सदा विचरतीहूं ४६ ॥

मू० साहं त्वद्दर्शनाद्विप्र कामस्यवशताङ्गता।
प्रशाधि यन्मया कार्य्यं त्वदधीनास्मि साम्प्रतम् ४७ ॥

टी०। हे ब्राह्मण ! मैं तुम्हें देखकर अत्यन्त कामासक्त होरहीहूँ आप जो कुछ मुझे आज्ञा दो वह मैं करूं क्योंकि इस समय मैं तुम्हारे अधीन हो रही हूँ ४७ ॥

ब्राह्मण उवाच ॥

मू० येनोपायेन गच्छेयं निजगेहं शुचिस्मिते।
तन्ममाचक्ष्व कल्याणि हानिर्नोऽखिलकर्म्मणाम् ४८ ॥

टी०। यह सुनकर वह ब्राह्मणकुमार बोला कि हे कल्याणी,शुचिस्मिते! जिस उपायसे मैं अपने घर जाऊं वह तदबीर कोई मुझे बता दे क्योंकि मेरी सम्पूर्ण क्रियाओं की हानि होती है ४८॥

मू० नित्यनैमित्तिकानान्तु महाहानिर्द्विजन्मनः।
भवत्यतस्त्वं हे भद्रे! मामुद्धर हिमालयात् ४९ ॥

टी०। और नित्य और नैमित्तिकादि क्रियाओं का छूटजाना ब्राह्मण के वास्ते बड़ी हानि है इसलिये हे कल्याणी! इस हिमालय से मेरा तू उद्धारकर ४६ ॥

मू० प्रशस्यते न प्रवासो ब्राह्मणानां कदाचन।
अपराधं न मे भीरु देशदर्शनकौतुकम् ५० ॥

टी०। हे भीरु! ब्राह्मणों को परदेश जाना कभी अच्छा नहीं है परंतु इसमें कुछ मेरा अपराध नहींहै देशों के देखनेके कौतुक से आयाथा ५०

मू० सतो गृहे द्विजाग्र्यस्य निष्पत्तिः सर्व्वकर्म्मणाम्।
नित्यनैमित्तिकानाञ्च हानिरेवं प्रवासिनः ५१ ॥

टी०। अच्छे श्रेष्ठ ब्राह्मणों की सम्पूर्ण क्रिया घरही में सिद्ध होती है और प्रवासी ब्राह्मणों की नित्य और नैमित्तिकादि क्रियाओं की हानि अवश्य कर होती है ५१ ॥

मू० सा त्वं किं बहुनोक्तेन तथा कुरु यशस्विनि।
यथा नास्तं गते सूर्य्ये पश्यामि निजमालयम् ५२ ॥

टी०। हे यशस्विनी! बहुत कहांतक कहूं सो तू ऐसी तदबीर कर कि जिससे मैं सूर्य्यास्त होनेसे पहिले अपने घरको देखूं ५२ ॥

वरूथिन्युवाच ॥

मू० मैवं ब्रूहि महाभाग माभूत्स दिवसो मम।
मां परित्यज्य यत्र त्वं निजगेहमुपैष्यसि ५३ ॥

टी०। वरूथिनी बोली कि हे महाभाग ! ऐसा मत कहौ और वह दिन मेरा कभी न हो कि जिसमें तुम मुझे छोड़कर अपने घरजावो ५३॥

मू० अहो रम्यतरः स्वर्गो न यतो द्विजनन्दन।
अतो वयं परित्यज्य तिष्ठामोऽत्र सुरालयम् ५४॥

टी०। और हे द्विजनन्दन! जिस लिये इस स्थान के बराबर रमणीय स्वर्ग भी नहींहै यह आश्चर्य्य है इसलिये इन्द्रलोक को छोड़कर मैं यहां रहती हूँ ५४॥

मू० स त्वं सह मया कान्त कान्तेऽत्र तु हिमाचले।
रममाणो न मर्त्यानां बान्धवानां स्मरिष्यसि ५५॥

टी०। इस वास्ते हे कान्त ! इस रमणीक हिमालय में तुम मेरे साथ रमण करौ जब उस रमण का सुख तुमको मिलैगा तब तुम अपने चित्त से मनुष्यलोक वाले बन्धु मित्र सब भूलजावोगे ५५॥

मू० स्रजोवस्त्राण्यलङ्कारान्भक्ष्यभोज्यानुलेपनम्।
दास्याम्यत्र तथाहन्ते स्मरेण वशमाहता ५६॥

टी०। और माला वस्त्र भूषण भोजन चन्दनादि अनुलेपन जो कुछ चाहो वह मैं तुम्हें यहां दूँगी क्योंकि मैं कामासक्त हो रहीहूँ ५६॥

मू० वीणावेणुस्वनं गीतं किन्नराणां मनोरमम्।
अङ्गाह्लादकरो वायुरुष्णान्नमुदकं शुचि ५७॥

टी०। और वीणा और वेणु शब्द और किन्नरगणों के मनोरम्य गीत सुनौ और देखो कि अङ्गको आनन्द देनेवाली वायु और गरम अन्न और अपवित्र जल यहां सदा वर्त्तमान रहता है ५७॥

मू० मनोभिलषिता शय्या सुगन्धमनुलेपनम्।
इहासतो महाभाग गृहे किन्ते निजेऽधिकम् ५८॥

टी०। और मनकी अभिलाषानुसार शय्या और सुगन्धदार चन्दन इत्यादि अनुलेपन प्राप्त रहताहै हे महाभाग ! इससे अधिक तुम्हारे घर में क्या है ५८॥

मू० इहासतो नैव जरा कदाचित्ते भविष्यति।

त्रिदशानामियं भूमिर्यौवनोपचयप्रदा ५९ ॥

टी० । और यहां रहने से तुमको बुढ़ापा कभी न होगा क्योंकि तरुणही अवस्था को बढ़ानेवाली यह भूमि देवतोंकी है ५९ ॥

मू० इत्युक्त्वा सानुरागा सा सहसा कमलेक्षणा ।
आलिलिङ्ग प्रसीदेति वदन्ती कलमुन्मनाः ६० ॥

टी० । इसप्रकार वह वरूथिनी कमलनयनी कहकर अनुरागसंयुक्त प्रसीद अर्थात् प्रसन्न हूजिये यह मधुर शब्द कहती हुई उत्कंठित होकर उस ब्राह्मणकुमार के अङ्ग में अचानक लिपट गई ६० ॥

ब्राह्मण उवाच ॥

मू० मां मा स्प्राक्षीर्व्रजाम्यत्र दुष्टे यः सदृशस्तव ।
मयान्यथा याचिता त्वमन्यथैवाप्युपैषि माम् ६१ ॥

टी० । तब उस ब्राह्मणकुमार ने कहा कि हे दुष्टे! तू मुझे मत छू जो तेरे योग्य हो वहाँ जा मैंने तुमसे और तरह से पूछा था और तू और ही तरह मुझे मिलने को चाहती है ६१ ॥

मू० सायं प्रातर्हुतं हव्यं लोकान् यच्छति शाश्वतान् ।
त्रैलोक्यमेतदखिलं मूढे हव्ये प्रतिष्ठितम् ६२ ॥

टी० ।और सायंकाल और प्रातःकाल होम करने से शाश्वत अविनाशी लोकों में मनुष्य प्राप्त होता है और हे मूढे! होमही के प्रताप से ये तीनों लोक प्रतिष्ठित यानी क़ायम हैं ६२ ॥

वरूथिन्युवाच ॥

मू० किन्ते नाहं प्रिया विप्र रमणीयो न किं गिरिः ॥
गन्धर्व्वान् किन्नरादींश्च त्यक्त्वाभीष्टो हि कस्तव ६३ ॥

टी० ।यह सुनकर वरूथिनी बोली कि हे विप्र! मैं क्या तुम्हारी प्रिया नहीं हूँ या यह पर्व्वत रमणीक नहीं है इन किन्नर और गन्धर्व्वों को छोड़कर तुमको क्या प्यारा है ६३ ॥

मू० निजमालयमप्यस्माद्भवान् यास्यत्यसंशयम् ।
स्वल्पकालं मया सार्द्धं भुङ्क्ष्व भोगान् सुदुर्ल्लभान् ६४॥

टी०। कुछ दिन मेरे साथ दुर्लभ भोग करलेवो तब फिर निस्सन्देह आप यहां से अपने घर को भी चलेजाना ६४॥

ब्राह्मण उवाच॥

मू० अभीष्टागार्हपत्याद्याः सततं मे त्रयोऽग्नयः॥
रम्यं ममाग्निशरणं वेदीविष्टरिणी प्रिया ६५॥

टी०। तब ब्राह्मण ने कहा कि गार्हपत्य इत्यादि तीनों अग्नि मेरे अभीष्ट याने प्रिय हैं और अग्नि ही की शरण मुझको रम्य है और कुशों से संयुक्त वेदी मुझको प्रिय है ६५॥

वरूथिन्युवाच॥

मू० अष्टावात्मगुणा ये हि तेषामादौ दया द्विज।
तां करोषि कथं न त्वं मयि सद्धर्म्मपालक ६६॥

टी०। तब वरूथिनीबोली कि हे ब्राह्मण! आत्माके जो आठ गुणहैं उन में पहले मुख्य दया हैहे धर्म्मपालक! वह मुझपर क्यों नहीं करते हो ६६॥

मू० त्वद्विमुक्ता नजीवामि तथा प्रीतिमती त्वयि।
नैतद्वदाम्यहं मिथ्या प्रसीद कुलनन्दन ६७॥

टी०। और हे कुलनन्दन! अब तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो नहीं तो मैं तुम्हारे जुदा होने से अपना प्राण अवश्य त्याग दूँगी क्योंकि तुम में मेरा स्नेह है यह बात झूठ नहीं कहती हूँ ६७॥

ब्राह्मण उवाच॥

मू० यदि प्रीतिमती सत्यं नोपचाराद् ब्रवीषि माम्।
तदुपायं समाचक्ष्व येन यामि स्वमालयम् ६८॥

टी०। तब ब्राह्मणकुमारने कहा कि जो मेरे ऊपर तेरी ऐसीही सत्य प्रीति है झूठ नहीं कहती हो तो मुझको कोई ऐसी तदबीर बतला कि जिसमें मैं अपने घर पहुँच जाऊँ ६८॥

वरूथिन्युवाच॥

मू० निजमालयमप्यस्माद्भवान् यास्यत्यसंशयम्।
स्वल्पकालं मया सार्द्धं भुङ्क्ष्व भोगान् सुदुर्ल्लभान्६९॥

टी० । वरूथिनी बोली कि तुम अपने घर यहां से निस्सन्देह जावेगे परन्तु कुछ दिन मेरे साथ दुर्लभ भोगों को भोग करलो ६९ ॥

ब्राह्मण उवाच ॥

मू० नभोगार्थाय विप्राणां शस्यते हि वरूथिनि ।
इहक्लेशाय विप्राणां चेष्टाप्रेत्यफलप्रदा ७० ॥

टी० । तब ब्राह्मण ने कहा कि हे वरूथिनी ! ब्राह्मणों के वास्ते भोग करना अच्छा नहीं है ब्राह्मणों की क्रिया यद्यपि इस लोकमें क्लेश दायक जान पड़ती है परन्तु परलोक में बहुत सुखदाई है ७० ॥

वरूथिन्युवाच ॥

मू० सन्त्राणं म्रियमाणाया मम कृत्वा परत्र ते ।
पुण्यस्यैव फलं भावि भोगाश्चान्यत्र जन्मनि ७१॥

टी० । फिर वरूथिनी बोली कि हे ब्राह्मण ! मेरे साथ इस समय भोग करके मेरे प्राण की रक्षाकरो तो मरकर तुमको सम्पूर्ण धर्म्मों का फलहोगा व और जन्म में सुख होवैंगे ७१ ॥

मू० एवञ्च द्वयमप्यत्र तवोपचयकारणम् ।
प्रत्याख्यानादहं मृत्युं त्वञ्च पापमवाप्स्यसि ७२ ॥

टी० । और मेरे साथ भोग करने से तुमको दोनों बातें वृद्धिकी प्राप्त होंगी और जो तुम मुझको जवाबदोगे तो मैं मरजाऊंगी और तुमको भी पाप होगा ७२ ॥

ब्राह्मण उवाच ॥

मू० परस्त्रियं नाभिलषेदित्यूचुर्गुरवो मम ।
तेन त्वां नाभिवाञ्छामि कामं विलपशुष्यवा ७३ ॥

टी० । ब्राह्मण बोला कि मुझको गुरू की यह आज्ञा है कि परस्त्री की अभिलाषा न करना इस वास्ते मैं तुझको नहीं चाहता हूं तू विलाप कर चाहे शोचसे सूखजा ७३ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० इत्युक्त्वा सुमहाभागः स्पृष्ट्वापः प्रयतः शुचिः ।

प्राहेदं प्रणिपत्याग्निं गार्हपत्यमुपांशुना ७४ ॥

टी० । मार्कण्डेय जी कहते हैं कि इतना कहकर वह ब्राह्मण कुमार महाभाग जल को स्पर्श कर पवित्र होकर गार्हपत्य जो अग्नि है उसको प्रणाम करके यह बोला ७४ ॥

मू० भगवन् गार्हपत्याग्नेयोनिस्त्वं सर्व्वकर्म्मणां ।
त्वत्त आह्वनीयोऽग्निर्दक्षिणाग्निश्च नान्यतः ७५ ॥

टी० । कि हे गार्हपत्याग्ने, भगवन् ! तुम सम्पूर्ण कर्म्मों के पैदा करने वाले हो और तुमसे आहवनीय व दक्षिणाग्नि संज्ञक अग्नियां हैं अन्य से नहीं हैं ७५ ॥

मू० युष्मदाप्यायनाद्देवा वृष्टिसस्यादिहेतवः ।
भवन्ति सस्यादखिलं जगद्भवति नान्यतः ७६ ॥

टी० । और तुम्हारेही तृप्त होने से सब देवता भी तृप्त होकर जल-बरसाते हैं उससे पृथ्वीमें अन्न पैदा होताहै कि जिससे सम्पूर्ण संसारका जीवन होता है अन्यसे नहीं ७६ ॥

मू० एवं त्वत्तो भवत्येतद्येन सत्येन वै जगत् ।
तथाहमद्य स्वं गेहं पश्येयं सति भास्करे ७७ ॥

टी० । इसतरह जिस सत्यके सबबसे तुम से संसार होताहै उसी सत्यके जबतक सूर्य्यास्त नहीं तबतक मैं अपने घरको आजही देखूं ७७ ॥

मू० यथा वै वैदिकं कर्म्म स्वकालेनोज्झितं मया ।
तेन सत्येन पश्येयं गृहस्थोद्य दिवाकरम् ७८ ॥

टी० । और जिसतरह क्रियाके समय में मैंने वैदिक कर्म्मोंका त्याग नहीं किया उस सत्यसे गृहस्थ मैं आज अपने घर पहुँचकर सूर्य्यको देखूं ७८ ॥

मू० यथा च न परद्रव्ये परदारे च मे मतिः ।
कदाचित्साभिलाषाभूत्तथैतत् सिद्धिमेतुमे ७९ ॥

टी० । और जिसतरह पराई स्त्री और पराई द्रव्य में मेरी इच्छा कभी नहीं हुई है उसीतरह यह बात मेरी सिद्धिको प्राप्तहो ७९ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेस्वारोचिषेमन्वन्तरेब्राह्मणवाक्यंनाम ६१ ॥

अथ बासठवां अध्याय ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० एवन्तु वदतस्तस्य द्विजपुत्रस्य पावकः ।
गार्हपत्यः शरीरे तु सन्निधानमथाकरोत् १ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी कहते हैं कि इतनी बात ब्राह्मणकुमारने जब कही तो उसीसमय गार्हपत्य अग्निदेव उसके शरीर में आ पहुँचे १ ॥

मू० तेन चाधिष्ठितः सोऽथ प्रभामण्डलमध्यगः ।
व्यदीपयत तन्देशं मूर्त्तिमानिव हव्यवाट् २ ॥

टी० । और उस अग्निके आते ही जिसतरह प्रभाके बीच में अग्नि मूर्त्तिमान् हो वैसाही रूप उस ब्राह्मणकुमारका शोभा देनेलगा मानो शरीरधारी अग्निहैं और उसके प्रकाश से वह देश प्रकाशित होगया २ ॥

मू० तस्यास्तु सुतरां तत्र तादृग्रूपे द्विजन्मनि ।
अनुरागोऽभवद्विप्रं पश्यन्त्या देवयोषितः ३ ॥

टी० । जब वैसारूप उस ब्राह्मणकुमार का उस देवाङ्गना वरूथिनीने देखा तो अत्यन्त प्रेमसे और भी अधिक आसक्त होगई ३ ॥

मू० ततः सोधिष्ठितस्तेन हव्यवाहेन तत्क्षणात् ।
यथा पूर्व्वं तथा गन्तुं प्रवृत्तोद्विजनन्दनः ४ ॥

टी० । और जब ब्राह्मणके कुमारमें अग्निका अधिष्ठान अर्थात् प्रवेश हुआ तो उसीसमय वह पहिले के समान शक्तिमान् होगया और चलने पर मुस्तैद हुआ ४ ॥

मू० जगाम च त्वरायुक्तस्तयादेव्या निरीक्षितः ।
आदृष्टिपातात्तन्वङ्ग्या निश्वासोत्कम्पिकंधरम् ५ ॥

टी० । वरूथिनी देखतेही रही और ब्राह्मणकुमार बड़ी शीघ्रगति से वहांसे चलदिया व जबतक वह देखपड़ा तबतक वरूथिनी उसके विरह के शोकमें वेगसे निश्वास होकर कांपने लगी ५ ॥

मू० ततः क्षणेनैव तदा निजगेहमवाप्यसः ।

यथाप्रोक्तं द्विजश्रेष्ठश्चकार सकलाः क्रियाः ६ ॥

टी० । और वह ब्राह्मण तो उसीक्षण अपने घर पहुँचकर अपनी सम्पूर्ण क्रिया जिसतरह वेदमें कही है उसको किया ६ ॥

मू० अथ सा चारुसर्व्वाङ्गी तत्रासक्तात्ममानसा ।
निश्वासपरमानिन्ये दिनशेषं तथानिशाम् ७ ॥

टी० । और उस सर्व्वाङ्ग सुन्दरी वरूथिनी का मन उस ब्राह्मणकुमार के प्रेम में लगाथा इससे लम्बी लम्बी श्वासें लेनेलगी इसीतरह बाक़ी दिनका अन्त होगया और रात्रिहुई ७ ॥

मू० निश्वसन्त्यनवद्याङ्गी हाहेतिरुदती मुहुः ।
मन्दभाग्येति चात्मानं निनिन्द मदिरेक्षणा ८ ॥

टी० । और वह सुन्दरी उष्ण श्वास लेलेकर हाहा कहकह कर बारंबार रोतीथी और वह मदिरेक्षणा अपनी कमनसीबी और अपनी युवा अवस्था को धिक्कार करती थी ८ ॥

मू० न विहारे न चाहारे रमणीये न वा वने ।
न कन्दरेषु रम्येषु साबबन्ध तदा रतिम् ९ ॥

टी० । और आहार और विहार और वह रमणीय वन और सुन्दर कन्दरा इत्यादि उसवक्त अच्छा नहीं मालूम होताथा याने उसकी आंखों में कांटाके समान मालूम होताथा ६ ॥

मू० चकार रममाणे च चक्रवाकयुगे स्पृहाम् ।
मुक्तातेन वरारोहानिनिन्द निज यौवनम् १० ॥

टी० । उससे छोड़ीहुई उस वरूथिनीने विहार करतेहुये चकई चकवा के जोड़े में इच्छाकिया और वह सुन्दरी दुखीहो अपनी जवानीपर अफ़सोस करती थी १० ॥

मू० क्वागताहमिमं शैलं दुष्टदैवबलात्कृता ।
क्व च प्राप्तः समेदृष्टेर्गोचरं तादृशोनरः ११ ॥

टी० । और यह कहतीथी कि मैं बड़ी अभागिनी हूँ कि इस पर्व्वतपर कहांआई और वैसे निर्दयी मनुष्यसे भेंटहुई ११ ॥

मू० यद्यद्य स महाभागोनमे सङ्गमुपैष्यति।
तत्कामाग्निरवश्यं मां त्वरयिष्यति दुःसह १२॥

टी०। अगर वह महाभाग आज मेरे संगको न प्राप्तहोगा तो काम की दुःसह अग्नि मुझको अवश्य जलादेगी १२॥

मू० रमणीयमभूद्यत्तत्पुंस्कोकिलनिनादितम्।
तेन हीनं तदेवैतद्दहती वाद्यमामलम् १३॥

टी०। और अब इस रमणीय बनमें जो कोकिला इत्यादि की सुहावनी बोलियां थीं उस महाभाग विना वेही बोलियां मुझको बहुत जलाती हैं १३॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० इत्थं सा मदनाविष्टा जगाम मुनिसत्तम।
ववृधे च तदा रागस्तस्यास्तस्मिन् प्रतिक्षणम् १४॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे मुनिश्रेष्ठ! इसतरह वह कामासक्त वरूथिनी वहांसे चली व उस ब्राह्मणमें उसवक्त उसका स्नेह प्रतिक्षण बढ़ रहाथा १४॥

मू० कलिर्नाम्नातु गन्धर्व्वः सानुरागोनिराकृतः॥
तया पूर्व्वमभूत्सोऽथ तदवस्थां ददर्शताम् १५॥

टी०। कि इतने में कलिनाम गन्धर्व्व जो पहिले वरूथिनी पर आसक्त था और वरूथिनी ने उसका अनादर कियाथा उसजगह पर आया और उस दशावाली वरूथिनी को देखा १५॥

मू० स चिन्तयामास तदा किन्वेषा गजगामिनी।
निश्वासपवनम्लाना गिरावत्र वरूथिनी १६॥

टी०। और उसवक्त अपने जीमें शोचनेलगा कि यह गजगामिनी वरूथिनी क्यों उष्णश्वास लेलेकर इस पर्वतपै अपने सुन्दर वदन को कुँभिलाती है १६॥

मू० मुनिशापक्षता किं नु केनचित् किं विमानिता।
वाष्पवारिपरिक्लिन्नमियन्धत्ते यतो मुखम् १७॥

टी०। यातो किसी मुनिने इसको शाप दियाहै या किसी मनुष्यने इस का अपमान किया है कि जिससे आंसुवों से भीगेहुये मुखको धारण किये है १७॥

मू० ततः स दध्यौ सुचिरं तमर्थं कौतुकात्कलिः।
ज्ञातवांश्चप्रभावेण समाधेः स यथा तथम् १८॥

टी०। तब तो इस समाचार को जाननेके वास्ते कलिने आश्चर्य से ध्यानकिया व ध्यानके प्रभावसे सबहाल उसका जोकुछथा जानलिया १८॥

मू० पुनः सचिन्तयामास तद्विज्ञाय मुनेःकलिः।
ममोपपादितं साधुभाग्यैरेतत्पुराकृतैः १९॥

टी०। फिर मुनिका वह हाल जानकर ख्याल किया कि यह बात जो ब्राह्मणने की मेरे हक्कमें बहुत अच्छी की और मेरे पूर्व्व जन्म का सुकृत उदय हुआ १९॥

मू० मयैषा सानुरागेन बहुशः प्रार्थिता सती।
निराकृतवती सेयमद्यप्राप्या भविष्यति २०॥

टी०। क्योंकि मैंने पहिले बड़े अनुराग से इसके मिलने की इच्छा की थी और इसने मेरा अनादर कियाथा पर अब मैं जानता हूँ कि वही यह आज मुझको प्राप्तहोगी २०॥

मू० मानुषे सानुरागेयं तत्र तद्रूपधारिणि।
रंस्यतेमय्य संदिग्धं किं कालेन करोमि तत् २१॥

टी०। क्योंकि अब इसका मन मनुष्य के रूपपर लोभित हुआ है तो मैंभी थोड़ी देरमें वैसाही रूप मनुष्यका बनाऊँ तो यह निस्सन्देह मुझको प्यार करैगी २१॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० आत्मप्रभावेण ततस्तस्य रूपं द्विजन्मनः।
कृत्वा चचार यत्रास्ते निषण्णासा वरूथिनी २२॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि! वह गन्धर्व अपने

मन्त्रके जोरसे उसी ब्राह्मणका रूप धारण करके जहां वह वरूथिनी बैठी थी वहां जाकर घूमने फिरने लगा २२ ॥

मू० सा तं दृष्ट्वा वरारोहा किञ्चिदुत्फुल्ललोचना।
समेत्य प्राह तन्वङ्गी प्रसीदेति पुनःपुनः २३ ॥

टी०। तब कुछ फूलेहुये लोचनोंवाली वह अप्सरा उसे देखकर बड़े हर्ष से उसके पास गई व जाकर और उसको वही ब्राह्मण समझकर बार बार यह कहनेलगी कि मुझपर प्रसन्नहो २३ ॥

मू० त्वया त्यक्ता न सन्देहः परित्यक्षामि जीवितम्।
तत्राधर्म्मः कष्टतरः क्रियालोपोभविष्यति २४ ॥

टी०। नहीं तो तुम्हारे विरह में निस्सन्देह अपना प्राण त्याग करूंगी तब उसमें तुमको बड़ा दोष होगा और सम्पूर्ण क्रिया कीहुई व्यर्थ हो जावैंगी २४ ॥

मू० मया समेत्य रम्येऽस्मिन् महाकन्दरकन्दरे।
मत्परित्राणजं धर्म्ममवश्यं प्रतिपत्स्यसे २५ ॥

टी०। इसवास्ते मैं कहती हूँ कि मुझसे इस सुहावन व बड़ी कन्दरा में रमण करके मेरे प्राणकी रक्षाकरो तो तुमको उससे पैदाहुआ अवश्य बड़ा धर्म्म होगा २५ ॥

मू० आयुषः सावशेषं मे नूनमस्तिमहामते।
निवृत्तस्तेन नूनं त्वं हृदयाह्लादकारकः २६ ॥

टी०। और हे महामते! मैं निश्चय जानतीहूँ कि मेरी आयुर्बल अब पूरी होआई क्योंकि मेरे मनको आनन्द देनेवाले तुम मुझसे छूटतेहो २६ ॥

कलिरुवाच ॥

मू० किं करोमि क्रियाहानिर्भवत्यत्र सतोमम।
त्वमप्येवं विधं वाक्यं ब्रवीषि तनुमध्यमे २७ ॥

टी०। ये बातें सुनकर कलिनाम गन्धर्व बोला कि हे सूक्ष्माङ्गी! मैं क्याकरूं व मुझ सज्जन की क्रिया की हानि होती है जो तूभी इसतरह की बात कहती है २७ ॥

मू० तदहं सङ्कटं प्राप्तोयद्ब्रवीमि करोषितत्।
यदिस्यात्सङ्गमोमेऽद्य भवत्या सह नान्यथा २८॥

टी०। इसबातसे मैं संकटमें प्राप्तहूँ जो बात मैं तुझसे कहताहूँ अगर उसको कर तो आज अवश्य मेरा तेरा सङ्गम होगा अन्यथा न होगा २८॥

वरूथिन्युवाच॥

मू० प्रसीद यद्ब्रवीषित्वं तत्करोमि न ते मृषा।
ब्रवीम्येतदनाशङ्कं यत्ते कार्य्यं मयाधुना २९॥

टी०। तब वरूथिनी बोली कि हे महाराज! आप प्रसन्न हूजिये और जो कुछ कहिये मैं वही करूं तुमसे कुछ झूँठ नहीं कहतीहूँ इसवक्त तुम्हारा जोकुछ कार्यहोगा वह निस्सन्देह करूंगी २९॥

कलिरुवाच॥

मू० नाद्यसम्भोगसमये दृष्टव्योऽहं त्वया वने।
निमीलिताक्ष्या संसर्गस्तव सुभ्रु मया सह ३०॥

टी०। फिर कलि गन्धर्व्व ने कहा कि हे सुभ्रु! वनमें जब मैं तुझसे रति करूं उससमय आज जो तू अपनी आंखें बन्द करले और मुझे देखै नहीं तब मैं तुझसे गमन करसक्काहूं नहीं तो नहीं ३०॥

वरूथिन्युवाच॥

मू० एवं भवतु भद्रन्ते यथेच्छसि तथास्तु तत्।
मया सर्वप्रकारं हि वशेस्थेयं तवाधुना ३१॥

टी०। यह सुनकर वरूथिनी बोली कि तुम्हारा कल्याण होवै व जैसा आप चाहते हैं वही मैं करूंगी और वह वैसाही होवै क्योंकि इससमय हरतरह से मैं आपके वशहूँ ३१॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेस्वारोचिषेमन्वन्तरेनामद्विषष्टितमोऽध्यायः ६२॥

अथ तिरसठवां अध्याय॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० ततः सहतयासोऽथ रराम गिरिसानुषु।
फुल्लकानन हृद्येषु मनोज्ञेषु सरः सुच १॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रोष्टुकि! इसके उपरान्त वह गन्धर्व उस बरूथिनी के साथ पर्वतों के सानु यानी कँगूरा और फूलेहुये सुन्दर काननों और रमणीय सरोवरोंमें विहार किया १॥

मू० कन्दरेषु च रम्येषु निम्नगा पुलिनेषु च।
मनोज्ञेषु तथान्येषु देशेषु मुदितो द्विज २॥

टी०। और हे द्विज! रमणीय कन्दरों और नदियोंके किनारों और रमणीय अन्य देश इत्यादिकों में बड़े आनन्द से विहार करनेलगा २॥

मू० वह्निना धिष्ठितस्या सौद्यद्रूपन्तस्य तेजसा।
अचिन्तयद्भोगकाले निमीलित विलोचना ३॥

टी०। और वह बरूथिनी गन्धर्व के कहने से रति के समय अपनी आंखें बन्द करलेती थी परन्तु जिसमें अग्निदेव स्थित थे उनके तेजसे जो रूपथा ध्यान उसी ब्राह्मण कुमारकी उस सूरतका रखती थी ३॥

मू० ततः कालेन सा गर्भ्भ मवाप मुनि सत्तम।
गन्धर्व्व वीर्य्यतोरूपं चिन्तनाच्च द्विजन्मनः ४॥

टी०। उसके उपरान्त ब्राह्मणके ध्यानसे व उस गन्धर्व के वीर्य्य से कुछदिन बाद हे मुनिश्रेष्ठ! बरूथिनी गर्भवती हुई ४॥

मू० तांगर्भ्भ धारिणींसोऽथ सान्त्व यित्वा बरूथिनीम्।
विप्ररूपधरोयातस्तयाप्रीत्या विसर्ज्जितः ५॥

टी०। तब वह ब्राह्मणरूपी गन्धर्व गर्भवती बरूथिनीको तसल्लीकरके और प्रीतिसंयुक्त उससे बिदाहोकर अपने घर गया ५॥

मू० जज्ञेसवालोद्युतिमान् ज्वलन्निव विभावसुः।
स्वरोचिर्भिर्यथासूर्य्यो भासयन्सकला दिशः ६॥

टी०। गर्भकी अवधि बीतने उपरान्त बरूथिनीके एक पुत्र जलतीहुई अग्निकी तरह कान्तिमान् पैदाहुआ जिसतरह सूर्य्य अपने प्रकाश से दशौ दिशाओं को प्रकाशित करदेते हैं ६ ॥

मू० स्वरोचिर्भिर्यथाभाति भास्वानिव स बालकः।
ततः स्वरोचिरित्येवं नाम्नाख्यातो बभूवसः ७॥

टी०। उसी तरह वह लड़का अपने तेज से सूर्य्यसमान प्रकाशवान् हुआ इस से उसका नाम स्वरोचि यही प्रसिद्ध हुआ ७ ॥

मू० ववृद्धे च महाभागोवयसानुदिनं तथा।
गुणौघैश्च यथा बालः कलाभिःशशलाञ्छनः ८ ॥

टी०। और वह लड़का महाभाग शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की कलाओं के समान उमर व गुण समूहों से दिन दिन बढ़ने लगा ८॥

मू० सजग्राह धनुर्वेदं वेदांश्चैवयथाक्रमम्।
विद्याश्चैव महाभाग स्तदा यौवन गोचरः ९ ॥

टी०। और वह लड़का महाभाग धनुर्वेद और चारों वेदों और सम्पूर्ण विद्याओं को सीखकर तब जवान हुआ ९ ॥

मू० मन्दराद्रौ कदाचित् स विचरंश्चारु चेष्टितः।
ददर्शैकान्तदा कन्यां गिरिप्रस्थे भयातुराम् १० ॥

टी०। एक दिन उत्तम कर्मों वाला वह लड़का मन्दराचल पर्वत पर सैर करता था वहां पर एक कन्या को देखा कि पर्व्वत पै भय से आतुर होरही है १०॥

मू० त्रायस्वेति निरीक्ष्यैनं सा तदा वाक्यमब्रवीत्।
माभैषीरिति सम्प्राह भयविप्लुत लोचनाम् ११॥

टी०। और उस कन्या ने इस लड़केको देखकर उसवक्त वचनको कहा कि हे महाराज! मेरी रक्षा करो तब डर से घबराये हुये लोचनों वाली उस कन्या से लड़का यह बोला कि तू मत डर ११॥

मू० किमिमेतदिति ते नोक्ते वीरवाक्ये महात्मना।
ततः सा कथयामास श्वासाक्षेप प्लुताक्षरम् १२॥

टी०। और वह लड़का वीर के समान उस कन्याके पास पहुँचा और कहने लगा कि तुझे जिस बात का डर है वह मुझसे कह तब वह कन्या उष्णश्वास लेकर लरखराते हुये अक्षरों से बोली १२ ॥

कन्योवाच ॥

मू० अहमिन्दीवराख्यस्य सुताविद्याधरस्यवै।
नाम्नामनोरमाजाता सुतायांमरुधन्वनः १३ ॥

टी०। कि मैं इन्दीवर नाम विद्याधरकी लड़की हूं मनोरमा मेरा नाम है और मेरी माता मरु धन्वा की बेटी है १३ ॥

मू० मन्दार विद्याधरजासखी ममविभावरी।
कलावती चाप्यपरा सुतापारस्य वै मुनेः १४ ॥

टी०। और मन्दार नाम विद्याधर की बेटी विभावरी नाम मेरी सखी है और दूसरी मेरी सखीका नाम कलावतीहैजो पारमुनिकी कन्या है १४॥

मू० ताभ्यां सह मया यातं कैलास तटमुत्तमम्।
तत्र दृष्टोमुनिःकश्चित्तपसाति कृशाकृतिः १५ ॥

टी०। एक दिन मैं उन दोनों सखियों के साथ कैलास पर्व्वत के निकट गई तो वहां पर एक बड़े मुनि को देखा जिन की देह तपस्या से दुबली थी १५ ॥

मू० क्षुत्क्षामकण्ठो निस्तेजा दूरपाताक्षि तारकः।
मयावहसितःक्रुद्धः स तदा मां शशापह १६ ॥

टी०। कि कण्ठ उनका मारे भूख के अति दुर्बल और आंखोंमें गड़हे पड़ रहे हैं मैंने उनकी ऐसी सूरत देखकर हँस दिया तब वे क्रोध करके शाप देते भये १६ ॥

मू० क्षामःक्षामस्वरःकिञ्चित्कम्पिताधरपल्लवः।
त्वयावहसितो यस्मा दनार्य्ये दुष्टतापसि १७ ॥

टी०। कि हे अनार्य्ये, दुष्टतापसि ! दुर्बल व मारे नाताक़ती के कम आवाज़ और मेरे ओंठ काँपते थे जिस लिये ऐसे मुझकोतूने हँसाहै१७॥

मू० तस्मात् त्वामचिरेणैव राक्षसोऽभि भविष्यति।

दत्ते शापे मत्सखीभ्यां सतुनिर्भर्त्सितो मुनिः १८ ॥

टी० । इस लिये मैं शाप देता हूँ कि थोड़े दिन में तुझे राक्षस भोग करैगा यह शाप सुनकर मेरी दोनों सखियाँ उस मुनि की निन्दा करने लगीं १८ ॥

मू० धिक् ते ब्राह्मण्यमक्षान्त्या हतन्ते निखिलं तपः ।
अमर्षणैर्धर्षितोऽसि तपसा नाति कर्शितः १९ ॥

टी० । कि तुम्हारे ब्राह्मणत्व को धिक्कार है कि तुम में क्षमा नहीं है इस से तुम्हारा तप नाश होगया है और मालूम होता है कि तुम क्रोध से विकल हो दुबले हो रहे हौ कुछ तप से नहीं १६ ॥

मू० क्षान्त्यास्पदं वै ब्राह्मण्यं क्रोध संयमनं तपः ।
एतच्छ्रुत्वा ददौ शापं तयोरप्यमितद्युतिः २० ॥

टी० । जिस के मन में क्षमा रहती है वही ब्राह्मण है और क्रोध रोंकना यही तप है यह नसीहत भरी हुई बातें सुनकर उस अति प्रकाशवान् तपस्वी ने मेरी दोनों सखियों को भी शाप दिया २० ॥

मू० एकस्याःकुष्ठमङ्गेषु भाव्यन्यस्यास्तथाक्षयः ।
तयोस्तथैव तज्जातं यथोक्तं तेन तत्क्षणात् २१ ॥

टी० । कि तुम में से एक के अंगों में तो कुष्ठ और दूसरी को क्षयीका रोग होगा इस शाप के देतेही एक को तो कुष्ठ और दूसरी को क्षयी का रोग उत्पन्न होगया २१ ॥

मू० ममाप्येनन्महद्रक्षः समुपैति पदानुगम् ।
न शृणोषि महानादं तस्या दूरेपि गर्जतः २२ ॥

टी० । और मुझको भी यह राक्षस पकड़ने को पैर पीछे चलाआताहै समीपही तो गरज रहाहै क्याआप उसकी बड़ी आवाज़नहीं सुनतेहैं २२ ॥

मू० तृतीयमद्यादिवसं यन्मे पृष्ठन्नमुञ्चति ।
अस्त्रग्रामस्य सर्व्वस्य हृदयाज्ञाहमस्मिवै २३ ॥

टी० । आज तीन दिन हुये कि वह मेरे पीछे पड़ा हुआ है किसी त-

ह मेरा पिण्ड नहीं छोड़ता और मैं सम्पूर्ण अस्त्रों का हृदय जानती हूं व
आजही तुम को २३ ॥
मू० तं प्रयच्छामि मारच रक्षसोऽस्मान्महामते ।
प्रादात्स्वायम्भुवायादौ स्वयं रुद्रः पिनाकधृक् २४ ॥
टी० । हे महामते ! उन हृदय को मैं आपके हवाले करती हूँ उस से
इस राक्षस को मारकर मुझे बचाइये यह अस्त्र हृदय स्वायम्भुवमनु को
पहिले पिनाकधारी महादेव जी ने आपही दिया था २४ ॥
मू० स्वायम्भुवो वशिष्ठाय सिद्धवर्य्याय दत्तवान् ।
तेनापि दत्तं मन्मातुः पित्रे चित्रायुधायवै २५ ॥
टी० । और उन्हों ने सिद्धों में श्रेष्ठ वशिष्ठ को दिया और वशिष्ठ ने
भी मेरे नाना चित्रायुध को दिया २५ ॥
मू० प्रादादौ द्वाहिकं सोऽपि मत्पित्रे श्वशुरः स्वयम् ।
॥ मयापि शिक्षितंवीर सकाशाद्बाल्यापितुः २६ ॥
टी० । और यही हृदय मेरी माता के विवाह में चित्रायुधने मेरे
पिता को दिया हे वीर ! उसी हृदय को बालावस्था में मैंने भी अपने
पिता से पाया २६ ॥
मू० हृदयं सकलास्त्राणा मशेष रिपु नाशनम् ।
॥ तदिदं गृह्यतां शीघ्रमशेषास्त्र परायणम् २७ ॥
टी० । और यह सम्पूर्ण अस्त्रों का हृदय जो सब शत्रुओंका नाशकरने
वाला है इस को आपशीघ्रही लीजिये यह सब हथियारों में श्रेष्ठहै २७॥
मू० ततो जहि दुरात्मान मेनं राक्षसमागतम् २८॥
टी० । उसी से इस दुष्टात्मा राक्षस को जल्द मारिये कि जो ब्राह्मण
के शाप से मेरे पीछे पड़ा है २८ ॥
मार्कण्डेय उवाच ॥
मू० तथेत्युक्ते ततस्तेन वार्य्युपस्पृश्य तस्य तत् ।
अस्त्राणां हृदयं प्रादात्स रहस्य निवर्त्तनम् २९ ॥
टी० । मार्कण्डेय जी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि ! तब वह लड़का बोला

कि वह अस्त्र हृदय मुझे दो तब मनोरमा ने हाथ में जल लेकर वहअस्त्रों का हृदय जो था उसको रहस्य निवर्त्तन समेत दे दिया २६ ॥

मू० एतस्मिन्नन्तरे रक्षस्तत्तदा भीषणाकृतिः ।
नर्द्दमानो महानादमाजगाम त्वरान्वितः ३० ॥

टी०। कि इतने में वहराक्षस शीघ्रता संयुत व भयावनी सूरत व बड़े शब्द से गर्जताहुआ आ पहुँचा ३० ॥

मू० मयाभि भूता किन्त्राणमुपैषि द्रुत मेहिमे ।
भक्षामि किञ्चिरेणेति ब्रुवाणं तं ददर्शसः ३१ ॥

टी०। और कहने लगा कि मुझ से अनादर की हुई तू क्या रक्षा पावैगी तू जल्द मेरे पास आव तुझे खाजाऊं देर से क्या है इसतरह कहते हुये उस राक्षस को जब स्वरोचि ब्राह्मण ने देखा ३१ ॥

मू० स्वरोचिश्चिन्तयामास दृष्ट्वा तं समुपागतम् ।
गृह्णात्वेषवचःसत्यं तस्यास्त्विति महामुनेः ३२ ॥

टी०। तो समीप आये हुये उसको देखकर अपने मन में स्वरोचिष शोचने लगा कि जो इसको राक्षस पकड़ लेजाय तो उस महामुनि का वचन सत्य हो ३२ ॥

मू० जग्राह समुपेत्यैनां त्वरया सोऽपि राक्षसः ।
त्राहित्राहीति करुणं विलपन्तीं सुमध्यमाम् ३३ ॥

टी०। कि उसी समय आकर उस राक्षस ने जल्दी से उत्तम कमर वाली मनोरमा को पकड़ लिया जो कि त्राहि त्राहि कर रो रही थी ३३ ॥

मू० ततःस्वरोचिःसंक्रुद्धश्चण्डास्त्रमति भैरवम् ।
दृष्ट्यां निवेश्य तद्रक्षोददर्शानिमिषेक्षणः ३४ ॥

टी०। तबतो मनोरमा का विलाप सुनकर स्वरोचि ने क्रोधकरके मनोरमा का दियाहुआ अतिप्रचण्ड अस्त्र जो बहुत भयंकर था उस को दृष्टि में धरकर पलकों को खोले हुये उस राक्षस की तरफ़ देखा ३४ ॥

मू० तदाभिभूतः स तदा तामुत्सृज्य निशाचरः ।
प्रसीद शाम्यतामस्त्रं श्रूयतां चेत्यमाषत ३५ ॥

टी० । तब उस राक्षस ने डर कर मनोरमा को छोड़ दिया और हाथ जोड़कर यह कहने लगा कि हे महाराज ! अपने अस्त्र को समेट लीजिये और मुझपर प्रसन्न होकर जो मैं कहता हूं वह सुन लीजिये ३५ ॥

मू० मोक्षितोऽहं त्वया शापादतिघोरान्महाद्युते ।
प्रदत्तादतितीव्रेण ब्रह्ममित्रेण धीमता ३६ ॥

टी० । हे महातेजस्वी ! आपने मुझको ब्रह्ममित्र नाम अतितीव्र बहुत भयानक ब्राह्मण से दीहुई शापसे बचा लिया ३६ ॥

मू० उपकारी न मे त्वत्तोमहाभागाधिकोऽपरः ।
येनाहं सुमहाकष्टान्महाशापाद्विमोक्षितः ३७ ॥

टी० । और हे महाभाग ! आपकी तरह मेरा उपकार किसी ने नहीं किया क्योंकि आप ने मुझे इस बड़े कष्टरूपी शापसे बचालिया ३७ ॥

स्वरोचिरुवाच ॥

मू० ब्रह्ममित्रेण मुनिना किं निमित्तं महात्मना ।
शप्तस्त्वं कीदृशश्चैव शापोदत्तोऽभवत्पुरा ३८ ॥

टी० । इतनी बात राक्षस की सुनकर स्वरोचि बोले कि महात्मा ब्रह्म-मित्र मुनिने किसवास्ते पहले तुझको कैसा शाप दिया था ३८ ॥

राक्षस उवाच ॥

मू० ब्रह्ममित्रोऽष्टधा छिन्नमायुर्व्वेदमधीतवान् ।
त्रयोदशाधिकारञ्च प्रगृह्याथर्व्वणो द्विजः ३९ ॥

टी० । राक्षस ने कहा कि वह ब्रह्ममित्र ब्राह्मण अष्टाङ्ग सहित आयु-र्व्वेद और तेरह अधिकार संयुक्त अथर्वणवेद से लेकर पढ़े हुये हैं ३९ ॥

मू० अहश्चेन्दीवराख्येति ख्यातोऽस्याजनकोऽभवम् ।
विद्याधरपतेः पुत्रोनलनाभस्य खड्गिनः ४० ॥

टी० । और मेरा नाम इन्दीवरहै मैं इस मनोरमा का पिता हूं और मैं नलनाभ नाम खड्गधारी विद्याधर पति का पुत्रहूं ४० ॥

मू० मया च याचितः पूर्व्वं ब्रह्ममित्रोऽभवन्मुनिः ।
आयुर्व्वेदमशेषं मे भगवान् दातुमर्हसि ४१ ॥

टी०। पुरातन समय मैंने ब्रह्ममित्र मुनि के पास जाकर याचना किया कि मुझे आप सब आयुर्वेद पढ़ा दीजिये ४१॥

मू० यदा तु बहुशो वीर प्रश्रयावनतस्य मे।
नप्राददाद्याचितो विद्यामायुर्वेदात्मिकां मम ४२॥

टी०। जब मैंने बहुत तरह से उस वेद के पढ़ने के वास्ते उनसे विनय किया परन्तु हे वीर! नम्रतासे झुकेहुए मुझको उन्हों ने वैद्यविद्या न पढ़ाया ४२॥

मू० शिष्येभ्यो ददतस्तस्य मयान्तर्द्धानगेन हि।
आयुर्वेदात्मिका विद्या गृहीताभूत्तदानघ ४३॥

टी०। हे स्वरोचि! तब वह मुनि जिस समय अपने शिष्योंको पढ़ाते थे उस समय मैं भी अन्तर्द्धान होकर आयुर्वेद की विद्या पढ़ लिया करता था ४३॥

मू० गृहीतायान्तु विद्यायां मासैरष्टाभिरन्तरात्।
ममातिहर्षादभवद्धासोऽतीव पुनः पुनः ४४॥

टी०। इसीतरह छिपे छिपे आठ महीने में मैंने जब विद्या पढ़लिया पढ़नेपर मुझको इसबात की बड़ी खुशी हुई तब उससे मैं प्रत्यक्ष होकर बार बार बहुत हँसने लगा ४४॥

मू० प्रत्यभिज्ञाय मां हासान्मुनिः कोपसमन्वितः।
विकम्पिकन्धरः प्राह मामिदं परुषाक्षरम् ४५॥

टी०। मेरे हँसने से मुनिजी पहिचान गये कि इसने इस तरहसे वेद को पढ़लिया है तब तो मुनि को ऐसा क्रोध आया कि मारे क्रोध के उनका कन्धा कांपने लगा और अत्यन्त कठोर वचन से मुझसे यह कहने लगे ४५॥

मू० राक्षसेनेव यस्मान्मे त्वयादृश्येन दुर्म्मते।
हृताविद्यावहासश्च मामवज्ञाय वै कृतः ४६॥

टी०। कि हे दुर्बुद्धे! जिस लिये राक्षस की तरह छिपकर तूने मेरी विद्या सीख लिया है और मेरा अनादर करके हँसी करता है ४६॥

मू० तस्मात्त्वं राक्षसः पापमच्छापेन निराकृतः।
भविष्यसि न सन्देहः सप्तरात्रेण दारुणः ४७॥

टी०। इसवास्ते मैं तुझको शाप देताहूं कि निस्संदेह तू सात रात के अन्दर विकराल राक्षस हो जायगा ४७॥

मू० इत्युक्ते प्रणिपाताद्यैरुपचारैः प्रसादितः।
समामाह पुनर्विप्रस्तत्क्षणान्मृदुमानसः ४८॥

टी०। जब इसतरह का शाप देना मुनिसे मैंने सुना तो बहुत प्रणाम इत्यादि और शुश्रूषा करके उनको प्रसन्न किया तब फिर उसीक्षण वे कोमल मनवाले मुनि प्रसन्नहोकर मुझ से कहने लगे ४८॥

मू० यन्मयोक्तमवश्यन्तद्भावि गन्धर्व्वनान्यथा।
किन्तु त्वं राक्षसो भूत्वा पुनः स्वं प्राप्स्यसे वपुः ४९॥

टी०। कि हे गन्धर्व्व! जो कुछ मेरे मुख से निकल गया वह तो झूंठ नहीं होसक्ता अवश्य होगा परन्तु अब मैं तुझको यह वरदानदेता हूं कि तू राक्षस होकर फिर अपने शरीर को पावैगा ४९॥

मू० नष्टस्मृतिर्यदा क्रुद्धः स्वमपत्यञ्चिखादिषुः।
निशाचरस्त्वं गन्तासि तदस्त्रानलतापितः ५०॥

टी०। कि ऐ निशाचर! जब तू नष्ट बुद्धी होकर क्रोध से अपनी लड़की को खाना चाहैगा उस समय किसी के अस्त्र की अग्नि से तापित होजायगा ५०॥

मू० पुनः संज्ञामवाप्यस्वामवाप्स्यसि निजं वपुः।
तथैव स्वमधिष्ठानं लोके गन्धर्व्वसंज्ञिते ५१॥

टी०। तब फिर तू अपनी चैतन्यताकोपाकर अपना शरीर पाकर गन्धर्व्व संज्ञक लोक में अपने स्थानको पावैगा ५१॥

मू० सोहं त्वया महाभागमोक्षितोऽस्मान्महाभयात्।
निशाचरत्वाद्यद्वीर तेन मे प्रार्थनां कुरु ५२॥

टी०। तत्पर्य्य यह है कि हे महाराज! मैं वही गन्धर्व्व हूँ जो इस समयतक राक्षस के शरीर को प्राप्त हो रहा था और अब आपसे जिस-

लिये मुझको इस महा भय से बचा लिया और राक्षसी भाव छुड़ा दिया उससे हे वीर! मुझ से कुछ माँगिये ५२ ॥

मू० इमान्ते तनयां भार्य्यां प्रयच्छामि प्रतीच्छतां ।
आयुर्वेदश्च सकलस्त्वष्टाङ्गो योमयाधृतः ॥
मुनेःसकाशात्संप्राप्तस्तं गृह्णीष्व महामते ५३ ॥

टी० । और हे महामते! मुनिकेसकाश से इस मनोरमा अपनी लड़की को मैं आपको स्त्री देताहूँ उसको ग्रहण कीजिये और आठौअंगोंवाला सम्पूर्ण जो आयुर्व्वेद मैंने पढ़ाहै उसको भी आप ग्रहण कीजिये ५३ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० इत्युक्त्वा प्रददौ विद्यांस च दिव्याम्बरोज्ज्वलः ।
स्रग्भूषणधरो दिव्यं पुराणंवपुरास्थितः ५४ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि! उस गन्धर्व्व ने इतनी बातें कहकर आयुर्व्वेद की विद्या स्वरोचि ब्राह्मणको दे दिया और आप सुन्दर माला और वस्त्र भूषण पहिनकर उज्ज्वल हो अपने दिव्य पूर्व्व रूपमें प्राप्त हुआ ५४ ॥

मू० दत्त्वा विद्यां ततः कन्यां स दातुमुपचक्रमे ।
तमाह सा तदा कन्या जनितारं स्वरूपिणम् ५५ ॥

टी० । विद्या देकर उसके बाद उसने जब कन्याको वेदोक्त विधि से दान करने का प्रारंभ किया तब वह कन्या अपने स्वरूपवान् बाप से कहने लगी ५५ ॥

मू० अनुरागो ममाप्यत्र तातातीवमहात्मनि ।
दर्शनादेव संजातो विशेषेणोपकारिणि ५६ ॥

टी० । कि हे तात! इनको देखने ही से इनकी प्रीति मेरे हृदय में समा गई है और जोकि ये बड़े महात्मा मेरे विशेषकर उपकारी हैं इस सबब से और भी मेरा स्नेह है ५६ ॥

मू० किन्त्वेते मम सख्यौ ये मत्कृते दुःखपीडिते ।
अतो नाभिलषे भोगान् भोक्तुमेतेन वै समम् ५७ ॥

टी० । परन्तु जोकि ये दोनों सखियाँ मेरी मेरेलिये दुःख से पीड़ित हो रही हैं इस कारण से मुझको इनकेसाथ भोग विलास कुछ नहीं भाता है ५७ ॥

मू० पुरुषैरपि नो शक्या कर्त्तुमित्थं नृशंसता ।
स्वभावरुचिरैर्मादृक् कथं योषित्करिष्यति ५८ ॥

टी० । क्योंकि जो सखियां मेरेही सबब से इस दुःख में पड़ी हैं उनको दुःख में छोड़कर आप भोग विलास करना यह क्रूरता तो स्वभावसे सुन्दर कोई पुरुष भी न करैंगे फिर मेरीसी स्त्री होकर किसतरह करैगी ५८ ॥

मू० साहं यथा ते दुःखार्त्ते मत्कृते कन्यके पितः ।
तथास्थास्यामि तद्दुःखे तच्छोकानलतापिता ५९ ॥

टी० । हे पिता ! जिसतरह वे दोनों सखियँा मेरी मेरेलिये दुःख में फँसी हैं उसीतरह मैं भी उनके दुःखमें उस पछताव की अग्नि में जलती रहूँगी ५९ ॥

स्वरोचिरुवाच ॥

मू० आयुर्व्वेदप्रसादेन ते करिष्ये पुनर्नवे ।
सख्यौ तव महाशोकं समुत्सृजसुमध्यमे ६० ॥

टी० । यह बातें सुनकर स्वरोचि बोले कि हे सुन्दर कमरवाली ! तू बड़ा शोच मतकर मैं आयुर्वेद के प्रसाद से तुम्हारी उन दोनों सखियों का नया रूप फिर बना दूँगा ६० ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० ततः पित्रा स्वयं दत्तां तां कन्यां सविधानतः ।
उपयेमे गिरौ तस्मिन् स्वरोचिश्चारुलोचनाम् ६१ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि ! जब उस गन्धर्व ने अपनी कन्या मनोरमाको आपही स्वरोचि ब्राह्मण को देदिया तब स्वरोचि ने उसी पर्वतपर विधिके अनुसार उस मनोहर नयनोंवाली कन्यासे विवाह किया ६१ ॥

मू० दत्तां तु तां तदा कन्यामभिसान्त्व्य च भामिनीं ।
जगाम दिव्यया गत्या गन्धर्व्वः स्वपुरन्ततः ६२ ॥

टी०। बाद इसके मनोरमा के पिता ने उसवक्त उसदीहुई कन्या की सराह्ना की और आप दिव्यगतिसे गन्धर्व लोक को चलेगये ६२॥

मू० स चापि सहितस्तन्व्या तदुद्यानन्तदा ययौ।
कन्यकायुगलं यत्र तच्छापाच्च गदातुरम् ६३॥

टी०। इसके बाद उसवक्त स्वरोचि महात्मा भी मनोरमा को साथ लेकर उस उद्यान में गये जहांपर वह दोनों सखियां शाप से रोगयुक्त आतुर पड़ी थीं ६३॥

मू० ततस्तयोः स तत्त्वज्ञोरोगघ्नैरौषधैरसैः।
चकारनीरुजेदेहे स्वरोचिरपराजितः ६४॥

टी०। उसकेबाद रोग नाश करनेवाली औषधियों व रसों से शत्रुवों से न जीतेहुए स्वरोचि ने उन दोनों के शरीरोंको निरोग करदिया ६४॥

मू० ततोऽतिशोभने कन्ये विमुक्ते व्याधितः शुभे।
स्वकान्त्योज्ज्योतिदिग्भागं चक्राते तन्महीधरम् ६५॥

टी०। तब तो वे दोनों सखियाँ रोगसे छूटकर पहिले रूप से भी अत्यन्त सुन्दर होगई और अपनी सुन्दरताई की ज्योति से उस पर्व्वतकी दशों दिशाओं को प्रकाशित करदिया ६५॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेस्वारोचिषेमन्वन्तरेनाम ६३॥

अथ चौंसठवां अध्याय॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० एवं विमुक्तरोगातु कन्यका तं मुदान्विता।
स्वरोचिषमुवाचेदं शृणुष्व वचनम्प्रभो १॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि! इसतरह वह सखियां आरोग्य शरीर होकर हर्ष संयुक्त उनमें से एक स्वरोचि ब्राह्मण से कहने लगी कि हे प्रभु! मेरी एक बात सुनो॥१॥

मू० मन्दारविद्याधरजा नाम्नाख्याता विभावरी।

उपकारिन् स्वमात्मानं प्रयच्छामि प्रतीच्छमाम् २॥

टी०। कि हे उपकार करनेवाले! मैं मन्दार नाम विद्याधरकी बेटी हूं मेरा नाम विभावरी विख्यात है आप मेरे उपकारी हैं इसवास्ते मैं अपने को आपके हवाले करती हूं मुझको लीजिये २॥

मू० विद्याश्च तुभ्यं दास्यामि सर्व्वभूतरुतानि ते।
ययाभिव्यक्तिमेष्यन्ति प्रसाद् पुरगो भव ३॥

टी०। और एक विद्या भी आपको देती हूं कि जिससे सम्पूर्ण जीवों की बोली आप समझलीजियेगा आप प्रसन्न हूजिये ३॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० एवमस्त्विति तेनोक्ते धर्म्मज्ञेन स्वरोचिषा।
द्वितीया तु तदा कन्या इदं वचनमब्रवीत् ४॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि! धर्मके जाननेवाले स्वरोचि ने ये बातें सुनकर उस कन्या से यह कहा कि ऐसाही होवै तब दूसरीसखी भी स्वरोचि से यह वचन बोली ४॥

मू० कुमारब्रह्मचार्य्यासीत् पारो नाम पिता मम।
ब्रह्मर्षिः सुमहाभागो वेदवेदाङ्गपारगः ५॥

टी०। कि मेरे महाभाग्यवान् पिता कुमार ब्रह्मचारी और ब्रह्मर्षि और वेद और वेदाङ्ग के जाननेवाले हुये थे नाम उनकापार था ५॥

मू० तस्य पुंस्कोकिलालाप रमणीये मधौ पुरा।
आजगामाप्सराभ्यासं प्रख्याता पुञ्जिकस्थला ६॥

टी०। एक समय पर्व्वत के ऊपर कोकिलोंकी उत्तम आवाज़ से रमणीय बसन्त ऋतु में पुञ्जिकस्थला नाम अप्सरा उनके पास आई ६॥

मू० कामवैक्लव्यतां नीतः स तदा मुनिपुङ्गवः।
तत्संयोगेऽहमुत्पन्ना तस्यामत्र महाचले ७॥

टी०। तब पार मुनि श्रेष्ठ ने उसको देखकर कामदेव से विकल होकर उस अप्सरा से भोग किया कि जिससे वह गर्भवती हुई और इसी पर्व्वतपर मैं उससे पैदा हुई ७॥

मू० विहाय मां गता सा च मातास्मिन्निर्जने वने।
बालामेकां महीपृष्ठे व्यालश्वापदसंकुले ॥ ८ ॥

टी०। तब वह अप्सरा मेरी माता इस निर्जन वन में कि जहांपर सर्प्प और व्याघ्र और सिंह बहुत थे मुझ लड़किनी को अकेले भूमि में छोड़कर चली गई ८॥

मू० ततः कलाभिः सोमस्य वर्द्धन्तीभिरहःक्षये।
आप्याप्यमानाहरहो वृद्धिं यातास्मिसत्तम ॥ ९ ॥

टी०। हे महाराज! फिरतोमैं जिसतरह चन्द्रमा रात्रिमें कलाकलाकरके दिन दिन बढ़ता है उसीतरह तृप्तकराई हुई मैं दिन दिन बढ़नेलगी ९ ॥

मू० ततः कलावतीत्येतन्मम नाम महात्मना।
गृहीतायाः कृतं पित्रा गन्धर्व्वेण शुभानना ॥ १० ॥

टी०। और उसी अन्तर में एक गन्धर्व्व अचानक वहां आकर और मुझको अपने घर लेजाकर पालने लगा और कला कला बढ़नेके सबब से महात्मा गंधर्वने मेरानाम कलावती रक्खा जो मैं कि सुन्दर मुखीहूं १०॥

मू० न दत्ताहं तदा तेन याचितेन महात्मना।
देवारिणालिना सुप्तस्ततो मे घातितः पिता ॥ ११ ॥

टी०। तत्पश्चात् एक अलिनाम उस महात्मा दैत्य ने मेरे पिता से मुझको मांगा पर उन्होंने न दिया तब उसने क्रोध करके जिस समय मेरे पिता नींद से सोगये उससमय मारडाला ११ ॥

मू० ततोऽहमतिनिर्व्वेदादात्मव्यापादनोद्यता।
निवारिता शम्भुपत्न्या सत्यासत्यप्रतिश्रवा ॥ १२ ॥

टी०। उनके मरजाने से मेरा मन इकबारगी ऐसा वैराग्य से उदास हुआ कि मैं अपने जी को आप मारने पर तैयार हुई उस समय शिवजी की स्त्री सतीजी ने आकर सत्यप्रतिज्ञावाली मुझको रोका १२॥

मू० माशुचः सुभ्रु भर्त्ता ते महाभागो भविष्यति।
स्वरोचिर्नाम पुत्रश्च मनुस्तस्य भविष्यति ॥ १३ ॥

टी०। और कहने लगी कि हे सुभ्रु ! तू शोच मतकर स्वरोचि नाम महाभाग तेरे स्वामी होंगे और उनके पुत्र मनु होंगे १३ ॥

मू० आज्ञाञ्च निधयः सर्व्वे करिष्यन्ति तवादृताः ।
यथाभिलषितं वित्तं प्रदास्यन्ति च ते शुभे १४ ॥

टी०। और हे सुन्दरी ! सम्पूर्ण निधि सबतरहसे तेरी आज्ञा में रहेंगी और जो कुछ द्रव्य तू चाहैगी वह तुझको देंगी १४ ॥

मू० यस्या वत्से प्रभावेन विद्यायास्तां गृहाणमे ।
पद्मिनीनामविद्येयं महापद्माभिपूजिता १५ ॥

टी०। हे वत्से ! महापद्म से पूजित पद्मिनी नाम विद्या मैं तुझको देतीहूं जिस विद्याके प्रभाव से नवौ निधि तेरी आज्ञा में रहिकर जो कुछ तू चाहैगी वह सब तुझको देंगी उसको मुझसे लीजिये १५ ॥

मू० इत्याह मां दक्षसुता सती सत्यपरायणा ।
स्वरोचिस्त्वं ध्रुवं देवी नान्यथा सा वदिष्यति १६ ॥

टी०। इसतरह दक्षकी कन्या सत्यवादिनी सतीजीने मुझ से कहाहै निश्चयकर स्वरोचि तुम्हींहो क्योंकि वह देवी झूठ नहीं कहेगी १६ ॥

मू० साहं प्राणप्रदायाद्य तां विद्यां स्वं तथा वपुः ।
प्रयच्छामि प्रतीच्छत्वं प्रसादे सुमुखो मम १७ ॥

टी०। और वही कलावती मैं हूं पद्मिनी नाम विद्या जो प्राणदायिनी है वह और अपना शरीर मैं आपको देतीहूं अङ्गीकार कीजिये और मुझ पर प्रसन्न हूजिये १७ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० एवमस्त्विति तामाह स तु कन्यां कलावतीं ।
विभावर्य्याः कलावत्याः स्निग्धदृष्ट्यानुमोदितः १८ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि इस बात के सुनने से स्वरोचि ने उस कलावती से यह कहा कि ऐसाही होगा व विद्या और कलावतीको ले लिया और विभावरी और कलावती की प्रीति संयुतदृष्टि से स्वरोचि ने बहुत सुख पाया १८ ॥

मू० जग्राह च ततः पाणी स तयोरमरद्युतिः।
नदत्सु देव तूर्य्येषु नृत्यन्तीष्वप्सरःसु च १६ ॥

टी०। और स्वरोचि ने देवताओं की तरह स्वरूपवान् विधिपूर्वक उन दोनों कन्याओं अर्थात् बिभावरी और कलावती से विवाह किया और उस विवाह के उत्साह में देवता लोगों ने बाजा बजाया और अप्सराओं ने नाच किया १६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेस्वारोचिषेमन्वन्तरेनाम ६४ ॥

अथ पैंसठवां अध्याय ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० ततः सताभिः सहितः पत्नीभिरमरद्युतिः।
रराम तस्मिन् शैलेन्द्रे रम्यकाननिर्झरे १ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि! उसके बाद वह स्वरोचि देवताओं के समान उन तीनों स्त्रियों के साथ उस पर्वत पर जहां कि वन और झरना इत्यादि रमणीय था क्रीड़ा और विहार करते भये १॥

मू० सर्वोपभोगरत्नानि मधूनि मधुराणि च।
निधयः समुपाजह्रुः पद्मिन्या वशवर्त्तिनः २ ॥

टी०। और वहां पर पद्मिनी विद्या के प्रभाव से सब निधियां वश में होकर सम्पूर्ण भोग के रत्न और मधु और मधुर रस इत्यादि उनकेवास्ते प्राप्त करदेती थीं २ ॥

मू० स्रजोवस्त्राण्यलङ्कारान् गन्धाढ्यमनुलेपनं।
आसनान्यतिशुभ्राणि काञ्चनानि यथेच्छया ३ ॥

टी०। और वस्त्र, माला, भूषण, गन्ध, चन्दन, सुन्दर काञ्चन के आसन और जिस वस्तु की स्वरोचि इच्छा करतेथे सब प्राप्त होतीथीं ३॥

मू० सौवर्णानि महाभाग करकान् भाजनानि च।
तथा शय्याश्च विविधा दिव्यैरास्तरणैर्युताः ४ ॥

टी० । और हे महाभाग ! सोने के कमण्डलु व बर्तन और नानाप्रकार की शय्याआदि दिव्य बिछौने से संयुत सब वस्तु स्वरोचि के वास्ते वे निधियां पहुँचाती थीं ४ ॥

मू० एवं स ताभिः सहितो दिव्यगन्धादिवासिते ।
रराम स्वरुचिर्भाभिर्भासिते वरपर्वते ५ ॥

टी० । इस तरह से उन तीनों स्त्रियों के साथ उस उत्तम पर्वत पर जो फूलोंकी दिव्य सुगन्धि में महक रहाथा और शोभाओंसे अत्यन्त प्रकाशवान् था स्वरोचि भोग विलास में रहा करते थे ५ ॥

मू० ताश्चापि सह तेनातिलेभिरे मुदमुत्तमाम् ।
रममाणा यथा स्वर्गे तथा तत्र शिलोच्चये ६ ॥

टी० । और वे स्त्रियां भी स्वरोचि के साथ आनन्द से उत्तम प्रीति संयुक्त रमण करती हुई रहती थीं जिसतरह स्वर्गलोक में इन्द्र क्रीड़ा करते हैं उसी तरह उस पर्वत पर स्वरोचि क्रीड़ा करते थे ६ ॥

मू० कलहंसी जगादैकां चक्रवाकीं जलेसतीम् ।
तस्य तासाञ्च ललिते सम्बन्धे च स्पृहावती ७ ॥

टी० । यह आपुसकी प्रीति और क्रीड़ा करना स्वरोचिका उन स्त्रियों के साथ देखकर एक बत्तककी स्त्रीने उनके उत्तम सम्बन्ध में वैसेही इच्छा अपने मनमें रखकर एक समय किसी जलचर चकवाकिनी सती से कहने लगी ७ ॥

मू० धन्योऽयमतिपुण्योऽयं योऽयं यौवनगोचरः ।
दयिताभिः सहैताभिर्भुङ्क्ते भोगानभीप्सितान् ८ ॥

टी० । कि यह स्वरोचि अतिपुण्यवान् धन्यहै जो इस जवानी में इन प्यारी स्त्रियों के साथ मनमाने भोग करता है ८ ॥

मू० सन्ति यौवनिनः श्लाघ्यास्तत्पत्न्यो नातिशोभनाः ।
जगत्यामल्पकाः पत्न्यः पतयश्चातिशोभनाः ९ ॥

टी० । क्योंकि इस संसार में बहुधा देखने में आया है कि अगर मर्द जवान और तारीफ़ के योग्य है तो औरत उसकी बदसूरत है. और मर्द व औरत दोनों अतिउत्तम संसारमें थोड़ेहैं ९ ॥

मू० अभीष्टा कश्यचित्कान्ता कान्तःकस्याश्चिदीप्सितः।
परस्परानुरागाढ्यं दाम्पत्यमतिदुर्ल्लभम् १० ॥

टी०। और अगर स्त्री को पुरुष चाहता है तो पुरुष को स्त्री नहीं चाहती है और अगर स्त्री चाहती है तो पुरुष नहीं चाहता दोनों स्त्री पुरुषों में समान प्रीति होना अतिदुर्लभ है १० ॥

मू० धन्योऽयं दयिताभीष्टो ह्येताश्चास्यातिवल्लभाः।
परस्परानुरागो हि धन्यानामेव जायते ११ ॥

टी०। इस वास्ते यह स्वरोचि बड़ा भाग्यवान् है कि इसकी प्यारी स्त्रियां इसको बहुत चाहती हैं और इसको भी वह स्त्रियाँ बहुत प्यारी हैं परस्पर में प्रीति धन्यही मनुष्यों की होती है ११ ॥

मू० एतन्निशम्य वचनं कलहंसीसमीरितम्।
उवाच चक्रवाकी तां नातिविस्मितमानसा १२ ॥

टी०। यह बात बत्तककी स्त्री से कहीहुई सुनकर कुछ विस्मय संयुत मनवाली चक्रवाकी उससे बोली १२ ॥

मू० नायं धन्यो यतो लज्जा नास्य स्त्रीसन्निकर्षतः।
अन्यां स्त्रियमयं भुङ्क्ते न सर्व्वास्वस्य मानसम् १३ ॥

टी०। कि तू क्या तारीफ़ करती है इनको स्त्रियों के नज़दीक होनेसे कुछ लज्जा नहीं क्योंकि ये और स्त्री से भोग करते हैं और जब कई हैं तो इनकी प्रीति सबके साथ बराबर कभी न रहती होगी १३ ॥

मू० चित्तानुराग एकस्मिन्नधिष्ठाने यतः सखि।
ततो हि प्रीतिमानेष भार्य्यासु भविता कथम् १४ ॥

टी०। जिस लिये ऐ सखि। चित्तका स्नेह एकही ठिकाने रहताहै इस सबबसे हरएक स्त्रियोंके साथ बराबर प्रीति इनकी क्योंकरहोसक्तीहै १४॥

मू० एता न दयिताः पत्युर्नैतासां दयितः पतिः।
विनोदमात्रमेवैता यथा परिजनोऽपरः १५ ॥

टी०। इससे मैं जानती हूँ कि ये स्त्रियां इनको प्यारी नहीं हैं और न स्त्रियों के ये प्रेमी हैं यह सब सिर्फ़ खेलही है जैसे और कुटुम्बीहो वैसाही यह है १५ ॥

मू० एतासाञ्च यदीष्टोऽयं तत्किं प्राणान्न मुञ्चति।
आलिङ्गत्यपरां कान्तां ध्यातो वै कान्तयान्यया १६॥

टी०। अगर इनको यह प्रिय होता तो जब न मिलती तो प्राण क्यों न त्यागता क्योंकि याद और स्त्री करती है और भोग और स्त्री के साथ करता है १६॥

मू० विद्याप्रदानमूल्येन विक्रीतो ह्येष भृत्यवत्।
प्रवर्त्तते न हि प्रेम समं बह्वीषु तिष्ठति १७॥

टी०। ये स्त्रियाँ इनको विद्यादानरूपी दाम देकर सेवक के तौर पर खरीदे हुये हैं एक पुरुष की प्रीति कई स्त्रियों के साथ रहने में बराबर नहीं रहसक्ती १७॥

मू० कलहंसि पतिर्धन्यो मम धन्याहमेवच।
यस्यैकस्यां स्थिरं चित्तं यस्याश्चैकत्र संस्थितम् १८॥

टी०। किन्तु हे कलहंसिनि! मेरा पुरुष और मैं धन्यहूं क्योंकि मैं एक हूँ और मेरा पतिभी एक है एक के साथ एककी प्रीति सदा बनी रहती है १८॥

मार्कण्डेयउवाच॥

मू० सर्व्वसत्त्वरुतज्ञोऽसौ स्वरोचिरपराजितः।
निशम्य लज्जितो दध्यौ सत्यमेव हि नानृतम् १९॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि! जोकि यह शत्रुओं से न जीताहुआ स्वरोचि सब जानवरों की बोलियां समझता था इस सबब से उस हंसनी और चकई की बात चीत सुनकर अपने मनमें बहुत लज्जित होकर शोचने लगा कि यह सब कहना इनका सच है झूँठ नहीं १९॥

मू० ततो वर्षशते याते रमणीये महागिरौ।
रममाणः समन्ताभिर्ददर्श पुरतो मृगम् २०॥

टी०। उसके बाद उन स्त्रियोंके साथ उस रमणीय महापर्वतपर क्रीड़ा विहार करते हुये स्वरोचि को सौ वर्ष बीतगये एक दिन एक मृगको स्वरोचिने आगे देखा २०॥

मू० सुस्निग्धपीनावयवं मृगीयूथविहारिणम्।
वासिताभिः स्वरूपाभिर्मृगीभिः परिवारितम् २१॥

टी०। कि अत्यन्त सुन्दर और हृष्ट पुष्ट अंगोंवाला है और सुन्दर व सुगन्धित मृगियों के बीचमें रहकर उन सब के साथ बिहारकरताहै २१॥

मू० आकृष्टघ्राणपुटका जिघ्रन्तीस्तास्ततो मृगीः।
उवाच स मृगो रामा लज्जात्यागेन गम्यताम् २२॥

टी०। कि इतने में मृगियां उस मृग के शरीर में लिपटकर उसका मुँह सूँघने लगीं तब उस हरिण ने हरणियों से कहा कि तुमलोग लज्जा छोड़ने के सबब से यहां से चली जाव २२॥

मू० नाहं स्वरोचिस्तच्छीलो न चैवाहं सुलोचनाः।
निर्लज्जा बहवः सन्ति तादृशास्तत्र गच्छत २३॥

टी०। हे सुन्दर आंखोंवाली! मैं स्वरोचि नहीं हूं न स्वरोचि का ऐसा स्वभाव रखताहूं स्वरोचि की तरह निर्लज्ज बहुत से मृग हैं तुम सब वहां जाव २३॥

मू० एका त्वनेकानुगता यथा हासास्पदं जने।
अनेकाभिस्तथैवैको भोगदृष्ट्या निरीक्षितः २४॥

टी०। एक स्त्री बहुत पुरुषों के साथ रहती है तो मनुष्यों में यह बड़ी हँसी की बात है और जो एक पुरुष बहुत स्त्रियों से भोगकी दृष्टिसे देखा जाताहै तो वह भी बड़ीनिन्दा की बात है २४॥

मू० तस्य धर्म्मक्रियाहानिरहन्यहनि जायते।
सक्तोऽन्यभार्य्यया चान्यकामासक्तः सदैव सः २५॥

टी०। और उस पुरुष की क्रिया और धर्म्म प्रतिदिन नाशहोताहै जो परस्त्रीके साथ सर्व्वदा अन्य पुरुषकी नाईं कामदेवसे आसक्त रहताहै २५॥

मू० यस्तादृशोऽन्यस्तच्छीलःपरलोकपराङ्मुखः।
तं कामयत भद्रं वो नाहं तुल्यः स्वरोचिषा २६॥

टी०। इससे जो अन्य पुरुष ऐसा हो और ऐसा स्वभाव रखता हो

और परलोक से विमुख हो ऐसा पुरुष तुम लोग ढूँढ़ लेवो तुमलोगों का कल्याण होवै क्योंकि मैं स्वरोचि की तरह निर्लज्ज नहीं हूं २६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेस्वारोचिषेमन्वन्तरेवर्णननामपञ्चषष्टितमोध्यायः ६५ ॥

अथ छांसठवां अध्याय ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० एवं निरस्यमानास्ता हरिणेन मृगाङ्गनाः ।
श्रुत्वा स्वरोचिरात्मानं मेने स पतितं यथा १ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि! हरिणकी इन बातों को सुनकर कि उसने हरिणियों की निन्दा किया तब स्वरोचिने अपने को पतित (धर्म से भ्रष्ट) सा समझा १ ॥

मू० त्यागे चकार च मनः स तासां मुनिसत्तम ।
चक्रवाकीमृगप्रोक्तो मृगचर्य्याजुगुप्सितः २ ॥

टी० । और उसने अपनी स्त्रियों से अलग होजाने की इच्छा किया क्योंकि चकई व उस हरिण के वचन से एक तरह का उपदेश सुनकर लज्जित होगया था २ ॥

मू० समेत्य ताभिर्भूयश्च वर्द्धमानमनोभवः ।
आक्षिप्तनिर्वेदकथो रेमे वर्षशतानि षट् ३ ॥

टी० । परन्तु उन स्त्रियों के साथ कामासक्तहो फिर रति विहार में स्वरोचिने अपने मनको लगाया और वह ज्ञान कथा सब भूल गया और उन सब के साथ छह सौ वर्ष तक उस पर्वत पर बिहार किया ३ ॥

मू० किन्तु धर्म्माविरोधेन कुर्व्वन् धर्म्माश्रिताः क्रियाः ।
भुङ्क्ते स्वरोचिर्विषयान्सह ताभिरुदारधीः ४ ॥

टी० । परन्तु उनके साथ उस विहार के भोग में भी धर्म्मपूर्व्वक अपनी सब धर्म के आश्रित क्रियाओं को करता रहा ४ ॥

मू० ततश्च जज्ञिरे तस्य त्रयः पुत्राः स्वरोचिषः ।

विजयो मेरुनन्दश्च प्रभावश्च महाबलः ५ ॥

टी०। इसके बाद उन स्वरोचि के तीन पुत्र पैदा हुये पहिले का नाम विजय दूसरे का नाम मेरुनन्दन तीसरे का नाम प्रभाव जो महाबली हुये ५॥

मू० मनोरमा च विजयं प्रासूतेन्दीवरात्मजा।
विभावरी मेरुनन्दं प्रभावञ्च कलावती ६ ॥

टी०। इन्दीवर की कन्या मनोरमा के गर्भ से विजय और विभावरीके गर्भ से मेरुनन्दन और कलावती के गर्भ से प्रभाव पैदा हुये ६ ॥

मू० पद्मिनी नाम या विद्या सर्वभोगोपपादिका।
स तेषां तत्प्रभावेण पिता चक्रे पुरत्रयम् ७ ॥

टी०। तब पिता स्वरोचि ने जो सब सुखोंको सिद्ध करती है उस पद्मिनी विद्याके प्रभाव से उन तीनों के वास्ते तीन पुर बसाये ७ ॥

मू० प्राच्यान्तु विजयं नाम कामरूपे नगोपरि।
विजयाय सुतायादौ स ददौ पुरमुत्तमम् ८ ॥

टी०। उस कामरूप पर्वत पर पूर्व दिशा में विजय नाम उत्तमपुर बनाकर पहिले विजयनाम पुत्रको दिया ८ ॥

मू० उदीच्यां मेरुनन्दस्य पुरीं नन्दवतीमिति।
ख्यातां चकार प्रोत्तुङ्गवप्रप्राकारमालिनीम् ९ ॥

टी०। और उत्तर तरफ़ नन्दवती ऐसी प्रसिद्ध नगरी जिसमें बड़ी बड़ी ऊंची छहरदीवारें इत्यादिक बनी हैं दूसरे मेरुनन्द पुत्रको दिया ९ ॥

मू० कलावतीसुतस्यापि प्रभावस्य निवेशितम्।
पुरन्तालमिति ख्यातं दक्षिणापथमाश्रितम् १० ॥

टी०। और दक्षिण तरफ़ में प्रास ताल नाम पुर बनाकर तीसरे कलावती के पुत्र अर्थात् प्रभाव को भी दिया १० ॥

मू० एवं निवेश्य पुत्रान् स्वपुरेषु पुरुषर्षभः।
रेमे ताभिः समं विप्र मनोज्ञेष्वतिभूमिषु ११ ॥

टी०। हे ब्राह्मण! इस तरह पुरुषों में श्रेष्ठ स्वरोचि अपने तीनों पुत्रों

को अलग अलग अपने २ पुरमें बसाकर उन स्त्रियों के साथ पूर्ववत् अ-
र्थात् बदस्तूर साबिक़ सुन्दरी भूमियों में विहार करने लगे ११ ॥

मू० एकदा तु गतोऽरण्ये विहरन् स धनुर्द्धरः ।
चकर्ष धनुरालोक्य वराहमतिदूरगम् १२ ॥

टी० । एक समय विहार करते हुये स्वरोचि धन्वा लेकर शिकार खे-
लनेके वास्ते एक वनमें गये तो दूरसे एक सुवर दिखाई दिया उसके
मारने को धन्वा चढ़ाया १२ ॥

मू० अथाह काचिदभ्येत्य तं तदा हरिणाङ्गना ।
मय्येव पात्यतां बाणः प्रसीदेति पुनः पुनः १३ ॥

टी० । इसके बाद उसी समय उनके समीप आकर कोई एक हरिणी
बोली कि मुझपर प्रसन्न होकर इस बाण से मुझको मारिये यही बात
बार बार कहती थी १३ ॥

मू० किमनेन हतेनाद्य मामाशु विनिपातय ।
त्वया निपातितो बाणो दुःखान्मां मोक्षयिष्यति १४ ॥

टी० । और इस सुवर के मारनेसे आपको क्या मिलेगा मुझको ज-
ल्दी मारिये क्योंकि तुमसे छोड़ाहुआ बाण मुझको दुःखसे छुड़ावैगा१४॥

स्वरोचिरुवाच ॥

मू० न ते शरीरं सरुजमस्माभिरुपलक्ष्यते ।
किन्नु तत्कारणं येन त्वं प्राणान् हातुमिच्छसि १५ ॥

टी० । हरिणी की यह बात सुनकर स्वरोचि ने कहा कि तेरे शरीर
में तो कोई रोग भी नहीं मालूम होताहै फिर तू किस वास्ते अपनी जान
देने पर मुस्तैद है १५ ॥

मृग्युवाच ॥

मू० अन्यास्वासक्तहृदये यस्मिंश्चेतः कृतास्पदम् ।
मम तेन विना मृत्युमौषधं किमिहापरम् १६ ॥

टी० । हरिणी ने कहा कि जिस पुरुष को मैं चाहती हूँ वह पुरुष मेरा

दूसरी स्त्रीमें आसक्तहै और मेरा मन उसी पतिमें आसक्तहै इससे ऐसी बीमारी की दवा सिवाय मरने के यहां दूसरी क्या है १६ ॥

स्वरोचिरुवाच ॥

मू० कस्त्वां नाभिलषेद्भीरु सानुरागासि कुत्र वा ।
यदप्राप्तौ निजान् प्राणान् परित्यक्तुं व्यवस्यसि १७ ॥

टी०। स्वरोचिने कहा कि हे हरिणि ! वह कौन पति तेराहै जो तुमको नहीं चाहता और वह कौन पुरुष है जिसकी प्रीति तेरे चित्तमें समागई है कि जिसके न मिलनेसे तू अपनी जिन्दगी छोड़नेके लिये मुस्तैद है१७॥

मृग्युवाच ॥

मू० त्वामेवेच्छामि भद्रं ते त्वयामेऽपहृतं मनः ।
वृणोम्यहमतो मृत्युं मयि बाणो निपात्यताम् १८ ॥

टी०। हरिणी ने कहा कि तुम्हारा कल्याण होवे मैं तुम्हीं को चाहती हूँ तुम्हींने मेरा मन हर लिया है इस वास्ते मैं अपनी मौत मांगती हूँ आप मुझको बाण से मार डालिये १८ ॥

स्वरोचिरुवाच ॥

मू० त्वं मृगी चञ्चलापाङ्गी नररूपधरा वयम् ।
कथं त्वया समं योगो मद्विधस्य भविष्यति १९ ॥

टी०। यह सुनकर स्वरोचि ने कहा कि तू हरिणी चञ्चलनयनी है और मैं मनुष्यहूँ मेरे सरीखे पुरुषका तेरा संयोग क्योंकर होसक्ताहै१९॥

मृग्युवाच ॥

मू० यदि सापेक्षितञ्चित्तं मयि ते मां परिष्वज ।
यदि वा साधु चित्तं ते करिष्यामि यथेप्सितम् ।
एतावताहं भवता भविष्याम्यतिमानिता २० ॥

टी०। हरिणी ने कहा कि जो आपका चित्त मुझपर प्रसन्न हो या न हो परन्तु जो आप मुझ से भोग करेंगे तो फिर जो कुछ आप चाहेंगे वह सब आप को प्राप्त होगा व इतनीही बात से आप मेरा बड़ा आदर करेंगे २० ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० आलिलिङ्ग ततस्तां स स्वरोचिर्हरिणाङ्गनाम् ।
तेन चालिङ्गिता सद्यःसाभूद्दिव्यवपुर्धरा २१ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि ! उसके बाद स्वरोचि ने उस हरिणी के साथ भोग किया और उसने उसके साथ जिस समय भोग किया उससमय वह हरिणी एक सुन्दरी स्त्री होगई २१ ॥

मू० ततः स विस्मयाविष्टः कात्वमित्यभ्यभाषत ।
साचास्मै कथयामास प्रेमलज्जाजडाक्षरम् २२ ॥

टी० । तब स्वरोचि बहुत तअज्जुब में होकर उससे यह कहने लगा कि तू कौनहै तब वह स्त्री प्रीति सहित शरमा कर अप्रकट अक्षरोंकरके इससे बोली कि २२ ॥

मू० अहमभ्यर्थिता देवैः काननस्यास्य देवता ।
उत्पादनीयो हि मनुस्त्वया मयि महामते २३ ॥

टी० । मैं इसबनकी देवताहूं देवतालोगोंनेमुझसे विनय करकेकहा कि तुम मनुको पैदा करो इस सबब से हे महामते ! मैंने आप से विनय किया अब आप मेरे साथ भोग करके मनुको पैदा कीजिये २३ ॥

मू० प्रीतिमत्यां मयि सुतं भूर्लोकपरिपालकम् ।
तमुत्पादय देवानां त्वामहं वचनाद्वदे २४ ॥

टी० । देवता लोगों के कहने से मैं आपसे कहती हूं कि भूर्लोक का पालन करनेवाला पुत्र मुझ प्रीतिमती में आप पैदा कीजिये २४ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० ततः स तस्यां तनयं सर्व्वलक्षणलक्षितम् ।
तेजस्विनमिवात्मानं जनयामास तत्क्षणात् २५ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि ! उसके बाद उसी सा- इत स्वरोचि ने उस हरिणी से भोग करके एक बहुत अच्छा पुत्र अपने समान तेजवान् पैदा किया जो सब लक्षणों से चिह्नित था २५ ॥

मू० जातमात्रस्य तस्याथ देववाद्यानि सस्वनुः ।

जगुर्गन्धर्व्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः २६ ॥

टी०। उस पुत्र के पैदा होने के समय देवतालोग बाजा बजाने लगे और गन्धर्व लोग गान करने लगे और अप्सरा नृत्य करने लगीं २६ ॥

मू० सिषिचुः शीकरैर्मेघा ऋषयश्च तपोधनाः।
देवाश्च पुष्पवर्षं च मुमुचुश्च समन्ततः २७॥

टी०। और मेघ गण और तपस्वी ऋषि लोग उस लड़के के ऊपर जल छिड़कने लगे और देवता सब ओर से फूल बर्षाने लगे २७॥

मू० तस्य तेजः समालोक्य नाम चक्रे पिता स्वयम्।
द्युतिमानिति येनास्य तेजसा भासिता दिशः २८ ॥

टी०। पिता स्वरोचि ने उस पुत्र का तेज देखकर उसका नाम आपही द्युतिमान् रक्खा कि जिसके तेज से सब दिशा प्रकाशित हो रही थीं २८॥

मू० स बालो द्युतिमान्नाम महाबलपराक्रमः।
स्वरोचिषः सुतोयस्मात्तस्मात्स्वारोचिषोऽभवत् २९ ॥

टी०। वह द्युतिमान् नाम लड़का महाबली और अत्यन्तपराक्रमी हुआ और जोकि वह लड़का स्वरोचि से पैदाहुआ था इस सबबसे उस का नाम स्वारोचिष मशहूर हुआ २९॥

मू० स चापि विचरन् रम्ये कदाचिद्गिरिनिर्झरे।
स्वरोचिर्ददृशे हंसं निजपत्नी समन्वितम् ३० ॥

टी०। इसके बाद किसी दिन स्वरोचि रमणीय पर्व्वत के झरनों पर विचरते थे कि वहां एक हंस और हंसिनी को देखा ३०॥

मू० उवाच स तदा हंसीं साभिलाषां पुनः पुनः।
उपसंह्रियतामात्मा चिरं ते क्रीडितं मया ३१॥

टी०। और उसी समय हंसिनी ने हंससे बार २ रतिकी चाहना की तो हंसनेकहा कि तू मुझे छोड़दे तेरे साथ मैं बहुत दिनतक क्रीड़ाकरचुका३१॥

मू० किं सर्व्वकालं भोगैस्ते आसन्नं चरमं वयः।
परित्यागस्य कालो मे तव चापि जलेचरि ३२ ॥

टी०। सदा तुमसे भोगकरनेसेक्याहै अब पिछली अवस्था नजदीकहै इस

वास्ते हे जलचरि! अब मेरे और तेरे वियोग का समय आया ३२ ॥

हंस्युवाच ॥

मू० अकालः को हि भोगानां सर्व्वभोगात्मकं जगत्।
यज्ञाः क्रियन्ते भोगार्थं ब्राह्मणैःसंयतात्मभिः ३३ ॥

टी०। यह बातसुनकर हंसिनी बोली कि भोग किस काल में न करना चाहिये क्योंकि सम्पूर्ण संसार भोग मई है और ब्राह्मणलोग भोगही के वास्ते अपने मन को रोंक करके यज्ञ करते हैं ३३ ॥

मू० दृष्टादृष्टांस्तथा भोगान् वाञ्छमाना विवेकिनः।
दानानि च प्रयच्छन्ति पूर्त्तधर्म्मांश्च कुर्व्वते ३४ ॥

टी०। और इसलोक और परलोक में भोगही की इच्छा करनेवाले विवेकीजन नाना प्रकारके दान और कूप बावली इत्यादि खोदाकर धर्म्मादिक करते हैं ३४ ॥

मू० स त्वं नेच्छसि किं भोगान् भोगश्रेष्ठा फलंनृणाम्।
विवेकिनान्तिरश्चाञ्च किं पुनः संवृतात्मनाम् ३५ ॥

टी०। सो तुम भोग की इच्छा क्यों छोड़ते हो बड़े बड़े विवेक और समाधिवाले मनुष्यों के कर्म्म का फल भोग ही है फिर अज्ञानी पक्षियों को क्या कहना है ३५ ॥

हंस उवाच ॥

मू० भोगेष्वासक्त चित्तानां परमात्मान्वितामतिः।
भविष्यति कदा सङ्ग मुपेतानाञ्च बन्धुषु ३६ ॥

टी०। हंस बोला कि जिनका मन भोग और बन्धु परिवार इत्यादि में आसक्त है उनकी बुद्धि परमात्मा में कब स्थिर रहसक्ती है ३६ ॥

मू० पुत्रमित्रकलत्रेषु सक्ताः सीदन्ति जन्तवः।
सरःपङ्कार्णवे मग्ना जीर्णा बनगजा इव ३७ ॥

टी०। क्योंकि जो प्राणी पुत्र और मित्र और स्त्री में आसक्त हैं वे अवश्य दुखः पाते हैं जिसतरह जंगली बूढ़े हाथी पानी पीनेके वास्ते जब जाता है तो सरोवर या नदी के कीचड़ में फँस मरता है ३७ ॥

मू० किं न पश्यसि वा भद्रे जातसङ्गं स्वरोचिषम् ।
आवाल्यात्कानसंसक्तं मग्नस्नेहाम्बुकर्दमे ३८ ॥

टी० । हे कल्याणि ! क्या तू संग कियेहुए स्वरोचिको नहीं देखती है कि बाल्यावस्था से लगाकर कामासक्त होकर स्नेह रूपी जल के कीचड़ में फँस रहे हैं ३८ ॥

मू० यौवनेऽतीवभार्य्यासु साम्प्रतं पुत्रनप्तृषु ।
स्वरोचिषो मनो मग्नमुद्धारं प्राप्यतेकुतः ३९ ॥

टी० । जब तक युवा अवस्था रही तब तक तो स्त्रियोंके प्रेम में फँसे रहे अब जो पुत्रादि हुये तो उनके प्रेम में स्वरोचि का मन फँसा है उसका उद्धार कहां से प्राप्त हो सक्ता है ३९ ॥

मू० नाहं स्वरोचिषस्तुल्यः स्त्रीवश्योवाजलेचरि ।
विवेकवाँश्च भोगानां निवृत्तोऽस्मि च साम्प्रतम् ४० ॥

टी० । हे जलचरि ! मैं स्वरोचि के समान स्त्री वस्य नहीं हूं मुझको विचार है इसवास्ते अब मैं भोग से निवृत्त होता हूं ४० ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० स्वरोचिरेतदाकर्ण्य जातोद्वेगः खगेरितम् ।
आदायभार्य्यास्तपसे ययावन्यत्तपोवनम् ४१ ॥

टी० । मार्कण्डेय जी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि ! इतना कहना उस पक्षी का सुनकर स्वरोचि उद्विग्नमानस होकर और अपनी उन स्त्रियों सहित विरक्त होकर दूसरे तपोवन में तप करने के वास्ते चले गये ४१ ॥

मू० तत्र तप्त्वा तपो घोरं सहताभिरुदारधीः ।
जगाम लोकानमलान्निरस्ताखिलकल्मषः ४२ ॥

टी० । और वहां जाकर उदार बुद्धिवाले स्वरोचिष स्त्रियों समेत घोर तपस्या करके सम्पूर्ण पापों को दूरकरके निर्म्मल लोकोंको पहुँच गये ४२ ॥

इति श्री मार्कण्डेय पुराणे स्वारोचिषे मन्वन्तरे नाम ६६ ॥

अथ सरसठवां अध्याय ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० ततः स्वारोचिषं नाम्ना द्युतिमन्तं प्रजापतिम् ।
मनुञ्चकार भगवांस्तस्य मन्वन्तरं शृणु १ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे कौष्टुकि ! उसके बाद स्वारोचिश द्युतिमान् को भगवान् प्रजापति ने प्रजा पालन करने के वास्ते मनुकी पदवी दी अब तुम उनके मन्वन्तर का हाल सुनो १ ॥

मू० तत्रान्तरे तु ये देवा मुनयस्तत्सुताश्च ये ।
भूपाल : कौष्टुके ये तान् गदतस्त्वं निशामय २ ॥

टी० । हे कौष्टुके ! उस मन्वन्तरमें जो देवता और ऋषि और राजा लोग व मनुके बेटे हुये उन सब को कहते हुए मुझसे सुनो २ ॥

मू० देवाः पारावतास्तत्र तथैव तुषिता द्विज ।
स्वारोचिषे ऽन्तरे चेन्द्रोविपश्चिदिति विश्रुतः ३ ॥

टी० । हे ब्राह्मण ! उस स्वारोचिष मन्वन्तर में पारावत और तुषित नाम देवता और विपश्चित ऐसे नाम से प्रसिद्ध इन्द्र हुये ॥ ३ ॥

मू० ऊर्ज्जस्तम्बस्तथा प्राणो दत्तो लिऋषभस्तथा ।
निश्चरश्चार्व्ववीरश्च तत्र सप्तर्षयोभवन् ४ ॥

टी० । और ऊर्ज १ स्तम्ब २ प्राण ३ दत्तोलि ४ ऋषभ ५ निश्चर ६ अर्व्ववीर ७ यही लोग उसमें सप्तर्षि हुये हैं ४ ॥

मू० चैत्र किं पुरुषाद्याश्च सुतास्तस्य महात्मनः ।
सप्तासन् सुमहावीर्य्याः पृथिवीपरिपालकाः ५ ॥

टी० । और उस स्वारोचिष महात्माके सात पुत्र चैत्र किं पुरुष इत्यादि सब पृथ्वी पालक और महाबली और पराक्रमी हुये हैं ५ ॥

मू० तस्य मन्वन्तरं यावत्तावत्तद्वंशसंभवैः ।
भुक्तेयमवनिः सर्व्वा द्वितीयं वै तदन्तरम् ६ ॥

टी०। जबतक वह मन्वन्तर बना रहा तब तक उन्हीं के बंश ने इस सब पृथ्वी को भोग किया यानी राज्य किया और वह दूसरा मन्वन्तरहै ६॥

मू० स्वारो चिषस्तु चरितं जन्मस्वारो चिषस्य च।
निशम्यमुच्यते पापैः श्रद्दधानो हि मानवः ७॥

टी०। और जो मनुष्य श्रद्धा संयुक्त इस स्वारोचिष मन्वन्तर की कथा और स्वारोचिष का जन्म सुनताहै वह सम्पूर्ण पापों से छूट जाताहै ७॥

इति श्री मार्कण्डेय पुराणे स्वारोचिष मन्वन्तरे नाम ६७॥

अथ अरसठवां अध्याय॥

क्रौष्टुकिरुवाच॥

मू० भगवन् कथितं सर्व्वं विस्तरेण त्वया मम।
स्वरोचिषस्तु चरितंजन्म स्वारोचिषस्य तु १॥

टी०। फिर क्रौष्टुकि ने कहा कि हे भगवन्! स्वारोचिष का जन्म और उनके चरित्र भी विस्तारपूर्व्वक आप ने मुझ से वर्णन किया है १॥

मू० यातु सा पद्मिनीनाम विद्याभोगोपपादिका।
तत्संश्रयायेनिधयस्तान् मे विस्तरतोवद २॥

टी०। पर अब भोग को सिद्ध करने वाली पद्मिनी नाम विद्या के आधीन जो जो निधिहैं उन सब को विस्तार पूर्व्वक मुझसे वर्णनकीजिये२॥

मू० अष्टौ ये निधयस्तेषां स्वरूपंद्रव्यसंस्थितिः।
भवताभि हितं सम्यक् श्रोतुमिच्छाम्यहं गुरो ३॥

टी०। और हे गुरु! आठों निधि के स्वरूप और द्रव्य संस्थान यानी किस निधि के सबब से कौन द्रव्य प्राप्त होतीहै वह सब मैं सम्यक् प्रकार से आप से सुननेकी इच्छा करताहूं कहिये ३॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० पद्मिनीनाम या विद्या लक्ष्मीस्तस्याश्च देवता।

तदाधाराश्च निधयस्तन्मे निगदतः शृणु ४ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि पद्मिनी नाम विद्याहै उसकी देवता श्री लक्ष्मीजी हैं और आठौं निधि जो उन्हीं के आधीन हैं उसको कहते हुये मुझसे सुनौ ४ ॥

मू० यत्र पद्ममहापद्मौ तथा मकर कच्छपौ।
मुकुन्दो नन्दकश्चैव नीलः शङ्खोऽष्टमो निधिः ५ ॥

टी०। जिन लक्ष्मी जी के पास पद्म १ महापद्म २ मकर ३ कच्छप ४ मुकुन्द ५ नन्दक ६ नील ७ शंख ८ ये आठौं निधि रहती हैं ५ ॥

मू० सत्यामृद्धौ भवंत्येते सिद्धिस्तेषां हि जायते।
एतेह्यष्टौ समाख्याता निधयस्तवक्रौष्टुके ६ ॥

टी०। हे क्रौष्टुकि! पुण्य शेष रहनेपर जिसको ऋद्धि प्राप्त होती हैं उसके यहां ये आठौं निधि सम्पन्न हो रहती हैं व सिद्धि होती है और यही आठौं निधि सम्पूर्ण प्रसिद्ध हैं सो मैंने तुम से वर्णन किया ६ ॥

मू० देवतानां प्रसादेन साधुसंसेवने नच।
एभिरालोकितं वित्तं मानुषस्य सदा मुने ७ ॥

टी०। हे मुनि! जो मनुष्य देवता को प्रसन्न करताहै या साधुसेवा किया करता है उसके धन पर ये सब निधियां सदा दया दृष्टि रखतीहैं ७ ॥

मू० यादृक्स्वरूपं भवति तन्मे निगदतः शृणु।
पद्मोनाम निधिः पूर्व्वं समस्य भवति द्विज ८ ॥

टी०। और हे द्विज! निधियों के जो स्वरूप हैं उनको मुझसे सुनौ कि जो पद्मनाम निधि प्रथम है वह जिस के घर में रहतीथी ८ ॥

मू० स तस्य तत्सुतानाञ्च तत्पौत्राणाञ्चनित्यशः।
दाक्षिण्यसारःपुरुषस्तेन चाधिष्ठितो भवेत् ९ ॥

टी०। उस के बेटे और नाती और पनाती इत्यादि की वह सदा बढ़ती करती है व उस उदार पुरुष में रहती है ९ ॥

मू० सत्त्वाधारो महाभोगो यतोऽसौ सात्विको निधिः।
सुवर्णरौप्यताम्रादि धातूनाञ्च परिग्रहम् १० ॥

टी०। और जिसलिये यह निधि सतोगुण का आधार है व महाभोग है इस लिये इसको सात्त्विक निधि कहते हैं और यह निधि सोना चाँदी ताँबा इत्यादि धातुओं की देने वाली है १०॥

मू० करोत्यतितरां सोऽथ तेषाञ्च क्रयविक्रयम्।
करोति च तथा यज्ञान् दक्षिणाञ्च प्रयच्छति ११॥

टी०। और जिस मनुष्य पर इस निधि की दयादृष्टि होती है वह मनुष्य उन धातुओं की खरीद और बिक्री बहुत करता है और यज्ञ भी बहुत करता है और दक्षिणा भी देता है ११॥

मू० सभां देवनिकेतांश्च स कारयति तन्मनाः।
सत्वाधारो निधिश्चान्यो महापद्म इति श्रुतः १२॥

टी०। और उस मनुष्यके मन में स्थित होकर उस मनुष्य से देवालय और देवसभा इत्यादि बनवाती है और दूसरी निधि सत्वाधार महापद्म ऐसे नाम से प्रसिद्ध है १२॥

मू० सत्वप्रधानो भवति तेन चाधिष्ठितो नरः।
करोति पद्मरागादिरत्नानाञ्च परिग्रहं १३॥

टी०। वह महापद्म निधि जिसके ऊपर स्थित होती है वह सत्त्वगुण वाला होताहै व उसके घर में महापद्म रागादि रत्न इकट्ठा होतेहैं १३॥

मू० मौक्तिकानां प्रवालानां तेषां च क्रयविक्रयान्।
ददाति योगशीलेभ्यस्तेषामावसथाँस्तथा १४॥

टी०। और मोती मूंगा आदि की ख़रीद और बिक्री कराती है और उन योगयुक्त पुरुषों को इन सम्पूर्ण द्रव्यों का स्थान दे देती है १४॥

मू० स कारयति तच्छीलः स्वयमेव च जायते।
तत्प्रसूतास्तथा शीलाः पुत्रपौत्रक्रमेण च १५॥

टी०। उसी पुरुषके शील में प्राप्त होकर यह सब कराती है और आपही आप सब होताहै व इसी तरह उस मनुष्य के बेटा और पोता इत्यादि को भी बनाये रखती है १५॥

मू० पूर्वार्द्धमात्रः सप्तासौ पुरुषांश्च न मुञ्चति।
तामसोमकरो नाम निधिस्तेनात्रलोकितः १६॥

टी० । और सातपुश्ततक यह निधि उस पुरुषको नहीं छोड़तीहै इसके बाद तीसरी तामस निधि मकर नाम है वह जिसके यहां रहती है १६ ॥

मू० पुरुषोऽथ तमःप्रायः सुशीलोऽपि हि जायते ।
बाणखड्गर्ष्टिधनुषां चर्म्मणाञ्च परिग्रहम् १७ ॥

टी० । वह पुरुष यदि सुशील भी हो तो भी अवश्य तामसी होजाता है और धनुष बाण ढाल तलवार आदि अस्त्र धारण करता है १७ ॥

मू० दंशनानाञ्च कुरुते याति मैत्रीञ्च राजभिः ।
ददाति शौर्य्यवृत्तीनां भूभुजां ये च तत्प्रियाः ॥ १८

टी० । और पुरुष कवच धारण करता है और उसकी राजा लोगों के साथ अत्यन्त प्रीति होतीहै और जो क्षत्री शूरवीर की वृत्ति रखतेहैं और जो उन लोगों के प्यारे होते हैं उनको धन देती है १८ ॥

मू० क्रयविक्रये च शस्त्राणां नान्यत्र प्रीतिमेति च ।
एकस्यैव भवत्येष नरस्य न सुतानुगः १९ ॥

टी० । और सिवाय खरीद और बिक्री हथियारों के और कहीं उसका जी नहीं लगता और यह निधि एकही पुरुष तक रहती है लड़कों के पछारी नहीं चलती १६ ॥

मू० द्रव्यार्थं दस्युतो नाशं संग्रामे चापि सव्रजेत् ।
कच्छपश्च निधिर्योऽसौ नरस्तेनाभिवीक्षितः २० ॥

टी० । और चौथी निधि कच्छप नाम है उसकी दृष्टि जिस पुरुष पर होतीहै वह पुरुष द्रव्य के वास्ते चोर के हाथ से या किसी संग्राम में नाश को प्राप्त होता है २० ॥

मू० तमःप्रधानो भवति यतोऽसौ तामसो निधिः ।
व्यवहारानशेषांस्तु पुण्यजातैः करोति च २१ ॥

टी० । और जिसलिये इस कच्छप निधि का स्वभाव तामसी है इस लिये वह मनुष्य भी तामसी होजाता है परन्तु पुण्यात्मा मनुष्यों के साथ सब व्यवहार करती है यानी उसका चित्त नहीं बिगाड़ती है २१ ॥

मू० कर्म्मस्थानखिलांश्चैव न विश्वसिति कस्यचित् ।

समस्तानि यथाङ्गानि संहरत्येव कच्छपः २२॥

टी०। और सम्पूर्ण कर्मों के करनेवालों में से किसी का विश्वास उसको नहीं होता है और जिस तरह कछुआ अपने सब अंग समेट लेता है २२॥

मू० तथा विष्टभ्यवित्तानि तिष्ठत्यायतमानसः।
न ददाति नवा भुंक्ते तद्विनाशभयाकुलः २३॥

टी०। उसी तरह वह मनुष्य भी सब तरफ़से द्रव्यको खींच कर अपने मन को धन में लगाये रहता है न किसी को देता है न आप खाता है और खर्च होजाने के डर से व्याकुल रहता है २३॥

मू० निधानमुर्व्यां कुरुते निधिः सोऽप्येकपूरुषः।
रजोगुणमयश्चान्यो मुकुन्दो नाम यो निधिः २४॥

टी०। और यह कच्छप नाम निधि भी उस पुरुष के लिये पृथ्वी में दौलत का खजाना बना देती है और यह निधि एकही पुश्त तक रहती है और पाँचवीं निधि जो रजोगुण संयुक्त मुकुन्द नाम है २४॥

मू० नरोऽलोकितस्तेन तद्गुणी भवति द्विज।
वीणावेणुमृदङ्गानामातोद्यस्य परिग्रहम् २५॥

टी०। हे ब्राह्मण! वह जिसके ऊपर दृष्टि करती है वह मनुष्य रजोगुणी होताहै और बीणा बेणु मृदंगादि व चारों प्रकारके बाजों का संग्रह करता है २५॥

मू० करोति गायतां वित्तं नृत्यताञ्च प्रयच्छति।
वन्दिनामथ सूतानां विटानां लास्यपाठिनाम् २६॥

टी०। और गाने बजाने नाचने वालोंको बहुत धन देताहै और भाट नट भाँड़ बिदूषक व तमाशा वालों को २६॥

मू० ददात्यहर्निशं भोगान् भुंक्ते तैश्च समंद्विज।
कुलटासुरतिश्चास्य भवत्यन्यैश्च तद्विधैः २७॥

टी०। हे ब्राह्मण! हमेशा खाना पीना दिया करता है और उन्हीं लोगों के साथ आप भी खाता पीताहै और उसको वेश्या और वेश्यागामी पुरुषों से बहुत प्रीति रहती है॥ २७॥

मू० प्रयाति सङ्गमेकश्च यं निधिर्भजते नरम्।
रजस्तमोमयश्चान्यो नन्दो नाम महानिधिः २८॥

टी०। यह निधि भी जिस पुरुषके पास आती है उसके एकही पुश्त तक रहती है और छठवीं नन्दनाम निधि जो राजस और तामस दोनों गुणों से संयुक्त है २८॥

मू० उपैतिस्तम्भमधिकं नरस्तेनावलोकितः।
समस्तधातुरत्नानां पण्यधान्यादिकस्य च २९॥

टी०। वह मुकुन्द नाम निधि से मनुष्य अधिक जड़ होजाता है यह निधि जिस मनुष्य पर दृष्टि करती है वह सम्पूर्ण धातु और रत्न और बाजार का अन्न इत्यादि का २९॥

मू० परिग्रहं करोत्येष तथैव क्रयविक्रयम्।
आधारः स्वजनानाञ्च आगताभ्यागतस्य च ३०॥

टी०। संग्रह और उसी का क्रय विक्रय करता है और अपने कुल परिवार और अभ्यागतादि का पालन करताहै ३०॥

मू० सह तेनापमानोक्तिं स्वल्पामपि महामुने।
स्तूयमानश्च महतीं प्रीतिं बध्नाति यच्छति ३१॥

टी०। हे महामुनि! वह मनुष्य अपमान की बात किसी की कही हुई थोड़ी भी नहीं सहता है और जो उसकी स्तुति करता है उसके साथ बड़ी प्रीति रखता है ३१॥

मू० सं यमिच्छति वै कामं मृदुत्वमुपयान्तिच।
बह्व्योभार्य्या भवन्त्यस्य सूतिमत्योऽतिशोभनाः ३२॥

टी०। और वह मृदुता को प्राप्तहोता है व जो जो इच्छा करता है वह सब पूरी होतीहैं और उसे अति सुन्दरी स्त्रियाँ पुत्रों को उत्पन्न करनेवाली बहुत प्राप्त होती हैं ३२॥

मू० स्तयै सप्त च नरान्निधिर्नन्दोऽनुवर्त्तते।
प्रवर्द्धमानोऽथ नरमष्टभागेन सत्तम ३३॥

टी०। और वे इसकी प्रीति के लिये होती हैं हे मुनि सत्तम! यह

न्दनाम निधि सात पुश्त तक प्रीति पूर्वक आठौ अङ्ग से बढ़ती हुई एक घर में रहती है ३३॥

मू० दीर्घायुष्ट्वञ्च सर्वेषां पुरुषाणां प्रयच्छति।
बन्धूनामेव भरणं ये च दूरादुपागताः ३४॥

टी०। और सब पुरुषों को दीर्घायु करदेती है और उसकी सातौ पुश्त की ऐसी बुद्धि करदेती है कि जो उसके घर में कोई भाई बन्धु या परदेशी आवै तो उनका पोषण वह करता है ३४॥

मू० तेषां करोति वै नन्दः परलोकेनचादृतः।
भवत्यस्य न च स्नेहः सहवासिषु जायते ३५॥

टी०। और उस मनुष्य का मन परलोक में नहींलगताहै और सहवासी लोगों से उसको प्रीति नहीं होती है ३५॥

मू० पूर्व्वमित्रेषुशैथिल्यं प्रीतिमन्यैः करोति च।
तथैव सत्त्वरजसी यो विभर्त्ति महानिधिः ३६॥

टी०। और पहिले के मित्रों से उसको मुहब्बत कम होजाती है और नये नये लोगों से मुहब्बत पैदा होती है इसी तरह सातवीं महा निधि जो सतोगुण और रजोगुण संयुक्त है ३६॥

मू० सनीलसंज्ञस्तत्सङ्गी नरस्तच्छीलवान्भवेत्।
वस्त्रकार्पासधान्यादिफलपुष्पपरिग्रहम् ३७॥

टी०। वह नील नाम निधि है उसकी दृष्टि जिस मनुष्य पर होती है वह मनुष्य भी उसी सुभाव का होजाता है और वस्त्र और कपास और धान्यादि और फल और पुष्प का संग्रह करता है ३७॥

मू० मुक्ताविद्रुमशङ्खानां शुक्त्यादीनां तथा मुने।
काष्ठादीनां करोत्येष यच्चान्यज्जलसम्भवम् ३८॥

टी०। और हे मुनि ! मोती. मूँगा. शंख. सीपी. काष्ठ इत्यादि औरजो वस्तु जल से उत्पन्न होती हैं इन सब को वह संग्रह करता है ३८॥

मू० क्रय विक्रयमन्येषां नान्यत्र रमतेमनः।
तडागान् पुष्करिण्यश्च तथारामान्करोति च ३९॥

टी०। और और पदार्थों को भी क्रय विक्रय करताहै व और वस्तु में उसका मन नहीं लगताहै और तालाब पुष्करिणी (छोटी तलैया)आदि खुदवाता है और बाग इत्यादि भी लगाता है ३९॥

मू० बन्धञ्च सरितां वृक्षांस्तथारोपयते नरः।
अनुलेपनपुष्पादिभोगंभोक्ताभिजायते ४०॥

टी०। और नदियों में बाँध बँधवाता है और वृक्षों को लगवाता है और वह मनुष्य चन्दन फूलइत्यादि के भोगसे अति प्रसन्न रहताहै ४०॥

मू० त्रिपौरुषश्चापि निधिर्नीलो नामैष जायते।
रजस्तमोमयश्चान्यः शङ्खसंज्ञो हि यो निधिः ४१॥

टी०। और यह नील नाम निधि तीन पुश्त तक रहती है और आठवीं निधि शंख नाम जो रजोगुण और तमोगुण दोनों से संयुक्त है ४१॥

मू० तेनापि नीयतो विप्रतद्गुणित्वं निधीश्वरः।
एकस्यैव भवत्येष नरं नान्यमुपैति च ४२॥

टी०। हे द्विज! उसकी दृष्टि जिस मनुष्य पर होती है वह भी रजोगुणी व तमोगुणी होता है और वह शंख निधि एकही पुरुष के आश्रित हो रहती है दूसरे के यहाँ नहीं जाता है ४२॥

मू० यस्य शङ्खो निधिस्तस्य स्वरूपं क्रौष्टुके शृणु।
एक एवात्मनासृष्टमन्नं भुंक्ते तथाम्बरम् ४३॥

टी०। हे क्रौष्टुकि! जिसके यहाँ शंख नाम निधि रहती है उस का लक्षण सुनौ कि वह मनुष्य केवल अपनाही पैदा किया हुआ अन्न अकेलही खाताहै और अपनाही उपार्जन कियाहुवा वस्त्र पहिनता है ४३॥

मू० कदन्नभुक्परिजनो न च शोभनवस्त्रधृक्।
नददाति सुहृद्भार्य्याभ्रातृपुत्रस्नुषादिषु ४४॥

टी०। और उसका परिवार बुरा अन्न और बुरा वस्त्र खाता पहिनता है और मित्र भार्य्या,भाई,पुत्र,पतोहू आदिकोंको अन्न वस्त्र नहीं देताहै ४४॥

मू० स्वपोषणपरः शङ्खी नरो भवति सर्वदा।
इत्येते निधयः ख्याता नराणामर्थदेवताः ४५॥

टी०। और वह शंख निधि वाला मनुष्य अपने ही पालन में सदा तत्पर रहता है हे क्रौष्टुकि! ये आठों निधि सम्पूर्ण मनुष्यों के अर्थ देवता हैं यानी इन्हीं से सब अर्थ सिद्ध होते हैं उनको मैंने वर्णन किया ४५॥

मू० मिश्रावलोकनान्मिश्राः स्वभावफलदायिनः।
यथाख्यातस्वभावस्तु भवत्येत्र विलोकनात्॥
सर्व्वेषामाधिपत्ये च श्रीरेषा द्विजपद्मिनी ४६॥

टी०। और हे द्विज! एक निधि के दृष्टि से मनुष्य को एक ही निधि का स्वभावहोता है और दो या तीन की दृष्टि से जैसा स्वभाव कहा है वैसाही मिला हुआ सुख मिलता है और तीन से तीन का इसी क्रम से सब को समझ लेना चाहिये और सबोंकी स्वामिता में यह पद्मिनी लक्ष्मी है ४६॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेनिधिनिर्णयोनामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ६८॥

अथ उनहत्तरवां अध्याय॥

क्रौष्टुकिरुवाच॥

मू० विस्तरात्कथितं ब्रह्मन् मम स्वारोचिषं त्वया।
मन्वन्तरं तथैवाष्टौ ये पृष्टा निधयो मया १॥

टी०। फिर क्रौष्टुकि ने कहा कि हे ब्रह्मन्! स्वारोचिष मन्वन्तर और आठों निधियों का हाल तो आपने मेरे पूँछने के मुवाफ़िक़ विस्तार पूर्वक वर्णन किया १॥

मू० स्वायम्भुवं पूर्व्वमेव मन्वन्तरमुदाहृतम्।
मन्वन्तरं तृतीयं मे कथयोत्तमसंज्ञितम् २॥

टी०। और स्वायम्भुव मन्वन्तर आप पहिले ही कहचुके अब तीसरे उत्तम नाम मन्वन्तर का हाल भी मुझसे वर्णन कीजिये २॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० उत्तानपादपुत्रोऽभूदुत्तमो नाम नामतः।

सुरुच्यास्तनयः ख्यातो महाबलपराक्रमः ३ ॥

टी०। मार्कण्डेय जी कहते हैं कि राजा उत्तानपाद के सुरुचि नाम स्त्री से बड़ा बलवान् और पराक्रमी पुत्र उत्तम नाम पैदा हुआ ३ ॥

मू० धर्म्मात्मा च महात्मा च पराक्रमधनो नृपः।
अतीत्य सर्व्वभूतानि बभौ भानुपराक्रमः ४ ॥

टी०। और वह उत्तम बड़ा महात्मा और धर्म्मात्मा और पराक्रम रूप धनवाला राजा सम्पूर्ण प्राणियों को उल्लंघन करके सूर्य्य समान शोभित हुआ ४ ॥

मू० समः शत्रौ च मित्रे च परे पुत्रे च धर्म्मवित्।
दुष्टे च यमवत्साधौसोमवच्च महामते ५ ॥

टी०। और हे महामते! वह धर्म का जाननेवाला उत्तम राजा शत्रु और मित्र और प्रजा और पुत्र सब को समान जानता था और दुष्टों के वास्ते यम और साधुलोगों के वास्ते चन्द्रमा के समान सुखदायक था ५॥

मू० वाभ्रव्यांवहुलां नाम उपयेमे स धर्म्मवित्।
उत्तानपादतनयः शचीमिन्द्र इवोत्तमः ६ ॥

टी०। और उस उत्तानपाद के धर्म्मात्मा पुत्र ने बहुला नाम बभ्रुकी कन्या से अपना विवाह किया जिसतरह शचीसे इन्द्र ने विवाह कियाथा६॥

मू० तस्यामतीव तस्यासीद्द्विजवर्य्यमनः सदा।
स्नेहवच्छशिनो यद्वद्रोहिण्यां निहितास्पदम् ७ ॥

टी०। और हे द्विजवर्य्य! जिस तरह रोहिणी से चन्द्रमा प्रीति रखते हैं उसी तरह उत्तम महाराज प्रीति युक्त उस बहुला स्त्री में हमेशा अपने मन को लगाये रहते थे ७ ॥

मू० अन्यप्रयोजनासक्तिमुपैति न हि तन्मनः।
स्वप्ने चैव तदालम्बिमनोऽभूतस्य भूभृतः ८ ॥

टी०। सिवाय बहुला के और किसी काम में उत्तम का मन न लगता था और मन के लगाव से स्वप्न में भी उस राजा का मन उसीको देखा करता था ८ ॥

मू० स च तस्याः सुचार्वङ्ग्या दर्शनादेव पार्थिवः।
दुदाति स्पर्शनं गात्रे गात्रस्पर्शे च तन्मयः ९ ॥

टी०। जिस समय सुन्दर अंगों वाली बहुला को देखता था उस समय राजा कामासक्त होकर उस के अङ्ग में ऐसा लिपट जाता था कि मानों दोनों एक शरीर हैं ९ ॥

मू० श्रोत्रोद्वेगकरं वाक्यं प्रियमप्यवनीपते।
तस्यापि भूरि सम्मानं मेने परिभवं ततः १० ॥

टी०। व राजा के प्रिय वचन भी उस स्त्री के कानों को दुख कारक थे व उस राजाके बड़े आदर को भी तिरस्कार मानती थी १० ॥

मू० अवमेने स्रजं दत्तां शुभान्याभरणानि च।
उत्तस्थावङ्गपीडेव पिबतोऽस्याधरासवम् ११ ॥

टी०। और राजा के अधरामृत पान करने के समय वह स्त्री पीड़ा की तरह उठ पड़तीथी व दीहुई माला व उत्तम गहनोंका अनादर करतीथी ११ ॥

मू० भुञ्जता च नरेन्द्रेण क्षणमात्रं करे धृताः।
वुभुजेस्वल्पकं भक्ष्यं द्विजनातिमुदावती १२ ॥

टी०। और हे द्विज! वह उत्तम एक साइत भी बहुला से जुदा नहीं रहता था और उसकी जुदाई के डर से भोजन करने के समय भी हाथ पकड़े हुये कुछ भोजन खालेता था परन्तु वह बहुला उत्तम से प्रसन्न नहीं रहती थी १२ ॥

मू० एवं तस्यानुकूलस्य नानुकूला महात्मनः।
प्रभूततरमत्यर्थं चक्रे रागं महीपतिः १३ ॥

टी०। इसी तरह वह महात्मा राजा उसके ऊपर बहुत अधिक स्नेह करता था और वह बहुला उत्तम के मुवाफ़िक़ नहीं रहती थी १३ ॥

मू० अथ पानगतो भूपः कदाचित्तांमनस्विनीम्।
सुरापूर्णं पानपात्रं ग्राहयामास सादरः १४ ॥

टी०। इसके बाद एक दिन राजा उत्तम मद्य पान कर रहाथा और उस शराब में से बहुत आदर और प्रेम के साथ मदिरा से भराहुआ एक पियाला उस मनस्विनी बहुला को भी पीने के वास्ते देने लगा१४ ॥

मू० पश्यतां भूमिपालानां वारमुख्यैः समन्वितः ।
प्रगीयमानमधुरैर्गेयगायनतत्परैः १५ ॥

टी० । उस समय में उस सभा में बहुत राजा लोग देख रहे थे और वेश्याओं का नाच हो रहा था और गाने वाले लोग बहुत खुश आवाज़ी से गीत गा रहे थे १५ ॥

मू० सा तु नेच्छति तत्पात्रमादातुं तत्पराङ्मुखी ।
समक्षमवनीशानां ततः क्रुद्धः सपार्थिवः १६ ॥

टी० । परन्तु बहुला ने उन रजवाड़ों के सामने उस पात्र के लेने से इन्कार करके अपना मुँह फेर लिया यह हाल देखकर वह राजा क्रोध में आया १६ ॥

मू० उवाच द्वाःस्थमाहूय निःश्वसन्नुरगो यथा ।
निराकृतस्तया देव्या प्रियया पतिरप्रियः १७ ॥

टी० । और उस प्रिय देवी से अनादर किये हुए अप्रिय पति राजा ने उस क्रोध की दशा में साँप की तरह लम्बी लम्बी साँस लेकर दरवानी को बुलाकर कहा १७ ॥

मू० द्वाःस्थैनां दुष्टहृदयामादाय विजने वने ।
परित्यजाशु नैतत्ते विचार्य्यं वचनं मम १८ ॥

टी० । कि हे द्वारपालक ! इस दुष्ट हृदया को पकड़ कर जल्दी निर्जन वन में लेजाकर छोड़ आओ इस मेरे वचन में किसी तरह का आगा पीछा न करो १८ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० ततो नृपस्य वचनमविचार्यमवेक्ष्यसः ।
द्वाःस्थस्तत्याजतां सुभ्रूमारोप्यस्यन्दने वने १९ ॥

टी० । मार्कण्डेय जी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि ! बिन बिचार वाली यह आज्ञा राजा की पाकर उस के बाद द्वारपाल उस सुन्दर भौंह वाली बहुला को रथ पर चढ़ा कर लेगया और निर्जन वन में छोड़कर चलाआया १९ ॥

मू० सा च तं विपिने त्यागं नीता तेन महीभृता ।

अदृश्यमाना तं मेने परं कृतमनुग्रहम् २० ॥

टी०। उस राजा को न देखती हुई बहुला ने अपने को उस वन में उस राजाके कहने से द्वारपालक का छोड़जाना बहुत अनुग्रह समझा २०॥

मू० सोऽपि तत्रानुरागार्त्तिदह्यमानात्ममानसः।
औत्तानपादिर्भूपालो नान्यां भार्य्यामविन्दत २१ ॥

टी०। और यहाँ राजा उत्तम भी बहुला के स्नेह से अत्यन्त दुखी और उसका मन व शरीर जलताथा इस सबब से उस ने अन्य स्त्री का विवाह न किया २१ ॥

मू० सस्मारतां सुचार्व्वङ्गीमहर्निशमनिर्व्वृतः।
चकार च निजं राज्यं प्रजा धर्म्मेण पालयन् २२ ॥

टी०। किन्तु दुखी होकर दिन रात उसी सुन्दरी के ध्यान में रहता था और धर्म्म पूर्व्वक अपनी राज्य का कार्य्य करके प्रजा का पालन करता था २२ ॥

मू० प्रजापालयतस्तस्य पितुः पुत्रानिवौरसान्।
आगत्य ब्राह्मणः कश्चिदिदमाहार्त्तमानसः २३ ॥

टी०। जिस तरह पिता विवाहिता स्त्री में पैदा हुए अपने पुत्र का पालन करता है उसी तरह राजा भी अपनी प्रजा का पालन करता था एक दिन कोई ब्राह्मण दुःख से पीड़ित होकर राजा के पास आकर यह कहने लगा २३ ॥

ब्राह्मण उवाच ॥

मू० महाराजभृशार्त्तोऽस्मिश्रूयतां गदतो मम।
नृणामार्त्तिपरित्राणमन्यतो न नराधिपात् २४ ॥

टी०। कि हे महाराज! मैं बहुत दुखी होकर जो कुछआप से कहताहूं वह सुनिये क्योंकि सिवाय राजा के दूसरा कोई मनुष्यों का दुःख नहीं छुड़ा सक्ता है २४ ॥

मू० मम भार्य्याप्रसुप्तस्य केनाप्यपहृतानिशि।
गृहद्वारमनुद्घाट्य तां समानेतुमर्हसि २५ ॥

टी०। हाल यह है कि रात को मैं अपने घर में सोता था नहीं मालूम कि कौन मेरे घर का दरवाज़ा न खोल कर चला आया और मेरी स्त्री को चुराकर लेगया उसको आप ढूँढ़कर लादीजिये २५ ॥

राजोवाच ॥

मू० न वेत्सि केनापहृता क्वानीता तु सा द्विज।
यतामि निग्रहे कस्य कुतो वाप्यानयामिताम् २६ ॥

टी०। राजा ने कहा कि हे द्विज! जब कि आपही नहीं जानते हैं कि किस जगह कौन आदमी लेगया तो मैं अनजान किस के दण्ड देने में यत्न करूं व उसको कहाँ से लादूँ २६ ॥

ब्राह्मण उवाच ॥

मू० तथैव स्थगिते द्वारि प्रसुप्तस्य महीपते।
हृता हि भार्य्यासाकेनेत्येतद्विज्ञास्यते भवान् २७ ॥

टी०। ब्राह्मण ने कहा कि हे महाराज! मेरे सोने के वक्त मेरे मकान का दरवाज़ा खुला न था परन्तु मेरी स्त्री को कौन किस रास्ते से लेगया यह आप जानैं गे २७ ॥

मू० त्वं रक्षिता नो नृपते षड्भागादानवेतनः।
धर्म्मस्य तेन निश्चिन्ताः स्वपन्ति मनुजा निशि २८ ॥

टी०। क्योंकि आप हमलोगों के पालक हैं और धन धर्म इत्यादि का छठवाँ भाग लेते हैं और आपही को रक्षक समझकर सब प्रजा अपने घर में रात को बेखटके सोती है २८ ॥

राजोवाच ॥

मू० न ते दृष्टा मया भार्य्यायादृग्रूपा च देहतः।
वयश्चैव समाख्याहि किंशीलाब्राह्मणी च ते २९ ॥

टी०। यह बात सुनकर राजा ने कहा कि तुम्हारी ब्राह्मणी को मैंने नहीं देखा है कि कैसी उसकी देह व सूरत है और कैसा स्वभाव है तेरी ब्राह्मणी की कौन उमरहै सो सब कहो २९ ॥

ब्राह्मण उवाच ॥

मू० कठोरनेत्रा सात्युच्चा ह्रस्वबाहुः कृशानना।

निरूपरूपा भूपाल न निन्दामि तथैव ताम् ३० ॥

टी०। ब्राह्मण ने कहा कि हे राजन्! नेत्र तो उसके कठोर हैं और डील उसका बहुत ऊँचा है और बाँह उसकी छोटी और मुँह पतला और रूप कुरूप है पर मैं उसकी निन्दा नहीं करता हूँ ३० ॥

मू० वाचिभूपाति परुषा न सौम्या सा च शीलतः।
इत्याख्याता मया भार्य्या साकारा दुर्निरीक्षणा ३१ ॥

टी०। हे महाराज! बोली उसकी बहुत कड़ी और उसका स्वभाव भी अच्छा नहीं है और रूप भी देखने योग्य नहीं है ये लक्षण मैंने स्त्री के कहा ३१ ॥

मू० मनागतीतं भूपाल तस्याश्च प्रथमं वयः।
तादृग्रूपाहि मे भार्य्या सत्यमेतन्मयोदितम् ३२ ॥

टी०। और हे राजन्! उसकी पहिली अवस्था भी कुछ बीत गई है ऐसी रूपवाली मेरी स्त्री है मैं सच सच यह कहता हूँ ३२ ॥

राजोवाच ॥

मू० अलन्ते ब्राह्मणतया भार्य्यामन्यां ददामि ते।
सुखाय भार्य्या कल्याणी दुःखहेतुर्हि तादृशी ३३ ॥

टी०। इतनी बात ब्राह्मणकी सुनकर राजा बोला कि हे ब्राह्मण! जो स्त्री कल्याणी होती है वह सुख देती है और तुम्हारी सी स्त्री सब दिन दुःख देती है तो तुम उस स्त्री को वृथा चाहते हो मैं तुमको दूसरी स्त्री देता हूँ ३३ ॥

मू० अल्पं स्वरूपता विप्र कारणं शीलमुत्तमम्।
रूपशीलविहीनाया त्याज्या सा तेन हेतुना ३४ ॥

टी०। और हे विप्र जी! स्त्री में रूप चाहे कमहो और शील मुख्य कारण है जिस स्त्री के रूप और शील नहीं है उसको उसी सबब से त्याग ही करना अच्छा है ३४ ॥

ब्राह्मण उवाच ॥

मू० रक्ष्या भार्य्या महीपाल इतिनः श्रुतिरुत्तमा।

भार्य्यायां रक्षमाणायां प्रजाभवति रक्षिता ३५ ॥

टी०। इतनी बात सुनकर ब्राह्मण बोला कि हे महिपाल ! स्त्री की अवश्य रक्षा करनी चाहिये हमने यह उत्तम सुनाहै क्योंकि स्त्रीकी रक्षा करनेपर सन्तान भी रक्षित होती है ३५ ॥

मू० आत्मा हि जायते तस्यां सारक्ष्यातो नरेश्वर।
प्रजायां रक्षमाणायामात्मा भवति रक्षितः ३६ ॥

टी०। हे नरेश्वर ! इसलिये स्त्री की रक्षा अवश्य करना चाहिये क्योंकि उससे आत्मा रूप पुत्र पैदा होता है और उसी से प्रजाकी रक्षा करने पर अपनी आत्माकी रक्षाहोती है ३६ ॥

मू० तस्यामरक्षमाणायां भविता वर्णसङ्करः।
सपातयेन्महीपाल पूर्व्वान् स्वर्गादधः पितॄन् ३७ ॥

टी०। और हे पृथ्वी नाथ ! जो स्त्रीकी रक्षा न करे तो वह स्त्री स्वतंत्र होकर व्यभिचारिणी होजाय तब उस से वर्णसंकर पुत्र पैदाहो वह वर्ण-संकर पुत्र उन पहलेवाले पितरों को जो स्वर्ग में भी हों खींचकर नरक में गिरा देता है ३७ ॥

मू० धर्म्महानिश्चानुदिनमभार्य्यस्य भवेन्मम।
नित्यक्रियाणां विभ्रंशात् सचापि पतनाय मे ३८ ॥

टी०। इस सबब से जब तक मेरी स्त्री न मिलैगी तब तक दिन दिन मेरे धर्म्म की हानि होगी यानी मेरी नित्य क्रिया छूट जायगी और नित्य क्रिया छूट जाने से मुझको नरक में जाना पड़ेगा ३८ ॥

मू० तस्याञ्च पृथिवीपाल भवित्री मम सन्ततिः।
तव षड्भागदात्री सा भवित्री धर्म्महेतुकी ३९ ॥

टी०। और हे महिपाल ! उस स्त्री से जो सन्तान पैदाहोगी वह आप को छठवाँ भाग देगी और मेरा धर्म्म भी बना रहेगा ३९ ॥

मू० तदेतत्ते मयाख्याता पत्नी या मे हृता प्रभो।
तांसमानय रक्षायां भवानधिकृतो यतः ४० ॥

टी०। इसवास्ते हे प्रभो ! मैंने उस अपनी स्त्री की सूरत आपको

बतलादी जो कि हरगई है अब आप उसको लाइये क्योंकि रक्षा में आपको अधिकार है ४० ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० स तस्यैवं वचः श्रुत्वाविमृस्य च नरेश्वरः ।
सर्व्वोपकरणैर्युक्तमारुरोह महारथम् ४१ ॥

टी० । मार्कण्डेय जी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि ! इसतरह ब्राह्मणकी बातें सुनकर और अपने जी में विचारकर राजा सब सामग्रियों से संयुत बड़े रथ पर सवार हुए ४१ ॥

मू० इतश्चेतश्च तेनासौ परिबभ्राम मेदिनीम् ।
ददर्श च महारण्ये तापसाश्रममुत्तमम् ४२ ॥

टी० । वह राजाउस विमानपै चढ़कर ब्राह्मणी को खोजता हुआ इधर उधर पृथ्वीपर घूमता फिरता था कि उसने एक महावन में तपस्वी के उत्तम आश्रम को देखा ४२ ॥

मू० अवतीर्य्य च तत्रासौ प्रविश्य ददृशे मुनिम् ।
कौश्यांवृष्यां समासीनं ज्वलन्तमिव तेजसा ४३ ॥

टी० । और वहां रथ से उतर कर उस आश्रमके अन्दर गया तो इसने देखा कि तेजसे जलतेहुए से मुनि कुश के आसनपर बैठेहैं ४३ ॥

मू० स दृष्ट्वा नृपतिं प्राप्तं समुत्थाय त्वरान्वितः ।
सम्मान्यस्वागतेनैव शिष्यमाहार्घ्यमानय ४४ ॥

टी० । और उस मुनि ने भी राजा को अपने आश्रम में प्राप्त देखकर जल्द उठकर आगत स्वागत से उनका आदर किया और अपने शिष्यसे कहा कि इनके वास्ते अर्घ्य लाओ ४४ ॥

मू० तमाह शिष्यः शनकैर्दातव्योऽर्घ्योस्य किं मुने ।
तदाज्ञापय सञ्चिन्त्य तवाज्ञां हि करोम्यहम् ४५ ॥

टी० । तब शिष्य ने उनसे धीरे से कहा कि हे मुने ! विचारकर वह आज्ञा दीजिये कि राजा को क्या अर्घ्य देने योग्यहै मैं तुम्हारी उसआज्ञा को करूं ४५ ॥

मू० ततोऽवगतवृत्तान्तो भूपतेस्तस्य सद्विजः ।
सम्भाषासनदानेन चक्रे सम्मानमात्मवान् ४६ ॥

टी० । तब उन आत्मज्ञानी ऋषि ने ध्यान करके राजाका सब वृत्तान्त समझकर अर्घ्य के वास्ते आज्ञा नहीं दी परन्तु राजा से कुशल क्षेम पूछ कथा वार्त्ता कहकर आसन देकर बहुत आदर किया ४६ ॥

ऋषिरुवाच ॥

मू० किं निमित्तमिहायातो भवान् किन्ते चिकीर्षितम् ।
उत्तानपादतनयं वेद्मित्वामुत्तमं नृप ४७ ॥

टी० । फिर ऋषि ने कहा कि हे राजन् ! मैं जानताहूँ कि आप महाराज उत्तानपाद के पुत्र हैं नाम आपका उत्तम है परन्तु यह बतलाइये कि किस प्रयोजन के वास्ते आप यहां आये हैं व तुम्हारी इच्छा क्या करने की है ४७ ॥

राजोवाच ॥

मू० ब्राह्मणस्य गृहाद्भार्य्या केनाप्यपहृता मुने ।
अविज्ञातस्वरूपेण तावन्वेष्टुमिहागतः ४८ ॥

टी० । यह बात सुनकर राजा बोला कि हे मुनि ! इस ब्राह्मण की स्त्री को घरही में से कोई दुष्ट हरण करलेगया है मैं जिसका रूप नहीं जानताहूं उसी ब्राह्मणी के ढूँढ़ने के वास्ते मैं यहां आयाहूं ४८ ॥

मू० पृच्छामि यत्तेतन्मेत्वं प्रणतस्यानुकम्पया ।
अभ्यागतस्याथ गृहं भगवन् वक्तुमर्हसि ४९ ॥

टी० । और हे भगवन् ! प्रणाम करके आपसे जो पूंछताहूं दया करके उसका वृत्तान्त घर में आयेहुए मुझसे कहिये ४६ ॥

ऋषिरुवाच ॥

मू० पृच्छमामवनीपाल यत्पृष्टव्यमशङ्कितः ।
वक्तव्यञ्चेत्तव मया कथयिष्यामि तत्त्वतः ५० ॥

टी० । फिर ऋषि ने कहा कि हे पृथ्वीपालक ! जो आपको पूंछनाहो वह निश्शंक होकर पूछिये यदि तुमसे मेरे कहने योग्य होगा तो मैं तत्त्व पूर्वक कहूंगा ५० ॥

राजोवाच ॥

मू० गृहागताय यो मह्यं प्रथमेदर्शने मुने।
त्वया समुद्यतो दातुं कथं सोऽर्घ्यो निवर्त्तितः ५१ ॥

टी०। राजा ने कहा कि हे मुनि! पहिले जब मैंने आपका दर्शन किया तब तो घरमें आयेहुये मेरे लिये आपने अर्घ्य लाने के वास्ते शिष्य को आज्ञा दिया जब शिष्य मुझको अर्घ्य देने के वास्ते मुस्तैद हुआ तब फिर आपसे पूंछकर चुपहोरहा आपने आज्ञा न दिया सो मुझसेकहिये५१॥

ऋषिरुवाच ॥

मू० त्वद्दर्शनेन रभसादाज्ञप्तोऽयं मया नृप।
यदा तदाहमेतेन शिष्येण प्रतिबोधितः ५२ ॥

टी०। ऋषि ने कहा कि हे राजन्! अपने आश्रम में आपको प्राप्त देखकर जल्दी में जब मैंने अर्घ्य के वास्ते इसको आज्ञा दे दिया तब इस शिष्यने मुझको समझाया ५२ ॥

मू० एष वेत्ति जगत्यत्र मत्प्रसादादनागतम्।
यथाहंसमतीतञ्च वर्त्तमानञ्च सर्व्वतः ५३ ॥

टी०। और जिसतरह मैं भूत भविष्य वर्त्तमान का हाल सब ओर से जानताहूं उसी तरह यह शिष्य भी इस संसारमें भूत भविष्यादि का हाल मेरे प्रसाद से जानताहै ५३ ॥

मू० आलोच्याज्ञापयेत्युक्ते ततो ज्ञातं मयापि तत्।
ततो न दत्तवानर्घ्यमहं तुभ्यं विधानतः ५४ ॥

टी०। तो जब इस शिष्य ने मुझसे यह कहा कि गुरूजी विचारकर आज्ञा दीजिये तब मैं ध्यान करके आपका वह सम्पूर्ण वृत्तान्त समझ-गया इस वास्ते मैंने आपको विधिसे अर्घ्य न दिया ५४ ॥

मू० सत्यं राजंस्त्वमर्घ्यार्हः कुले स्वायम्भुवस्य च।
तथापि नार्घ्ययोग्यं त्वां मन्यामो वयमुत्तमम् ५५।

टी०। हेराजन्! यद्यपि आपस्वायम्भुव मनुकेकुल में पैदाहैं और अर्घ्यके योग्य हैं यहसत्यहै परन्तु मैं आप उत्तमको अर्घ्ययोग्य नहीं समझताहूं ५५॥

राजोवाच ॥

मू० किं कृतं हि मया ब्रह्मञ्ज्ञानादज्ञानतोपि वा ।
येन त्वत्तोऽर्घ्यमर्हामि नाहमभ्यागतश्चिरात् ५६ ॥

टी० । इतनी बातें ऋषि की सुनकर राजा बोला कि हे ब्रह्मन् ! मैंने ज्ञान से या अज्ञान से कौन ऐसा कुकर्म्म किया है कि जिसके सबब से बहुत दिनों पर आप का अभ्यागत होने परभी आप से अर्घ्य देने योग्य नहीं हूं ५६ ॥

ऋषिरुवाच ॥

मू० किं विस्मृतन्ते यत्पत्नी त्वया त्यक्ता च कानने ।
परित्यक्तस्तया सार्द्धं त्वया धर्म्मो नृपाखिलः ५७ ॥

टी० । तब ऋषि बोले कि हे राजन् ! आपने जो अपनी स्त्री को निर्जन वनमें छोड़दिया उसके साथही सम्पूर्ण धर्म्म भी अपने खो दिये क्या वह वृत्तान्त आप को भूल गया जो मुझ से आप पूंछते हैं ५७ ॥

मू० पक्षेण कर्म्मणो हान्या प्रयात्यस्पर्शतान्नरः ।
किमत्रवार्षिकी यस्य हानिस्ते नित्यकर्म्मणः ५८ ॥

टी० । एक पक्ष तक जिस मनुष्य का कर्म्म छूट जाता है उस मनुष्य का शरीर छूना न चाहिये और जिस आप का नित्यकर्म्म वर्ष दिनतक यहां छूट गया है उसकी दुर्गति का हाल कहाँ तक कहूँ ५८ ॥

मू० पत्न्यानुकूलया भाव्यं यथाशीलेऽपि भर्त्तरि ।
दुःशीलापि तथा भार्या पोषणीया नरेश्वर ५९ ॥

टी० । और हे नरेश्वर ! जिस तरह बिन शील वाले पति के अनुकूल स्त्री को होना चाहिये उसी तरह दुःशीला स्त्री का भी पोषण करना मनुष्य को उचित है ५९ ॥

मू० प्रतिकूलाहि सापत्नी तस्य विप्रस्य याहृता ।
तथापि धर्मकामौःसौ त्वामुद्योतितवान्नृप ६० ॥

टी० । हे राजन् ! देखिये इस ब्राह्मण की स्त्री जो हरी गई है वह स्त्री उस ब्राह्मण के अनुकूला न थी यानी प्रीतिवती न थी तौभी अपने धर्म्म की कामनावाला वह ब्राह्मण आपसे स्त्री लाने के वास्ते याचना करताहै ६०॥

मू० चलतः स्थापयस्यन्यान् स्वधर्म्मेषु महीपते।
त्वांस्वधर्म्माद्विचलितं कोऽपरःस्थापयिष्यति ६१॥

टी०। हे राजन्! जो पुरुष अपना धर्म्म छोड़कर अधर्म्म करता है उस को आप दण्ड करके फिर अपने धर्म्म में स्थापित करते हैं और जब आपही धर्म्म को छोड़े देते हैं तो आपको कौन दूसरा धर्म्म में स्थापित करैगा ६१॥ मार्कण्डेयोवाच॥

मू० विलक्ष्यः स महीपाल इत्युक्तस्तेन धीमता।
तथेत्युक्त्वा च पप्रच्छ हृतांपत्नीं द्विजन्मनः ६२॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि! यह बात बुद्धिमान् मुनि की सुनकर राजा बहुत लज्जित होकर कहने लगा कि आपका कहना सब सत्य है यह कह कर फिर हरीहुई ब्राह्मण की स्त्री को पूंछने लगा ६२॥

मू० भगवन् केन नीता सा पत्नी विप्रस्य कुत्रवा।
अतीतानागतं वेत्ति जगत्यवितथं भवान् ६३॥

टी०। कि हे भगवन्! उस ब्राह्मणी को कौन लेगया है और कहाँ है सो मैं नहीं जानता हूँ आप बतला दीजिये क्योंकि आप भूत भविष्य वर्त्तमान तीनों काल को जानते हैं यह सत्य है ६३॥

ऋषिरुवाच॥

मू० तां जहाराद्रितनयो बलाको नाम राक्षसः।
द्रक्ष्यसे चाद्य तां भूपउत्पलावर्त्तके मुने ६४॥

टी०। ऋषि ने कहा कि उस ब्राह्मणी को अद्रिका बेटा बलाक नाम राक्षस हर लेगया है उत्पला वर्त्तक नाम वन में रक्खा है हे राजन्! आप इसी वक्त आप उस को वहां देखियेगा ६४॥

मू० गच्छ संयोजयाशु त्वं भार्य्यया हि द्विजोत्तमम्।
मापापास्यदतां यानुत्वमिवासौ दिने दिने ६५॥

टी०। जल्द जाइये उस ब्राह्मणी को ले आकर इस ब्राह्मण के साथ युक्त कर दीजिये कि जिस में आप की तरह यह ब्राह्मण भी दिन दिन पापी न हो ६५॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऔतानमन्वन्तरेबाम॥ ६६॥

अथ सत्तरवां अध्याय ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० अथारुरोह स्वरथं प्रणिपत्य महामुनिम् ।
तेनाख्यातं वनन्तच्च प्रययावुत्पलावतम् १ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि ! फिर तो राजा महा मुनि को प्रणामकर रथपर चढ़ उस उत्पलावर्त्तक वन में जिसको मुनि ने बताया था गया १ ॥

मू० यथाख्यातस्वरूपाऽचभार्य्याभर्त्रा द्विजस्यताम् ।
भक्षयन्तीं ददर्शाथ श्रीफलानि नरेश्वरः २ ॥

टी० । वहाँ पहुँचकर जैसा रूप शील स्वभाव उस ब्राह्मणी का ब्राह्मण ने राजा से बताया था उसी सूरत से उस ब्राह्मणी को बेल खाते हुये देखा २ ॥

मू० पप्रच्छ च कथं भद्रे त्वमेतद्वनमागता ।
स्फुटंब्रवीहि वैशालेरपि भार्य्या शुशर्म्मणः ३ ॥

टी० । और राजा ने ब्राह्मणी से पूंछा कि हे कल्याणि ! तू इस वनमें किस तरह आई है उसको खुलासा कहो तू तो विशाल के पुत्र सुशर्म्मा की स्त्री है ३ ॥

ब्राह्मण्युवाच ॥

मू० सुताहमतिरात्रस्य द्विजस्य वनवासिनः ।
पत्नीविशालपुत्रस्य यस्य नाम त्वयोदितम् ४ ॥

टी० । यह सुनकर ब्राह्मणी ने कहा कि मैं वनवासी अतिरात्र ब्राह्मण की बेटी हूँ और विशाल के पुत्र ब्राह्मण की स्त्री हूँ जिसका नाम आपने लिया है ४ ॥

मू० साहं हताबलाकेन राक्षसेन दुरात्मना ।
प्रसुप्ता भवनस्यान्ते भ्रातृमातृवियोजिताम् ५ ॥

टी० । मुझ को बलाक नाम राक्षस दुरात्मा ने रात को घरके बीच

सोते में चुराकर इस वन में लाकर रक्खा है मुझको माता और भ्राता और पति से वियोग होगया ५ ॥

मू० भस्मीभवतुतद्रक्षो येनास्म्येवं वियोजिता ।
मात्रा भ्रातृभिरन्यैश्च तिष्ठाम्यत्र सुदुःखिता ६ ॥

टी०। जो राक्षस मुझको मा बाप और पड़ोसियों से इस तरह छुड़ाकर इस वनमें लाया है और जिसके सबब से यहां मैं दुखी हूँ वह राक्षस जलकर राख होजाय ६ ॥

मू० अस्मिन् वनेऽतिगहने तेनानीयाहमुज्झिता ।
न वेद्मि कारणं किं तन्नोपभुंक्ते न खादति ७ ॥

टी०। इस सघन वनमें लाकर उसने मुझे छोड़दियाहै पर मैं यह सबब नहीं जानती कि किस वास्ते मुझको लाया है न तो वह मुझे खाता है और न किसी बुरी बात की इच्छा करता है ७ ॥

राजोवाच ॥

मू० अपितज्ज्ञायते रक्षस्त्वामुत्सृज्य क्व वै गतम् ।
अहं भर्त्रा तवैवात्र प्रेषितोद्विजनन्दिनि ८ ॥

टी०। राजा कहा कि हे द्विजपुत्रि ! यह तू जानती है कि वह राक्षस तुझको छोड़कर कहां गया मैं तेरेही पतिका भेजा हुआ यहां आयाहूं ८॥

ब्राह्मण्युवाच ॥

मू० अस्यैवकाननस्यान्ते सतिष्ठति निशाचरः ।
प्रविश्य पश्यतु भवान् न विभेति ततो यदि ९ ॥

टी०। यह सुनकर ब्राह्मणी ने कहा कि हे महाराज ! वह राक्षस इसी वनके बीचमें रहताहै जो उससे आपको भय नहो तो वनमें पैठकर देखियेह॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० प्रविवेश ततः सोऽथतया वर्त्मनि दर्शिते ।
ददृशे परिवारेण समवेतञ्च राक्षसम् १० ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि ! जब उस ब्राह्मणी ने राजा को पता बतला दिया तब राजा उसी रास्ते से वहाँ गया जहाँ वह राक्षस अपने भाई बन्धु से घिरा हुआ था उसको देखा १० ॥

मू० दृष्टमात्रे ततस्तस्मिंस्त्वरमाणः स राक्षसः ।
दूरादेव महीं मूर्द्ध्ना स्पृशन् पादान्तिकं ययौ ११ ॥

टी० । उसके बाद जब राक्षसने राजाको देखा तो दूरहीसे जल्दी समेत पृथ्वी पर झुकझुक कर प्रणाम करताहुआ चरणों केपासआया ११ ॥

राक्षस उवाच ॥

मू० ममात्रागच्छता गेहं प्रसादस्ते महान् कृतः ।
प्रशाधिकिंकरोम्येषवसामि विषये तव १२ ॥

टी० । राक्षस बोला कि आप जो यहां मेरे स्थान पर आये बड़ी कृपा की अब जो आप आज्ञा दें मैं करूँ क्योंकि मैं आप के देशमें बसता हूँ१२ ॥

मू० अर्घ्यञ्चेमं प्रतीच्छ त्वं स्थीयताञ्चेदमासनम् ।
वयं भृत्या भवान् स्वामी दृढमाज्ञापयस्व माम् १३ ॥

टी० । आप यह अर्घ्य लीजिये औरइस आसनपर बैठिये हमसब आप के दास हैं और आप हमारे स्वामी हैं मुझको पुष्ट आज्ञा दीजिये १३ ॥

राजोवाच ॥

मू० कृतमेव त्वया सर्व्वं सर्व्वामेवातिथि क्रियाम् ।
किमर्थं ब्राह्मणवधूस्त्वयानीता निशाचर १४

टी० । राजा ने कहा कि तुमने सब कुछ किया और सब पहुनई हो चुकी पर ऐनिशाचर!यह कहो कि तुमने ब्राह्मण की स्त्री को किस वास्ते इस वन में लाकर रक्खा है १४ ॥

मू० नेयं सुरूपासन्त्यन्या भार्य्यार्थञ्चेद्धृता त्वया ।
भक्ष्यार्थं चेत्कथं नीता त्वयैतत्कथ्यतां मम १५ ॥

टी० । यह तो कुछ खूब सूरत नहीं है बल्कि बदसूरत है इस को भोग करने के वास्ते तो लाये न होगे और स्त्रियां सुन्दरी हैं अलबत्ता राक्षस हो यदि खाने के वास्ते लायेहो तो किस तरह से यह मुझ से तुम कहो १५ ॥

राक्षस उवाच ॥

मू० न वयं मानुषाहाराअन्येते नृपराक्षसाः ।

सुकृतस्य फलं यत्तु तदश्नीमो वयं नृप १६ ॥

टी०। राक्षस ने कहा कि हे महाराज! जो राक्षस मनुष्यों को खाते हैं वे दूसरे हैं मैं नहीं हूं और ऐ राजन्! मैं तो जो पुण्य का फल है उसको भोगताहूं १६ ॥

मू० स्वभावञ्चमनुष्याणां योषिताञ्च विमानिताम्।
मानिताञ्चसमश्नीमो न वयं जन्तुखादकाः १७ ॥

टी०। और मनुष्यों का स्वभाव व स्त्रियों का मान व अपमान खाता हूं मैं जीव खाने वाला राक्षस नहीं हूँ १७॥

मू० यदास्माभिर्नृणां क्षान्तिर्भुक्ता क्रुध्यन्ति ते तदा।
भुक्ते दुष्टे स्वभावे च गुणवन्तो भवन्ति च १८ ॥

टी०। जब हम लोग मनुष्यों की क्षमा को खाजाते हैं तब वे क्रोध करते हैं और दुष्ट स्वभाव खाने पर वे गुणवान होते हैं १८॥

मू० सन्ति नःप्रमदा भूपरूपेणाप्सरसां समाः।
राक्षस्यस्तासु तिष्ठत्सु मानुषीषु रतिः कथम्१९ ॥

टी०। हे महाराज! मेरे घर में बहुतसी राक्षसीस्त्रियाँ अप्सरा समान सुन्दर २ हैं उनके स्थित होनेपर मनुष्यों की कुरूप स्त्रियों से मुझको किस तरह प्रीति होगी १६ ॥

राजोवाच ॥

मू० यद्येषा नोपभोगाय नाहारायनिशाचर।
गृहं प्रविश्य विप्रस्य तत्किमेषाहृता त्वया २० ॥

टी०। इतनी बात राक्षसकी सुनकर राजा ने कहा कि हे निशाचर! अगर तुम इस ब्राह्मणी से भोग करने और खाने की नियत नहीं रखते तो फिर किस वास्ते इसको ब्राह्मण के घर में पैठकर चुरालाये २०॥

राक्षस उवाच ॥

मू० मन्त्रवित् स द्विजश्रेष्ठो यज्ञे यज्ञे गतस्य मे।
रक्षोघ्नमन्त्रपठनात् करोत्युच्चाटनं नृप २१ ॥

टी०। राक्षस ने कहा कि हे महाराज! वह उत्तम ब्राह्मण रक्षोघ्न

मन्त्र जानता है और यज्ञों में जाकर उस मन्त्र को पढ़ कर मेरा उच्चाटन करता है २१ ॥

मू० वयं बुभुक्षितास्तस्य मन्त्रोच्चाटनकर्म्मणा ।
क्वयामः सर्व्वयज्ञेषु सऋत्विग्भवति द्विजः २२ ॥

टी० । उसी मन्त्र के प्रभाव से उच्चाटन होने के कारण मैं भूखा रह जाता हूँ मैं कहाँ जाऊँ सब यज्ञों में तो यही ब्राह्मण ऋत्विज होता है व मन्त्र पढ़ पढ़ कर उच्चाटन कर देता है २२ ॥

मू० ततोऽस्माभिरिदन्तस्य वैकल्यमुपपादितम् ।
पत्न्याविनापुमान्निज्याकर्म्मयोग्यो न जायते २३ ॥

टी० । उसी सबबसे यह सज़ा उसको मैंने ठहराई है कि विना स्त्री के पुरुष यज्ञकर्म्म योग्य नहीं होताहै इस वास्ते मैं उसकी स्त्री को चुरा लाया हूँ २३ ॥

मार्कण्डेयोवाच ॥

मू० वैकल्योच्चारणात्तस्यब्राह्मणस्य महामतेः ।
ततः स राजातिभृशंविषण्णः समजायत २४ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि ! उस महा मतिमान् ब्राह्मण की विकलता राक्षस के कहने से सुनकर राजा बहुत उदास होगया २४ ॥

मू० वैकल्यमेव विप्रस्य वदन्मामेव निन्दति ।
अनर्हमर्घ्यस्य च मां सोऽप्याह मुनिसत्तमः २५ ॥

टी । कि यह राक्षस ब्राह्मण की विकलता कहता हुआ मेरी भी निन्दा करता है और उस मुनि श्रेष्ठ ने भी मेरी निन्दा की थी कि तुम अर्घ्य के योग्य नहीं हो २५ ॥

मू० वैकल्यं तस्य विप्रस्य राक्षसोऽप्याह मे यथा ।
अपत्नीकतया सोऽहं सङ्कटं महदास्थितः २६ ॥

टी० । राक्षस ने भी उस ब्राह्मण की विकलता मुझसे कही है और मैं भी स्त्री के नहोने से बड़े संकट में पड़ा हूँ २६ ॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० एवं चिन्तयतस्तस्य पुनरप्याह राक्षसः।
प्रणामनम्रो राजानं बद्धाञ्जलिपुटो मुने २७॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे मुने! जब राजा इस तरह चिन्ता करने लगा तब राक्षस फिर भी प्रणाम से नम्र होकर हाथ जोड़ बोला २७॥

मू० नरेन्द्राज्ञाप्रदानेन प्रसादः क्रियतां मम।
भृत्यस्य प्रणतस्य त्वं युष्मद्विषयवासिनः २८॥

टी०। कि हे महाराज! मैं आपकी राज्य में बसता हूँ और आप को प्रणाम करता हूँ व आपका दास हूँ आप मुझपर प्रसन्न होकर मुझे आज्ञा दीजिये २८॥

राजोवाच॥

मू० स्वभावं वयमश्नीमस्त्वयोक्तं यन्निशाचर।
तदर्थिनो वयं येन कार्य्येण शृणुतन्मम २९॥

टी०। राजा ने कहा कि हे निशाचर! तुमने जो कहा है कि हमलोग स्वभावको खाते हैं उसी प्रयोजन वाले हम जिस कार्य के लिये आये हैं उसको मुझ से सुनिये २९॥

मू० अस्यास्त्वयाद्य ब्राह्मण्या दौःशील्यमुपभुज्यताम्।
येन त्वयात्तदौःशील्या तद्विनीता भवेदियम् ३०॥

टी०। कि अब तू इस ब्राह्मणी की दुःशीलता को भोजन करले जिस से तू दुःशीलता इसकी ले लेगा उसी से यह ब्राह्मणी नम्र होजायगी३०॥

मू० नीयतां यस्यभार्य्येयं तस्य वेश्म निशाचर।
अस्मिन् कृते कृतं सर्व्वं गृहमभ्यागतस्य मे ३१॥

टी०। और इस ब्राह्मणी को उसी ब्राह्मण के घर जिसकी यह स्त्री है पहुँचादे जो तू ऐसा करैगा तो तेरे घर पर आने से मेरा सब काम पूरा होजायगा ३१॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० ततः स राक्षसस्तस्याः प्रविश्यान्तः स्वमायया।
भक्षयामास दौःशील्यं निजशक्त्या नृपाज्ञया ३२॥

टी०। मार्कण्डेयजी बोले कि तब उस राक्षसने राजाकी आज्ञानुसार अपनी माया से उस ब्राह्मणी के शरीर में प्रवेश करके अपनी शक्ति के बल से उसकी दुःशीलता को भोग कर लिया ३२ ॥

मू० दौःशील्येनातिरौद्रेण पत्नी तस्य द्विजन्मनः ।
तेन सा सम्परित्यक्ता नमाह जगतीपतिम् ३३ ॥

टी०। जब उस ब्राह्मणी की वह अति विकराल दुःशीलता जाती रही तब वह ब्राह्मण की स्त्री उस राजा से कहने लगी ३३ ॥

मू० स्वकर्मफलपाकेन भर्त्तुस्तस्य महात्मनः ।
वियोजिताहं तद्धेतुरयमासीन्निशाचरः ३४ ॥

टी०। कि हे महाराज ! अपनी प्रारब्ध के फल से उस महात्मा पति से मुझको वियोग होगया और वियोग का कारण निशाचर हुआ ३४ ॥

मू० नास्य दोषो न वातस्य मम भर्त्तुर्महात्मनः ।
ममैव दोषो नान्यस्य सुकृतं ह्युपभुज्यते ३५ ॥

टी०। इस राक्षसका कुछ दोष नहीं है और न मेरे उस महात्मा स्वामी का और न किसी दूसरे का कुछ दोष है किन्तु मेराही दोष है क्योंकि अपना कर्म्मफल भोग किया जाताहै ३५ ॥

मू० अन्यजन्मनि कस्यापि विप्रयोगः कृतो मया ।
सोऽयं मयाप्युपगतः को दोषोऽस्य महात्मनः ३६ ॥

टी०। पूर्व्वजन्म में मैंने किसी स्त्री पुरुषका वियोग किया था इसी से स्वामी से मुझे भी बियोग हुआ उस महात्मा का कौन दोष है ३६ ॥

राक्षस उवाच ॥

मू० प्रापयामि तवादेशादिमांभर्त्तृगृहं प्रभो ।
यदन्यत्करणीयन्ते तदाज्ञापय पार्थिव ३७ ॥

टी०। तब राक्षस कहने लगा कि हे प्रभो ! आपकी आज्ञासे मैं इस ब्राह्मणी को पति के घर पहुँचा दूंगा सिवाय इसके हे राजन ! और जो कुछ तुम्हारा कार्य करने योग्य हो उसकी आप आज्ञा दीजिये ३७ ॥

राजोवाच ॥

मू० अस्मिन् कृते कृतं सर्व्वं त्वयामे रजनीचर।
आगन्तव्यञ्च ते वीरकार्य्यकाले स्मृते न मे ३८ ॥

टी०। राजा ने कहा कि हे निशाचर! इस ब्राह्मणी को उसके घर पहुँचा देने से मेरा सब काम तुमने किया सिवाय इसके मैं यह भी चाहता हूं कि हे वीर! जब कभी कार्य के समय में मैं तेरा सुमिरण करूं तब तू वहां पहुँच जाया करै ३८ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० तथेत्युक्त्वा तु तद्रक्षस्तामादाय द्विजाङ्गनाम्।
निन्ये भर्त्तृगृहं शु[illegible] दौःशील्यापगमात्तदा ३९ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि उस राक्षस ने एवमस्तु कहकर फिर दुःशीलता के निकल जाने से उस वक्त उस ब्राह्मणी को शुद्ध और सुशील बनाकर पति के घर पहुँचा दिया ३९ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे औत्तान मन्वन्तरे नाम ७० ॥

अथ इकहत्तरवां अध्याय ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० तां प्रेषयित्वा राजापिस्वभर्त्तृगृहमङ्गनाम्।
चिन्तयामास निःश्वस्य किमत्रं सुकृतं भवेत् १ ॥

टी०। फिर मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि! उस ब्राह्मणी को अपने पति के घर भेजवाकर राजा भी लम्बी श्वास लेकर चिन्ता करने लगा कि इसमें क्या सुकृत होगा १ ॥

मू० अनर्घ योग्यता कष्टं स मामाहमहामनाः।
वैकल्यं विप्रमुद्दिश्य तथाहायं निशाचरः २ ॥

टी०। कि उस उदार मनवाले मुनिने कहा कि तुम अर्घ्य योग्य नहीं

हो वह कष्ट और फिर इस निश्चर ने विकलता में प्राप्त ब्राह्मण के बहाने से मेरी निन्दाकी २ ॥

मू० सोऽहं कथं करिष्यामि त्यक्ता पत्नी मया हि सा।
अथवा ज्ञानदृष्टिं तं पृच्छामि मुनिसत्तमम् ३ ॥

टी०। अब मैं क्या करूं मैंने तो उस अपनी स्त्री को त्याग दिया खैर मैं ज्ञानदृष्टि वाले उसी मुनि महात्मा से जाकर पूंछता हूं जो कहैगा वह करूंगा ३ ॥

मू० सचिन्त्येत्थं स भूपालः समारुह्य च तं रथम्।
ययौयत्र स धर्म्मात्मा त्रिकालज्ञो महामुनिः ४ ॥

टी०। वह राजा इसप्रकार चिन्तवन कर और उस रथपर चढ़कर जहां वे महामुनि धर्म्मात्मा त्रिकाल के ज्ञानी रहते थे वहां गया ४ ॥

मू० अवरुह्य रथात्सोऽथ तं समेत्य प्रणम्य च।
यथावृत्तं समाचख्यौ राक्षसेन समागमम् ५ ॥

टी०। और वह राजा उनके आश्रम पर पहुँचकर रथ से उतर मुनि को प्रणाम कर जिस तरह वार्त्ता राक्षससे हुई थी वह सब वर्णन किया५॥

मू० ब्राह्मण्यादर्शनञ्चैव दौःशील्यापगमन्तथा।
प्रेषणं भर्त्तगेहे च कार्य्यमागमने च यत् ६ ॥

टी०। और ब्राह्मणी का दर्शन और उसकी दुःशीलता का दूर होना और उस ब्राह्मणी को उसके पति के घर पहुँचा देना और फिर अपना इस जगह पर आने का प्रयोजन सब ठीक ठीक कह सुनाया ६ ॥

ऋषिरुवाच ॥

मू० ज्ञातमेतन्मया पूर्वं यत्कृतन्ते नराधिप।
कार्य्यमागमने चैव मत्समीपे तवाखिलम् ७ ॥

टी०। राजा की यह बात सुनकर मुनि ने कहा कि हे राजन्! जो कुछ वहां तुमने किया है और जिस वास्ते तुम यहां मेरे समीप आयेहो वह सब मुझे पहिलेही जाहिर हुआ ७ ॥

मू० पृच्छमामिह किं कार्य्यं मयेत्युद्विग्नमानसः।

त्वय्यागते महीपाल शृणुकार्य्यञ्च यत्वया ८ ॥

टी० । तुम जो उदास हो यहां इसका भी कारण जो तुम पूंछो तो मैं कहदूं हे राजन् ! और जो काम तुम चाहते हो तुम्हारे आनेपर उसको भी मैं कहताहूं सुनो ८ ॥

मू० पत्नी धर्म्मार्थकामानां कारणं प्रबलंनृणाम् ।
विशेषतश्च धर्म्मश्च संत्यक्तस्त्यजता हि ताम् ९ ॥

टी० । कि मनुष्यों के धर्म्म और अर्थ और काम का प्रबल कारण स्त्री है और जो कोई स्त्री को त्याग देता है उस का विशेष धर्म्म छूट जाता है ९ ॥

मू० अपत्नीको नरो भूप न योग्यो निजकर्म्मणाम् ।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वापिवैश्यःशूद्रोऽपि वा नृप १० ॥

टी० । हे राजन् ! बिना स्त्री के मनुष्य ब्राह्मण हो या क्षत्री या वैश्य या शूद्र भी अपने कर्म्म के योग्य नहीं रहता १० ॥

मू० त्यजता भवता पत्नीं न शोभनमनुष्ठितम् ।
अत्याज्यो हि यथा भर्त्ता स्त्रीणांभार्य्या तथा नृणाम् ११ ॥

टी० । आपने जो अपनी स्त्री को त्याग दिया यह कुछ अच्छा न किया क्योंकि जिस तरह स्त्रियोंको पतिका त्याग करना निषेधहै उसी तरह पुरुषों को भी स्त्री का त्याग करदेना निषेध है ११ ॥

राजोवाच ॥

मू० भगवन् किं करोम्येष विपाकोममकर्म्मणाम् ।
नानुकूलानुकूलस्य यस्मात्यक्ता ततो मया १२ ॥

टी० । राजा ने कहा कि हे भगवन् ! मैं क्या करूं यह मेरे कर्मों का फल है जिस लिये मेरी स्त्री मुझसे प्रीति नहीं रखती थी इस बास्ते मैंने उसको त्याग दिया १२ ॥

मू० यद्यत्करोति तत्क्षान्तं दह्यमानेन चेतसा ।
भगवँस्तद्वियोगार्त्तिविभीतेनान्तरात्मना १३ ॥

टी० । हे भगवन ! जो कुछ अपराध वह करती थी वह सब जलते

हुये चित्तसे मैं क्षमा करता था व उसके वियोग के दुःख से डरेहुये चित्तवाला हूं १३॥

मू० साम्प्रतन्तु वने त्यक्ता न वेद्मि क नु मागता।
भक्षितावापि विपिने सिंहव्याघ्रनिशाचरैः १४॥

टी०। और इस समय मैंने उसको वनमें छोड़दिया तब से नहीं मालूम कि वह कहांगई है या वनमें उसको किसी व्याघ्र या सिंह या निश्चर ने खालिया होगा १४॥

ऋषिरुवाच॥

मू० ना भक्षिता सा भूपाल सिंह व्याघ्रनिशाचरैः।
सा त्वविप्लुतचारित्रा साम्प्रतन्तु रसातले १५॥

टी० ऋषिने कहा कि हे महाराज! आपकी स्त्री को किसी व्याघ्र या सिंह या निशाचरने नहीं खायाहै इससमय वह अपने धर्म्म पूर्वक रसातल लोक में विराजती हैं १५॥

राजोवाच॥

मू० सानीता केन पाताल मास्तेसाऽदूषिता कथम्।
अत्यद्भुतमिदं ब्रह्मन् यथावद्वक्तुमर्हसि १६॥

टी०। राजाने कहा कि हे ब्रह्मन्! उसको पाताल में कौन लेगया और किस तरह वह दोष से बची हुई है यह बात बड़े आश्चर्य की है इसका वृत्तान्त अच्छीतरह कह सुनाइये १६॥

ऋषिरुवाच॥

मू० पाताले नागराजोऽस्ति प्रख्यातश्च कपोतकः।
तेन दृष्टा त्वया त्यक्ताभ्रमसाणा महावने १७॥

टी०। ऋषिने कहा कि पातालमें नागों के राजा कपोतक नाम विख्यात हैं जब आपने अपनी स्त्री को वन में त्याग दिया तब वह उस जङ्गल में भटकती फिरती थी उस समय उसे नाग राज ने उस को देखा १७॥

मू० सा रूपशालिनी तेन सानुरागेण पार्थिव।

वेदितार्थेन पातालं नीता सा युवती तदा १८॥

टी०। हे राजन्! और उस रूपवती को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसका हाल जानकर उसी समय उस स्त्रीको पातालमें लेगया १८॥

मू० ततस्तस्य सुता सुभ्रूर्नन्दा नाम महीपते।
भार्य्यामनोरमा चास्य नागराजस्य धीमतः १९॥

टी०। उसके बाद हे महाराज! उस नागराजकी कन्या नन्दा नाम अत्यन्त रूपवती है और मनोरमा नाम उस बुद्धिमान् की स्त्री है १९॥

मू० तया मातुः सपत्नीयं सा भवित्रीतिशोभना।
दृष्ट्वास्वगेहं सा नीता गुप्ता चान्तःपुरे शुभा २०॥

टी०। नागराज की कन्या ने उस उत्तम स्त्री को देखकर अपने मन में विचार किया कि यह अति सुन्दरी स्त्री मेरी माता की सौति होगी इसी से उसको अपने घर लेगई और रनिवासके मकानमें छिपा रक्खाहै २०॥

मू० यदा तु याचिता नन्दा न ददाति नृपोत्तरम्।
मूकाभविष्यासीत्याह तदा तां तनयां पिता २१॥

टी०। हे राजन्! जब नागराजने अपनी कन्यासे उसे मांगा तो नन्दाने इस बात का कुछ जवाब न दिया तब नागराजने उस कन्या से क्रोध करके यह कहा कि तू गूंगी होजा २१॥

मू० एवं शप्ता सुता तेन साचास्ते तत्र भूपते।
नीता तेनोरगेन्द्रेण धृता तत्सुतया सती २२॥

टी०। इस तरह हे राजन्! नागराज ने जब अपनी लड़की को शाप दिया तो उसी क्षण वह लड़की गूंगी होगई और उस पतिव्रता स्त्री को नागराज लेगये और उसकी कन्या ने छिपा रक्खाहै २२॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० ततो राजा परं हर्ष मवाप्य तमपृच्छत।
द्विजवर्य्यं स्वदौर्भाग्यकारणं दयितां प्रति २३॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि! उसके बाद यह बातें

सुनकर राजा बहुत प्रसन्न होकर ऋषिश्रेष्ठ से पूछने लगा कि कैसा मेरा अभाग्य है कि वह स्त्री मुझ से छूटगई २३॥

राजोवाच॥

मू० भगवन् सर्व्वलोकस्य मयि प्रीतिरनुत्तमा।
किन्नु तत्कारणं येन स्वपत्नीनातिवत्सला २४॥

टी०। राजा बोले कि हे भगवन्! सब मनुष्य तो मुझ से अतिउत्तम प्रीति रखते हैं पर जिससे मेरी स्त्री मुझसे प्रीति नहीं रखती उसका क्या कारणहै २४॥

मू० ममचासावतीवेष्टा प्राणेभ्योऽपिमहामुने।
सा च मां प्रति दुःशीला ब्रूहि यत्कारणंद्विज २५॥

टी०। हे महामुनि! उस स्त्री को मैं अपने प्राण से भी अधिक प्रिय रखता था पर वह मुझसे सदा दुःशीलता रखती थी ऐ द्विज! इसका जो कारण हो उसको कह सुनाइये २५॥

ऋषिरुवाच॥

मू० पाणिग्रहणकाले तु सूर्य्य भौम शनैश्चरैः।
शुक्रवाचस्पतिभ्यां च नव भार्य्याऽवलोकिता २६॥

टी०। ऋषिने कहा कि जब उस स्त्री से तुम्हारा बिवाह हुआथा उस समय सूर्य्य और मङ्गल और शनिश्चर और शुक्र और बृहस्पति तुम्हारी स्त्रीको देखते थे २६॥

मू० तन्मुहूर्त्तेऽभवच्चन्द्रस्तस्याः सोमसुतस्तथा।
परस्परविपक्षौ तौ ततःपार्थिव ते भृशम् २७॥

टी०। और उस मुहूर्त्त में चन्द्रमा और बुध जो आपस में शत्रु हैं उसके अरिष्टकारक थे उसी सबब से तुमको बहुत क्लेशहै २७॥

मू० तद्गच्छ त्वं स्वधर्म्मेण परिपालय मेदिनीम्।
पत्नीसहायाः सर्व्वाश्च कुरु धर्म्मवतीः क्रियाः २८॥

टी०। इस लिये अपनी स्त्री के साथ धर्म्मवाले कर्म कीजिये और

अपने घर जाकर अपने धर्म्म पूर्वक पृथ्वी का पालन कीजिये २८ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० इत्युक्ते प्रणिपत्यैनमारुह्य स्यन्दनं ततः ।
उत्तमः पृथिवीपालः आजगाम निजं पुरम् २९ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि ! इसतरह से जब उस ऋषि ने राजा से कहा तब वह महाराज उत्तम ऋषिको प्रणाम करके उसके बाद रथपर चढ़कर वहां से अपने नगरमें आया २९ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऔत्तममन्वन्तरेनाम ७१ ॥

अथ बहत्तरवां अध्याय ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० ततः स्वनगरं प्राप्यतं ददर्श द्विजं नृपः ।
समेतं भार्य्ययाचैव शीलवत्यामुदान्वितः १ ॥

टी० । फिर मार्कण्डेय जी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि ! उसके बाद महाराज उत्तम अपने नगर में जाकर उस शीलवती स्त्री को जिसे राक्षस हर लेगया था उसको ब्राह्मण के साथ देखकर बहुत प्रसन्नहुआ १ ॥

ब्राह्मण उवाच ॥

मू० राजवर्य्य कृतार्थोऽस्मि यतो धर्म्मोहि रक्षितः ।
धर्म्मज्ञेनेह भवता भार्य्यामानयता मम २ ॥

टी० । फिर ब्राह्मण ने कहा कि हे महाराज ! मैं कृतार्थ हूं क्योंकि धर्म्मके जाननेवाले आप मेरी स्त्रीको आनकर मेरेधर्म्म की रक्षाकिया २ ॥

राजोवाच ॥

मू० कृतार्थस्त्वं द्विजश्रेष्ठ निजधर्म्मानुपालनात् ।
वयं सङ्कटिनो विप्र येषां पत्नी न वेश्मनि ३ ॥

टी० । राजा ने कहा कि हे द्विजोत्तम ! आपतो अपने धर्म्म की रक्षा

से प्रसन्न हुये पर ऐ विप्रजी ! मैं संकट में पड़ा हूं कि जिस की स्त्री मेरे घर में नहीं है ३ ॥

ब्राह्मण उवाच ॥

मू० नरेन्द्र सा हि विपिने भक्षिता श्वापदैर्यदि ।
अलन्तया किमन्यस्या न पाणिर्गृह्यते त्वया ॥
क्रोधस्य वशमागम्य धर्म्मो न रक्षितस्त्वया ४ ॥

टी० । ब्राह्मण ने कहा कि हे महाराज ! जब कि आप की स्त्री को जंगल में कोई जानवर खागया हो तो अब उसका शोच करना वृथा है आप दूसरा विवाह करके स्त्री क्यों नहीं लाते आपने तो क्रोध के वश होकर अपने धर्म्म को बिगाड़ा है ४ ॥

राजोवाच ॥

मू० न भक्षिता मे दयिता श्वापदैः सा हि जीवति ।
अविदूषितचारित्रा कथमेतत्करोम्यहम् ५ ॥

टी० । राजा ने कहा कि मेरी स्त्री को किसी जानवर ने नहीं खाया है वह जीती है और अभी तक उसका धर्म्म भी बचाहुआ है तो फिर किस तरह मैं दूसरा विवाह करूं ५ ॥

ब्राह्मण उवाच ॥

मू० यदि जीवति ते भार्य्या न चैव व्यभिचारिणी ।
तदपत्नीकताजन्म किं पापं क्रियते त्वया ६ ॥

टी० । ब्राह्मण ने कहा जब कि आपकी स्त्री जीती है और धर्म्म भी उसका बना है तो आप विना स्त्री से उपजा हुआ पाप क्यों करतेहैं ६ ॥

राजोवाच ॥

मू० आनीतापि हि सा विप्र प्रतिकूला सदैव मे ।
दुःखाय न सुखायालं तस्या मैत्री न वै मयि ॥
तथा त्वं कुरु यत्नं मे यथा सा वशगामिनी ७ ॥

टी० । राजा ने कहा कि हे विप्रजी ! वह स्त्री मुझ से सदा बिगाड़ रखती है उसके आने पर भी मुझे सुख न होगा और कारण उसका

यही है कि वह मुझ से प्रसन्न नहीं रहती है तुम ऐसी कोई यत्न करो कि जिस से वह स्त्री मेरे वश में रहै ७॥

ब्राह्मण उवाच॥

मू० तव सम्प्रीतये तस्या वरेष्टिरुपकारिणी।
क्रियते मित्रकामैर्या मित्रविन्दां करोमि ताम् ८॥

टी०। ब्राह्मण ने कहा कि हे राजन्! जो आप उस स्त्रीके साथ प्रीति करना चाहते हैं तो मित्रविन्दा की यज्ञ कीजिये जो लोग आपुस का मिलाप चाहते हैं वह यही यज्ञ करते हैं इस की विधि मैं जानता हूं कराढूंगा ८॥

मू० अप्रीतयोः प्रीतिकरी सा हि संवननं परम्।
भार्य्यापत्योर्मनुष्येन्द्र तान्तवेष्टिं करोम्यहम् ९॥

टी०। जिस स्त्री पुरुष के आपुस में विरोध होता है उस को मित्रविन्दा की यज्ञ करने से आपुस में प्रीति होजाती है क्योंकि वह यज्ञ उत्तम वंशकारक है मैं उससे प्रीति कराढूँगा ६॥

मू० यत्र तिष्ठति सा सुभ्रूस्तव भार्य्या महीपते।
तस्मादानीयतां सा ते परां प्रीतिमुपैष्यति १०॥

टी०। जहाँ वह आपकी सुन्दरी भार्य्या टिकी हो वहाँ से आप ले आइये अब वह आप से बड़ी प्रीति रक्खैगी १०॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० इत्युक्तः स तु सम्भारानशेषानवनीपतिः।
आनिनाय चकारेष्टिं स च तां द्विजसत्तमः ११॥

टी०। मार्कण्डेय जी कहते हैं कि जब ब्राह्मण ने इसतरह से कहा तब राजा ने यज्ञ की सब सामग्री मँगवाई और उस ब्राह्मण ने राजा से मित्रविन्दा यज्ञ कराया ११॥

मू० सप्तकृत्वः स तु तदा चकारेष्टिं पुनः पुनः।
तस्य राज्ञो द्विजश्रेष्ठो भार्य्यासम्पादनाय वै १२॥

टी०। और उसवक्त उस उत्तम ब्राह्मण ने उस राजा और उसकी

स्त्री में प्रीति होने के वास्ते फिर २ सातबार वह यज्ञ कराया १२॥

मू० यदारोपितमैत्रीन्तामनन्यत महामुनिः।
स्वभर्त्तरि तदा विप्रस्तमुवाच नराधिपम् १३॥

टी०। जब महामुनि ने निज पति में उस स्त्री की पैदा हुई प्रीति को जाना तब ब्राह्मण ने राजा से कहा १३॥

मू० आनीयतां नरश्रेष्ठ या तवेष्टात्मनोऽन्तिकम्।
भुङ्क्ष्व भोगांस्तया सार्द्धं यज यज्ञांस्तथादृतः १४॥

टी०। कि हे नरोत्तम! अब आप की जो प्यारी है उस अपनी स्त्री को अपने पास लाइये और उसके साथ आदरयुक्त नानाप्रकारके यज्ञादि करिये और भोग कीजिये १४॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० इत्युक्तस्तेन विप्रेण भूपालो विस्मितस्तदा।
सस्मार तं महावीर्य्यं सत्यसन्धं निशाचरम् १५॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि! इसतरह उस ब्राह्मण के कहने से राजा ने विस्मित होकर उसवक्त उस पराक्रमी निश्चरको स्मरण किया जिस की प्रतिज्ञा सच थी १५॥

मू० स्मृतस्तेन तदा सद्यः समुपेत्य नराधिपम्।
किंकरोमीति सोऽप्याह प्राणिपत्य महामुने १६॥

टी०। उसवक्त उन के स्मरण करतेही वह राक्षस उसीक्षण राजा के पास आ पहुँचा और प्रणाम करके कहने लगा कि हे महामुने! मैं क्या करूं १६॥

मू० ततस्तेन नरेन्द्रेण विस्तरेण निवेदिते।
गत्वा पातालमादाय राजपत्नीमुपाययौ १७॥

टी०। राजा ने विस्तारसे बतलाया याने कहा कि मेरी स्त्री पाताल में है उसको ला दो यह सुन कर वह राक्षस पाताल में गया और वहाँ से राजा की उस स्त्री को लाकर राजा के सामने करदिया १७॥

मू० आनीता चातिहार्द्देन सा ददर्श तदा पतिम्।

उवाच च प्रसीदेति भूयो भूयो मुदान्विता १८॥

टी०। और लाई हुई वह स्त्री उस समय बड़ी प्रीति संयुक्त होकर राजा को देखने लगी और बार बार प्रसन्नता के साथ राजा से यह कहने लगी कि हे महाराज! मुझपर प्रसन्न हूजिये १८॥

मू० ततः स राजा रभसा परिष्वज्याह मानिनीम्।
प्रिये प्रसन्न एवाहं भूयोप्येवं ब्रवीषि किम् १९॥

टी०। तब राजा ने हर्ष से अपनी उस मानिनी स्त्री को लिपटाकर कहा कि हे प्यारी! क्या इस तरह फिरभी कहैगी मैंतो तुझपर सदा प्रसन्नही रहता हूँ १९॥

पत्न्युवाच॥

मू० यदि प्रसादप्रवणं नरेन्द्र मयि ते मनः।
तदेतदभियाचे त्वां तत् कुरुष्व ममार्हणम् २०॥

टी०। फिर रानी ने कहा कि हे महाराज! जो आप का मन मुझपर प्रसन्न है तो मैं तुमसे यही माँगती हूँ कि मेरे वास्ते आप इतनी बात कर दीजिये २०॥

राजोवाच॥

मू० निःशङ्कं ब्रूहि मत्तो यद्भवत्या किञ्चिदीप्सितम्।
तदलभ्यं न ते भीरु तवायत्तोऽस्मि नान्यथा २१॥

टी०। राजा ने कहा कि जो कुछ तेरी इच्छा हो वह निस्सन्देह मुझ से कहो हे भीरु! वह मनोरथ तेरा दुर्लभ न होगा मैं तुम्हारे अधीन हूं अन्यथा नहीं हूं २१॥

पत्न्युवाच॥

मू० मदर्थे तेन नागेन सुता शप्ता सखी मम।
मूका भविष्यसीत्याह सा च मूकत्वमागता २२॥

टी०। रानी ने कहा कि मेरे ही सबब से नागराज ने अपनी लड़की को शाप दिया कि तू गूंगी होजा जिससे वह गूंगी हो गई और वह लड़की मेरी सखी है २२॥

मू० तस्याः प्रतिक्रियां प्रीत्या मम शक्नोति चेद्भवान् ।
वाग्विघातप्रशान्त्यर्थं ततः किं न कृतं मम २३ ॥

टी०। इस से उसका उपकार जो आपकी शक्ति से बाहर न हो तो मेरी प्रीति से ऐसा कोई यत्न कीजिये कि जिससे वह बोलै यह अभिलाषा मेरी पूर्ण होजाने से मैं जानूँगी कि मुझको सब पदार्थ मिले २३ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० ततः स राजा तं विप्रमाहास्मिन्कीदृशी क्रिया ।
तन्मूकतापनोदाय स च तं प्राह पार्थिवम् २४ ॥

टी०। मार्कण्डेय जी कहते हैं कि यह बातैं रानी की सुनकर राजा ने ब्राह्मणसे पूछा कि उसका गूंगापन दूर होनेके वास्ते इसमें कैसा कार्य करना चाहिये तब ब्राह्मण ने राजा से कहा २४ ॥

ब्राह्मण उवाच ॥

मू० भूप सारस्वतीमिष्टिं करोमि वचनात्तव ।
पत्नी तवेयमानृण्यं यातु तद्वाक्प्रवर्त्तनात् २५ ॥

टी०। ब्राह्मण बोला कि हे महाराज ! आप आज्ञा दीजिये तो मैं सरस्वती की यज्ञ करूँ तो उसकी वाणी प्रवृत्त होने से यह तुम्हारी स्त्री उऋण होजावै २५ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० इष्टिं सारस्वतीं चक्रे तदर्थं स द्विजोत्तमः ।
सारस्वतानि सूक्तानि जजाप च समाहितः २६ ॥

टी०। मार्कण्डेय जी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि ! राजा की आज्ञानुसार उस ब्राह्मण ने उस सखी के बोलने के वास्ते सरस्वती की यज्ञ किया और एक चित्त होकर सरस्वतीजी के सूक्तों का जप किया २६ ॥

मू० ततः प्रवृत्तवाक्यान्तां गर्गः प्राह रसातले ।
उपकारः सखी भर्त्रा कृतोऽयमतिदुष्करः २७ ॥

टी०। तब वह सखी बोलने लगी यह बात देख कर रसातल में सब लोगों ने गर्ग मुनि से पूछा कि इस गूंगी की ज़बान किस तरह खुल गई

मुनि ने कहा कि यह बहुतही कठिन उपकार इसकी सखी के स्वामी उत्तम महाराज ने किया है २७॥

मू० इत्थं ज्ञानं समासाद्य नन्दा शीघ्रगतिः पुरम्।
ततो राज्ञां परिष्वज्य स्वसखीमुरगात्मजा २८॥

टी०। इस तरह नन्दा नागकन्या ज्ञान पाकर उसी समय जल्द चल कर महाराज उत्तम के नगर में आकर उसके बाद उनकी रानी यानी अपनी सखी से मिली २८॥

मू० तं च संस्तूय भूपालं कल्याणोक्त्या पुनः पुनः।
उवाच मधुरं नागी कृतासनपरिग्रहा २९॥

टी०। और बार २ बहुत आशीर्वाद देकर महाराज उत्तम की स्तुति करने लगी और आसन पर बैठकर वह नागकन्या मीठी २ बोली में राजा से कहने लगी कि २६॥

मू० उपकारः कृतो वीर भवता यो ममाधुना।
तेनास्म्याकृष्टहृदया यद्ब्रवीमि शृणुष्व तत् ३०॥

टी०। हे वीर! इस समय जो आपने मेरा उपकार किया है इस सबब से मेरा हृदय खींच आया अब जो मैं कहती हूँ वह सुनिये ३०॥

मू० तत्र पुत्रो महावीर्य्यो भविष्यति नराधिप।
तस्याप्रतिहतं चक्रमस्यां भुवि भविष्यति ३१॥

टी०। कि हे नराधिप! आप के पुत्र महापराक्रमी उत्पन्न होगा और इस पृथ्वी में वह चक्रवर्ती होगा ३१॥

मू० सर्वार्थशास्त्रतत्त्वज्ञो धर्म्मानुष्ठानतत्परः।
मन्वन्तरेश्वरो धीमान् भविष्यति सवै मनुः ३२॥

टी०। और सब अर्थशास्त्रों के तत्त्व का जाननेवाला और धर्म्मात्मा और मन्वन्तर का ईश्वर और बुद्धिमान् वह मनु होगा ३२॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० इति दत्त्वा वरं तस्मै नागराजसुता ततः।
सखीं तां संपरिष्वज्य पातालमगमन्मुने ३३॥

टी०। मार्कण्डेय जी कहते हैं कि हे मुने! इस तरह वह नागकन्या महाराज उत्तम को वर देकर और अपनी सखी से गले मिलकर पाताल को चली गई ३३॥

मू० तत्र तस्य तया सार्द्धं रमतः पृथिवीपतेः।
जगाम कालः सुमहान् प्रजाः पालयतस्तथा ३४॥

टी०। और वहां महाराज उत्तम अपनी स्त्री के साथ क्रीड़ा करता और प्रजा को पालन करता था इसी तरह बहुत दिन बीत गये ३४॥

मू० ततः स तस्यान्तनयो जज्ञे राज्ञो महात्मनः।
पौर्णमास्यां यथा कान्तश्चन्द्रः सम्पूर्णमण्डलः ३५॥

टी०। बाद इसके उस महात्मा उत्तम के उसी स्त्री से एक पुत्र ऐसा सुन्दर उत्पन्न हुआ कि जिस तरह अपने सम्पूर्ण मण्डल के साथ पूर्णमासी का चन्द्रमा उदय होता है ३५॥

मू० तस्मिञ्जाते मुदं प्रापुः प्रजाः सर्वा महात्मनि।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात च ३६॥

टी०। उस महात्मा पुत्र के उत्पन्न होने पर राजा की सम्पूर्ण प्रजा हर्षित हुई और देवता लोग स्वर्ग में दुंदुभी बजाने लगे व सुमनवृष्टि झरने लगी ३६॥

मू० तस्य दृष्ट्वा वपुः कान्तं भविष्यं शीलमेवच।
औत्तमश्चेति मुनयो नाम चक्रुः समागताः ३७॥

टी०। और उस लड़के का प्रकाशवान् शरीर और होनेवाला शील स्वभाव देख कर सब मुनिलोगों ने आकर उसका नाम औत्तम रक्खा ३७॥

मू० जातोयमुत्तमे वंशे तत्र काले तथोत्तमे।
उत्तमावयवस्तेन औत्तमोऽयं भविष्यति ३८॥

टी०। और कहा कि यह लड़का उत्तम शरीरवान् उस उत्तम वंश और उत्तम समय में पैदा हुआ है इस सबब से यह उत्तम होगा ३८॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० उत्तमस्य सुतः सोऽथ नाम्नाख्यातस्तथौत्तमः।

मनुरासीत्तत्प्रभावो भागुरे श्रूयतां मम ३९ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि ! उस उत्तम महाराज का पुत्र औत्तम नाम से प्रसिद्ध मनु हुआ उसका प्रभाव मुझसे सुनो ३९॥

मू० उत्तमाख्यानमखिलं जन्म चैवौत्तमस्य च।
नित्यं शृणोति विद्वेषं स कदाचिन्न गच्छति ४० ॥

टी०। कि उत्तम महाराज का सम्पूर्ण चरित्र और औत्तम का जन्म जो मनुष्य नित्य श्रवण करैगा उस को कभी किसी के साथ वैर विरोध न होगा ४० ॥

मू० इष्टैर्दारैस्तथा पुत्रैर्बन्धुभिर्वा कदाचन।
वियोगो नास्य भविता शृण्वतःपठतोऽपि वा ४१ ॥

टी०। और इस चरित्र के पढ़ने और सुननेवालेको अपने मित्र और स्त्री और पुत्र और भाई बन्धुसे कभी वियोग न होगा ४१ ॥

मू० तस्य मन्वन्तरं ब्रह्मन् वदतो मे निशामय।
श्रूयतां तत्र यश्चेन्द्रो ये च देवास्तथर्षयः ४२ ॥

टी०। हे ब्रह्मन् ! उस औत्तम के मन्वन्तर में जो जो देवता और जो इन्द्र और ऋषि कहलाते थे उनके नाम कहते हुये मुझ से सुनो ४२ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऔत्तममन्वन्तरंनामद्विसप्ततितमोध्यायः ७२ ॥

अथ तिहत्तरवां अध्याय ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० मन्वन्तरे तृतीयेस्मिन्नौत्तमस्य प्रजापतेः।
देवानिन्द्रमृषीन् भूपान् निबोध गदतो मम १ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि ! इस तृतीय औत्तम नाम प्रजापति के मन्वन्तर में देवता और इन्द्र और ऋषि और राजा लोग जो हैं उन को मैं कहता हूं सुनो १ ॥

मू० स्वधामानस्तथा देवा यथानामानुकारिणः।
सत्याख्यश्च द्वितीयोऽन्यस्त्रिदशानां तथा गणः २॥

टी०। इस में पहिले स्वधामान नाम देवतागण हुये और दूसरे सत्य नाम हुये ये और जितने देवता लोग हुये उन सबके जैसे नाम वैसीही क्रिया भी थी २॥

मू० तृतीये तु गणे देवाः शिवाख्या मुनिसत्तम।
शिवाः स्वरूपतस्ते तु श्रुताः पापप्रणाशनाः ३॥

टी०। और हे मुनिसत्तम! तीसरे गणमें देवता शिवनाम हुये उसमें जितने देवताथे वे मंगलरूप और पापके नाशकरनेवाले सुनेजातेहैं ३॥

मू० प्रतर्दनाख्यश्च गणो देवानां मुनिसत्तम।
चतुर्थस्तत्र कथितश्चौत्तमस्यान्तरे मनोः ४॥

टी०। और ऐ मुनिश्रेष्ठ! उस औत्तम मन्वन्तर में देवता लोगों का चौथा गण प्रवर्त्तन नाम कहागया है ४॥

मू० वशवर्त्तिनः पञ्चमेऽपि देवास्तत्र गणे द्विज।
यथाख्यातस्वरूपास्तु सर्व्वे एव महामुने ५॥

टी०। और पाँचवें में वशवर्त्ती नाम देवता हुये उस गण में जो देवतालोग हुये उन सब के भी जैसे नाम वैसेही उनके रूप थे ५॥

मू० एते देवगणाः पञ्च स्मृता यज्ञभुजस्तथा।
मन्वन्तरे मनुश्रेष्ठे सर्व्वे द्वादशका गणाः ६॥

टी०। यही पाँच गण यज्ञों में भाग लेनेवाले कहे गये हैं और इसी तरह उस श्रेष्ठ मनु के मन्वन्तर में सब मिलकर बारहगण कहलातेथे६॥

मू० तेषामिन्द्रो महाभागस्त्रैलोक्ये सेश्वरो भवेत्।
शतं क्रतूनामाहृत्य सुशान्तिर्नामनामतः ७॥

टी०। और इन सब के मालिक त्रैलोक्य के ईश्वर महाभाग सुशान्ति नाम थे जो सौ यज्ञ करके इन्द्र हुये हैं ७॥

मू० यस्योपसर्गनाशाय नामाक्षरविभूषिता।
अद्यापि मानवैर्गाथा गीयते तु महीतले ८॥

टी०। जिनके नाम के अक्षरों से विभूषित कथा मनुष्य लोग इस पृथ्वी में उपसर्ग अर्थात् अमंगल के नाश करने के वास्ते अबतक भी गान करते हैं ८॥

मू० सुशान्तिर्देवराट्कान्तः सुशान्तिं स प्रयच्छतु।
सहितःशिवसत्याद्यैस्तथैव वशवर्त्तिभिः ९॥

टी०। और कहते हैं कि सुशान्ति जो सुन्दर देवराज हैं वे शिव और सत्यादि और वशवर्त्ती देवगणों समेत हम लोगों को सुशान्ति दें अर्थात् कल्याण करें ९॥

मू० अजः परशुचिर्दिव्यो महाबलपराक्रमाः।
पुत्रास्तस्य मनोरासन् विख्यातास्त्रिदशोपमाः १०॥

टी०। और उस औत्तम मनु के तीन पुत्र महाबली और पराक्रमी देवताओं के समान हुये जिन का नाम अज और परशुचि और दिव्य हुआ १०॥

मू० तत्सूतिसम्भवैर्भूमिः पालिताभून्नरेश्वरैः।
यावन्मन्वन्तरं तस्य मनोरुत्तमतेजसः ११॥

टी०। जबतक उस उत्तम मनुका मन्वन्तर रहा तबतक उसी मनु के वंशके राजा लोग सब पृथ्वीका राज्यकरते और प्रजापालन करते रहे ११॥

मू० चतुर्युगानां संख्याता साधिका ह्येकसप्ततिः।
कृतत्रेतादिसञ्ज्ञानां यान्युक्तानि युगे मया १२॥

टी०। और सतयुग त्रेता इत्यादि इकहत्तर चौयुगी तक एकमन्वन्तर रहता है जिन को मैं पहिले कहचुका हूं १२॥

मू० स्वतेजसा हि तपसो वशिष्ठस्य महात्मनः।
तनयाश्चान्तरे तस्मिन् सप्तसप्तर्षयोऽभवन् १३॥

टी०। और उस औत्तम के मन्वन्तर में महात्मा वशिष्ठजी की तपस्या के तेज से सात पुत्र थे वही सप्तऋषि कहलाते थे १३॥

मू० तृतीयमेतत्कथितं तव मन्वन्तरं मया।
तामसस्य चतुर्थन्तु मनोरन्तरमुच्यते १४॥

टी०। मार्कण्डेय जी कहतेहैं कि हे क्रौष्टुकि ! यह तीसरा मन्वन्तर औत्तम नाम तो मैं तुमसे वर्णन करचुका अब चौथे मन्वन्तर तामसनाम को वर्णन करता हूं १४॥

मू० वियोनिजन्मनो यस्य यशसा द्योतितं जगत्।
जन्म तस्य मनोर्ब्रह्मञ्छ्रूयतां गदतो मम १५॥

टी०। कि उस तामस मनु का जन्म वियोनि से हुआ है जिसके यश से सम्पूर्ण पृथ्वी प्रकाशित हुई हे ब्रह्मन्! उनका जन्म कहते हुये मुझ से सुनो १५॥

मू० अतीन्द्रियमशेषाणां मनूनाञ्चरितं तथा।
तथा जन्मापि विज्ञेयं प्रभावश्च महात्मनाम् १६॥

टी०। और इन सब मनुवों का जैसे चरित इन्द्रियों को उल्लंघन किये है वैसेही महात्माओं का जन्म व प्रभाव होता है १६॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऔत्तममन्वन्तरंनामत्रिसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७३॥

अथ चौहत्तरवां अध्याय॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० राजाभूद्भुवि विख्यातः स्वराष्ट्रोनाम वीर्य्यवान्।
अनेकयज्ञकृत्प्राज्ञः संग्रामे चापराजितः १॥

टी०। मार्कण्डेय जी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि ! स्वराष्ट्र नामक एक राजा भूमि में बड़ा नामी और पराक्रमी और बुद्धिमान् था जिसने अपने वक्त में तरह तरह की बहुत यज्ञोंको किया और बड़े बड़े संग्रामोंमें विजय पाई १॥

मू० तस्यायुः सुमहत्प्रादान्मन्त्रिणाराधितो रविः।
पत्नीनाञ्च शतं तस्य धन्यानामभवद्विज २॥

टी०। उस राजा ने मन्त्रों के साथ सूर्य्य का आराधन किया तब सूर्य्य भगवान्ने प्रसन्न होकर बहुत आयुर्बल उसको दिया और उस राजा के सौ स्त्रियां पतिव्रता थीं २॥

मू० तस्य दीर्घायुषः पत्न्यो नातिदीर्घायुषो मुने।
कालेन जग्मुर्निधनं भृत्यमन्त्रिजनास्तथा ३॥

टी०। हे मुनि! राजा का आयुर्बल तो बहुतथा परन्तु उसकी स्त्रियों का आयुर्बल बहुत थोड़ा था काल पाकर वह सब स्त्रियाँ मरगई और राजा के मन्त्री और नौकर चाकर भी कालपाकर मरगये ३॥

मू० सभार्य्याभिस्तथा त्यक्तो भृत्यैश्च सहजन्मभिः।
उद्विग्नचेताः सम्प्राप वीर्य्यहानिमहर्निशम् ४॥

टी०। साथही पैदा हुये इन सब स्त्रियों व नौकरों के मरने से छोड़ा हुआ राजा बहुत उदास होगया और दिन बदिन उसका पराक्रम भी घटता गया ४॥

मू० तं वीर्य्यहीनं निभृतैर्भृत्यैस्त्यक्तं सुदुःखितम्।
अनन्तरो विमर्दाख्यो राजाच्यावितवांस्तदा ५॥

टी०। जब पराक्रम उसका घट गया और मज़दूरी से पालेहुये नौकर चाकरों के मरने से बहुत दुःखी हुआ तब एक दिन डांड़ पर का विमर्द नाम राजा आया और उस को राजगद्दी पर से उतार दिया ५॥

मू० राज्याच्च्युतं सोऽपि वनं गत्वा निर्विण्णमानसः।
तपस्तेपे महाभागो वितस्तापुलिने स्थितः ६॥

टी०। तब दुःखित मनवाला राजा भी अपनी राज्य से अलग होकर वन में जाकर वह महाभाग वितस्ता नाम नदी के किनारे तपस्या करने लगा ६॥

मू० ग्रीष्मे पञ्चतपा भूत्वा वर्षास्वभ्रावकाशकः।
जलशायी च शिशिरे निराहारो यतव्रतः ७॥

टी०। ग्रीष्म काल में पञ्चाग्नि तापता था और वर्षाकाल में भीगता और जाड़े में निराहार व्रत सहित जल में शयन करता था ७॥

मू० ततस्तपस्यतस्तस्य प्रावृट्काले महाप्लवः।
बभूवानुदिनं मेघैर्वर्षद्भिरनुसन्ततम् ८॥

टी०। उसके बाद वर्षाकाल में तप करता था कि प्रतिदिन मेघों से ऐसा पानी बरसा कि सब जलार्णव होगया ८॥

मू० न दिग्विज्ञायते पूर्व्वा दक्षिणा च न पश्चिमा ।
नोत्तरा तमसा सर्व्वमनुलिप्तमिवाभवत् ९ ॥

टी० । उस जलार्णव में पूर्व्व पश्चिम उत्तर दक्षिण कुछ न मालूम होता था अँधियाले से सब लिपाहुआ सा होगया ९ ॥

मू० ततोऽतिप्लवने भूपः स नद्याः प्रेरितस्तटम् ।
प्रार्थयन्नपि नावाप ह्रियमाणोऽतिवेगिना १० ॥

टी० । उसके बाद यद्यपि राजा ने उस जलार्णव में व्याकुल होकर बहुत कुछ नदी के किनारे को चाहा तौ भी अतिवेगवाले प्रवाहसे हरे हुये उसने किनारे का स्थान न पाया कि जहाँ बैठकर निश्चिन्ताई से तपस्या करता १० ॥

मू० अथ दूरे जलौघेन ह्रियमाणो महीपतिः ।
आससाद जले रौहीं स पुच्छे जगृहे च ताम् ११ ॥

टी० । यहांतक कि वह राजा उस पानी की लहर में बहकर बहुतदूर निकल गया कि इतने में एक हरिणी मिल गई तो राजा ने उसकी पूंछ पकड़ लिया ११ ॥

मू० तेन प्लवेन स यथावुह्यमानो महीतले ।
इतश्चेतश्चान्धकार आससाद तटं ततः १२ ॥

टी० । तब उस हरिणी की पूंछरूपी नाव के सहारे से उस जलार्णव में डूबते इधर उधर उछलते हुये फिर उसी नदी के किनारे पहुँचा १२॥

मू० विस्तारिपङ्कमत्यर्थं दुस्तरं स नृपस्तरन् ।
तथैव कृष्यमाणोऽन्यद्रम्यं वनमवाप सः १३ ॥

टी० । फिर वह हरिणी बड़े कठिन कीचड़ को नांघती फांदती हुई खींचकर दूसरे एक सुन्दर वनमें राजा को लेगई १३ ॥

मू० तत्रान्धकारे सा रौही चकर्ष वसुधाधिपम् ।
पुच्छेलग्नं महाभागं कृशं धमनिसन्ततम् १४ ॥

टी० । उस अँधेरे में उस हरिणी ने पूंछ में लगेहुये महाभाग्यवान् राजा को खींचा जोकि दुबले और जिनकी सिर्फ़ नसैं बाक़ीथीं १४ ॥

मू० तस्याश्च स्पर्शसम्भूतामवाप मुदमुत्तमाम्।
सोऽन्धकारे भ्रमन् भूयो मदनाकृष्टमानसः १५॥

टी०। परन्तु उस हरिणी के अङ्ग के स्पर्श से उपजाहुआ राजा को बड़ा आनन्द था सो उस अँधेरे में घूमते २ वह राजा कामासक्त हुआ १५॥

मू० विज्ञाय सानुरागं तं पृष्ठस्पर्शनतत्परम्।
नरेन्द्रं तद्वनस्यान्तः सा मृगी तमुवाच ह १६॥

टी०। और यहां तक कामासक्त हुआ कि उस वन के बीच में उस हरिणी की पीठ सुहलानेलगा तब वह हरिणी स्नेह सहित उस राजाको कामासक्त देखकर कहनेलगी १६॥

मू० किं पृष्ठं वेपथुमता करेण स्पृशसे मम।
अन्यथैवास्य कार्य्यस्य संयाता नृपते मतिः १७॥

टी०। कि हे महाराज! तुम मेरी पीठ कांपतेहुये हाथसे क्यों सुहराते होइस कामके करने में तुम्हारी बुद्धि औरही तरह की होगई १७॥

मू० नास्थाने वो मनो यातं नागम्याहं तवेश्वर।
किन्तु त्वत्सङ्गमे विघ्नमेष लोलः करोति मे १८॥

टी०। और हे राजन्! तुम्हारा मन अयोग्यस्थान में नहीं प्राप्तहुआ है और मैं तुम्हारे सङ्गके अयोग्य नहीं हूं परन्तु मुझको तुम्हारे साथ संगम करने में यह लोल विघ्न डालता है १८॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० इति श्रुत्वा वचस्तस्या मृग्याश्च जगतीपतिः।
जातकौतूहलो रौहीमिदं वचनमब्रवीत् १९॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि यह बात उस मृगीकी सुनकर राजा को आश्चर्य्य हुआ और हरिणी से यह वचन कहनेलगा १९॥

मू० का त्वं ब्रूहि मृगी वाक्यं कथं मानुषवद्वद।
कश्चैव लोलो यो विघ्नं त्वत्सङ्गे कुरुते मम २०॥

टी०। कि तू कौन है जो मृगीके वचनको मनुष्यों की तरह बोलती

है और वह लोल कौन है जो मुझको तेरे साथ सङ्गम करने में विघ्न डालता है २० ॥

मृग्युवाच ॥

मू० अहं ते दयिता भूप प्रागासमुत्पलावती ।
भार्य्याशताग्रमहिषी दुहिता दृढधन्वनः २१ ॥

टी०। हरिणी ने कहा कि हे राजन्! पूर्वजन्म में मैं आपही की स्त्री थी नाम मेरा उत्पलावती था और आपकी सौ रानियोंमें मैं श्रेष्ठरानी थी और दृढधन्वा मेरे पिता का नामथा २१ ॥

राजोवाच ॥

मू० किं त्वं या तत्कृतं कर्म्म येनेमां योनिमागता ।
पतिव्रता धर्म्मपरा सा चेत्थं कथमीदृशी २२ ॥

टी०। राजाने कहा कि वह तो पतिव्रता व धर्म्मपरायणथी ऐसी किस तरह हुई और कौन ऐसा तूने कर्म्म किया कि जिस से इस योनि में प्राप्त हुई २२ ॥

मृग्युवाच ॥

मू० अहं पितृगृहे बाला सखीभिःसहिता वनम् ।
रन्तुं गता ददर्शैकं मृगं मृग्या समागतम् २३ ॥

टी०। हरिणी ने कहा कि मैं लड़कपन में अपने पिता के घर में थी तब सखियों के साथ खेलने को एक वन में गई तो वहां हरिणी के साथ मैथुन करते हुये एक हरिण को देखा ॥ २३ ॥

मू० ततः समीपवर्त्तिन्या मया सा ताडिता मृगी ।
मया त्रस्ता गतान्यत्र क्रुद्धः प्राह ततो मृगः २४ ॥

टी०। फिर उसको मैंने नज़दीकजाकर मारा तब वह डरकर दूसरी जगह चलीगई उसके बाद उसका हरिण क्रोधकरके मुझसे कहनेलगा २४ ॥

मू० मूढे किमेवं मत्तासि धिक्ते दौःशील्यमीदृशम् ।
आधानकालो येनायं त्वया मे विफलीकृतः २५ ॥

टी०। कि हे मूढ़े ! क्या तू ऐसी मतवाली है और ऐसी दुःशीलता

को तेरे धिक्कार है कि जिस तूने मेरे गर्भाधान कालको निष्फल करदिया २५ ॥

मू० वाचं श्रुत्वा ततस्तस्य मानुषस्येव भाषतः।
भीता तमब्रवं कोऽसीत्येतां योनिमुपागतः २६ ॥

टी०। मनुष्य कीसी बोली उस हरिण को बोलते हुये सुनकर उस मृग से डरकर मैं बोली कि तू कौन है व किस तरह इस योनि में प्राप्त हुआ २६ ॥

मू० ततः स प्राह पुत्रोहमृषेर्निर्वृतचक्षुषः।
सुतपा नाम मृग्यान्तु साभिलाषो मृगोऽभवम् २७ ॥

टी०। तब वह मृग बोला कि मैं निर्वृतचक्षुष नाम ऋषि का पुत्र हूँ सुतपा मेरा नाम है मृगी को देखकर कामासक्त होकर मैं मृग होगया २७ ॥

मू० इमां चानुगतः प्रेम्णा वाञ्छितश्चानया वने।
त्वया वियोजिता दुष्टे तस्माच्छापं ददामि ते २८ ॥

टी०। मैं इस हरिणी के साथ बहुत प्रीति रखता हूँ और यह हरिणी भी मुझ से बहुत प्रीति रखती है हे दुष्टे! तूने इस हरिणी को जो मुझ से जुदा करदिया इस वास्ते मैं तुझे शाप देता हूँ २८ ॥

मू० मया चोक्तं तवाज्ञानादपराधः कृतो मुने।
प्रसादं कुरु शापं मे न भवान् दातुमर्हसि २९ ॥

टी०। यह सुनकर मैंने कहा कि हे मुनि! अनजान से मैंने यह तेरा अपराध किया है क्षमा कीजिये मुझको आप शाप न दीजिये २९ ॥

मू० इत्युक्तः प्राह मां सोऽपि मुनिरित्थं महीपते।
न प्रयच्छामि शापं ते यद्यात्मानं ददासि मे ३० ॥

टी०। हे राजन्! यह बात जब मैंने उस मृग से कही तब उस मृग मुनि ने मुझ से कहा कि अच्छा तो मैं शाप न दूँगा यदि मुझको अपना शरीरदे ३० ॥

मू० मया चोक्तं मृगी नाहं मृगरूपधरा वने।
लप्स्यसेऽन्यां मृगीन्तावन्मयि भावो निवर्त्यताम् ३१ ॥

टी० । तब मैंने उस मृगरूपधारी मुनि से कहा कि मैं मृगरूप धारण करनेवाली जङ्गल की मृगी नहीं हूँ तू दूसरी हरिणी पावैगा मुझ से ऐसा भाव मत रख ३१ ॥

मू० इत्युक्तः कोपरक्ताक्षः स प्राह स्फुरिताधरः ।
नाहं मृगी त्वयेत्युक्तं मृगी मूढे भविष्यसि ३२ ॥

टी० । यह बात मेरी सुनकर उसके ओंठ फरकने लगे और वह मृग क्रोधसे लाल लाल आँखें करके कहने लगा कि हे मूढ़े ! तू जो यह कहती है कि मैं मृगी नहीं हूँ तो मैं कहता हूँ कि तू अवश्य मृगी होगी ३२ ॥

मू० ततो भृशं प्रव्यथिता प्रणम्य मुनिमब्रवम् ।
स्वरूपस्थमतिक्रुद्धं प्रसीदेति पुनः पुनः ३३ ॥

टी० । यह बात सुनकर मैं बहुत दुःखी होकर स्वरूप में टिके व अति क्रोधित उस मुनिको प्रणाम करके बार २ यह कहने लगी कि प्रसन्न हूजिये ३३ ॥

मू० बालानभिज्ञा वाक्यानां ततः प्रोक्तमिदं मया ।
पितर्यसति नारीभिर्व्रियते हि पतिः स्वयम् ३४ ॥

टी० । मैं स्त्री हूं और बातों को अच्छी तरह नहीं समझती हूं इससबब से यह बात मेरे मुख से निकल गई क्योंकि जिस स्त्री के पिता नहीं होता है वह अलबत्ता अपने मन से पति करलेती है ३४ ॥

मू० सति ताते कथं चाहं वृणोमि मुनि सत्तम ।
सापराधाथवा पादौ प्रसीदेश नमाम्यहम् ३५ ॥

टी० । हे मुनि श्रेष्ठ ! मेरे तो पिता वर्त्तमान हैं मैं अपने अधिकार से आप को क्योंकर पति बनाऊं अथवा यदि अपराध सहित हूँ तो मैं आप के चरणों पर गिरती हूं मेरा अपराध क्षमा कीजिये ३५ ॥

मू० प्रसीदेति प्रसीदेति प्रणतायां महामते ।
इत्थंलालप्यमानायाः स प्राह मुनि पुङ्गवः ३६ ॥

टी० । हे महामते ! प्रणाम करती हुई मुझपर प्रसन्न हूजिये प्रसन्न हूजिये जब मैंने इसतरह बार बारकहा तब वह मुनि बोले ३६ ॥

मू० न भवत्यन्यथा प्रोक्तं मम वाक्यं कदाचन।
मृगीभविष्यसि मृता बाले नात्रैवजन्मनि ३७॥

टी०। कि जो बात मैंने कह दिया वह किसी तरह मिथ्या नहीं हो-सक्ती हे बाले! मरने पर तू अवश्य दूसरे जन्म में मृगी होगी ३७॥

मू० मृगत्वे च महाबाहुस्तव गर्ब्भमुपैष्यति।
लोलो नाम मुनेः पुत्रः सिद्धवीर्य्यस्य भामिनि ३८॥

टी०। और हे सुन्दरि! जब तू हरिणी होगी तब सिद्धवीर्य्य मुनि के पुत्र लोल नाम महाबाहु तेरेगर्भ में प्राप्त होंगे ३८॥

मू० जातिस्मरा भवित्री त्वं तस्मिन् गर्ब्भमुपागते।
स्मृतिम्प्राप्य तथा वाचं मानुषीमीरयिष्यसि ३९॥

टी०। और जब वे तेरे गर्भ में आवैंगे उस समय तुझ को इस जन्म की सब बातैं याद रहैंगी और उन बातों की याद रखकर मनुष्यकी तरह तू बोलैगी ३६॥

मू० तस्मिन्जाते मृगीत्वात् त्वं विमुक्ता पतिनार्च्चिता।
लोकानवाप्स्यसि प्राप्या ये न दुष्कृत कर्म्मभिः ४०॥

टी०। और जब उनका जन्म होगा तब तू हरिणी के शरीर से छूट-कर और अपने पति से पूजित होकर उत्तम लोकों को प्राप्त होगी जिन लोकों को पापकर्म्मी मनुष्य नहीं पाते हैं ४०॥

मू० सोऽपि लोलो महावीर्य्यः पितृशत्रून् निपात्य वै।
जित्वा वसुन्धरां कृत्स्नां भविष्यति ततो मनुः ४१॥

टी०। और वे लोल महावीर्य्य भी अपने पिता के सब शत्रुओं को मारकर सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतकर उसके बाद मनुहोंगे ४१॥

मू० एवं शापमहं लब्ध्वा मृता तिर्य्यक्त्वमागता।
त्वत्संस्पर्शाच्च गर्ब्भोऽसौ सम्भूतो जठरे मम ४२॥

टी०। मैं इसतरह से शाप पाकर मरकर तिर्य्यक् योनि में आई हूं अब आप के स्पर्श से मेरे पेट में गर्भ होगया ४२॥

मू० एवं ब्रवीमि नास्थाने तव यातं मनो मयि।

नचाप्यगम्यागर्भस्थो लोलो विघ्नं करोत्यसौ ४३ ॥

टी०। इसी से मैं कहती हूँ कि आप का मन मुझ में आने से अनुचितस्थान में नहीं प्राप्त हुआ है और न मैं आप की अगम्या हूँ परन्तु मेरे गर्भ में जो यह लोल है वह मेरे और आपके संग में विघ्नकरताहै ४३॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० एवमुक्तस्ततः सोऽपि राजा प्राप्यपरां मुदम्।
पुत्रो ममारींञ्जित्वेति पृथिव्यांभविता मनुः ४४ ॥

टी०। मार्कण्डेय जी कहते हैं कि इस तरह हरिणी की बातें सुनकर वह राजा भी बहुत प्रसन्नता को पाकर कहने लगा कि मेरा पुत्र शत्रुओं को जीतकर पृथ्वी पर मनु होगा ४४ ॥

मू० ततस्तं सुषुवे पुत्रं सा मृगी लक्षणान्वितम्।
तस्मिञ्जाते च भूतानि सर्व्वाणि प्रययुर्मुदम् ४५ ॥

टी०। फिर वह हरिणी लड़का पैदा करती भई जिस में सब लक्षण भलाई के थे उस लड़के के पैदा होने पर सब जीवों को आनन्द हुआ ४५ ॥

मू० बिशेषतश्च राजासौ पुत्रे जाते महाबले।
साविमुक्ता मृगी शापात्प्राप लोकाननुत्तमान् ४६ ॥

टी०। व विशेष उस पराक्रमी लड़के के पैदा होने पर राजा को बहुत आनन्द प्राप्त हुआ और वह हरिणी अपने शाप के कष्ट से छूटकर उत्तम लोक को चली गई ४६ ॥

मू० ततस्तस्यर्षयः सर्व्वे समेत्य मुनिसत्तम।
अवेक्ष्य भाविनीमृद्धिं नाम चक्रुर्म्महात्मनः ४७ ॥

टी०। बाद इसके हे मुनि श्रेष्ठ! उस पुत्र महात्मा की होनहार ऋद्धि देखकर उस लड़के का नाम रखने के वास्ते मुनि लोग इकट्ठा होकर कहने लगे ४७ ॥

मू० तामसीं भजमानायां योनिं मातर्य्यजायत।
तमसा चावृते लोके तामसोऽयं भविष्यति ४८ ॥

टी०। कि इनकी माता तामसी योनि में प्राप्त थी जिस से ये पैदा हुये

और इनके जन्म काल में तमाम संसार में अँधेरा छागया था इस सबब से इनका नाम तामस विख्यात होगा ४८ ॥

मू० ततः स तामसस्तेन पित्रा संवर्द्धितो वने।
जात बुद्धिरुवाचेदं पितरं मुनिसत्तम ४९ ॥

टी०। मार्कण्डेय जी कहते हैं कि हे मुनिसत्तम! बाद इसके उनतामस को उनके पिता ने उसी वन में पालन किया जब तामस को बुद्धि हुई तब अपने पिता से यह बोले ४६ ॥

मू० कस्त्वं तात कथं वाहं पुत्रो माता च का मम।
किमर्थमागतश्च त्वमेतत्सत्यं ब्रूहि मे ५० ॥

टी०। कि हे तात! तुम कौन हो और मैं किस तरह आप का पुत्र हूँ और मेरी माता कौन है और आप इस वन में किसलिये आये यह सत्य सत्य मुझ से कहिये ५० ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० ततः पिता यथा वृत्तं स्वराज्यच्यावनादिकम्।
तस्याचष्टे महाबाहुः पुत्रस्य जगतीपतिः ५१ ॥

टी०। मार्कण्डेय जी कहते हैं कि तब महाबाहु राजा ने अपने राज से अलग होना और अन्य वृत्तान्त जो बीता था सब अपने बेटे से कह सुनाया ५१ ॥

मू० श्रुत्वा तत्सकलं सोऽपि समाराध्य च भास्करम्।
अवाप दिव्यान्यस्त्राणि ससंहाराण्यशेषतः ५२ ॥

टी०। उस लड़के ने भी अपने पिता से वह सब हाल सुनकर हर तरह से सूर्य्य का आराधन किया तब सूर्य्य भगवान् ने उसको सब दिव्य अस्त्र और उनके चलाने व लौटारने की विद्या भी दी ५२ ॥

मू० कृतास्त्रस्तानरीञ्जित्वापितुरानीय चान्तिकम्।
अनुज्ञातान् मुमोचाथ तेन स्वं धर्म्ममास्थितः ५३ ॥

टी०। अस्त्रों को सीखे हुये वह तामस उन शत्रुवों को जीतकर और उन सब को कैद करके अपने पिता के पास लेआया और फिर अपने

पिता की आज्ञानुसार उन सब को छोड़ कर अपने धर्म्म कार्य्य में प्रवृत्त हुआ ५३ ॥

मू० पितापि तस्य स्वाल्ँलोकां तपोयज्ञसमार्ज्जितान् ।
विसृष्टदेहः संप्राप्तो दृष्ट्वा पुत्रमुखं सुखम् ५४ ॥

टी० । फिर वह राजा भी अपने पुत्र का मुख देखकर बड़े सुख के साथ अपना शरीर त्यागकर तपस्या व यज्ञों से इकट्ठा किये हुए लोकों को प्राप्त हुआ ५४ ॥

मू० जित्वा समस्तां पृथिवीं तामसाख्यः स पार्थिवः ।
तामसाख्यो मनुरभूत्तस्य मन्वन्तरं शृणु ५५ ॥

टी० । और उस तामस नामक महाराजने सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतकर अपने वश में करलिया और सम्पूर्ण पृथ्वी में तामस मनु विख्यात हुआ अब उनके मन्वन्तर का हाल कहता हूँ सुनौ ५५ ॥

मू० ये देवा यत्पतिर्यश्च देवेन्द्रो ये तथर्षयः ।
ये पुत्राश्च मनोस्तस्य पृथिवी परिपालकाः ५६ ॥

टी० । और उस मन्वन्तर में जो देवता और जो उनके पति अर्थात् इन्द्र और जो ऋषि लोग और उस मनु के बेटे लोग जो राजा हुये उन सब का वृत्तान्त भी कहता हूँ सुनौ ५६ ॥

मू० सत्यास्तथान्ये सुधियः सुरूपा हरयस्तथा ।
एतेदेवगणास्तत्र सप्तविंशतिका मुने ५७ ॥

टी० । कि हे मुने ! सत्य और सुधि और सुरूप और हरि यही लोग उसमें सत्ताईस देवता गण थे ५७ ॥

मू० महाबलो महावीर्य्यः शतयज्ञोपलक्षितः ।
शिखिरिन्द्रस्तथा तेषांदेवानामभवद्विभुः ५८ ॥

टी० । और शिखि नाम इन्द्र महाबली और पराक्रमी सौ यज्ञ करके देवतों का स्वामी अर्थात् इन्द्र हुआ था ५८ ॥

मू० ज्योतिर्धामा पृथुः काव्यश्चैत्रोऽग्निर्वलकस्तथा ।
पीवरश्च तथा ब्रह्मन् सप्तसप्तर्षयोभवन् ५९ ॥

टी०। और हे ब्रह्मन्! ज्योतिर्धामा और पृथु और काव्य और चैत्र और अग्नि और बलक और पीवर यही सातों सप्तर्षि कहलाते थे ५६॥

मू० नरः क्षान्तिः शान्तदान्तजानुजङ्घादयस्तथा।
पुत्रास्तु तामसस्यासन् राजानः सुमहाबलाः ६०॥

टी०। और उस तामस मनु के पुत्र नर और क्षान्ति और शान्त और दान्त और जानुजङ्घ इत्यादि बड़े बड़े पराक्रमी राजा हुये ६०॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे तामस मन्वन्तरं नाम ७४॥

अथ पञ्चत्तरवां अध्याय॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० पञ्चमोऽपि मनुर्ब्रह्मन् रैवतो नाम विश्रुतः।
तस्योत्पत्तिं विस्तरशः शृणुष्व कथयामि ते १॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि! पांचवां मनुभी रैवतनाम से प्रसिद्ध है उसकी उत्पत्ति तुमसे विस्तार पूर्वक कहता हूँ उसे सुनो॥ १॥

मू० ऋषिरासीन्महाभाग ऋतवागिति विश्रुतः।
तस्यापुत्रस्य पुत्रोऽभूद्रेवत्यन्ते महात्मनः २॥

टी०। कि ऋतवाक नाम ऐसे प्रसिद्ध बड़े भाग्यवान् एक ऋषि थे जिनके पहिले कोई सन्तान न थी बहुत दिनों के बाद रेवती नक्षत्र के अन्त में उन महात्मा के एक पुत्र उत्पन्न हुआ॥ २॥

मू० स तस्य विधिवच्चक्रे जातकर्मादिकाः क्रियाः।
तथोपनयनादींश्च सचाशीलोऽभवन्मुने ३॥

टी०। हे मुने! उन ऋषि ने उस लड़के का बिधि पूर्वक जातकर्म्म इत्यादि क्रिया की और वैसेही सयाना होने पर उसका उपनयन आदि क्रिया की परन्तु वह लड़का अत्यन्त दुःशील हुआ ३॥

मू० यतः प्रभृतिजातोऽसौ ततः प्रभृति सोऽप्यृषिः।
दीर्घरोगपरामर्षमवाप मुनिपुङ्गवः ४॥

टी०। जिस दिन से वह लड़का पैदा हुआ उस दिन से उन मुनि पुं-
गव ऋषि को भी बड़े बड़े दुःख और रोग ने घेर लिया ४॥

मू० माता तस्य परामार्त्तिकुष्ठरोगादिपीडिता।
जगाम स पिता चास्य चिन्तयामास दुःखितः ५॥

टी०। और उस लड़के की माता भी कुष्ट आदि रोग होने से अत्य-
न्त पीड़ित होगई तब उसके पिता ऋषि ने बहुत दुखी होकर चिन्तवन
किया ५॥

मू० किमेतदिति सोऽप्यस्य पुत्रोऽप्यत्यन्तदुर्म्मतिः।
जग्राह भार्य्यामन्यस्य मुनिपुत्रस्य सम्मुखीम् ६॥

टी०। कि यह क्या बातहै औरअति दुष्ट बुद्धिवाले इस ऋषि के पुत्रने
भी दूसरे मुनि पुत्र की स्त्री सम्मुखी नामको ग्रहण करलिया ६॥

मू० ततो विषण्णमनसा ऋतवागिदमुक्तवान्।
अपुत्रता मनुष्याणां श्रेयसे न कुपुत्रता ७॥

टी०। और इसके उपरान्त दुखी मनसे ऋतवाक् यह कहने लगे कि
मनुष्यों को कुपुत्र के होने से विना पुत्र के रहना अच्छा है ७॥

मू० कुपुत्रो हृदयायासं सर्व्वदा कुरुते पितुः।
मातुश्च स्वर्गसंस्थांश्च स्वपितॄन्पातयत्यधः ८॥

टी०। क्योंकि कपूत लड़का मा बाप के जी को सदा दुःख देता रहता
है और स्वर्ग वासी अपने पितरों को नरक में लाकर डाल देता है ८॥

मू० सुहृदां नोपकाराय पितॄणाञ्च न तृप्तये।
पित्रोर्दुःखाय धिग्जन्म तस्य दुष्कृतकर्म्मणः ९॥

टी०। उस कुकर्मी पुत्र के जन्मको धिक्कार है कि जिससे मित्रों का
उपकार न हो और पितरलोग तृप्त नहों व जिस पुत्र से माता पिता को
दुःख हो उस पुत्र का जन्म वृथा है ९॥

मू० धन्यास्ते तनया येषां सर्व्वलोकाभिसम्मताः।
परोपकारिणः शान्ताः साधुकर्म्मण्यनुव्रताः १०॥

टी०। और वे पुरुष धन्यहैं जिन के लड़के सब मनुष्यों के अनुकूलहैं

और परोपकारी हैं और शान्त हैं और अच्छे कामों में तत्पर रहैं १० ॥

मू० अनिर्वृतं तथा मन्दं परलोकपराङ्मुखम्।
नरकाय न सद्गत्यै कुपुत्रालम्बिजन्मनः ११ ॥

टी०। हमारा कुपुत्रका अवलम्बन करनेवाला जन्म दुखी व मन्द और परलोक से विमुखहोगया और नरक के लिये होगा उत्तम गति के वास्ते न होवैगा ११ ॥

मू० करोति सौहृदां दैन्यमहितानां तथा मुदम्।
अकाले च जरां पित्रोः कुपुत्रः कुरुते ध्रुवम् १२ ॥

टी०। किन्तु वह कुपुत्र मित्रों को दुःख और शत्रुवों को सुख देता है और वह पुत्र माता पिता को जवानी ही में निश्चयकर बूढ़ा बना देता है १२ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० एवं सोऽत्यन्तदुष्टस्य पुत्रस्य चरितैर्मुनिः।
दह्यमानमनोवृत्तिर्वृत्तं गर्गमपृच्छत १३ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि! इस तरह उस अत्यन्त दुष्ट पुत्र के चरित्रों से उस मुनि का हृदय जलने लगा आखिर को गर्ग मुनि के पास जाकर वृत्तान्त पूछा १३ ॥

ऋतवागुवाच ॥

मू० सुव्रतेन पुरा वेदा गृहीता विधिवन्मया।
समाप्य वेदान् विधिवत्कृतोदारपरिग्रहः १४ ॥

टी०। ऋतवाक् बोले कि हे गर्ग जी! मैंने सुन्दर व्रत धारण करके पहिले विधि पूर्वक वेद पढ़ा वेद समाप्त होने पर विधि पूर्वक अपना विवाह किया १४ ॥

मू० सदारेण क्रियाः कार्य्याः श्रौताः स्मार्त्ता वषट्क्रियाः।
न मे न्यूनाः कृताः काश्चिद्यावदद्य महामुने १५ ॥

टी०। और हे महा मुनि! आज तक मैंने स्त्री संयुक्त होकर वैदिक क्रिया और स्मार्त्त क्रिया और वषट् क्रियाइत्यादि सब किया किन्तु विना समाप्त किये किसी क्रिया को अधूरी न छोड़ा १५ ॥

मू० गर्भाधानविधानेन न काममनुरुध्यता ।
पुत्रार्थं जनितश्चायं पुन्नाम्नो बिभ्यता मुने १६ ॥

टी० । और हे मुने ! पुन्नाम नरक से डरता हुवा मैं गर्भाधानकी विधि से पुत्रके लिये इसे उत्पन्न किया कामासक्त होकर मैंने स्त्रीगमन कभी नहीं किया १६ ॥

मू० सोऽयं किमात्मदोषेण मम दोषेण वा मुने ।
अस्मद्दुःखावहो जातो दौःशील्याद्बन्धुशोकदः १७ ॥

टी० । हे मुने ! फिर यह वही लड़का क्या अपने दोषसे या मेरे दोषसे दुःशील पैदा हुआ जो मुझको और भाईबन्धु और दोस्त आशना को दुःशीलता से दुःख और शोच देता है इसका कारण क्या है विस्तार-पूर्वक वर्णन कीजिये १७ ॥

गर्ग उवाच ॥

मू० रेवत्यन्ते मुनिश्रेष्ठ जातोऽयं तनयस्तव ।
तेन दुःखायते दुष्टे काले यस्मादजायत १८ ॥

टी० । गर्गजी कहने लगे कि हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम्हारा यह लड़का रेवती नक्षत्रके अन्त में पैदा हुआ है और जिससे दुष्ट समय में उत्पन्न हुवा है इसी कारण से आपको दुःख देता है १८ ॥

मू० न तेऽपचारो नैवास्य मातुर्नायं कुलस्य ते ।
तस्य दौःशील्यहेतुस्तु रेवत्यन्तमुपागतम् १९ ॥

टी० । इसमें तुम्हारा या उस लड़के का या उसकी माता का या तुम्हारे कुल का कुछ दोष नहीं है उसके दुःशील्य होने का कारण वहीं रेवती नक्षत्र का अन्त है १९ ॥

ऋतवागुवाच ॥

मू० यस्मान्ममैकपुत्रस्य रेवत्यन्तसमुद्भवम् ।
दौःशील्यमेतत्सा तस्मात् पततामाशु रेवती २० ॥

टी० । यह सुनकर ऋतवाक् मुनि बोले कि जो एक लड़का मेरे घर में उत्पन्न हुआ तो वह रेवती नक्षत्र के अन्त के दोष से दुःशील होगया

इसवास्ते मैं कहताहूँ कि इस रेवती नक्षत्र का शीघ्रही पतन होजाय२०॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० तेनैवं व्याहृते शापे रेवत्यृक्षं पपात ह।
पश्यतः सर्व्वलोकस्य विस्मयाविष्टचेतसः २१॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहतेहैं कि ऋतवाक् ऋषि के इस तरह शाप देने से सबके देखतेही रेवतीनक्षत्र स्वर्ग से नीचे गिर पड़ा यह देखकर सब लोग आश्चर्य करने लगे २१॥

मू० रेवत्यृक्षञ्च पतितं कुमुदाद्रौ समन्ततः।
भासयामास सहसा वनकन्दरनिर्झरम् २२॥

टी०। और वह रेवतीनक्षत्र कुमुद नाम पर्व्वत पर गिरा तो उस के गिरने से सब तरफ वह सम्पूर्ण पर्व्वत व वन और उसकी सब कन्दरा व झरने प्रकाशमान होगये २२॥

मू० कुमुदाद्रिश्च तत्पातात् ख्यातो रैवतकोऽभवत्।
अतीवरम्यः सर्व्वस्यां पृथिव्यां पृथिवीधरः २३॥

टी०। और उस रेवती के गिरने से उस पर्व्वत का नाम उसी दिन से रैवत मशहूर हुआ और सम्पूर्ण पृथ्वी में वह पर्व्वत अत्यन्त रमणीय हुआ २३॥

मू० तस्यर्क्षस्य तु या कान्तिर्जाता पङ्कजिनीसरः।
ततो जज्ञे तदा कन्या रूपेणातीवशोभना २४॥

टी०। और उस नक्षत्र की ज्योति से वहाँ पर एक सरोवर पंकजिनी नाम प्रकट हुआ और उस वक्त उस सरोवर से एक कन्या अत्यन्त रूपवती उत्पन्न हुई २४॥

मू० रेवतीकान्तिसम्भूतां तां दृष्ट्वा प्रमुचो मुनिः।
तस्या नाम चकारेत्थं रेवती नाम भागुरे २५॥

टी०। हे भागुरे! रेवती नक्षत्र की ज्योति से उत्पन्न हुई उस कन्या को देखकर प्रमुच मुनि ने उस कन्या का नाम रेवती ऐसा रक्खा २५॥

मू० पोषयामास चैवैतां स्वाश्रमाभ्याशसम्भवाम्।

प्रमुचः स महाभागस्तस्मिन्नेव महीतले २६ ॥

टी०। और अपने आश्रम के समीप उत्पन्न हुई इस कन्या को पालने लगे क्योंकि वह प्रमुच मुनि उस पृथ्वीतल में बड़े महात्मा और दयावान् थे २६ ॥

मू० तां तु यौवनिनीं दृष्ट्वा कन्यकां रूपशालिनीम्।
समुनिश्चिन्तयामास कोऽस्या भर्त्ता भवेदिति २७ ॥

टी०। जब रूपसे शोभित वह कन्या जवान हुई तब उसको देखकर उन मुनि ने यह चिन्तन किया कि इस कन्या का पति कौन होगा २७॥

मू० एवं चिन्तयतस्तस्य ययौ कालो महान्मुने।
न चाससाद सदृशं वरं तस्या महामुनिः २८ ॥

टी०। हे मुने ! इस बातको शोचते हुये उन महामुनि के बहुत दिन बीत गये पर उस कन्याके योग्य किसी वर को न पाया २८ ॥

मू० ततस्तस्या वरं प्रष्टुमग्निं स प्रमुचो मुनिः।
विवेश वह्निशालांवै प्रष्टारं प्राह हव्यभुक् २९ ॥

टी०। तब उस प्रमुच मुनिने अग्निशाला में जाकर अग्नि से पूछा कि इसके पति होने के योग्य कौन पुरुषहै तब पूछनेवाले मुनि से अग्नि ने कहा कि २९ ॥

मू० महाबलो महावीर्य्यः प्रियवाग्धर्म्मवत्सलः।
दुर्गमो नाम भविता भर्त्ता ह्यस्या महीपतिः ३० ॥

टी०। इस कन्या के स्वामी दुर्गम नाम राजा होंगे जो कि बड़े बली और महापराक्रमी और प्रिय वचन बोलनेवाले और धर्म्मवत्सल हैं ३० ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० अनन्तरं च मृगयाप्रसङ्गेनागतो मुने।
तस्याश्रमपदं धीमान् दुर्गमः स नराधिपः ३१ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि ! बाद इसके उसी वक्त वे बुद्धिमान् दुर्गम महाराज शिकार के प्रसङ्ग से प्रमुच मुनि के आश्रम के पास आये ३१ ॥

मू० प्रियव्रतान्वयभवो महाबलपराक्रमः।
पुत्रो विक्रमशीलस्य कालिन्दीजठरोद्भवः ३२॥

टी०। और यह बड़ा बली व पराक्रमी राजा दुर्गम प्रियव्रत राजा के वंश में पैदाहुये महाराज विक्रमशीलका पुत्र कालिन्दी के पेट से पैदा हुआ था ३२॥

मू० स प्रविश्याश्रमपदं तां तन्वीं जगतीपतिः।
अपश्यमानस्तमृषिं प्रियेत्यामन्त्र्य पृष्टवान् ३३॥

टी०। राजा दुर्गम प्रमुच मुनि के आश्रम में पैठकर वहां उन मुनि को न देखा तब उस सुन्दरीको देखकर हे प्रिये! यह कहकर पूंछनेलगा ३३॥

राजोवाच॥

मू० क्व गतो भगवानस्मादाश्रमान्मुनिपुङ्गवः।
तम्प्रणेतुमिहेच्छामि तत् त्वं प्रब्रूहि शोभने ३४॥

टी०। राजा बोले कि इस आश्रम से भगवान् मुनिराज कहां गये मैं उनको प्रणाम करने के वास्ते आयाहूं हे शोभने! यथार्थ वर्णन करो ३४॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० अग्निशालां गतो विप्रस्तच्छ्रुत्वा तस्य भाषितम्।
प्रियेत्यामन्त्रणंचैव निश्चक्राम त्वरान्वितः ३५॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि वह मुनि अग्निशाला में प्राप्त थे राजाके हे प्रिये! कहने की आवाज़ सुनकर शीघ्रतासंयुत निकले ३५॥

मू० स ददर्श महात्मानं राजानं दुर्गमं मुनिः।
नरेन्द्रचिह्नसहितं प्रश्रयावनतं पुरः ३६॥

टी०। तब उन मुनिने दुर्गम राजाको देखा जो बहुतनम्र होकर आगे झुका था और राजसी लक्षणों से युक्त था ३६॥

मू० तस्मिन् दृष्टे ततः शिष्यमुवाच स तु गौतमम्।
गौतमानीयतां शीघ्रमर्घ्योऽस्य जगतीपतेः ३७॥

टी०। जब उन राजाको देखा तब मुनिने अपने गौतम नाम शिष्य से कहा कि हे गौतम! इन राजाके वास्ते शीघ्र अर्घ्य लावो ३७॥

मू० एकस्तावदयं भूपश्चिरकालादुपागतः ।
जामाता च विशेषेण योग्योऽर्घ्यस्य मतो मम ३८ ॥

टी० । एक तो ये महाराज बहुत दिन पर आये हैं दूसरे विशेष कर मेरे दामाद हैं इस लिये मुझको अर्घ्य देना उचित है ३८ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० ततः स चिन्तयामास राजा जामातृकारणम् ।
विवेद च न तन्मौनी जगृहेऽर्घ्यं च तं नृपः ३९ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी कहते हैं कि उसके बाद दामाद ऐसा शब्द सुन कर राजा ने विचार किया कि मुनिने मुझको अपना दामाद किस तरह कहा इसका मतलब कुछ समझ में न आया चुप होरहा और राजाने अर्घ्य को ग्रहण किया ३९ ॥

मू० तमासनगतं विप्रो गृहीतार्घ्यं महामुनिः ।
स्वागतं प्राह राजेन्द्रमपि ते कुशलं गृहे ४० ॥

टी० । जब राजा आसन पर बैठे और अर्घ्य को ग्रहण किया तब मुनिने राजा से कहा कि आप का आना अच्छी तरह हुवा अब अपने घर की कुशलानन्द भी कहिये ४० ॥

मू० कोशे बलेऽथ मित्रेषु भृत्यामात्ये नरेश्वर ।
तथात्मनि महाबाहो यत्र सर्व्वं प्रतिष्ठितम् ४१ ॥

टी० । और हे राजन्! अपने खजाना और सेना और मित्र और मन्त्री और नौकर चाकर लोगों की कुशल कहिये वैसेही अपनी कुशल कहिये जिसमें सम्पूर्ण प्रतिष्ठित है ४१ ॥

मू० पत्नी च ते कुशलिनी यत एवानुतिष्ठति ।
पृच्छाम्यस्यास्ततो नाहं कुशलिन्योऽपरास्तव ४२ ॥

टी० । जिस लिये तुम्हारी स्त्री कुशल से टिकी है उसी सबब से इस की कुशल नहीं पूंछता हूं व तुम्हारी और स्त्रियां कुशल समेत हैं ४२ ॥

राजोवाच ॥

मू० त्वत्प्रसादादकुशलं न क्वचिन्मम सुव्रत ।

जातकौतूहलश्चास्मि मम भार्य्या तु का मुने ४३ ॥

टी०। मुनि की यह बात सुनकर राजा दुर्गम बोले कि हे सुव्रत ! आप के प्रसादसे मेरे सब कहीं कुशलहै परन्तु मुझको यह बड़ा आश्चर्य है कि यहां मेरी भार्य्या कौन है ४३ ॥

ऋषिरुवाच ॥

मू० रेवती सुमहाभागा त्रैलोक्यस्यापि सुन्दरी।
तव भार्य्या वरारोहा तां त्वं राजन्न वेत्सि किम् ४४ ॥

टी०। ऋषि ने कहा कि हे राजन् ! रेवती महाभाग्यवती जो तीनों लोकमें भी सुन्दरी है वही उत्तम कमरवाली आप की भार्य्या यहां है क्या आप उसे नहीं जानते हैं ४४ ॥

राजोवाच ॥

मू० सुभद्रां शान्ततनयां कावेरीतनयां विभो।
सुराष्ट्रजां सुजाताञ्च कदम्बाञ्च वरूथजाम् ४५ ॥

टी०। राजा ने कहा कि हे भगवन् ! सुभद्रा और शान्त की कन्या और कावेरीतनया, सुराष्ट्रजा, सुजाता, कदम्बा, वरूथजा ४५ ॥

मू० विपाठां नन्दिनीञ्चैव वेद्मि भार्य्या गृहे द्विज।
तिष्ठन्ति मे न भगवन् रेवती वेद्मि कान्वियम् ४६ ॥

टी०। और हे भगवन् ! विपाठा और नन्दिनी यही सब मेरे घरमें मेरी भार्य्या टिकी हैं हे ब्राह्मण ! रेवती को मैं नहीं जानता कि यह कौन है ४६ ॥

ऋषिरुवाच ॥

मू० प्रियेति साम्प्रतं येयं त्वयोक्ता वरवर्णिनी।
किं विस्मृतन्ते भूपाल श्लाघ्येयं गृहिणी तव ४७ ॥

टी०। ऋषि बोले कि हे राजन् ! इसी वक्त तो आपने सुन्दरी रेवती को अपनी प्रिया कहकर पुकारा है यह बात क्या आप भूलगये तारीफ़ के योग्य यही रेवती आपकी स्त्रीहै ४७ ॥

राजोवाच ॥

मू० सत्यमुक्तं मया किन्तु भावो दुष्टो न मे मुने।
नात्र कोपं भवान् कर्तुमर्हत्यस्मासु याचितः ४८ ॥

टी०। राजाने कहा कि हे मुने! मैंने कहा सत्यहै याने उसको प्रिया कहके आपका हाल पूंछा है परन्तु मैंने किसी दुष्टभाव से प्रिया नहीं कहा मैं आपसे प्रार्थना करताहूं इस विषयमें मुझपर कोप न कीजिये ४८॥

ऋषिरुवाच।

मू० तत्त्वं ब्रवीषि भूपाल न भावस्तव दूषितः।
व्याजहार भवानेतद्वह्निना नृप चोदितः ४९ ॥

टी०। ऋषिने कहा कि हे भूपाल! आप सच कहते हैं कि आप ने दुष्टभाव से प्रिया नहीं कहा किन्तु हे राजन्! अग्नि की प्रेरणा से आप ने प्रिया कहा है ४९ ॥

मू० मया पृष्टो हुतवहः कोऽस्या भर्त्तेति पार्थिव।
भविता तेन चाप्युक्तो भवानेवाद्य वै वरः ५० ॥

टी०। हे राजन्! इस बातको मैंने पहिलेही अग्निसे पूंछ लियाथा कि इस सुन्दरीका स्वामी कौनहोगा तब अग्निने मुझसे इसीवक्त कहा कि इस के स्वामी महाराज दुर्गम होंगे इसलिये आपही इस कन्याके स्वामीहैं ५०

मू० तद्गृह्यतां मया दत्ता तुभ्यं कन्या नराधिप।
प्रियेत्यामन्त्रिता चेयं विचारं कुरुते कथम् ५१ ॥

टी०। हे नराधिप! इसलिये यह कन्या मैं आपको देता हूं ग्रहण कीजिये इसको आप प्रिया यहभी कहचुकेहैं अब क्यों विचार करतेहो ५१॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० ततोऽसावभवन्मौनी तेनोक्तः पृथिवीपतिः।
ऋषिस्तथोद्यतः कर्त्तुं तस्या वैवाहिकं विधिम् ५२ ॥

टी०। उनसे यह बात सुनकर राजा चुप होगये और उसके बाद प्रमुच मुनि उसके विवाहकी विधि करनेको प्रवृत्त हुये ५२ ॥

मू० तमुद्यतं सा पितरं विवाहाय महामुने।

उवाच कन्या यत्किञ्चित्प्रश्रयावनतानना ५३ ॥

टी० । हे महामुनि ! जब प्रमुच मुनि ने उस कन्या के विवाह का यत्न करना आरम्भ किया तब नम्रता से नीचे झुँकेहुये मुखवाली वह कन्या मुनि से कुछ कहने लगी ५३ ॥

मू० यदि मे प्रीतिमांस्तात प्रसादं कर्त्तुमर्हसि ।
रेवत्यृक्षे विवाहं मे तत्करोतु प्रसादितः ५४ ॥

टी० । कि हे तात ! जो आपकी प्रीति मुझपर है तो प्रसन्नता करने योग्य हो कि रेवती नक्षत्र में प्रसन्न होकर मेरा विवाह करदीजिये ५४॥

ऋषिरुवाच ॥

मू० रेवत्यृक्षं न वै भद्रे चन्द्रयोगि व्यवस्थितम् ।
अन्यानि सन्ति ऋक्षाणि सुभ्रु वैवाहिकानि ते ५५ ॥

टी० । ऋषि ने कहा कि हे कल्याणि ! रेवती नक्षत्र में चन्द्रमा का योग नहीं होता है क्योंकि ऋतवाक् मुनि के शाप से रेवती कुमुदाद्रि पर्वत पर गिरपड़ी है हे सुभ्रु ! तुम्हारे विवाहवाले और नक्षत्रहैं ५५ ॥

कन्योवाच ॥

मू० तात तेन विना कालो विफलः प्रतिभाति मे ।
विवाहो विफले काले मद्विधायाः कथं भवेत् ५६ ॥

टी० । फिर कन्या ने कहा हे तात ! विना रेवती नक्षत्र के काल मुझ को विफल मालूम होता है और विफल काल में मुझ ऐसी कन्याका विवाह किसतरह होगा ५६ ॥

ऋषिरुवाच ॥

मू० ऋतवागिति विख्यातस्तपस्वी रेवतीं प्रति ।
चकार कोपं क्रुद्धेन तेनर्क्षं विनिपातितम् ५७ ॥

टी० । ऋषि ने कहा कि ऋतवाक् ऐसे प्रसिद्ध तपस्वी ने रेवती पर क्रोध करके शाप देकर स्वर्ग से नीचे गिरा दिया है ५७ ॥

मू० मया चास्मै प्रतिज्ञाता भार्य्येति मदिरेक्षणा ।
नचेच्छसि विवाहं त्वं संकटं नस्समागतम् ५८ ॥

टी० । और मैं इस महाराज दुर्गम से यह प्रतिज्ञा करचुका हूँ कि यह सुन्दरी आप की भार्य्या होगी अब जो तू विवाह नहीं चाहती है तो यह मुझपर बड़ा संकट होगा ५८ ॥

कन्योवाच ॥

मू० ऋतवाक् स मुनिस्तात किमेवं तप्तवांस्तपः ।
न त्वया मम तातेन ब्रह्मबन्धोः सुताऽस्मि किम् ५९ ॥

टी० । यह सुनकर कन्या ने कहा कि हे तात ! क्या ऋतवाक् मुनिने ऐसी तपस्या की है और मेरे पिता आपने वैसी तपस्या नहीं की है और मैं क्या अधम ब्राह्मण की लड़की हूँ ५६ ॥

ऋषिरुवाच ॥

मू० ब्रह्मबन्धोः सुता न त्वं बाले नैव तपस्विनः ।
सुता त्वं मम यो देवान् कर्तुमन्यान् समुत्सहे ६० ॥

टी० । ऋषि ने कहा कि हे बाले ! तू अधम ब्राह्मण व तपस्वी की कन्या नहीं है किन्तु तू मेरी कन्या है जो मैं और देवों को करनेका उत्साह करताहूं ६० ॥

कन्योवाच ॥

मू० तपस्वी यदि मे तातस्तत्किमृक्षमिदं दिवि ।
समारोप्य विवाहो मे तदृक्षे क्रियते न तु ६१ ॥

टी० । कन्या बोली कि जब मेरे पिता आप तपस्वी हैं तो फिर इस रेवती नक्षत्र को स्वर्ग में स्थापित करके उस नक्षत्र में मेरा विवाह क्यों नहीं करदेते ६१ ॥

ऋषिरुवाच ॥

मू० एवं भवतु भद्रन्ते भद्रे प्रीतिमती भव ।
आरोपयामीन्दुमार्गे रेवत्यृक्षं कृते तव ६२ ॥

टी० । ऋषिनेकहा कि हे भद्रे ! तेरा कल्याणहो प्रसन्नहोवो ऐसाहीहोगा तेरे वास्ते रेवती नक्षत्र को मैं चन्द्रमा की राह पर स्थापित करताहूँ ६२ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० ततस्तपःप्रभावेन रेवत्यृक्षं महामुनिः।
यथापूर्व्वं तथा चक्रे सोमयोगिद्विजोत्तम ६३॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे द्विजोत्तम! उसके बाद प्रमुच मुनि ने अपने तप के प्रभाव से जिस तरह पहिले रेवती को चन्द्रमा से योग था वैसाही स्थापित करदिया ६३॥

मू० विवाहञ्चैव दुहितुर्विधिवन्मन्त्रयोगिनम्।
निष्पाद्य प्रीतिमान् भूयो जामातरमथाब्रवीत् ६४॥

टी०। और उस कन्या का विवाह भी विधिपूर्व्वक मन्त्र संयुक्त कर के प्रीतिमान्हुये फिर दामाद से कहने लगे ६४॥

मू० औद्वाहिकन्ते भूपाल कथ्यतां किं ददाम्यहम्।
दुर्लभ्यमपि दास्यामि ममाप्रतिहतन्तपः ६५॥

टी०। कि हे राजन्! विवाह का दक्षिणा कहौ मैं तुमको क्या दूँ जो बात दुर्ल्लभभीहो उसको भी मैं देसक्काहूँ क्योंकि मेरी तपस्यामें कभी भङ्ग नहीं हुआ अपने तप के प्रभाव से सब कुछ करसक्ता हूँ ६५॥

राजोवाच॥

मू० मनोः स्वायम्भुवस्याहमुत्पन्नस्सन्ततौ मुने।
मन्वन्तराधिपं पुत्रं त्वत्प्रसादाद् वृणोम्यहम् ६६॥

टी०। राजा ने कहा कि हे मुनि! स्वायम्भुवमनु के वंश में मेरा जन्म है मैं भी अपने पुत्रको मन्वन्तर का स्वामी होना तुम्हारी प्रसन्नता से मांगता हूँ ६६॥

ऋषिरुवाच॥

मू० भविष्यत्येष ते कामो मनुस्त्वत्तनयो महीम्।
सकलां भोक्ष्यते भूप धर्म्मविच्च भविष्यति ६७॥

टी०। ऋषि ने कहा कि हे राजन्! तुम्हारी यह कामना सिद्ध होगी कि तुम्हारा पुत्र मनु होकर धर्म्म का जाननेवाला होगा व सम्पूर्ण पृथ्वी को भोग करेगा ६७॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० तामादाय ततो भूपः स्वमेव नगरं ययौ।
तस्मादजायत सुतो रेवत्यां रैवतो मनुः ६८॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि! बाद इसके राजा उस मुनि से यह वरदान पाकर रेवती को लेकर अपने नगर में आया और उसी रेवती के गर्भ से महाराजा दुर्गम के पुत्र रैवत नाम मनु हुये ६८॥

मू० समेतः सकलैर्धर्म्मैर्मानवैरपराजितः।
विज्ञाताखिलशास्त्रार्थो वेदविद्यार्थशास्त्रवित् ६९॥

टी०। वह रैवत मनु सब धर्म्मों और शास्त्रों के अर्थ और वेदविद्याके अर्थके जाननेवाले हुये और उनको समरमें कोई मनुष्य जीत न सका ६९॥

मू० तस्य मन्वन्तरे देवान् मुनिदेवेन्द्रपार्थिवान्।
कथ्यमानान्मया ब्रह्मन् निबोध सुसमाहितः ७०॥

टी०। और हे ब्रह्मन्! उस रैवत मनुके मन्वन्तर में जो जो देवता और मुनि और इन्द्र और राजा हुये उन सब को मैं कहता हूँ मन लगा कर सुनिये ७०॥

मू० सुमेधसस्तत्र देवास्तथा भूपतयो द्विज।
वैकुण्ठाश्चामिताभाश्च चतुर्द्दश चतुर्द्दश ७१॥

टी०। हे द्विज! उस समय में देवता लोग सुमेधा नाम से विख्यात हुये और वैकुण्ठ और अमिताभ नाम से चौदह चौदह राजाहुये ७१॥

मू० तेषां देवगणानान्तु चतुर्णामपि चेश्वरः।
नाम्नाविभुरभूदिन्द्रःशतयज्ञोपलक्षणः ७२॥

टी०। और उन चारों भी देवगणों के मालिक विभु नाम जिन ने सौ यज्ञ किया था इन्द्र हुये ७२॥

मू० हिरण्यलोमा वेदश्रीरूर्ध्वबाहुस्तथापरः।
वेदबाहुः सुधामा च पर्जन्यश्च महामुनिः ७३॥

टी०। और हिरण्यलोमा और वेदश्री और अन्य ऊर्ध्वबाहु और वेदबाहु और सुधामा और महामुनि पर्जन्य ७३॥

मू० वशिष्ठश्च महाभागो वेदवेदाङ्गपारगः।
एते सप्तर्षयश्चासन् रैवतस्यान्तरे मनोः ७४॥

टी०। और वशिष्ठ महाभाग जो वेद वेदाङ्ग के जाननेवाले थे यही लोग रैवत के मन्वन्तर में सप्तर्षि हुये ७४॥

मू० बलबन्धुर्महावीर्य्यः सुयष्टव्यस्तथापरः।
सत्यकाद्यास्तथैवासन् रैवतस्य मनोः सुताः ७५॥

टी०। और बलबंधु नाम महावीर्य्यवान् और सुयष्टव्य और सत्यक इत्यादि रैवत मनु के पुत्र हुये ७५॥

मू० रैवतान्तास्तु मनवः कथिता ये मया तव।
स्वायम्भुवाश्रया ह्येते स्वारोचिषमृते मनुम् ७६॥

टी०। यह रैवत पर्य्यन्त जितने मनु के हाल हम तुमसे कह आये हैं वह सब स्वायम्भुव मनु के वंश से हैं परन्तु स्वारोचिष मनु इस वंश से अलग हैं ७६॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेरैवतमन्वन्तरेपञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ७५॥

छिहत्तरवां अध्याय॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० इत्येतत्कथितं तुभ्यं पञ्चमन्वन्तरं मुने।
चाक्षुषस्य मनोःषष्ठं श्रूयतामिदमन्तरम् १॥

टी०। मार्कण्डेय जी कहते हैं कि हे मुने! यह पांच मन्वन्तरों का हाल लो मैंने तुम को कह सुनाया अब छठवें चाक्षुष मन्वन्तर का यह हाल कहता हूं सुनिये १॥

मू० अन्यजन्मनि जातोऽसौ चक्षुषः परमेष्ठिनः।
चाक्षुषत्वमतस्तस्य जन्मन्यस्मिन्नपि द्विज २॥

टी०। हे द्विज! पहिले जन्म में ये चाक्षुष परमेष्ठी (ब्रह्मा) के नेत्र से उत्पन्न थे इसवास्ते इस जन्म में भी उनका नाम चाक्षुष हुआ २॥

मू० जातं माता निजोत्सङ्गे स्थितमुल्लाप्य तं पुनः।
परिष्वजति हार्देन पुनरुल्लापयत्यथ ३॥

टी०। जब वह पैदा हुये तब उनकी माता उनको गोद में लियेहुये लिपटाती थी और फिर स्नेह से प्यार करती थी ३॥

मू० जातिस्मरः सजातो वै मातुरुत्सङ्गमास्थितः।
जहास तं तदा माता संक्रुद्धा वाक्यमब्रवीत् ४॥

टी०। एक दिन जाति के स्मरणवाले पैदा हुये वे चाक्षुष अपनी माता के गोदमें थे कि इतने में अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त स्मरण करके हँसने लगे तब यह देखकर माता उनकी क्रोधित होकर कहनेलगी ४॥

मू० भीतास्मि किमिदं वत्स हासो यद्वदने तव।
अकालबोधःसंजातः कच्चित्पश्यसि शोभनम् ५॥

टी०। कि हे बालक! यह तेरा हँसना कैसा है कहु मैं तेरे इसतरह हँसने से डरती हूं क्योंकि अभी तेरी उमर इसतरह हँसने की नहीं है क्या कुछ उत्तम देखते हो ५॥

पुत्र उवाच॥

मू० मामत्तुमिच्छति पुरो मार्जारी किं न पश्यसि।
अन्तर्द्धानगताचेयं द्वितीया जातहारिणी ६॥

टी०। यह सुनकर बालक ने कहा कि एक तो मेरे सामने मार्जारी खड़ी है और मुझ को खाने की इच्छा रखती है क्या तू नहीं देखती है और दूसरे अन्तर्द्धान में प्राप्त जातहारिणी जिस को तू नहीं देखती है वह भी मुझ को मारना चाहती है ६॥

मू० पुत्रप्रीत्या च भवती सहार्द्रा मामवेक्षती।
उल्लाप्योल्लाप्य बहुशः परिष्वजति मां यतः ७॥

टी०। और स्नेह सहित तू अपना पुत्र समझकर प्रीति करके मुझे देखती है व जिस लिये गले लगाकर मुझे बार २ प्यार करती है ७॥

मू० उद्भूतपुलकास्नेहसम्भवास्राविलेक्षणा।
ततो ममागतो हासः शृणु चाप्यत्र कारणम् ८॥

टी०। और अत्यन्त प्रीतिसे तेरा शरीर रोमाञ्च होरहाहै और नेत्रों में आसू भरे हैं इसी सबब से मैंने हँस दिया अब इसका कारण सुनिये ८॥

मू० स्वार्थे प्रसक्ता मार्जारी प्रसक्तं मामवेक्षते।
तथान्तर्द्धानगा चैव द्वितीया जातहारिणी ९॥

टी०। कि जिसतरह यह मार्जारी अपने मतलब में लगी हुई मेरी तरफ़ देख रही है उसी तरह अन्तर्धान में प्राप्त दूसरी जातहारिणी भी अपना मतलब निकालने के वास्ते देख रही है ९॥

मू० स्वार्थाय स्निग्धहृदये यथैवैते ममोपरि।
प्रवृत्ते स्वार्थमास्थाय तथैव प्रतिभासि मे १०॥

टी०। तो फिर जिसतरह स्नेह समेत हृदयवाली ये दोनों अपने स्वार्थ के वास्ते मुझे देखती हैं उसी तरह तुम भी अपने स्वार्थ के वास्ते मुझसे प्रीति करती हो मुझे यह मालूम होताहै १०॥

मू० किन्तु मदुपभोगाय मार्जारी जातहारिणी।
त्वन्तु क्रमेणोपभोग्यं मत्तः फलमभीप्ससि ११॥

टी०। लेकिन ये दोनों तो इसी समय मुझे मारकर और खाकर अपना मतलब करलिया चाहती हैं पर तुम अपने भोग करनेयोग्य मतलब को मुझ से आहिस्ता आहिस्ता निकालना चाहती हो यह समझ कर कि जब यह लड़का सयाना होगा तो मेरा उपकार करेगा ११॥

मू० न मां जानासि कोऽप्येष नचैवोपकृतं मया।
सङ्गतं नातिकालीनं पञ्चसप्तदिनात्मकम् १२॥

टी०। और तुम यह नहीं जानती कि मैं कौन हूं और तुम्हारा उपकार मैंने नहीं किया है व बहुत दिन से संग नहीं है बलिक पांचही सात दिन का है १२॥

मू० तथापि स्निह्यसे सास्रा परिष्वजसि चाप्यति।
तातेति वत्स भद्रेति निर्व्यलीकं ब्रवीषि माम् १३॥

टी०। तो भी आंसुओं समेत तुम इतनी प्रीति रखकर मुझे अपने अंग से बहुत लगाती हो और हे तात! और हे वत्स! हे भद्र! इत्यादि अनर्थक शब्द मुझ को कह कह कर प्यार करती हो १३॥

मातोवाच॥

मू० नत्वाहमुपकारार्थं वत्स प्रीत्या परिष्वजे।
नचेदेतद्भवत्प्रीत्यै परित्यक्तास्म्यहं त्वया १४॥

टी०। यह बात लड़के की सुनकर मा बोली कि हे वत्स! मैं अपने उपकार के वास्ते तुम्हारा प्यार नहीं करती हूँ यदि यह तुम्हारी प्रीतिके लिये नहीं है तो तुमने मुझ को छोड़ दिया १४॥

मू० स्वार्थो मया परित्यक्तो यस्त्वत्तो मे भविष्यति।
इत्युक्त्वा सा तमुत्सृज्य निष्क्रान्ता सूतिकागृहात् १५॥

टी०। और जो मेरा उपकार तुम से होगा उस अपने स्वार्थ को मैंने छोड़ दिया इतनी बात कहकर वह मा उस लड़के को छोड़कर सूतिका-गृह से निकल गई १५॥

मू० जडाङ्गबाह्यकरणं शुद्धान्तःकरणात्मकम्।
जहार तं परित्यक्तं सा तदा जातहारिणी १६॥

टी०। जब मा उसकी उस को छोड़कर सौर से निकल गई तब उस शुद्धात्मा अज्ञान जड़वत् अङ्ग व बाह्य इन्द्रियवाले लड़केको वह जातहा-रिणी उठाकर लेगई १६॥

मू० सा हत्वा तं तदा बालं विक्रान्तस्य महीभृतः।
प्रसूतं पत्नीशयने न्यस्य तस्याददे सुतम् १७॥

टी०। और वहांसे उस बालकको लेजाकर उसवक्त राजा विक्रान्तकी स्त्री की शय्या पर रख दिया और उसके बदले उत्पन्न हुये उस राजाके लड़के को उठा ले गई १७॥

मू० तमप्यन्यगृहे नीत्वा गृहीत्वा तस्य चात्मजम्।
तृतीयं भक्षयामास सा क्रमाज्जातहारिणी १८॥

टी०। उसको भी दूसरे के घर में रखकर और उस घरवाले के ल-ड़के को उठा ले जाकर वह जातहारिणी क्रम से तीसरेको खा गई १८॥

मू० हत्वा हत्वा तृतीयन्तु भक्षयत्यतिनिर्घृणा।
करोत्यनुदिनं सा तु परिवर्त्तं तथान्ययोः १९॥

टी०। इसीतरह अतिनिर्दयी जातहारिणी हररोज़ ले लेकर एक के बालकको दूसरेके घर और दूसरेके बालकको तीसरेके घर रखकर दो लड़कों को बदलती है व उस तीसरे बालकको खाजाया करती है १९ ॥

मू० विक्रान्तोऽपि ततस्तस्य सुतस्यैव महीपतिः।
कारयामास संस्कारान् राजन्यस्य भवन्ति ये २० ॥

टी०। इस के उपरान्त विक्रान्त महाराज ने भी उस लड़के का संस्कार जो क्षत्रियों के वास्ते होना चाहिये उन्हें करवाया २० ॥

मू० आनन्देति च नामास्य पिता चक्रे विधानतः।
मुदा परमया युक्तो विक्रान्तः स नराधिपः २१ ॥

टी०। और वह विक्रान्त राजा उसका पिता बड़े उत्साह के साथ विधिपूर्वक उस लड़के का नाम आनन्द ऐसा रक्खा २१ ॥

मू० कृतोपनयनं तन्तु गुरुराह कुमारकम्।
जनन्याः प्रागुपस्थानं क्रियताञ्चाभिवादनम् २२ ॥

टी०। और कुछ दिन व्यतीत होने पर गुरु ने उसका उपनयन अर्थात् जनेऊ किया और उससे कहा कि हे कुमार! पहिले अपनी माता को प्रणाम करके उनकी स्तुति करो २२ ॥

मू० सगुरोस्तद्वचः श्रुत्वा विहस्यैवमथाब्रवीत्।
वन्द्या मे कतमा माता जननी पालनी नु किम् २३ ॥

टी०। यह बात गुरु की सुनकर वह लड़का हँसकर यह कहने लगा कि मुझे किस माताका प्रणाम करना चाहिये क्या पालनेवाली माता की स्तुति करूँ या जिसके उदर से पैदा हुआ हूं उसकी स्तुतिकरूं २३॥

गुरुरुवाच ॥

मू० नत्वियं ते महाभाग जनित्री जारुजात्मजा।
विक्रान्तस्याग्रमहिषी हैमिनी नाम नामतः २४ ॥

टी०। गुरु बोले कि हे महाभाग! महाराज विक्रान्त की रानियों में जो सब से श्रेष्ठ व जिसका हैमिनी नाम है यह जारुज की कन्या क्या तुमको पैदा करनेवाली नहीं है २४ ॥

आनन्द उवाच ॥

मू० इयं जनित्री चैत्रस्य विशालग्रामवासिनः ।
विप्राग्र्यबोधपुत्रस्य योऽस्यां जातोऽन्यतो वयम् २५ ॥

टी० । यह बात गुरू से सुनकर आनन्द बोला कि यह हैमिनी विशाल नगर के रहनेवाले चैत्र की माता है और उस चैत्र का पिता बोध नाम उत्तम ब्राह्मण कहलाते हैं और मेरी माता दूसरी है २५ ॥

गुरुरुवाच ॥

मू० कुतस्त्वं कथयानन्द चैत्रःको वा त्वयोच्यते ।
संकटं महदाभाति क्वजातोऽत्रब्रवीषि किम् २६ ॥

टी० । गुरू बोले कि हे आनन्द ! यह क्या कहते हो तुम कहांसे प्राप्त हुयेहो और तुम से वह चैत्र कौन कहा जाता है और तुम कहां उत्पन्न हुये हो सो कहो मुझको इस बात का बड़ा संकट है २६ ॥

आनन्द उवाच ॥

मू० जातोऽहमनमित्रस्यक्षत्रियस्य गृहेद्विज ।
तत्पत्न्यां गिरिभद्रायामाददेजातहारिणी २७ ॥

टी० । आनन्द बोला कि हे विप्रजी ! मैं महाराज चाक्षुष पृथ्वीपति के घर में गिरिभद्रानाम उनकी स्त्री के गर्भ से पैदा हुआहूँ मुझ को जातहारिणी उठालाई है २७ ॥

मू० तयात्र मुक्तो हैमिन्या गृहीत्वा च सुतश्च सा ।
बोधस्यद्विजमुख्यस्य गृहे नीतवती पुनः २८ ॥

टी० । और इस हैमिनीरानी की शय्यापर मुझ को रखदिया और फिर हैमिनी के पुत्र को उठाले जाकर उस बोध मुख्य ब्राह्मण के घरमें रखदिया २८ ॥

मू० भक्षयामास च सुतं तस्य बोधद्विजन्मनः ।
स तत्र द्विजसंस्कारैः संस्कृतो हैमिनीसुतः २९ ॥

टी० । और बोध ब्राह्मण के लड़के को वह जातहारिणी भक्षण करगई है और इस हैमिनी के पुत्र को उस बोध ब्राह्मणने वहां ब्राह्मण का संस्कार करके रक्खा है २९ ॥

मू० वयमत्र महाभाग संस्कृतागुरुणा त्वया।
मयातव वचः कार्य्यमुपैमि कतमां गुरो ३०

टी०। और हे महाभाग, गुरो! मुझको यहां पर आपने गुरू होकर संस्कार किया है इसवास्ते आपका वचन मुझको अवश्य मानना चाहिये जिसको आप कहैं उसी को मैं मातासमझकर स्तुति करूँ ३० ॥

गुरुरुवाच ॥

मू० अतीवगहनं वत्स संकटं महदागतम्।
नवेद्मि किञ्चिन्मोहेन भ्रमन्तीवहि बुद्धयः ३१ ॥

टी०। गुरूने कहा कि हे वत्स! यह बात तुम से सुनकर मुझको बड़ा भारी संकट हुआ मोह से इसवक्त कुछ मुझको जान नहीं पड़ता मेरी बुद्धि भ्रमती सीहै ३१ ॥

आनन्द उवाच ॥

मू० मोहस्यावसरःकोऽत्र जगत्येवं व्यवस्थिते।
कःकस्य पुत्रो विप्रर्षे को वा कस्यनु बान्धवः ३२ ॥

टी०। आनन्द ने कहा कि संसार का यही लेखा है इसमें मोह होने की कौन सी बात है विचार करके देखिये तो न कोई किसी का बेटा है और न कोई किसीका भाई बन्धु है ३२ ॥

मू० आरभ्य जन्मनोनृणां सम्बन्धित्वमुपैति यः।
अन्ये सम्बन्धिनो विप्र मृत्युना संनिवर्त्तिताः ३३ ॥

टी०। हे द्विज! मनुष्यों के जन्म से लगाकर जो मृत्युसम्बन्धताको प्राप्तहोती है उसी मृत्युसे अन्य सम्बन्धी निवृत्त करदिये जाते हैं ३३ ॥

मू० अत्रापि जातस्य सतः सम्बन्धो योऽस्य बान्धवैः।
सोऽप्यस्तमन्ते देहस्य प्रयात्येषोऽखिलक्रमः ३४ ॥

टी०। और यहां भी पैदाहुए पुरुष का जिन भाइयों के साथ नाता रिश्ता होताहै मरने पर वह भी सब छूट जाताहै यही सबोंका क्रमहै ३४ ॥

मू० अतो ब्रवीमि संसारे वसतः को न बान्धवः।
को वापि सततं बन्धुः किं वो विभ्राम्यते मतिः ३५ ॥

टी० । इस वास्ते मैं कहताहूं कि संसारमें बसतेहुए प्राणी का कौन सदैव भाई है और कौन नहीं है आप की बुद्धि क्यों भ्रम में पड़ी है ३५ ॥

मू० पितृद्वयं मया प्राप्तमस्मिन्नेव हि जन्मनि ।
मातृद्वयञ्च किं चित्रं यदन्यदेहसम्भवे ३६ ॥

टी० । देखिये इसी जन्म में मुझको दो माता और दो पिता मिले तो इसमें आश्चर्य्य की कौनसी बातहै जो अन्य शरीरकी पैदायशमें होवै ३६ ॥

मू० सोऽहं तपः करिष्यामि त्वया योह्यस्य भूपतेः ।
विशालग्रामतः पुत्रश्चैत्र आनीयतामिह ३७ ॥

टी० । सो मैं तपस्या करूँगा आप विशाल नगरसे इस महाराज विक्रम के चैत्रनाम पुत्रको यहां मँगवा लीजिये ३७ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० ततः स विस्मितो राजा सभार्य्यः सह बन्धुभिः ।
तस्मान्निवर्त्य ममतामनुमेने वनाय तम् ३८ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि ! आनन्द की यह बात सुनकर उसके बाद राजा और रानी और उनके सब भाई बन्धु बड़े आश्चर्यमें हुये और अपनी प्रीति उस से तोड़कर तपस्या करने के वास्ते वन में जाने की आज्ञा देदिया ३८ ॥

मू० चैत्रमानीय तनयं राज्ययोग्यं चकार सः ।
सम्मान्यब्राह्मणंयेन पुत्रबुद्ध्या सपालितः ३९ ॥

टी० । बाद इसके राजा विक्रान्त ने विशाल नगर से चैत्रनाम अपने पुत्रको लाकर अपनी गद्दी का मालिक किया और जिस ब्राह्मण ने पुत्र बुद्धिसे उसे पाला था उस ब्राह्मण का सम्मान करके लाया था ३९ ॥

मू० सोऽप्यानन्दस्तपस्तेपे बाल एव महावने ।
कर्म्मणां क्षपणार्थाय विमुक्तेःपरिपन्थिनाम् ४० ॥

टी० । और वह आनन्द भी बड़े जंगल में जाकर लड़कपन ही में उन कर्म्मों के नाश होने के वास्ते तपस्या करनेलगा जो कर्म्म कि मुक्ति के शत्रु हैं ४० ॥

मू० तपस्यन्तं ततस्तञ्च प्राह देवः प्रजापतिः।
किमर्थं तप्यसे वत्स तपस्तीव्रंवदस्वतत् ४१ ॥

टी०। तब उस बालक की तपस्या देखकर देवता ब्रह्माजी वहां आये और उस से कहा कि हे वत्स! तू किसवास्ते ऐसी कठिन तपस्या करताहै उसको कहु ४१ ॥

आनन्द उवाच ॥

मू० आत्मनः शुद्धिकामोऽहं करोमि भगवंस्तपः।
बन्धाय मम कर्म्माणि यानि तत्क्षपणोन्मुखः ४२ ॥

टी०। आनन्द ने कहा कि हे भगवन्! आत्मा शुद्ध होने के वास्ते और संसारमें फँसानेवाले जो कर्म हैं उन के नाशहोने के वास्ते मैं यह तपस्या करताहूँ ४२ ॥

ब्रह्मोवाच ॥

मू० क्षीणाधिकारो भवति मुक्तियोग्यो न कर्म्मवान्।
सत्त्वाधिकारवान् मुक्तिमवाप्स्यति ततो भवान् ४३ ॥

टी०। यह सुनकर ब्रह्माने कहा कि जिसका कर्म्म क्षय होजाताहै वही मुक्ति के योग्यहोताहै कर्म्मवाले की मुक्ति नहीं होती इसवास्ते तुम कर्म्मोंकी क्षय करके सत्त्वाधिकारी होजावो तो मुक्ति पावोगे ४३ ॥

मू० भवता मनुना भाव्यं षष्ठेन व्रज तत्कुरु।
अलन्ते तपसा तस्मिन् कृते मुक्तिमवाप्स्यसि ४४ ॥

टी०। तुम यहां से जाकर छठें मनु होजावो जो मैं कहताहूं वही करो उसके करने पर तुम को विना परिश्रम ही मुक्ति प्राप्तहोगी वृथा तपस्या क्यों करते हो ४४ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० इत्युक्तो ब्रह्मणा सोऽपि तथेत्युक्त्वा महामतिः।
तत्कर्म्माभिमुखो यातस्तपसो विरराम ह ४५ ॥

टी०। मार्कण्डेय जी कहते हैं कि यह बात ब्रह्माकी सुनकर उस महामति आनन्द ने भी कहा कि बहुत अच्छा ऐसाही करूँगा फिर तपस्या छोड़कर ब्रह्माके कहे हुये कामों में प्रवृत्त हुआ ४५ ॥

मू० चाक्षुषेत्याह तं ब्रह्मा तपसो विनिवर्त्तयन् ।
पूर्वं नाम्ना बभूवाथ प्रख्यातश्चाक्षुषो मनुः ४६ ॥

टी० । ब्रह्माजी ने उनको तपस्या से रोककर चाक्षुष नाम उन का रखदिया इसी से वे चाक्षुष मनु कहलाये ४६ ॥

मू० उपयेमे विदर्भांसं सुतामुग्रस्य भूभृतः ।
तस्याञ्चोत्पादयामास पुत्रान् प्रख्यातविक्रमान् ४७ ॥

टी० । और उग्र नाम राजा की कन्या विदर्भा नामसे उस चाक्षुषने अपना विवाह किया और उसी से बड़े बड़े पराक्रमी पुत्रोंको चाक्षुष ने उत्पन्न किया ४७ ॥

मू० तस्य मन्वन्तरेशस्य येऽन्तरत्रिदशाद्विज ।
येचर्षयस्तथैवेन्द्रोयेसुताश्चास्यताञ्छृणु ४८ ॥

टी० । हे विप्रजी ! उस चाक्षुष मन्वन्तर में जो देवता और ऋषि और इन्द्र और जो जो पुत्र इस मनु के हुये उनको सुनो ४८ ॥

मू० आर्य्यानामसुरास्तत्र तेषामेकोऽष्टकोगणः ।
प्रख्यातकर्म्मणां विप्र यज्ञेहव्यभुजामयम् ४९ ॥

टी० । हे विप्र ! उस मन्वन्तरमें जो देवतालोग हुये वे आर्य्य नाम से प्रसिद्ध थे और वे आठदेवता एक गण कहलाते थे प्रसिद्ध कर्मोंवाले व यज्ञ में हव्य भोजन करनेवालों का यह गण था ४९ ॥

मू० प्रख्यातबलवीर्य्याणां प्रभामण्डलदुर्दृशाम् ।
द्वितीयश्च प्रसूताख्यो देवानामष्टकोगणः ५० ॥

टी० । और बड़े प्रसिद्ध बल वीर्य्यवाले और प्रभा मण्डल के सबबसे नेत्रों से क्लेश करके देखजाते थे ऐसे प्रसूतनाम वाले दूसरे देवतों का भी अष्टक गणहुआ ५० ॥

मू० तथैवाष्टक एवान्यो भव्याख्यो देवतागणः ।
चतुर्थश्च गणस्तत्र यूथगाख्यस्तथाष्टकः ५१ ॥

टी० । वैसेही भव्य नाम करके तीसरा अष्टक देवता गण था और चौथा यूथग नाम भी उस मन्वन्तर में अष्टकगणहुआ ५१ ॥

मू० लेखसञ्ज्ञास्तथैवान्ये तत्र मन्वन्तरे द्विज।
पञ्चमे च गणे देवास्तत्सञ्ज्ञाह्यमृताशिनः ५२॥

टी०। उसीतरह हे ब्रह्मन्! उसमन्वन्तरमें पांचवें गण में लेख नाम देवता हुये व उस संज्ञावाले देवता लोग अमृत के खानेवाले हुये ५२॥

मू० शतं क्रतूनामाहृत्य यस्तेषामधिपोऽभवत्।
मनोजवस्तथैवेन्द्रः सख्यातो यज्ञभागभुक् ५३॥

टी०। और इस मन्वन्तर में सौ यज्ञ करके देवतों के मालिक वे मनोजव नाम इन्द्र हुये जो यज्ञभाग के भोक्ता कहलाये ५३॥

मू० सुवेधा विरजाश्चैव हविष्मानुन्नतोमधुः।
अतिनामा सहिष्णुश्च सप्तासन्निति चर्षयः ५४॥

टी०। और सुमेधा और विरजा और हविष्मान् और उन्नत और मधु और अतिनामा और सहिष्णु ये लोग उस मन्वन्तर में सप्तऋषि कहलाते थे ५४॥

मू० उरूपुरुशतद्युम्नप्रमुखाः सुमहाबलाः।
चाक्षुषस्य मनोःपुत्राः पृथिवीपतयोऽभवन् ५५॥

टी०। और उरू और पुरु और शतद्युम्न इत्यादि उस चाक्षुष मनु के पुत्र हुये जो महाबली राजा हुये हैं ५५॥

मू० एतत्ते कथितं षष्ठं मया मन्वन्तरं द्विज ५६॥
चाक्षुषस्य तथा जन्म चरितञ्च महात्मनः।

टी०। हे ब्रह्मन्! यह छठा मन्वन्तर तो मैंने आपको कह सुनाया और उसके साथ चाक्षुष महात्माके जन्मका चरित्रभी आपसे कहदिया ५६॥

मू० साम्प्रतं वर्त्तते योऽयं नाम्नावैवस्वतोमनुः।
सप्तमीयेऽन्तरे तस्य देवाद्यास्ताञ्छृणुष्वमे ५७॥

टी०। अब सातवें मनु वैवस्वत नाम जो इस समय वर्त्तमानहैं उनका हाल और जो जो देवता लोग उनके सातवें मन्वन्तर में हैं उन सबको कहताहूं मुझसे सुनो ५७॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेचाक्षुषमन्वन्तरेषट्सप्ततितमोऽध्यायः ७६॥

अथ सतहत्तरवां अध्याय॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० मार्त्तण्डस्य रवेर्भार्य्या तनया विश्वकर्म्मणः।
सञ्ज्ञा नाम महाभागा तस्यां भानुरजीजनत् १॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि! विश्वकर्म्मा की कन्या संज्ञा नाम महाभाग्यवती मार्त्तण्ड नाम सूर्य्य की स्त्री थी उससे सूर्य्य भगवान् ने पुत्र उत्पन्न किया १॥

मू० मनुं प्रख्यातयशसमनेकज्ञानपारगम्।
विवस्वतः सुतो यस्मात्तस्माद्वैवस्वतस्तु सः २॥

टी०। वह पुत्र अनेकप्रकारके ज्ञानमें प्रवीणहुआ व उसका यश बहुत विख्यात हुआ और मनुहुआ जिसलिये विवस्वत के पुत्र थे इस सबबसे उनका नाम वैवस्वत मनु हुआ २॥

मू० सञ्ज्ञाच रविणा दृष्टा निमीलयति लोचने।
यतस्ततः स रोषोऽर्कः सञ्ज्ञां निष्ठुरमब्रवीत् ३॥

टी०। जब सूर्य्य भगवान् संज्ञा को देखते थे तब संज्ञा इनके तेजको देखकर जिसलिये अपनी आँखें बन्दकरलेतीथी इससबबसे एक दिन यह देखकर सूर्य्य भगवान् बड़े क्रोधसे निठुरवाणीसंयुक्त संज्ञासे कहनेलगे ३॥

मू० मयि दृष्टे सदा यस्मात् कुरुषे नेत्रसय्यँमम् ।
तस्माज्जनिष्यसे मूढे प्रजासंयमनं यमम् ४॥

टी०। कि हे मूढे! जो कि तू मुझको देखकर अपनी आँखें बन्दकर लेती है इससे प्रजाओं को दण्ड देनेवाला यमनामपुत्र तेरेपैदा होगा ४॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० ततः सा चपलां दृष्टिं देवीचक्रे भयाकुला।
विलोलितदृशं दृष्ट्वा पुनराह च तां रविः ५॥

टी०। इतनी बात सूर्य्यभगवान् की सुनकर मारे डर के सञ्ज्ञा के

नेत्र चञ्चल होगये तब सूर्य्य भगवान् सञ्ज्ञा के चञ्चल नेत्र देख कर फिर उससे बोले ५॥

मू० यस्माद्विलोलिताद्दृष्टिर्मयि दृष्टे त्वयाधुना।
तस्माद्विलोलां तनयां नदीं त्वं प्रसविष्यसि ६॥

टी०। जो कि तू इस समय मुझको देखकर अपने नेत्र चञ्चल करके ताकती है इस लिये मैं कहता हूँ कि तेरे एक कन्या चञ्चला अर्थात् हर समय चञ्चलस्वभाववाली नदीरूप होकर पैदा होगी ६॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० ततस्तस्यान्तु सञ्जज्ञे भर्तृशापेन तेन वै।
यमश्चयमुना चेयं प्रख्याता सुमहानदी ७॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि! कुछ काल बीतनें पर स्वामी के शाप देने से सञ्ज्ञा के यम नाम पुत्र पैदा हुआ और यमुना नाम कन्या हुई जो महानदी कहलाती है ७॥

मू० सापि सञ्ज्ञा रवेस्तेजः सेहे दुःखेन भामिनी।
असहन्ती च सा तेजश्चिन्तयामास वै तदा ८॥

टी०। वह संज्ञा स्त्री भी सूर्य्यका तेज बड़े दुःख से सहती थी आखिर को जब तेजका दुःख न सहागया तब चिन्ता करनेलगी ८॥

मू० किं करोमि क्व गच्छामि क्व गताया्श्च निर्वृतिः।
भवेन्मम कथं भर्त्ता कोपमर्कश्च नैष्यति ९॥

टी०। कि क्या करूं कहां जाऊं कि जहां मुझे सुखहो और किस तरह मेरेस्वामी सूर्य्य भगवान् मुझपर प्रसन्न हों ९॥

मू० इति सञ्चिन्त्य बहुधा प्रजापतिसुता तदा।
बहु मेने महाभागा पितृसंश्रयमेव सा १०॥

टी०। इसी तरह वह महाभाग्यवती संज्ञा बहुत तरहसे चिन्ता करके उस वक्त अपने बापकी शरणमें जाना बहुत अच्छा समझ कर १०॥

मू० ततः पितृगृहे गन्तुं कृतबुद्धिर्यशस्विनी।
छायामयीमात्मतनुं निर्म्ममे दयितांरवेः ११॥

टी०। उसके बाद पिताके घर जाने को मना किये हुई कीर्त्तिमती सूर्य की स्त्रीने अपने शरीरकी छायाको अपने शरीर के समान बनाकर सूर्य भगवान् के सन्तोष के वास्ते अपनी जगह पर स्थापित किया ११ ॥

मू० ताञ्चोवाच त्वया वेश्मन्यत्र भानोर्यथा मया।
तथा सम्यगपत्येषु वर्त्तितव्यं यथा रवौ १२ ॥

टी०। और उस छायासे कहदिया कि जिस तरह मैं यहां रहती हूँ उसीतरह तुमभी यहां सूर्यके घरमें रहकर अच्छी तरहसे इस मेरे पुत्र और कन्या की पालना करना व सूर्यमें मेरेही समान वर्तमान रहना १२ ॥

मू० पृष्टयापि न वाच्यन्ते तथैतद्गमनं मम।
सैवास्मि नाम सञ्ज्ञेति वाच्यमेतत्सदा वचः १३ ॥

टी०। और जब तुमसे सूर्य्यभगवान् किसी तरह पूंछैं तो भी मेरा यह जाना कदाचित् न बताना किन्तु हर तरहसे यही वचन कहना कि मैं वही हूं संज्ञा ऐसा मेरा नाम है १३ ॥

छायासञ्ज्ञोवाच ॥

मू० आकेशग्रहणाद्देवि आशापाञ्च वचस्तव।
करिष्ये कथयिष्यामि वृत्तन्तु शापकर्षणात् १४ ॥

टी०। यह सब बातैं उस संज्ञासे सुनकर वह छायारूपी संज्ञा बोली कि हे देवि! जब तक सूर्य्य भगवान् मेरे केश न पकड़ैंगे और शाप न देंगे तबतक मैं तुम्हारेही कहनेपर चलूंगी और जब कभी मेरी चोटी पकड़कर मुझे मारने या शापदेने पर प्रवृत्त होंगे तब मैं सब हाल कह दूंगी १४ ॥

मू० इत्युक्त्वा सा तदा देवी जगाम भवनं पितुः।
ददर्श तत्र त्वष्टारं तपसा धूतकल्मषम् १५ ॥

टी०। उस समय संज्ञा अपनी छायाको इस तरह सब बात समझा बुझाके पिताके घरको चलीगई और वहां जाकर तपस्या से नष्टपापोंवाले अपने पिता त्वष्टाको देखा १५ ॥

मू० बहुमानाच्च तेनापि पूजिता विश्वकर्म्मणा।
तस्थौ पितृगृहे सा तु किञ्चित्कालमनिन्दिता १६ ॥

टी०। और संज्ञाके पिता विश्वकर्म्मा ने भी उसको देखकर बड़े आ-

दरभाव से पूजकर अपने घरमें रक्खा और वह प्रशंसा करने योग्य संज्ञा भी अपने पिताके घर कुछ समय तक रही १६ ॥

मू० ततस्तां प्राह चार्वङ्गीं पिता नातिचिरोषिताम्।
स्तुत्वा च तनयां प्रेमबहुमानपुरःसरम् १७ ॥

टी०। कुछ दिनों के बाद उत्तम अंगोंवाली संज्ञा कन्या से विश्वकर्मा पिता बड़े प्रेमसे स्तुति करके बड़े आदरपूर्वक कहने लगे १७ ॥

मू० त्वान्तु मे पश्यतो वत्से दिनानि सुबहून्यपि।
मुहूर्त्तार्द्धसमानि स्युः किन्तु धर्म्मो विलुप्यते १८ ॥

टी०। कि हे पुत्रि ! तुझे देखने से मुझको ऐसा आनन्द होता है कि बहुत दिनभी एकक्षणके समान जानपड़तेहैं परन्तु धर्म्म छूटाजाता है १८

मू० बान्धवेषु चिरं वासो नारीणां न यशस्करः।
मनोरथो बान्धवानां नार्य्या भर्तृगृहे स्थितिः १९ ॥

टी०। क्योंकि स्त्रियोंको बहुत दिन तक भाइयों के घर रहने से यश नहीं मिलताहै किन्तु गिल्ला गुजारी होतीहै और माता पिता भाई बंधु को यही कांक्षा रखना चाहिये कि स्त्री अपने पतिके घर रहै १६ ॥

मू० सा त्वं त्रैलोक्यनाथेन भर्त्रा सूर्य्येण सङ्गता।
पितृगेहे चिरं कालं वस्तुं नार्हसि पुत्रिके २० ॥

टी०। हे पुत्रि ! तेरे पति श्रीसूर्य्यभगवान् तीनों लोकके स्वामी हैं इससे तुम जाकर उन्हीं के साथ रहो मेरे घर तुमको बहुत दिनों तक रहना उचित नहीं है २० ॥

मू० सा त्वं भर्तृगृहे गच्छ तुष्टोऽहं पूजितासि मे।
पुनरागमनं कार्य्यं दर्शनाय शुभे मम २१ ॥

टी०। हे शुभे ! अब सो तुम अपने स्वामी के घर जाव मैंने प्रसन्न होकर तुमको भूषण वसन देकर पूजन क्रिया है फिर जब कभी तुम्हारा चित्त उदासहो तब निस्सन्देह यहां आकर मुझको दर्शन देजाना २१ ॥

मू० इत्युक्त्वा सा तदा पित्रा तथेत्युक्त्वा च सा मुने।
संपूजयित्वा पितरं जगामाथोत्तरान् कुरून् २२ ॥

टी०। मार्कण्डेय जी कहते हैं कि हे मुनि ! इस तरह पिताके कहने से संज्ञाने बहुत अच्छा कहकर उस वक्त पिता का पूजन किया और वहां से चलकर उत्तर दिशावाले कुरुदेशों में चलीगई २२॥

मू० सूर्य्यतापमनिच्छन्ती तेजसस्तस्य बिभ्यती।
तपश्चचार तत्रापि वडवारूपधारिणी २३॥

टी०। सूर्यकी तापको न चाहतीहुई संज्ञा सूर्य्य के तेजके डर से वडवा अर्थात् घोड़ीका रूप धारण करके वहां भी तप करनेलगी २३॥

मू० संज्ञेयमिति मन्वानो द्वितीयायामहस्पतिः।
जनयामास तनयौ कन्यां चैकां मनोरमाम् २४॥

टी०। और वहां सूर्य्यभगवान् उस छायाको संज्ञा अर्थात् अपनी स्त्री जानकर विहार करते रहे आखिर को उसी छायासे सूर्य्यभगवान् के दो लड़के और एक मनोरमा नाम लड़की पैदाहुई २४॥

मू० छायासंज्ञा त्वपत्येषु यथास्वेष्वतिवत्सला।
तथा न संज्ञाकन्यायां पुत्रयोश्चान्ववर्त्तत २५॥

टी०। परन्तु वह छायारूपी संज्ञा जैसा बहुत प्रेम अपने लड़कों के साथ रखती थी वैसा प्रेम असली संज्ञाके दोनों लड़कों व कन्याके साथ नहीं रखती थी २५॥

मू० लालनाद्युपभोगेषु विशेषमनुवासरम्।
मनुस्तत्क्षान्तवानस्या यमस्तस्या न चक्षमे २६॥

टी०। नित्य नित्य खाने पीने और भूषण वस्त्रआदिकसे जितना अपने लड़कों को मानती थी वैसा संज्ञाके लड़कोंको नहीं मानतीथी उसकी यह बात देखकर वैवस्वत मनुने तो क्षमाकिया परन्तु यमसे न रहागया २६॥

मू० ताडनाय च वै कोपात्पादस्तेन समुद्यतः।
तस्याः पुनः क्षान्तिमता न तु देहे निपातितः २७॥

टी०। तब उसने मारे क्रोधके संज्ञाको लात मारने के वास्ते उठाया परन्तु क्षमावान् यमराजने फिर देह में नहीं मारा २७॥

मू० ततः शशाप तं कोपाच्छायासंज्ञा यमं द्विज।
किञ्चित्प्रस्फुरमाणौष्ठी विचलत्पाणिपल्लवा २८॥

टी० । हे ब्रह्मन् ! तब वह छायारूपी संज्ञा कोपकरके यमको शापदेने के वास्ते कुछ ओंठ कँपाकर और दोनों हाथ चलाकर बोली २८ ॥

मू० पितुः पत्नीममर्य्यादं यन्मां तर्जयसे पदा ।
भुवि तस्मादयं पादस्तवाद्यैव पतिष्यति २९ ॥

टी० । कि मैं तुम्हारे पिताकी स्त्रीहूं जो तुम बे मर्य्याद से मुझे लात से डरवाते हो तो मैं शाप देती हूँ कि यह तुम्हारा पांव इसी वक्त जमीन पर गिरपड़ै २९ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० इत्याकर्ण्य यमः शापं मात्रा दत्तं भयातुरः ।
अभ्येत्य पितरं प्राह प्रणिपातपुरःसरम् ३० ॥

टी० मार्कण्डेयजी कहतेहैं कि हे क्रौष्टुकि ! इस तरह माका शापदेना सुनकर यम डरसे घबराकर पिताके आगे जाकर प्रणाम करके बोले ३०॥

यम उवाच ॥

मू० तातैतन्महदाश्चर्य्यं न दृष्टमिति केनचित् ।
माता वात्सल्यमुत्सृज्य शापं पुत्रे प्रयच्छति ३१ ॥

टी० । यमराज बोले कि हे तात ! यह बड़ा आश्चर्य कभी किसीने न देखाहोगा कि माता प्यारको छोड़कर अपने अबोध बालकको शापदे ३१

मू० यथामनुर्ममाचष्टे नेयं माता तथा मम ।
विगुणेष्वपि पुत्रेषु न माता विगुणा भवेत् ३२ ॥

टी० । जैसा मनुने मुझसे पहिले कहाथा कि यह मा नहीं है सो यह बात मुझे सच मालूम होतीहै क्योंकि लड़का अगर नालायक भी हो तो मा अपनी लायकी बेटेके साथ नहीं छोड़ती है ३२ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० यमस्यैतद्वचः श्रुत्वा भगवांस्तिमिरापहः ।
छायासंज्ञां समाहूय पप्रच्छ क्व गतेति सा ३३ ॥

टी० । मार्कण्डेय जी कहते हैं कि यह बात यमकी सुनकर सूर्य्यभगवान्ने छायासंज्ञाको बुलाकर पूंछा कि वह संज्ञा कहांगई ३३ ॥

मू० सा चाह तनया त्वष्टुरहं संज्ञा विभावसो।
पत्नी तव त्वयापत्यान्येतानि जनितानि मे ३४॥

टी०। तब वह बोली कि हे विभावसु ! मैं विश्वकर्मा की कन्याहूँ संज्ञा मेराही नामहै आपकी स्त्री हूँ और ये सब मेरे लड़के तुम्हींसे पैदाहैं ३४॥

मू० इत्थं विवस्वतः सा तु बहुशः पृच्छतो यदा।
नाचचक्षे ततः क्रुद्धो भास्वांस्तां शप्तुमुद्यतः ३५॥

टी०। यद्यपि सूर्यभगवान् ने ऐसेही बहुत तरहसे उससे पूंछा परन्तु उसने संज्ञाका कुछ भेद न बतलाया उसके बाद सूर्य्यभगवान् क्रोधित होकर उसको शाप देने पर उपस्थित हुये ३५॥

मू० ततः सा कथयामास यथा वृत्तं विवस्वतः।
विदितार्थश्च भगवाञ्जगाम त्वष्टुरालयम् ३६॥

टी०। तब छायाने संज्ञाका विश्वकर्मा के घरजाने का हाल सब सूर्य से कह सुनाया यह जानकर सूर्य्यभगवान् विश्वकर्मा के घर गये ३६॥

मू० ततः स पूजयामास तदा त्रैलोक्यपूजितम्।
भास्वन्तं परया भक्त्या निजगेहमुपागतम् ३७॥

टी०। इनके वहां जानेपर उस वक्त विश्वकर्मा ने बड़ी भक्तिसे अपने घरमें आयेहुये सूर्य्यभगवान्का पूजनकिया जोकि त्रिलोकसे पूजितहैं ३७॥

मू० संज्ञा पृष्टस्तदा तस्मै कथयामास विश्वकृत्।
आगतैवेह मे वेश्म भवतः प्रेषितेति वै ३८॥

टी०। फिर सूर्य्यभगवान् ने विश्वकर्म्मा से पूंछा कि यहां संज्ञा आई है विश्वकर्म्मा ने उनसे यह कहा कि हां यहां मेरे घर आईथी परन्तु मैंने उसको फिर आपके घर भेजदिया ३८॥

मू० दिवाकरः समाधिस्थो वडवारूपधारिणीम्।
तपश्चरन्तीं ददृशे उत्तरेषु कुरुष्वथ ३९॥

टी०। यह बात सुनकर इसके बाद सूर्य्यभगवान्ने ध्यान् करके देखा तो संज्ञाको घोड़ीकी सूरतमें उत्तरदिशा कुरुदेश में तप करते पाया ३९॥

मू० सौम्यमूर्त्तिः शुभाकारो मम भर्त्ता भवेदिति।

अभिसन्धिश्च तपसो बुबुधेऽस्या दिवाकरः ४० ॥

टी०। और उसकी तपस्या में उन सूर्यनारायण को यह अभिलाषा भी देखपड़ी कि मेरे स्वामी सुन्दर शरीर और शान्तमूर्ति होजावें ४० ॥

मू० शातनं तेजसो मेऽद्य क्रियतामिति भास्करः।
तं चाह विश्वकर्म्माणं संज्ञायाः पितरं द्विज ४१ ॥

टी०। यह सब बात ध्यानसे समझकर सूर्य्य ने संज्ञाके पिता विश्वकर्म्मा से यह कहा कि हे ब्रह्मन्! मेरे शरीरका तेज आज घटादीजिये ४१ ॥

मू० संवत्सरभ्रमेस्तस्य विश्वकर्म्मा रवेस्ततः।
तेजसः शातनं चक्रे स्तूयमानश्च दैवतैः ४२ ॥

टी०। यह सुनकर उसके बाद विश्वकर्म्मा ने संवत्सर चक्रवाले उन सूर्य्यके तेजको अपनी तपस्याके बलसे घटादिया उस समय देवतालोग स्तुति करनेलगे ४२ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेवैवस्वतमन्वन्तरेसप्तसप्ततितमोध्यायः ॥७७॥

अठहत्तरवां अध्याय ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० ततस्तं तुष्टुवुर्देवास्तथा देवर्षयो रविम्।
वाग्भिरीड्यमशेषस्य त्रैलोक्यस्य समागताः १ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहतेहैं कि हे क्रौष्टुकि! इसके उपरान्त सम्पूर्ण देवता और देवर्षि लोग मिलकर समस्त त्रैलोक्य के स्तुति करने योग्य उन श्री सूर्य्यभगवान् की स्तुति करने लगे १ ॥

देवा ऊचुः ॥

मू० नमस्ते ऋक्स्वरूपाय सामरूपाय ते नमः।
यजुःस्वरूपरूपाय साम्नां धामवते नमः २ ॥

टी०। देवता कहते हैं कि ऋग्वेद और सामवेद और यजुर्वेद के स्वरूप व सामों के तेजवाले जो आपहैं तिनको मैं प्रणाम करता हूं २ ॥

मू० ज्ञानैकधामभूताय निर्धूततमसे नमः।

शुद्धज्योतिस्स्वरूपाय विशुद्धायामलात्मने ३ ॥

टी० । और ज्ञान के एकही स्थानभूत और शुद्धज्योति और पवित्र निर्मलात्मा और अन्धकारनाशक स्वरूप के लिये प्रणाम है ३ ॥

मू० वरिष्ठाय वरेण्याय परस्मै परमात्मने ।
नमोऽखिलजगद्व्यापिस्वरूपायात्ममूर्त्तये ४ ॥

टी० । और वरिष्ठ और वरेण्य और पर और परमात्मा और सम्पूर्ण जगत् के व्यापी स्वरूप और आत्मा मूर्त्ति के लिये प्रणाम है ४ ॥

मू० इदं स्तोत्रवरं रम्यं श्रोतव्यं श्रद्धया नरैः ।
शिष्यो भूत्वा समाधिस्थो दत्त्वा देयं गुरोरपि ५ ॥

टी० । और आपका यह उत्तम सुन्दर स्तोत्र श्रद्धासंयुक्त मनुष्यों को सुनना चाहिये और समाधि में टिककर शिष्य गुरू कोभी दक्षिणा देकर इस स्तोत्र को सुनै ५ ॥

मू० न शून्यभूतैः श्रोतव्यमेतत्तु सफलं भवेत् ।
सर्वकारणभूताय निष्ठायै ज्ञानचेतसाम् ६ ॥

टी० । और शून्य होकर यह स्तोत्र न सुनना चाहिये तो यह स्तोत्र सफल होवे और सब पदार्थों के कारण और ज्ञानियों के चित्त में स्थित होनेवाले के लिये ६ ॥

मू० नमः सूर्य्यस्वरूपाय प्रकाशात्मस्वरूपिणे ।
भास्कराय नमस्तुभ्यं तथा दिनकृते नमः ७ ॥

टी० । और सूर्य्यस्वरूप और प्रकाशात्मास्वरूपी आपके लिये नमस्कार है और भास्कर याने प्रकाश के करनेवाले और दिवाकर याने दिन के करनेवाले को नमस्कार है ७ ॥

मू० शर्व्वरीहेतवे चैव सन्ध्याज्योत्स्नाकृते नमः ।
त्वं सर्व्वमेतद्भगवाञ्जगदुद्भ्रमता त्वया ८ ॥

टी० । और रात आपही से है और संध्याकाल व ज्योत्स्ना यानी उजियाला करनेवाले भी आपही हैं मैं आपको नमस्कार करता हूं और यह सम्पूर्ण जगत् आपही हैं और आपही के भ्रमण करने से ८ ॥

मू० भ्रमत्याविद्धमखिलं ब्रह्माण्डं सचराचरम्।
त्वदंशुभिरिदं स्पृष्टं सर्व्वं संजायते शुचि ९॥

टी०। सम्पूर्ण चराचर के साथ ब्रह्माण्डभी घूमता है और आपही की किरणों के लगने से इस सबको पवित्रता होती है ९॥

मू० क्रियते त्वत्करैस्स्पर्शाज्जलादीनां पवित्रता।
होमदानादिको धर्म्मो नोपकाराय जायते १०॥

टी०। और आपही की किरण पड़ने से जलादि पवित्र होते हैं जब तक आपकी किरणों का स्पर्श इस संसार में न हो तब तक होम और दानादिक धर्म्म फलदायक नहीं होते १०॥

मू० तावद्यावन्न संयोगिजगदेतत्त्वदंशुभिः।
ऋचस्ते सकला ह्येता यजूंष्येतानि चान्यतः ११॥

टी०। और यह सब ऋचा और यजुर्वेद के मन्त्र ११॥

मू० सकलानि च सामानि निपतन्ति त्वदङ्गतः।
ऋग्मयस्त्वं जगन्नाथ त्वमेव च यजुर्मयः १२॥

टी०। और सम्पूर्ण सामवेद के मन्त्र आपके अङ्ग से निकलते हैं और हे जगन्नाथ! आपही ऋग्मय और यजुर्मय हैं १२॥

मू० यतः साममयश्चैव ततो नाथ त्रयीमयः।
त्वमेव ब्रह्मणो रूपं परं चापरमेव च १३॥

टी०।और हे नाथ! जिससे आप साममयहैं इस वास्ते आप त्रयीमय हैं और आप पर और अपर और ब्रह्मके स्वरूप हैं १३॥

मू० मूर्त्तामूर्त्तस्तथा सूक्ष्मः स्थूलरूपस्तथा स्थितः।
निमेषकाष्ठादिमयः कालरूपः क्षयात्मकः।
प्रसीद स्वेच्छया रूपं स्वतेजः शमनं कुरु १४॥

टी०। और मूर्त्त और अमूर्त्त और सूक्ष्म और स्थूलरूप होकर आपही सम्पूर्ण स्थित हैं और निमेष और काष्ठादि कालरूप क्षयात्मक आपही हैं अब आप प्रसन्न हूजिये और अपनीही इच्छासे अपने तेजवाले रूप को शान्त करलीजिये १४॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० एवं संस्तूयमानस्तु देवैर्देवर्षिभिस्तथा।
मुमोच स्वं तदा तेजस्तेजसां राशिरव्ययः १५ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि ! इसतरह देवता और देवर्षियों के स्तुति करने पर उसवक्त उन तेजोराशि अव्यय भगवान् सूर्य ने अपने तेजको शान्त करलिया १५ ॥

मू० यत्तस्य ऋग्मयं तेजो भविता तेन मेदिनी।
यजुर्मयेनापि दिवं स्वर्गः साममयं रवेः १६ ॥

टी०। जो तेज सूर्य्य भगवान् का ऋग्मय था उससे पृथ्वी और यजुर्मय तेज से आकाश और साममय तेज से स्वर्ग उत्पन्न हुआ १६ ॥

मू० शातितास्तेजसो भागा ये त्वष्ट्रा दशपञ्च च।
त्वष्ट्रैव तेन शर्वस्य कृतं शूलं महात्मना १७ ॥

टी०। और जो तेज सूर्य्यभगवान्का पंदरह भाग विश्वकर्म्मा ने निकाल लिया उसी तेज के एक भाग से महात्मा विश्वकर्म्मा ने महादेव का शूल निर्माण किया १७ ॥

मू० चक्रं विष्णोर्वसूनांच शङ्करस्य सुदारुणा।
पावकस्य तथा शक्तिः शिबिका धनदस्य च १८ ॥

टी०। और उन्हीं तेजों में से विष्णुभगवान् का चक्र और वसुगणों की व शिवकी और उसीसे अग्निकी शक्तिऔर कुबेरकी पालकी बनाई १८ ॥

मू० अन्येषां चासुरारीणामस्त्राण्युग्राणि यानि वै।
यक्षविद्याधराणांच तानि चक्रे स विश्वकृत् १९ ॥

टी०। और अन्य अन्य देवता और यक्ष व विद्याधरों के जो उग्र अस्त्र थे उनको भी उसी तेज के भाग से उन विश्वकर्म्मा ने बनाया १९ ॥

मू० ततश्च षोडशं भागं बिभर्त्ति भगवान्विभुः।
तत्तेजः पञ्चदशधा शातितं विश्वकर्म्मणा २० ॥

टी०। और सोलहवां भाग तेजका व्यापक सूर्यभगवान्ने धारण किया और उस तेजको पन्दरह भाग करके विश्वकर्म्मा ने काटडाला २० ॥

मू० ततोऽश्वरूपधृग् भानुरुत्तरानगमत्कुरून्।
दद्दशे तत्र संज्ञां च वडवारूपधारिणीम् २१॥

टी०। फिर सूर्य्यभगवान् घोड़ेका रूप धारण करके उत्तरदिशावाले कुरुदेशों में गये वहां घोड़ी का रूप धारण कियेहुई संज्ञाको देखा २१॥

मू० सा च दृष्ट्वा तमायान्तं परपुंसो विशङ्कया।
जगाम सम्मुखं तस्य पृष्ठरक्षणतत्परा २२॥

टी०। और संज्ञा उनको आतेहुये देखकर दूसरे पुरुषका डर मानकर उनके सम्मुख चली यह समझकर कि जो मैं दूसरी तरफ मुँह करूं तो कदाचित् पीछे से पहुँचकर मैथुन करै २२॥

मू० ततश्च नासिकायोगं तयोस्तत्र समेतयोः।
नासत्यदस्रौ तनयाववश्वीवक्त्रविनिर्गतौ २३॥

टी०। तब वह सूर्य्यरूप घोड़ा और घोड़ीरूप संज्ञा सम्मुख होकर एकने अपनी नाक दूसरे की नाक से मिलाया जिससे नासत्य और दस्र नाम दो लड़के संज्ञाके मुख से उत्पन्न हुये २३॥

मू० रेतसोऽन्ते च रेवन्तः खड्गी चर्म्मी तनुत्रधृक्।
अश्वारूढः समुद्भूतो बाणतूणसमन्वितः २४॥

टी०। और उस मस्तीकी हालतमें घोड़ारूप सूर्य्यका वीर्य्य जो पृथ्वी पर गिरा उससे एक मनुष्य रेवन्तनाम घोड़ेपर सवार और ढाल तलवार और तीर तरकस संयुत व बदनमें कवच पहिरेहुये जाहिरहुआ २४॥

मू० ततः स्वरूपमतुलं दर्शयामास भानुमान्।
तस्यैषा च समालोक्य स्वरूपं मुदमाददे २५॥

टी०। बाद इसके सूर्य्यभगवान् ने अपने बहुत सुन्दर रूपको प्रकट किया उनके स्वरूप को यह संज्ञा देखकर बहुत प्रसन्न हुई २५॥

मू० स्वरूपधारिणीं चेमामानिनाय निजाश्रयम्।
संज्ञां भार्य्यां प्रीतिमतीं भास्करो वारितस्करः २६॥

टी०। फिर संज्ञा ने भी अपने पूर्व्वरूप को धारण करलिया तब जल

के चोरानेवाले सूर्य्यभगवान् उस प्रीतिमती भार्य्या अर्थात् संज्ञा को अपने आश्रम पर ले आये २६॥

मू० ततः पूर्व्वसुतो योऽस्याः सोऽभूद्वैवस्वतो मनुः।
द्वितीयश्च यमः शापाद्धर्म्मदृष्टिरभूत्सुतः २७॥

टी०। इसके उपरान्त जो इससंज्ञा के प्रथम पुत्रथे वे वैवस्वत मनुहुये और दूसरे पुत्र शाप के कारण से धर्म से देखनेवाले यम हुये २७॥

मू० कृमयो मांसमादाय पादतोऽस्य महीतले।
पतिष्यन्तीति शापान्तं तस्य चक्रे पिता स्वयम् २८॥

टी०। और पिता ने आपही उस यम के शापका अन्त किया कि इस यमराज के पैर का मांस लेकर कीड़े ज़मीन में गिरेंगे २८॥

मू० धर्म्मदृष्टिर्यतश्चासौ समो मित्रे तथाऽहिते।
ततो नियोगं तं याम्ये चकार तिमिरापहः २९॥

टी०। यह यम जो कि शत्रु और मित्र के साथ बराबर भाव रखते थे और धर्म्म पर चित्त रखते थे इस वास्ते उनको सूर्य्यभगवान्ने दक्षिण दिशा में क़ायम किया २९॥

मू० यमुना च नदी जज्ञे कलिन्दान्तरवाहिनी।
अश्विनौ देवभिषजौ कृतौ पित्रा महात्मना ३०॥

टी०। और यमुना पिता के शाप से कलिन्द देशमें नदी होकर बहने लगी और घोड़ीरूप संज्ञा के जो दोनों पुत्र अश्विनीकुमार थे उनको महात्मा सूर्य्य भगवान् ने देवतों का वैद्य बनाया ३०॥

मू० गुह्यकाधिपतित्वे च रेवन्तोऽपि नियोजितः।
छायासंज्ञासुतानाञ्च नियोगः श्रूयतां मम ३१॥

टी०। और रेवन्त को भी सूर्य्य भगवान् ने गुह्यकगणों का मालिक बनाया अब संज्ञारूपी छाया के लड़कोंको जो आज्ञा सूर्य्य भगवान् ने दी वह भी मैं कहता हूं सुनो ३१॥

मू० पूर्व्वजस्य मनोस्तुल्यश्छायासंज्ञासुतोऽग्रजः।
ततः सावर्णिकीं संज्ञामवाप तनयो रवेः ३२॥

टी०। कि संज्ञारूपी छाया के प्रथम पुत्र जो रूप और गुण में वैवस्वत के समान थे सूर्य्यने उनका नाम सावर्णि रक्खा ३२॥

मू० भविष्यति मनुः सोऽपि बलिरिन्द्रो यदा तदा।
शनैश्चरो ग्रहाणाञ्च मध्ये पित्रा नियोजितः ३३॥

टी०। जिस काल में राजा बलि इन्द्र होंगे उस काल में वही सावर्णि मनु होंगे और दूसरे पुत्र जिनका नाम शनैश्चर था उनको उनके पिता सूर्य्य भगवान् ने ग्रहों के मध्यमें स्थापित किया ३३॥

मू० तयोस्तृतीया या कन्या तपतीनाम सा कुरुम्।
नृपात्संवरणात्पुत्रमवाप मनुजेश्वरम् ३४॥

टी०। और उनमें तीसरी कन्या जिसका नाम तपती था उसका विवाह राजा संवरण से हुआ उस राजा से तपती के एक पुत्र महाराज कुरु नाम पैदा हुआ ३४॥

मू० तस्य वैवस्वतस्याहं मनोः सप्तममन्तरम्।
कथयामि सुतान् भूपानृषीन् देवान् सुराधिपम् ३५॥

टी०। अब इस सप्तम वैवस्वत मनु के मन्वन्तर में जो जो देवता और सप्तऋषि और इन्द्र और उस मनु के पुत्र लोग जो राजा हुये उन को मैं कहता हूं सुनिये ३५॥

इति मार्कण्डेयपुराणेसावर्णिकेमन्वन्तरेवैवस्वतोत्पत्तिर्नामाष्टसप्ततितमोध्यायः ७८

उन्नासीवां अध्याय॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० आदित्या वसवो रुद्राः साध्या विश्वे मरुद्गणाः।
भृगवोऽङ्गिरसश्चाष्टौ यत्र देवगणाः स्मृताः १॥

टी०। फिर मार्कण्डेयजी बोले कि हे क्रौष्टुकि! उस वैवस्वत मन्वन्तर में आदित्य गण और वसुगण और रुद्रगण और साध्यगण और विश्वेदेवगण और मरुद्गण और भृगुगण और अंगिरसगण यही आठगण देवतों के प्रसिद्ध हैं १॥

मू० आदित्या वसवो रुद्रा विज्ञेयाः कश्यपात्मजाः।

साध्याश्च मरुतोविश्वे धर्म्मपुत्रगणास्त्रयः २ ॥

टी०। आदित्य और वसु और रुद्र यह तीन गण कश्यपजी के पुत्र जानने योग्य हैं और साध्य और मरुत और विश्व यह तीन गण देवतों के धर्म्मपुत्र कहलाते हैं २ ॥

मू० भृगोस्तु भृगवो देवाः पुत्राह्यङ्गिरसः सुताः।

एषसर्गश्च मारीचो विज्ञेयः साम्प्रताधिपः ३ ॥

टी०। और भृगुगण भृगु के पुत्र हैं और अंगिरा गण अंगिरा मुनि के पुत्र हैं और यह सर्ग मारीच नाम याने कश्यय की सृष्टि कहलाती है जो इस समय के स्वामी हैं ३ ॥

मू० ऊर्ज्जस्वी नाम चैवेन्द्रो महात्मा यज्ञभागभुक्।

अतीतानागता ये च वर्त्तन्ते साम्प्रतञ्च ये ४ ॥

टी०। आर यज्ञ के भाग लेनेवाले महात्मा ऊर्ज्जस्वी नाम इन्द्र हैं और जो इन्द्र लोग पहिले हो चुके हैं और जो लोग आगें इन्द्र होंगे और जो इस कालमें बिद्यमान हैं ४ ॥

मू० सर्व्वे ते त्रिदशेन्द्रास्तु विज्ञेयास्तुल्यलक्षणाः।

सहस्राक्षाः कुलिशिनः सर्व्वे एव पुरन्दराः ५ ॥

टी०। इन सब इन्द्रों के लक्षण समानही जानना और सब इन्द्र सहस्राक्ष अर्थात् हजार नेत्र वाले हैं और सब किसी का हथियार बज्रही है और सब इन्द्र पुरन्दर कहलाते हैं ५ ॥

मू० मघवन्तो वृषाः सर्व्वे शृङ्गिणो गजगामिनः।

ते शतक्रतवः सर्व्वे भूताभिभवतेजसः ६ ॥

टी०। और सब इन्द्र मघवन्त और वृषा और शृंगी और गजगामी और शतक्रतु और प्राणियों के तिरस्कारकारक तेज वाले हुये हैं ६ ॥

मू० धर्म्माद्यैः कारणैः शुद्धैराधिपत्यगुणान्विताः।

भूतभव्यभवन्नाथाः शृणु चैतत्त्रयं द्विज ७ ॥

टी०। और ये सब लोग शुद्धधर्म्म आदि करके देवतों के स्वामी हुये

हैं और हे द्विज! ये लोग भूत और भविष्य और वर्त्तमान के मालिक हुये हैं और इस वैवस्वत के मन्वन्तर में त्रैलोक्य यह है ७॥

मू० भूर्लोकोऽयं स्मृता भूमिरन्तरिक्षं दिवः स्मृतम्।
दिव्याख्यश्च तथा स्वर्गस्त्रैलोक्यमिति गद्यते ८॥

टी०। पृथ्वी यह भूर्लोक कहलाता है और अन्तरिक्ष दिवलोक और स्वर्ग दिव्य लोक कहलाता है व यह त्रैलोक्य कहलाता है ८॥

मू० अत्रिश्चैव वशिष्ठश्च काश्यपश्च महानृषिः।
गौतमश्च भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ कौशिकः ९॥

टी०। और अत्रि और वशिष्ठ और काश्यप और गौतम महर्षि और भरद्वाज और कुशिकके पुत्र विश्वामित्र ९॥

मू० तथैव पुत्रो भगवानृचीकस्य महात्मनः।
जमदग्निस्तु सप्तैते मुनयोऽत्र तथान्तरे १०॥

टी०। और वैसेही ऋचीक महात्मा के पुत्र जमदग्नि यही लोग इस मन्वन्तर में सप्त ऋषि कहलाते हैं १०॥

मू० इक्ष्वाकुर्नाभगश्चैव धृष्टः शर्य्यातिरेवच।
नरिष्यन्तश्च विख्यातो नाभगो दिष्ट एव च ११॥

टी०। और इक्ष्वाकु और नाभग और धृष्ट और शर्य्याति और नरिष्यन्त और नाभग और दिष्ट ११॥

मू० कुरूषश्च पृषध्रश्च वसुमाल्लँोकविश्रुतः।
मनोर्वैवस्वतस्यैते दश पुत्राः प्रकीर्त्तिताः १२॥

टी०। और कुरूष और पृषध्र और संसार में प्रसिद्ध वसुमान् यही दश लड़के वैवस्वत मनु के कहे गये हैं १२॥

मू० वैवस्वतमिदं ब्रह्मन् कथितन्ते मयान्तरम्।
अस्मिञ्छ्रुते नरः सद्यः पठिते चैव सत्तम॥
मुच्यते पातकैः सर्व्वैः पुण्यंचमहदश्नुते १३॥

टी०। हे ब्रह्मन्! इस वैवस्वत मन्वन्तर की कथा मैंने आप से कही

इसको जो कोई कहैगा या सुनैगा हे द्विजोत्तम! उसके सम्पूर्ण पाप तुरंतही छूटजायँगे और महापुण्य को प्राप्त होगा १३॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे वैवस्वतकीर्त्तनं नामोनाशीतितमोऽध्यायः॥ ७९॥

अस्सीवां अध्याय॥

क्रौष्टुकिरुवाच॥

मू० स्वायम्भुवाद्याः कथिताः सप्तैते मनवस्त्वया।
तदन्तरेषु ये देवाराजानोमुनयस्तथा १॥

टी०। इतनी कथा सुनकर क्रौष्टुकि ने कहा कि स्वायम्भुव आदि ये सात मन्वन्तर और उन मन्वन्तरों में जो देवता और राजा और ऋषि हुये हैं उनको आप कहचुके १॥

मू० अस्मिन् कल्पे सप्त येऽन्ये भविष्यन्ति महामुने।
मनवस्तान् समाचक्ष्व ये च देवादयश्च ये २॥

टी०। हे महामुने! अब इस कल्प में सात और जो मनु होंगे और फिर जो जो उनके समय में देवताआदि होंगे उन सबको भी कहिये २॥

मार्कण्डेयउवाच॥

मू० कथितस्तव सावर्णिश्छायासंज्ञासुतश्च यः।
पूर्व्वजस्य मनोस्तुल्यः स मनुर्भविताष्टमः ३॥

टी०। यह प्रश्न सुनकर मार्कण्डेयजी बोले कि संज्ञारूपी छाया के पुत्र जो सावर्णि हुये ,जिनका वृत्तान्त मैं आप से कहचुका हूं वह बड़े भाई वैवस्वत मनु के समान हैं वही आठवें मनु होंगे ३॥

मू० रामोव्यासोगालवश्च दीप्तमान् कृप एव च।
ऋष्यशृङ्गस्तथा द्रोणिस्तत्र सप्तर्षयोऽभवन् ४॥

टी०। और उस समय में राम, व्यास, गालव,दीप्तिमान्, कृप, शृङ्गी-ऋषि, द्रोणी, अर्थात् अश्वत्थामा यही लोग उसमें सप्तऋषि होंगे ४॥

मू० सुतपाश्चामिताभाश्च मुख्याश्चैव त्रिधासुराः।

विंशकः कथितश्चैषां त्रयाणां तु मतोगणः ५ ॥

टी०। और सुतपा और अमिताभा और मुख्या यही तीन प्रकार के इन देवतों का गण विंशकगण कहागया है ५ ॥

मू० तपस्तप्तश्च शक्रश्च द्युतिर्ज्योतिः प्रभाकरः।
प्रभासोदयितोधर्म्मस्तेजोरश्मिश्चिरक्रतुः ६ ॥

टी०। और तप, तप्त, शक्र, द्युति, ज्योति, प्रभाकर, प्रभास, दयित, धर्म्म, तेजोरश्मि, चिरक्रतु ६ ॥

मू० इत्यादिकस्तु सुतपादेवानां विंशकोगणः।
प्रभुर्विभुर्विभासाद्यस्तथान्योविंशकोगणः ७ ॥

टी०। आदि सुतपा देवतों का एक यह विंशकगण होगा और प्रभु और विभु और विभास इत्यादि दूसरा विंशकगण होगा ७ ॥

मू० सुराणाममिताभानां तृतीयमपि मे शृणु।
दमोदान्तऋतः सोमोविन्ताद्याश्चैव विंशतिः ८ ॥

टी०। और तीसरे अमिताभ देवतों का जो विंशकगण होगा उन को भी मुझ से सुनो कि दम और दान्त और ऋत और सोम और विन्त आदि यही लोग तीसरे विंशकगण होंगे ८ ॥

मू० मुख्याह्येते समाख्यातादेवामन्वतराधिपाः।
मारीचस्यैव ते पुत्राः कश्यपस्य प्रजापतेः ९ ॥

टी०। उस मन्वन्तर के मालिक मुख्य यही कहेहुए देवता लोगहोंगे और वे सब देवतालोग मरीचिके पुत्र कश्यप प्रजापतिहीके पुत्र लोगहैं९॥

मू० भविष्याश्च भविष्यन्ति सावर्णस्यान्तरे मनोः।
तेषामिन्द्रोभविष्यस्तु बलिर्वैरोचनिर्मुने १० ॥

टी०। और हे मुनि! उस सावर्णि मन्वन्तर में होनेवाले यही देवता होंगे और देवतों के मालिक विरोचन के पुत्र राजा बलि इन्द्र होंगे १०॥

मू० पातालआस्ते योऽद्यापि दैत्यः समयबन्धनः।
विरजाश्चार्व्ववीरश्च निर्म्मोहः सत्यवाक् कृतिः ११ ॥

टी० । वह राजा बलि अपनी प्रतिज्ञाके पालने के वास्ते अबतक भी पातालमें विद्यमान् अर्थात् प्राप्त हैं और विरजा और अर्व्ववीर और निर्मोह और सत्यवाक् और कृति ११ ॥

मू० विष्णवाद्याश्चैव तनयाः सावर्णेश्च मनोर्नृपाः १२ ॥

टी० । और विष्णु आदि सावर्णिमनु के लड़केलोग राजा होंगे १२ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेसावर्णिकेमन्वन्तरेऽशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

देवीमाहात्म्यारम्भः ॥

ॐनमश्चण्डिकायै ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० सावर्णिःसूर्य्यतनयोयोमनुः कथ्यतेऽष्टमः ।
निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद्गदतोमम १ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि ! सावर्णिनाम जो सूर्य्य के पुत्र अष्टम मनु कहे जाते हैं उनकी उत्पत्ति की कथा विस्तारपूर्व्वक मैं कहता हूं उसको सुनो १ ॥

मू० महामायानुभावेन यथामन्वन्तराधिपः ।
सबभूव महाभागः सावर्णिस्तनयोरवेः २ ॥

टी० । कि जिसतरह महामाया के प्रभाव से मन्वन्तर के स्वामी सूर्यका पुत्र वह महाभाग्यवान् सावर्णिनाम से विख्यात हुवा उसका हाल सुनो २ ॥

मू० स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्व्वं चैत्रवंशसमुद्भवः ।
सुरथोनाम राजाऽभूत् समस्ते क्षितिमण्डले ३ ॥

टी० । कि पहिले स्वारोचिषमन्वन्तरमें स्वारोचिषमनुके पुत्र राजा चैत्रके वंशमें उत्पन्न सुरथनाम राजा समस्त पृथ्वीमण्डल में हुये ३ ॥

मू० तस्य पालयतः सम्यक् प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ।

बभूवुः शत्रवोभूपाः कोलाविध्वंसिनस्तदा ४ ॥

टी० । वे राजा अपनी प्रजा को औरसपुत्र की तरह पालन करते थे उसी समय कोलाविध्वंसी याने कोलानाम सुरथ की राजधानी के विध्वंसनकरनेवाले राजालोग उनके शत्रु होकर उनके राज्यपर चढ़ आये ४ ॥

मू० तस्यतैरभवद्युद्धमतिप्रबलदण्डिनः ।
न्यूनैरपि सतैर्युद्धे कोलाविध्वंसिभिर्जितः ५ ॥

टी० । तब बड़ादण्ड करनेवाले महाराज सुरथका और उन कोलाविध्वंसी राजाओं से महायुद्ध हुआ यद्यपि राजा सुरथ सबतरह से बली थे और वे राजालोग थोड़ेही थे, परन्तु प्रारब्ध के प्रतिकूल होने से इन के शत्रु कोलाविध्वंसीलोगों ने इनकी राज्य छीनकर अपने वश में कर लिया कोला एक दूसरे स्थान का नाम है जो दूसरी राजधानी सुरथ की थी उसको कई एक आदमियों ने लेकर बिगाड़ दिया और अपने प्रबन्ध में करलिया इस सबब से उन लोगों का नाम कोलाविध्वंसी हुआ ५ ॥

मू० ततः स्वपुरमायातोनिजदेशाधिपोऽभवत ।
आक्रान्तः समहाभागस्तैस्तदा प्रबलारिभिः ६ ॥

टी० । तब सुरथ पराजय होकर वहांसे चलकर अपनी निज राजधानी में आकर अपने देशही भर का राज्य करनेलगे परन्तु वहां भी उन लोगों ने चैन न लेने दिया किन्तु उस वक्त उन प्रबल शत्रुवों ने महाराज सुरथ को घेर लिया ६ ॥

मू० अमात्यैर्बलिभिर्दुष्टैर्दुर्बलस्य दुरात्मभिः ।
कोशोबलं चापहृतं तत्रापि स्वपुरे ततः ७ ॥

टी० । तब वहां अपने पुरमें भी इनके मंत्री और अफ़सरों ने इनको कमज़ोर और बेक़ाबू समझकर उन दुरात्मालोगों ने इनका खज़ाना और फ़ौज सब अपने अख्तियार में कर लिया ७ ॥

मू० ततोमृगयाव्याजेन हृतस्वाम्यः स भूपतिः ।
एकाकी हयमारुह्य जगाम गहनं वनम् ८ ॥

टी०। जब इनके मन्त्री और नौकरों ने इनका खज़ाना लेकर हुक्म भी इनका उठादिया तब महाराज सुरथ शिकार के बहाने से घोड़ेपर सवारहोकर अकेले दुर्गम वन में चले गये ८॥

मू० सतत्राश्रममद्राक्षीद्द्विजवर्यस्य मेधसः।
प्रशान्तश्वापदाकीर्णं मुनिशिष्योपशोभितम् ९॥

टी०। उस रमणीक वन में जो कि प्रशान्तजीवोंसे व्याप्त और मुनियों व उन के शिष्यों से शोभायमान था मेधानाम द्विजोत्तम के आश्रम को देखा ९॥

मू० तस्थौ कञ्चित्सकालञ्च मुनिना तेन सत्कृतः।
इतश्चेतश्च विचरंस्तस्मिन्मुनिवराश्रमे १०॥

टी०। और मुनिवर के उस आश्रम पर वह राजा सुरथ जाकर इधर उधर टहलने फिरने लगा मुनिने राजा को देखकर उनकी बड़ी खातिरदारीकी मुनिकी खातिरदारी करने से राजा कुछ दिन वहां ठहरगया १०॥

मू० सोऽचिन्तयत्तदा तत्र ममत्वाकृष्टचेतनः।
मत्पूर्व्वैः पालितं पूर्व्वं मया हीनं पुरं हि तत्॥
मद्भृत्यैस्तैरसद्वृत्तैर्धर्म्मतः पाल्यते न वा ११॥

टी०। वहां पर एकदिन वहराजा अपने नगर और प्रजा को ममता की राहसे यादकरके शोचनेलगा कि मैं तो अपने नगर को जो मेरे पुरुषों से पालनकियाहुआ था छोड़कर चला आया अब नहीं मालूम कि मेरे नौकर चाकर जो अधर्म्मी हैं मेरी प्रजा का पालन न्यायपूर्व्वक करते हैं या नहीं ११॥

मू० न जाने सप्रधानोमे शूरहस्ती सदामदः।
मम वैरिवशं यातः कान्भोगानुपलप्स्यते १२॥

टी०। और यह भी नहीं जानता कि मेरे शूर व सदैवमस्तहाथी महावतों समेत मेरे शत्रुवों के वश में प्राप्त होकर किन भोगोंको भोगतेहोवैं १२॥

मू० ये ममानुगतानित्यं प्रसादधनभोजनैः।
अनुवृत्तिं ध्रुवं तेऽद्य कुर्व्वन्त्यन्यमहीभृताम् १३॥

टी० । और जे लोग रोज रोज मेरे पास आकर मेरी प्रसन्नता और धनभोजनादि मुझसे पाकर मेरे अनुगामी थे वे लोग अब अपनी जीविका के वास्ते आज जरूर दूसरे राजाओं की सेवा करते होंगे १३ ॥

मू० असम्यग्व्ययशीलैस्तैः कुर्वद्भिः सततं व्ययम् ।
सञ्चितः सोऽतिदुःखेन क्षयं कोशोगमिष्यति १४ ॥

टी० । और जिस खजाने को मैं ने बड़े क्लेश से जमा किया था उस खजाने को मेरे नौकर चाकर लोगों ने निरर्थक और अनावश्यक कामों में हमेशा खर्चकरके सब बरबाद करदिया होगा १४ ॥

मू० एतच्चान्यच्च सततं चिन्तयामास पार्थिवः ।
तत्र विप्राश्रमाभ्यासे वैश्यमेकं ददर्श सः १५ ॥

टी० । इन्हीं व और भी सब बातों को राजा हमेशा शोचरहा था कि इतने में वहां उसी मुनिके आश्रमके पास उसने एक बनिया को देखा १५ ॥

मू० सपृष्टस्तेन कस्त्वं भो हेतुश्चागमनेऽत्र कः ।
सशोकइव कस्मात्त्वं दुर्मनाइव लक्ष्यसे १६ ॥

टी० । और उसराजाने उस से पूंछा कि ऐ भाई ! तुम कौन हो और किसवास्ते यहां आये हो और तुम किसवास्ते शोचसेसंयुत व दुःखीसे देख पड़ते हो १६ ॥

मू० इत्याकर्ण्य वचस्तस्य भूपतेः प्रणयोदितम् ।
प्रत्युवाच सतं वैश्यः प्रश्रयावनतोनृपम् १७ ॥

टी० । यह बात उस राजाकी जो कि प्रणय याने विश्वास से कही गई थी उसे सुनकर वह वैश्य बड़ीअधीनता से झुंककर उस राजाको जवाब दिया १७ ॥

वैश्यउवाच ॥

मू० समाधिर्नाम वैश्योऽहमुत्पन्नोधनिनां कुले ।
पुत्रदारैर्निरस्तश्च धनलोभादसाधुभिः १८ ॥

टी० । वैश्य बोला कि मेरा नाम समाधि है जाति का वैश्य हूं और धनियों के कुलमें उत्पन्न हूं और दुष्ट मेरे स्त्री पुत्र ने मेरे धन पर लोभ करके मुझको घरसे निकालदिया १८ ॥

मू० विहीनश्च धनैर्दारैः पुत्रैरादाय मे धनम्।
वनमभ्यागतोदुःखी निरस्तश्चाप्तबन्धुभिः १९॥

टी०। जोकि मेरी स्त्री और पुत्र ने मेरा धन लेकर मुझे निर्धन करके निकाल दिया है इस सबब से मैं दुखी होकर इस जंगल में चला आया मित्र व बन्धुलोगों ने भी मुझे त्यागदिया १६॥

मू० सोऽहं न वेद्मि पुत्राणां कुशलाकुशलात्मिकाम्।
प्रवृत्तिं स्वजनानाञ्च दाराणां चात्र संस्थितः २०॥

टी०। अब सो मैं तो इस वनमें टिका हूँ और मुझको अपने स्त्री पुत्र भाई बन्धु के कुशल अकुशल की कुछ खबर नहीं मालूम है २०॥

मू० किन्नु तेषां गृहे क्षेममक्षेमं किन्नु साम्प्रतम्।
कथन्ते किन्नु सद्वृत्तादुर्वृत्ताः किन्नु मे सुताः २१॥

टी०। कि वेलोग इसवक्त अपने घर में कुशल क्षेम से हैं या नहीं और यह भी नहीं जानता कि मेरे वेलड़के अच्छेआचरण या बुरेआचरण-वालेहैं॥ २१॥

राजोवाच॥

मू० यैर्निरस्तोभवाँल्लुब्धैः पुत्रदारादिभिर्धनैः।
तेषु किं भवतः स्नेहमनुबध्नाति मानसम् २२॥

टी०। यह बात समाधि से सुनकर राजा सुरथ बोला कि जब तेरी स्त्री और पुत्रादि लालची दुष्टों ने तेरा सबधन लेकर तुझे घरसे निकाल दिया तब फिर तू उनलोगों की ममता अपने जी में क्यों रखताहै॥ २२॥

वैश्य उवाच॥

मू० एवमेतद्यथा प्राह भवानस्मद्गतं वचः।
किं करोमि न बध्नाति मम निष्ठुरतां मनः २३॥

टी०। वैश्य ने कहा कि हे महाराज! आपने मेरे विषय में जो वचन कहा वह आपका कहना सब सत्यहै परन्तु मैं क्या करूँ मेरा जी निष्ठुरता को नहीं बाँधता है २३॥

मू० यैः सन्त्यज्य पितृस्नेहं धनलुब्धैर्निराकृतः।

पतिस्वजनहार्दञ्च हार्दितेष्वेव मे मनः ॥ २४ ॥

टी०। यद्यपि मेरी स्त्री और पुत्र और जिन भाई बन्धुवों ने धन के लालच से मेरी स्वामिता व स्वजन का स्नेह छोड़कर मुझे घरसे निकाल दिया पर तौभी मेरे जी में उन लोगोंकी ममता भरी हुई है ॥ २४ ॥

मू० किमेतन्नाभिजानामि जानन्नपि महामते।

यत्प्रेमप्रवणञ्चित्तं विगुणेष्वपि बन्धुषु २५ ॥

टी०। हे महामते! यह कैसी बातहै मैं नहीं जानताहूं और जानकर भी अनजान होताहूँ कि जिन भाई बन्धुने शत्रुता करके मुझको घरसे निकाल दियाहै उन बिनगुणवाले बन्धुवों की ममता से मेराजी अलग नहीं होताहै २५ ॥

मू० तेषां कृते मे निःश्वासोदौर्म्मनस्यञ्च जायते।

करोमि किं यन्न मनस्तेष्वप्रीतिषु निष्ठुरम् २६ ॥

टी०। और उनलोगोंके लिये शोचसे मेरी लम्बी श्वासें निकलती हैं और जी में उदासी छाई रहती है हे महाराज! मैं क्या करूं कि जिसमें मेरा चित्त स्नेह से रहित इनलोगों की प्रीति छोड़कर निठुर होजाय२६॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० ततस्तौ सहितौ विप्र तं मुनिं समुपस्थितौ।

समाधिर्नामवैश्योऽसौ सच पार्थिवसत्तमः २७ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे द्विजोत्तम! बाद इसके वह समाधिनाम वैश्य और वह उत्तम राजा सुरथ दोनों मिलकर उन मेधा ऋषि के पासगये २७ ॥

मू० कृत्वा तु तौ यथान्यायं तथार्हन्तेन संविदम्।

उपविष्टौ कथाः काश्चिच्चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ २८ ॥

टी०। और वे दोनों वहां जाकर उन मुनिसे न्यायपूर्वक व यथायोग्य सम्भाषण किया व प्रणामकरके स्तुति किया मुनिनेभी दोनों मनुष्यों को आशीर्वाद देकर बैठने की आज्ञादी तब राजा और वैश्यने वहां बैठकर कुछ कथावार्ता कहना आरम्भ किया २८ ॥

राजोवाच ॥

मू० भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छाम्येकं वदस्व तत् ।
दुःखाय यन्मे मनसः स्वचित्तायत्ततां विना २९ ॥

टी० । और महाराज सुरथ ने ऋषिसे कहा कि हे भगवन्! आप से एक बात सन्देह की पूंछता हूँ उसे कहिये कि मेरा चित्त मेरे वशमें नहीं है इसवास्ते मुझको मनसे दुःखहोता है २६ ॥

मू० ममत्वं मम राज्यस्य राज्याङ्गेष्वखिलेष्वपि ।
जानतोऽपि यथाज्ञस्य किमेतन्मुनिसत्तम ३० ॥

टी० । और वह यहहै कि मुझको अपनी राज्य और नौकर चाकर हाथी घोड़ा असबाब खजानाआदि राज्यके अंगोंमेंभी बहुत ममता रहती है यद्यपि मैं जानता हूँ कि अब मैं इन सबसे अलग होगया हूँ अब इन सब में प्रीति रखने से दुःख होगा परन्तु तो भी अज्ञानी के समान इन सब में मेरा जी फँसा रहता है हे मुनिसत्तम ! यह क्या बात है ३० ॥

मू० अयञ्च निष्कृतः पुत्रैर्दारैर्भृत्यैस्तथोज्झितः ।
स्वजनेन च सन्त्यक्तस्तेषु हार्द्दी तथाप्यति ३१ ॥

टी० । और यह जो मेरेसाथ वैश्य है इसको भी इसके बेटे और स्त्री और नौकर चाकर व भाई बन्धुओंने इसका धन लेकर घरसे निकालदिया परन्तु तिसपरभी इसका चित्त उनकी प्रीतिसे अलग नहीं होता ३१ ॥

मू० एवमेषतथाहञ्च द्वावप्यत्यन्तदुःखितौ ।
दृष्टदोषेऽपि विषये ममत्वाकृष्टमानसौ ३२ ॥

टी०। इसतरह मैं और यह वैश्य दोनोंभी मनुष्य इस बातमें बहुत दुःखी होरहे हैं कि यद्यपि उन लोगोंकी खुटाई को जानते हैं तौभी उन सबकी ममता हम लोगोंके जीसे नहीं जाती है ३२ ॥

मू० तत्केनैतन्महाभाग यन्मोहोज्ञानिनोरपि ।
ममास्य च भवत्येषा विवेकान्धस्य मूढता ३३ ॥

टी० । हे महाभाग ! आप बतलाइये कि किस सबबसे ज्ञानीभी जो हम दोनों हैं उनके मोह है कि अविवेकसे अन्ध मेरे और इसके यह मूढ-ता होरही है ३३ ॥

ऋषिरुवाच॥

मू० ज्ञानमस्ति समस्तस्य जन्तोर्विषयगोचरे।
विषयश्च महाभाग याति चैवं पृथक् पृथक् ३४॥

टी०। यह प्रश्न महाराज सुरथ का सुनकर मेधाऋषि बोले कि हे महाभाग! इस संसारके विषय समझने में सब किसी जीवको ज्ञान है और इसतरह यह विषयभी सब किसीका अलग अलग है ३४॥

मू० दिवान्धाः प्राणिनः केचिद्रात्रावन्धास्तथापरे।
केचिद्दिवा तथा रात्रौ प्राणिनस्तुल्यदृष्टयः ३५॥

टी०! क्योंकि कितने जानवर दिन में अन्धे हैं और कितने रात्रि में अन्धे हैं और कितनो को दिन रात बराबर सूझता है और कितनों को कुछ नहीं सूझता ३५॥

मू० ज्ञानिनोमनुजाः सत्यं किन्तु ते न हि केवलम्।
यतोहि ज्ञानिनः सर्वे पशुपक्षिमृगादयः ३६॥

टी०। यह सत्य है कि मनुष्य ज्ञानी हैं परन्तु केवल मनुष्यहीके ज्ञान नहीं है किन्तु पशु और पक्षी व मृगादिकों के भी ज्ञान होता है ३६॥

मू० ज्ञानञ्च तन्मनुष्याणां यत्तेषां मृगपक्षिणाम्।
मनुष्याणाञ्च यत्तेषां तुल्यमन्यत्तथोभयोः ३७॥

टी०। जो ज्ञान उन पशु पक्षियों के है वह ज्ञान मनुष्यों के भी है और भोजनादिक भी मनुष्य व मृगादिक दोनों के बराबर हैं ३७॥

मू० ज्ञानेऽपि सति पश्यैतान्पतङ्गाञ्छावचञ्चुषु।
कणमोक्षादृतान्मोहात् पीड्यमानानपि क्षुधा ३८॥

टी०। देखो ये पक्षी सब भूख से पीडित रहते हैं और जानते हैं कि बच्चों के खाने से हमारी भूख नहीं जायगी तो भी मोहसे ममता के वश होकर अपना आहार बच्चों के मुख में देदेते हैं आप भूखे रहजातेहैं ३८॥

मू० मानुषामनुजव्याघ्र साभिलाषाः सुतान्प्रति।
लोभात्प्रत्युपकाराय नन्वेते किं न पश्यसि ३९॥

टी०। हे महाराज! अभिलाषसमेत ये मनुष्य लोगभी अपने उप-

कार के लोभ से अपने लड़कों को पालते हैं क्या तुम नहीं देखते हो जो सब मनुष्यों को ज्ञान है ३६ ॥

मू० तथापि ममतावर्त्ते मोहगर्त्ते निपातिताः ।
महामायाप्रभावेण संसारस्थितिकारिणः ४० ॥

टी० । पर तौ भी परमेश्वर की जो महामाया है उसके प्रभाव से मनुष्य लोग घिर कर ममताके भँवरवाले मोहके कुयें में गिराये जाते हैं और बार बार जन्म लेकर संसार की स्थिति करते हैं ४० ॥

मू० तन्नात्र विस्मयः कार्य्यो योगनिद्रा जगत्पतेः ।
महामाया हरेश्चैषा तया संमोह्यते जगत् ४१ ॥

टी० । महामायाके ऐसे प्रभाव में सन्देह न करना चाहिये क्योंकि यह योगनिद्रा महामाया जगत्पति श्रीविष्णुभगवान् की है जिनकी उस माया से जगत् मोहित है ४१ ॥

मू० ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ४२ ॥

टी० । और वह महामाया भगवती देवी ज्ञानियों के चित्त को भी बलसे खींचकर निश्चयकर मोह में फँसा देती है ४२ ॥

मू० तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम् ।
सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये ४३ ॥

टी० । और वही भगवती इस चराचर जगत् को उत्पन्न करतीहै और वह वही भगवती प्रसन्न होकर मनुष्यों की मुक्ति के लिये वरदायिनी होती है ४३ ॥

मू० सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी ।
संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ४४ ॥

टी० । और वह भगवती परम विद्या का स्वरूप और मुक्तिका कारण और सनातनी है और वही भगवती संसार के बन्धन का कारण और सम्पूर्ण ईश्वरों की ईश्वरी है ४४ ॥

राजोवाच ॥

मू० भगवन् का हि सा देवी महामायेति यां भवान्।
ब्रवीति कथमुत्पन्नासाकर्म्मास्याश्च किं द्विज ४५ ॥

टी०। यह सुनकर राजा सुरथ बोला कि हे भगवन्! वह देवी कौन है जिसको आप महामाया कहते हैं और हे द्विज! किस तरह उनकी उत्पत्ति है और क्या उनका कर्म है ४५॥

मू० यत्स्वभावा च सा देवी यत्स्वरूपा यदुद्भवा।
तत्सर्व्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदांवर ४६ ॥

टी०। हे ब्रह्मविदांवर याने वेदके जाननेवालों में श्रेष्ठ! मैं उनका स्वरूप और स्वभाव और जिससे उत्पन्न हैं वह समस्तचरित्र आप से सुना चाहता हूँ विस्तारपूर्व्वक कह सुनाइये ४६॥

ऋषिरुवाच ॥

मू० नित्यैव साजगन्मूर्त्तिस्तया सर्व्वमिदं ततम्।
तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम ४७॥

टी०। ऋषि बोले कि वह भगवती नित्या और जगत्मूर्त्ति है यह सम्पूर्ण जगत् उन्हीं का बनाया हुआ है तिसपर भी उनकी उत्पत्ति बहुत तरह की है उसको मुझ से सुनो ४७॥

मू० देवानां कार्य्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा।
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते ४८ ॥

टी०। कि जब देवतालोग अपना कार्य्य सिद्ध होने के वास्ते उनकी स्तुति करते हैं तब वह देवतों का कार्य्य सिद्ध करने के वास्ते लोक में उत्पन्न होतीहै वा उससमय नित्याभी वह उत्पन्ना ऐसी कहलाती है४८॥

मू० योगनिद्रां यदा विष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते।
आस्तीर्य्यशेषमभजत् कल्पान्ते भगवान् प्रभुः ४९ ॥

टी०। कल्प के अन्त में जगत् एकार्णव होजाने पर जब विष्णुभगवान् शेषशय्याके ऊपर योगनिद्रा में प्राप्त हुये यानी सोगये ४६ ॥

मू० तदा द्वावसुरौ घोरौ विख्यातौ मधुकैटभौ।

विष्णुकर्णमलोद्भूतौ हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतौ ५० ॥

टी० । तब उनके कान के मैल से दो असुर महाघोर मधु और कैटभ नाम से प्रसिद्ध उत्पन्न होकर ब्रह्मा के मारने के वास्ते मुस्तैद हुये ५० ॥

मू० स नाभिकमले विष्णोः स्थितो ब्रह्माप्रजापतिः ।
दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ प्रसुप्तञ्च जनार्द्दनम् ५१ ॥

टी० । तब प्रजापति ब्रह्मा ने जो विष्णुभगवान् के कमलनाभि में स्थित थे उन दोनों उग्र असुरों को देखकर और जनार्द्दन विष्णुभग- वान् को सोतेहुये देखकर ५१ ॥

मू० तुष्टाव योगनिद्रान्तामेकाग्रहृदयस्थितः ।
विबोधनार्थाय हरेर्हरिनेत्रकृतालयाम् ५२ ॥

टी० । उनके जागने के वास्ते विष्णुभगवान् के नेत्र में जो योगनिद्रा वास कियेहुई थीं उन्हीं की स्तुति जी लगाकर करने लगे ५२ ॥

मू० विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम् ।
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलान्तेजसःप्रभुः ५३ ॥

टी० । अर्थात् जो भगवती विष्णुकी योगनिद्रा व विश्वेश्वरी और संसार की माता और स्थिति और संहारकरनेवाली और अतुल हैं उन की स्तुति तेजके स्वामी ब्रह्माजी करनेलगे ५३ ॥

ब्रह्मोवाच ॥

मू० त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारःस्वरात्मिका ।
सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधामात्रात्मिका स्थिता ५४ ॥

टी० । उनकी स्तुति इसतरह से ब्रह्माजी करनेलगे कि हे भगवती ! स्वाहा और स्वधा और वषट्कारस्वरूपिणी आपही हैं और स्वरस्वरू- पिणी और स्वधा आपही हैं और नित्य अक्षर (न्यूनाधिक्य से हीन) में ह्रस्व व दीर्घ और प्लुत तीन तरह से मात्रास्वरूपिणी होकर आप विराजमान हैं ५४ ॥

मू० अर्द्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्य्या विशेषतः ।
त्वमेव सा त्वं सावित्री त्वं देवि जननी परा ५५ ॥

टी०। और अर्द्धमात्रारूपिणी होकर आप स्थित रहती हैं और आप नित्या हैं जिसको विशेषपूर्व्वक कोई उच्चारण नहीं करसक्ता है वह आप ही हैं और सावित्री और हे देवी! सब की परमजननी आपही हैं ५५॥

मू० त्वयैव धार्य्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत्।
त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा ५६॥

टी०। हे देवि! इस जगत् को सदैव धारण और सृष्टि और पालन करनेवाली और अन्तमें सब का नाश करनेवाली भी आपही हैं ५६॥

मू० विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने।
तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये ५७॥

टी०। और हे जगन्मये! आप इस संसारकी सृष्टि में सृष्टिरूपा और पालन में स्थितिरूपा और फिर इसीतरह नाश करने में संहाररूपा हैं ५७॥

मू० महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः।
महामोहा च भवती महादेवी महासुरी ५८॥

टी०। और महाविद्या और महामाया और महामेधा और महास्मृति और महामोहा आपही हो और महादेवी और महासुरी आपही हैं ५८॥

मू० प्रकृतिस्त्वञ्च सर्व्वस्य गुणत्रयविभाविनी।
कालरात्रिर्म्महारात्रिर्म्मोहरात्रिश्च दारुणा ५९॥

टी०। फिर सब किसीकी त्रिगुणमयी प्रकृति और दारुणा अर्थात् भयावनी कालरात्रि और महारात्रि और मोहरात्रि आपही हैं ५९॥

मू० त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा।
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिःक्षान्तिरेवच ६०॥

टी०। और श्री और ईश्वरी और ह्री अर्थात् लज्जाबीज और बोधलक्षणवाली बुद्धि और लज्जा यानी लाज और तुष्टि और पुष्टि और शान्ति और क्षान्ति भी आपही हैं ६०॥

मू० खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा।
शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा ६१॥

टी०। और खड्गिनी (तलवार धारनेवाली) और शूलिनी और घोरा अर्थात् एक हाथ में मुण्ड धारण किये भयंकरी हो और गदिनी और चक्रिणी और शंखिनी और चापिनी और बाण और भुशुंडी (बन्दूक) और परिघ ये सब आयुध महाकालीरूप धारण करके दशों भुजा में आप रखती हैं ॥ ६१ ॥

मू० सौम्यासौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी।
परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ६२ ॥

टी०। और आप भक्तों के लिये सौम्या हैं और असुरों के वास्ते असौम्यतरा हैं और सब सौम्यों से अतीव सुन्दरी हैं और सब से परे और श्रेष्ठोंमें श्रेष्ठ आपही हैं इस से आप परमेश्वरी कहलाती हैं ६२ ॥

मू० यच्चकिञ्चित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मके।
तस्य सर्व्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा ६३ ॥

टी०। और हे अखिलात्मके! जहांपर जो कुछ सत् (ब्रह्मवर्ग) या असत् (जड़वर्ग) वस्तु है उनमें जो शक्ति है वह सब आपही हैं तब फिर आपकी स्तुति कहाँ तक कीजाय ६३ ॥

मू० यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पातात्ति यो जगत्।
सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ६४ ॥

टी०। और जिस तुझ महामाया शक्ति से जो विष्णु भगवान् जगत् की उत्पत्ति और पालन और नाश करतेहैं वहभी इस समय निद्राके वश प्राप्त कियेगये हैं तब यहां तुम्हारी स्तुति कौन कर सक्ता है ६४ ॥

मू० विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एवच।
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत् ६५ ॥

टी०। जिसलिये कि विष्णु और हम और महादेव आपही से शरीर धारण करते हैं इसी से आपकी स्तुति करनेकी किसको सामर्थ्यहै ६५ ॥

मू० सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता।
मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ ६६ ॥

टी०। और हे देवि! आपका इसतरह उदार प्रभाव जो रहा साधारण

माहात्म्य है उसी माहात्म्य से आपकी स्तुति की गई है आप इन दोनों दुराधर्ष मधु कैटभ असुरों को मोहमें प्राप्त कर दीजिये ६६ ॥

मू० प्रबोधश्च जगत्स्वामी नीयतामच्युतोलघु ।
बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ ६७ ॥

टी० । और आप जल्दी से जगत् के स्वामी अच्युत भगवान् विष्णु को जगाकर इन महाअसुरों को मारने के वास्ते मुस्तैद कीजिये ६७ ॥

ऋषिरुवाच ॥

मू० एवं स्तुता तदा देवी तामसी तत्र वेधसा ।
विष्णोः प्रबोधनार्थाय निहन्तुं मधुकैटभौ ६८ ॥

टी० । ऋषि कहते हैं कि हे महाराज सुरथ ! इस तरह उस समय विष्णु भगवान् के जगाने और मधुकैटभ असुर के मारने के वास्ते ब्रह्मा जी ने जब तामसी महाकाली की स्तुति की ६८ ॥

मू० नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्तथोरसः ।
निर्गम्य दर्शने तस्थौ ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ६९ ॥

टी० । तब वह महामाया विष्णुभगवान् के नेत्र और मुख व नासिका और बाहु और हृदय और छाती से निकलकर अव्यक्त याने ईश्वर से जन्मवाले ब्रह्माजी को दर्शन देने के वास्ते बाहर खड़ी होगई ६९ ॥

मू० उत्तस्थौ च जगन्नाथस्तया मुक्तो जनार्द्दनः ।
एकार्णवे हि शयनात्ततः स ददृशे च तौ ७० ॥

टी० । और योगनिद्रा महामाया के छोड़ देने से विष्णुभगवान् शेषशय्या से उठ बैठे और उस एकार्णव में उन दोनों असुरों को देखा और उन दोनों ने भी इनको देखा ७० ॥

मू० मधुकैटभौ दुरात्मानावतिवीर्य्यपराक्रमौ ।
क्रोधरक्तेक्षणावत्तुं ब्रह्माणं जनितोद्यमौ ७१ ॥

टी० । फिर वह दोनों असुर दुरात्मा महाबली पराक्रमी मधुकैटभ क्रोध से आंखें लाल किये हुये ब्रह्माजी को खाने पर मुस्तैद होगये ७१ ॥

मू० समुत्थाय ततस्ताभ्यां युयुधे भगवान् हरिः ।

पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुप्रहरणो विभुः ७२ ॥

टी० । तब भगवान् विष्णु उठ कर उन दोनों असुरोंके साथ बाहुयुद्ध करने लगे और वह बाहुयुद्ध पांच हज़ार वर्ष तक होता रहा ७२ ॥

मू० तावप्यतिबलोन्मत्तौ महामायाविमोहितौ ।
उक्तवन्तौ वरोऽस्मत्तो व्रियतामिति केशवम् ७३ ॥

टी० । तब वे मधुकैटभ भी महामाया की माया में मोहित होकर केशव भगवान् से यह बोले कि हम दोनों तुम्हारे इस युद्धसे बहुत प्रसन्न हुये अब तुम हम से वर मांगो जो मांगोगे हम देंगे ७३ ॥

भगवानुवाच ॥

मू० भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि ।
किमन्येन वरेणात्र एतावद्धि वृतं मम ७४ ॥

टी० । विष्णुभगवान् ने कहा कि जो तुम दोनों प्रसन्न होकर आज मुझे वर देना चाहते हो तो मैं यही वरदान चाहता हूं कि यहां तुम दोनों भी मेरे हाथ से मारे जावो और वरदान से क्या है ७४ ॥

ऋषिरुवाच ॥

मू० वञ्चिताभ्यामिति तदा सर्व्वमापोमयं जगत् ।
विलोक्य ताभ्यां गदितो भगवान् कमलेक्षणः ॥
आवां जहि न यत्रोर्व्वी सलिलेन परिप्लुता ७५ ॥

टी० । मेधा ऋषि कहते हैं कि हे राजा सुरथ ! इस तरह मधुकैटभ विष्णु भगवान् के वाक्य फन्द में आकर और सब जगत् को जलमय देखकर कमलसे नेत्रवाले विष्णुभगवान् से वे दोनों बोले कि जहां पृथ्वी जल में डूबी न हो वहां पर हम को मारो ७५ ॥

ऋषिरुवाच ॥

मू० तथेत्युक्त्वा भगवता शङ्खचक्रगदाभृता ।
कृत्वा चक्रेण वै छिन्ने जघने शिरसी तयोः ७६ ॥

टी० । ऋषि कहते हैं कि इस तरह मधुकैटभ के कहने पर वह शंखचक्रगदाधारी विष्णु भगवान् ने बहुत अच्छा कहकर अपनी जांघ को

विना पानी की जगह समझ कर उसका माथा उसी जांघ पर रख कर सुदर्शन चक्र से काट डाला—विष्णु भगवान् का शरीर पंचतत्त्व से नहीं बना है शुद्ध मायाकृत है ७६ ॥

मू० एवमेषा समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता स्वयम् ।
प्रभावमस्या देव्यास्तु भूयः शृणु वदामि ते ७७ ॥

टी० । इस तरह वह दश भुजावाली महाकाली उत्पन्न हुईहै जिनकी स्तुति ब्रह्माजी ने की है अब फिर इस देवीजी का प्रभाव सुनौ मैं तुम से वर्णन करता हूं जो कि त्रिगुणमयी महालक्ष्मीजी का अवतार हुईहै सो कहता हूं सुनौ ७७ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेसावर्णिकेमन्वन्तरेदेवीमाहात्म्ये
मधुकैटभवधोनामैकाशीतितमोध्यायः ८१ ॥

बयासीवां अध्याय ॥

ऋषिरुवाच ॥

मू० । देवासुरमभूद्युद्धं पूर्णमब्दशतं पुरा ।
महिषेसुराणामधिपे देवानाञ्च पुरन्दरे १ ॥

टी० । मेधाऋषि कहते हैं कि हे सुरथ ! पूर्वकाल में जिससमय असुरों का स्वामी महिषासुर था और देवतों के स्वामी इन्द्र थे उस समय देवतों और असुरों में पूर्ण सौवर्षतक युद्ध हुआ १ ॥

मू० तत्रासुरैर्म्महावीर्य्यैर्देवसैन्यं पराजितम् ।
जित्वा च सकलान्देवानिन्द्रोभून्महिषासुरः २ ॥

टी० । उस युद्धमें बड़े बड़े बली दैत्योंने देवतों की सेनाको जीत लिया और सम्पूर्ण देवतों को जीतकर महिषासुर आप इन्द्र हुआ २ ॥

मू० । ततः पराजितादेवाः पद्मयोनिं प्रजापतिम् ।
पुरस्कृत्यगतास्तत्र यत्रेशगरुडध्वजौ ३ ॥

टी०। तब देवतालोग पराजित होकर ब्रह्मा प्रजापतिके पास गये और फिर ब्रह्माजीको आगे कर जहां विष्णु भगवान् और महादेवजी थे वहां गये ३॥

मू० यथावृत्तं तयोस्तद्वन्महिषासुरचेष्टितम्।
त्रिदशाः कथयामासुर्देवाभिभवविस्तरम् ४॥

टी०। और उनसे उन दोनोंके युद्ध का सब वृत्तान्त जिसतरह महिषासुर देवोंसे विजयपाकर इन्द्र हुआ वह सब देवतोंने कह सुनाया४॥

मू० सूर्य्येन्द्राग्न्यनिलेन्दूनां यमस्य वरुणस्य च।
अन्येषां चाधिकारान्सस्वयमेवाधितिष्ठति ५॥

टी०। और कहा कि सूर्य्य और इन्द्र और अग्नि और वायु और चन्द्रमा और यम और वरुणआदि सब देवतोंका अधिकार महिषासुर आपही कररहा है ५॥

मू० स्वर्गान्निरराकृताः सर्व्वे तेन देवगणाभुवि।
विचरन्ति यथामर्त्यामहिषेण दुरात्मना ६॥

टी०। और सबदेवतोंके गणोंको उसदुरात्मा महिषासुरने स्वर्ग से निकालदिया अब देवतालोग मनुष्योंकी तरह पृथ्वी में मारे २ फिरते हैं ६॥

मू० एतद्वः कथितं सर्व्वममरारिविचेष्टितम्।
शरणञ्च प्रसन्नाः स्मोवधस्तस्य विचिन्त्यताम् ७॥

टी०। हे महाराज! महिषासुरके उत्पातका यह सब हाल विस्तारपूर्व्वक आपको कह सुनाया और हमलोग आपकी शरणागत हैं अब उसमहिषासुर का वध चिंतवन कीजिये॥ ७॥

मू० इत्थं निशम्य देवानां वचांसि मधुसूदनः।
चकार कोपं शंभुश्च भृकुटीकुटिलाननौ ८॥

टी०। देवतोंका यहवचन सुनकर महादेवजी और विष्णुभगवान् बड़े कोपको प्राप्त हुये कि भौहोंकी टेढ़ाईसे जिनके मुख टेढ़े होगये ८॥

मू० ततोऽतिकोपपूर्णस्य चक्रिणोवदनात्ततः।
निश्चक्राम महत्तेजोब्रह्मणः शंकरस्य च ९॥

टी०। तत्पश्चात् उसी कोपसे भरेहुये भगवान् विष्णुके मुखसे एक महातेज निकला फिर उसीतरह ब्रह्माजी और महादेवजीके मुखसे भी निकला॥ ९॥

मू० अन्येषाञ्चैव देवानां शक्रादीनां शरीरतः।
निर्गतं सुमहत्तेजस्तच्चैक्यं समगच्छत १०॥

टी०। फिर इन्द्रादि जितने देवतालोग वहांपर थे उन सबके शरीर से भी तेज निकला और जो तेज निकला वह सब इकट्ठा होगया॥ १०॥

मू० अतीवतेजसः कूटं ज्वलन्तमिव पर्व्वतम्।
ददृशुस्ते सुरास्तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ११॥

टी०। फिर वहां उसतेज को देवतालोग क्या देखते हैं कि वह तेज जलतेहुये पहाड़के समान होगया और ज्वाला उसकी सम्पूर्णदिशाओं के अन्तर में छागई॥ ११॥

मू० अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम्।
एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा १२॥

टी०। फिर वहांपर वही अतुलतेज जो सम्पूर्णदेवतोंके अङ्गसे निकलाथा वह एकमें मिलकर स्त्रीका रूप बनगया जोकि अपने तेजसे तीनोंलोकोंको व्याप्त करलिया उसज्वालामें रजोगुण ब्रह्मा और सतोगुण विष्णु और तमोगुण महादेवजीका तेज भी इकट्ठा होगयाथा इस कारण से वहस्त्री त्रिगुणा अष्टादशभुजासे प्रकट होकर लोकमें महालक्ष्मी कहलाई १२॥

मू० यदभूच्छाम्भवं तेजस्तेनाजायत तन्मुखम्।
याम्येन चाभवन्केशाबाहवोविष्णुतेजसा १३॥

टी०। महादेवजी का जो तेज था उससे उन महालक्ष्मीजी का मुख श्वेत और यम के तेज से शिरके बाल श्यामरूप और विष्णु भगवान् के तेज से श्यामरङ्गवाली उनकी अष्टादश (अठारह) भुजा हुईं १३॥

मू० सौम्येन स्तनयोर्युग्मं मध्यं चैन्द्रेण चाभवत्।
वारुणेन च जङ्घोरू नितम्बस्तेजसा भुवः १४॥

टी०। और चन्द्रमाके तेजसे दोनों स्तन गोरे और इन्द्रके तेजसे

शरीरका मध्यभाग रक्तवर्ण हुआ और वरुणके तेजसे जांघ और उरू और पृथ्वीके तेजसे नितम्ब हुआ १४ ॥

मू० ब्रह्मणस्तेजसा पादौ तदंगुल्योर्कतेजसा।
वसूनां च कराङ्गुल्यः कौबेरेण च नासिका १५ ॥

टी०। और ब्रह्मा के तेजसे दोनोंचरण लाल और सूर्य्यके तेजसे उनके चरणोंकी अंगुलियां हुईं और वसुत्रों के तेजसे दोनों हाथों की अंगुलियां और कुबेरके तेजसे उनकी नासिका हुई १५ ॥

मू० तस्यास्तु दन्ताः सम्भूताः प्राजापत्येन तेजसा।
नयनत्रितयं जज्ञे तथा पावकतेजसा १६ ॥

टी० । और दक्षप्रजापतिके तेजसे उसदेवीके सबदांत उत्पन्नहुये और उसीतरह अग्निके तेजसे तीन आंखें उनकी हुईं १६ ॥

मू० भ्रुवौ च सन्धयोस्तेजः श्रवणावनिलस्य च।
अन्येषां चैव देवानां संभवस्तेजसां शिवा १७ ॥

टी०। और दोनोंसन्ध्याओंके तेजसे उनकी दोनों भौंहें और वायु के तेजसे दोनों कान हुये तात्पर्य्य यह है कि इसीतरह और सबदेवतोंके तेजसे वह महालक्ष्मी शिवा प्रकट हुई १७ ॥

मू० ततःसमस्तदेवानां तेजोराशिसमुद्भवाम्।
तां विलोक्य मुदं प्रापुरमरामहिषार्दिताः १८ ॥

टी०। तत्पश्चात् वह सबदेवतालोग जो महिषासुरके त्राससे अत्यन्तपीडित होरहेथे सम्पूर्णदेवतोंके तेजकी राशिसे उत्पन्न उन महालक्ष्मीजीको देखकर अतिहर्षित हुये १८ ॥

मू० शूलं शूलाद्विनिष्कृष्य ददौ तस्यै पिनाकधृक्।
चक्रं च दत्तवान् कृष्णः समुत्पाट्य स्वचक्रतः १९ ॥

टी०। उससमय महादेवजीने अपने शूलसे एक दूसराशूल और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपने चक्रसे एकचक्र उत्पन्नकरके उनको दिया १९ ॥

मू० शङ्खं च वरुणः शक्तिं ददौ तस्यै हुताशनः।
मारुतोदत्तवांश्चापं बाणपूर्णे तथेषुधी २० ॥

टी०। और वरुणने एक शङ्ख और अग्निने अपनीशक्ति और वायुने धनुष और तीरोंसे भरेहुये दोतर्कश उनको दिये २०॥

मू० वज्रमिन्द्रः समुत्पाट्य कुलिशादमराधिपः।
ददौ तस्यै सहस्राक्षोघण्टामैरावताद्गजात् २१॥

टी०। और देवतोंके पति हजारआंखोंवाले इन्द्रने अपने वज्रसे एक वज्र और ऐरावतहाथी से उतारकर घण्टा महालक्ष्मीजीको दिया २१॥

मू० कालदण्डाद्यमोदण्डं पाशं चाम्बुपतिर्ददौ।
प्रजापतिश्चाक्षमालां ददौ ब्रह्मा कमण्डलुम् २२॥

टी०। और यमराजने अपने कालदण्डसे एक दण्ड और वरुणने फाँस और प्रजापति (ब्रह्मा) ने रुद्राक्षमाला और कमण्डलु दिया २२॥

मू० समस्तरोमकूपेषु निजरश्मीन्दिवाकरः।
कालश्च दत्तवान्खड्गं तस्याश्चर्म्म च निर्म्मलम् २३॥

टी०। और सूर्य्यने उनके सम्पूर्णरोमकूपोंमें अपनी किरणोंको भरदिया और उसको कालने खड्ग और एक अमल ढाल दिया २३॥

मू० क्षीरोदश्चामलं हारमजरे च तथाम्बरे।
चूडामणिं तथा दिव्यं कुण्डले कटकानि च २४॥

टी०।औरक्षीरसमुद्रने एक बहुत अच्छा हार और कभी फटे नहीं ऐसे दिव्याम्बर और दिव्य चूडामणि अर्थात् शिरके भूषणके वास्ते रत्न दिया और दोनों कानों के कुण्डल और पहुँची २४॥

मू० अर्द्धचन्द्रं तथा शुभ्रं केयूरान्सर्व्वबाहुषु।
नूपुरौ विमलौ तद्वद्ग्रैवेयकमनुत्तमम् २५॥

टी०। और अर्द्धचन्द्रमाके समान स्वच्छललाटका भूषण और अठारहों बाहुमें बिजायट और बाजूबन्द और दोनों चरणोंमें नूपुर और गले का उत्तम कण्ठा २५॥

मू० अंगुलीयकरत्नानि समस्तास्वंगुलीषु च।
विश्वकर्म्मा ददौ तस्यै परशुं चातिनिर्म्मलम् २६॥

टी० । और सब अंगुलियों में रत्नोंसे जड़ाऊ अंगूठी उनको विश्वकर्म्माने दिया और अतिनिर्म्मल फरसा दिया २६ ॥

मू० अस्त्राण्यनेकरूपाणि तथा भेद्यं च दंशनम् ।
अम्लानपङ्कजां मालां शिरस्युरसि चापराम् २७ ॥

टी० । और और भी अनेकप्रकारके अस्त्रशस्त्रादि और अभेद दंशन अर्थात् किसी हथियारसे नहीं काटनेयोग्य बख्तर भी दिया और शिर और गले में पहिरनेके वास्ते बिनकुंभिलायेहुए कमलों की माला २७ ॥

मू० अददज्जलधिस्तस्यै पङ्कजं चातिशोभनम् ।
हिमवान् वाहनं सिंहं रत्नानि विविधानि च २८ ॥

टी० । और हाथमें रखनेके वास्ते अतिशोभायमान कमल उनको जलधि याने समुद्र ने दिया और हिमवान्पर्व्वतने हरतरहके रत्न और सवारीके वास्ते सिंह दिया २८ ॥

मू० ददावशून्यं सुरया पानपात्रं धनाधिपः ।
शेषश्च सर्व्वनागेशोमहामणिविभूषितम् २९ ॥

टी० । और कुबेरने सुरासे भराहुआ पीनेका पात्र दिया और शेषजी जो सबनागोंके पति और पृथ्वीको शिरपर उठायेहुये हैं उन्होंने रत्नजटित २९ ॥

मू० नागहारं ददौ तस्यै धत्ते यः पृथिवीमिमाम् ।
अन्यैरपि सुरैर्देवी भूषणैरायुधैस्तथा ३० ॥

टी० । नागहार उसके लिये दिया इनमहालक्ष्मीकी तो अठारह भुजा तो विशेष मैंने वर्णनकिये परन्तु हथियारोंके धारणकरनेसे हजार भुजा होती हैं इसमें अष्टादशभुजा उनका विशेषरूप हैं ब्राह्मी और वैष्णवी और शैवी ये त्रिगुणा महालक्ष्मीआदिशक्तिकी अवतार हैं यह सब विस्तारपूर्व्वक वैकृतरहस्यमें लिखाहै फिर वह देवी देवतोंकरके बहुतहथियारों और भूषणोंसे ३० ॥

मू० सम्मानिता ननादोच्चैः साट्टहासं मुहुर्मुहुः ।
तस्यानादेन घोरेण कृत्स्नमापूरितं नभः ३१ ॥

टी० । आदर कीगई व वारंवार प्रसन्नतासे बड़ेउच्चस्वरसे गर्ज-

संयुक्त हँसी उसके घोरगर्जनसे सम्पूर्णलोक दहलगये किन्तु उनके महाशब्दसे समस्तआकाश भरगया ३१ ॥

मू० अमायतातिमहता प्रतिशब्दोमहानभूत्।
चुक्षुभुः सकलालोकाः समुद्राश्च चकम्पिरे ३२ ॥

टी०। जिस बड़ेभारी शब्दसे बड़ीभारी प्रतिध्वनि हुई व सबलोकों में हलचल पड़गया और सातोंसमुद्र कांपनेलगे ३२ ॥

मू० चचाल वसुधा चेलुः सकलाश्च महीधराः।
जयेति देवाश्च मुदा तामूचुः सिंहवाहिनीम् ३३ ॥

टी०। और सम्पूर्णपृथ्वी हिलगई व पर्व्वत सब डोलगये यह देखकर देवतालोग हर्षसंयुक्त उससिंहवाहनी महालक्ष्मीसे यह बोले कि हे देवीजी! आपकी जयहो ३३ ॥

मू० तुष्टुवुर्मुनयश्चैनां भक्तिनम्रात्ममूर्त्तयः।
दृष्ट्वा समस्तं संक्षुब्धं त्रैलोक्यममरारयः ३४ ॥

टी०। इसीतरह मुनिलोगभी भक्तिपूर्व्वक देवीजीको प्रणामकर उनकी स्तुति करनेलगे और दैत्योंने समस्ततीनोंलोकों को क्षुभित देखकर ३४ ॥

मू० सन्नद्धाखिलसैन्यास्ते समुत्तस्थुरुदायुधाः।
आः किमेतदितिक्रोधादाभाष्य महिषासुरः ३५ ॥

टी०। और सब दैत्यलोग व उनकी सेना अपने अपने अस्त्र शस्त्र ले लेकर युद्धकरनेके वास्ते उपस्थित होगये और महिषासुर भी मारेक्रोधके आः! यह क्या बात है ऐसा कह कर ३५ ॥

मू० अभ्यधावत तं शब्दमशेषैरसुरैर्वृतः।
सददर्श ततोदेवीं व्याप्तलोकत्रयां त्विषा ३६ ॥

टी०। सबअसुरों को साथलेकर जिसतरफसे गर्जनेकी आवाज आतीथी उसीतरफ दौड़ा और वहां जाकर उसकेबाद महालक्ष्मीको देखा कि उनकी ज्योति तीनोंलोकोंमें फैल रही है ३६ ॥

मू० पादाक्रान्त्या नतभुवं किरीटोल्लिखिताम्बराम्।

क्षोभिताशेषपातालां धनुर्ज्यानिःस्वनेन ताम् ३७ ॥

टी०। और उनके चलनेसे पृथ्वी झुकगईहै और उनके शिरके किरीटसे सम्पूर्णआकाश लिखित याने चिह्नित होरहा है और उनके धनुषके खींचनेकी आवाजसे सम्पूर्णलोक और पाताल डोलरहेहैं ३७॥

मू० दिशोभुजसहस्रेण समन्ताद्व्याप्यसंस्थिताम्।
ततः प्रववृते युद्धं तया देव्या सुरद्विषाम् ३८ ॥

टी०। और आप भगवती अपने हज़ारों भुजासे सब दिशाओंको व्याप्तकरके विराजमान होरही हैं उसकेबाद ऐसारूप उनका देखकर दैत्यलोगोंका उनदेवीसे युद्ध होनेलगा ३८ ॥

मू० शस्त्रास्त्रैर्बहुधामुक्तैरादीपितदिगन्तरम्।
महिषासुरसेनानीश्चिक्षुराख्योमहासुरः ३९ ॥

टी०। उसयुद्धमें सबतरहके हथियार चलनेकी चमकसे सब दिशा प्रकाशमान होरहीथीं उससमय महिषासुरके सेनापति चिक्षुरनाम महाअसुरने भगवतीसे बहुत युद्ध किया ३६ ॥

मू० युयुधे चामरश्चान्यैश्चतुरङ्गबलान्वितः।
रथानामयुतैः षड्भिरुदग्राख्योमहासुरः ४० ॥

टी०। और चामरनाम असुरभी बहुतसे शूरवीर राक्षसोंकी चतुरंगिणी सेना साथ लेकर बहुत लड़ा और उदग्रनाम महाअसुर साठहजार रथ अपने साथ लेकर युद्ध करनेके वास्ते आया ४०॥

मू० अयुध्यतायुतानां च सहस्रेण महाहनुः।
पञ्चाशद्भिश्च नियुतैरसिलोमा महासुरः ४१ ॥

टी०। और महाहनुनाम असुर करोड़सेना लेकर देवीके साथ लड़ा और असिलोमनाम महाअसुरने पांचकरोड़ सेना लेकर युद्धकिया ४१ ॥

मू० अयुतानां शतैः षड्भिर्वाष्कलोयुयुधे रणे।
गजवाजिसहस्रौघैरनेकैः परिवारितः ४२ ॥

टी०। और वाष्कलनाम असुर साठलाख असुर लेकर रणमें आया और युद्धकिया और बिडालनाम असुर कितनेहज़ार हाथी और घोड़ोंसे घिरा हुआ ४२ ॥

मू० द्धनोरथानां कोटया च युद्धे तस्मिन्नयुध्यत।
बिडालाख्योयुतानां च पञ्चाशद्भिरथायुतैः ४३॥

टी०। और एककरोड़ रथ साथ लेकर आया और उसयुद्धमें लड़ाई किया निदान जब सबसेना उसकी मरगई तो फिर पांचलाख रथ अपने साथ लेकर ४३॥

मू० युयुधे संयुगे तत्र रथानां परिवारितः।
अन्ये च तत्रायुतशोरथनागहयैर्वृताः ४४॥

टी०। उससंग्राममें आया और युद्ध किया और भी उसयुद्धमें दश दश हजार रथ और हाथी और घोड़े साथमें लिये हुये ४४॥

मू० युयुधुः संयुगे देव्या सह तत्र महासुराः।
कोटिकोटिसहस्रैस्तु रथानां दन्तिनां तथा ४५॥

टी०। कितने महाअसुरोंने देवीसे उससंग्राममें युद्धकिया तदनन्तर कोटि कोटि सहस्र रथ और हाथी ४५॥

मू० हयानां च वृतोयुद्धे तत्राभून्महिषासुरः।
तोमरैर्भिन्दिपालैश्च शक्तिभिर्मुशलैस्तथा ४६॥

टी०। और घोड़े साथ लेकर उसरणमें महिषासुर आया और तो-मर और भिंदिपाल और शक्ति और मुशल ४६॥

मू० युयुधे संयुगे देव्या खड्गैः परशुपट्टिशैः।
केचिच्च चिक्षिपुः शक्तीः केचित्पाशांस्तथापरे ४७॥

टी०। और खड्ग और फरसा और किर्च इत्यादि हथियारोंसे भगवती के साथ लड़नेलगा और कोई असुर तो शक्ति और कोई फरसा इत्यादि चलाते थे ४७॥

मू० देवी खड्गप्रहारैस्तु ते तां हन्तुं प्रचक्रमुः।
सापि देवी ततस्तानि शस्त्राण्यस्त्राणि चण्डिका ४८॥

टी०। और और भी नामी असुरलोग देवीके ऊपर मारनेके लिये खड्ग इत्यादि चलाते थे परन्तु उसचण्डिका देवीने भी उन असुरोंके शस्त्रों और अस्त्रों को ४८॥

मू० लीलयैव प्रचिच्छेद निजशस्त्रास्त्रवर्षिणी।
अनायस्तानना देवी स्तूयमाना सुरर्षिभिः ४९॥

टी०। बेपरवाई के साथ खेल की तरह अपने हथियारों की वर्षा से काटकर खण्ड खण्डकर डाला तब देवर्षिलोग आकर बिन परिश्रम मुख वाली देवीजी की स्तुति करने लगे ४६॥

मू० मुमोचासुरदेहेषु शस्त्राण्यस्त्राणि चेश्वरी।
सोपि क्रुद्धो धुतसटो देव्या वाहनकेशरी ५०॥

टी०। और देवीजी उन असुरोंके अस्त्र शस्त्र को काट कर उन लोगों के शरीरों के ऊपर अपने हथियारों को छोड़ने लगीं और उनका वाहन सिंह भी क्रोध से गले के बालों को कँपा कर ५०॥

मू० चचारासुरसैन्येषु वनेष्विव हुताशनः।
निःश्वासान्मुमुचे यांश्च युध्यमाना रणेम्बिका ५१॥

टी०। जिस तरह अग्नि चारों तरफ फैल कर जंगलको जलाकर छार कर देती है उसी तरह असुरों की सेना में वह सिंह विचरने लगा और असुरों को मार मार कर गिरानेलगा और उस समय युद्ध करनेवाली अंबिका देवी जितने श्वासों को छोड़ा ५१॥

मू० त एव सद्यः संभूता गणाः शतसहस्रशः।
युयुधुस्ते परशुभिर्भिन्दिपालासिपट्टिशैः ५२॥

टी०। वेही लाखोंगण उत्पन्न हुये और वे लोग फरसा और भिन्दिपाल और तलवार तेगा किर्च इत्यादि से असुरों के साथ युद्ध करने लगे५२॥

मू० नाशयन्तोसुरगणान्देवीशक्त्युपबृंहिताः।
अवादयन्त पटहान् गणाः शङ्खांस्तथापरे ५३॥

टी०। और असुरों को मारने लगे देवी के प्रभाव से प्रसन्न होकर गणलोग खुशीका नगारा और कोई शंख बजाने लगे ५३॥

मू० मृदङ्गांश्च तथैवान्ये तस्मिन्युद्धमहोत्सवे।
ततो देवी त्रिशूलेन गदया शक्तिवृष्टिभिः ५४॥

टी०। और कोई उस रण के महाउत्सव में मृदंग बजातेथे तब देवी ने त्रिशूल और गदा और शक्तियों की वृष्टिसे ५४॥

मू० खड्गादिभिश्च शतशो निजघान महासुरान् ।
पातयामास चैवान्यान्घण्टास्वनविमोहितान् ५५ ॥

टी० । और खड्ग इत्यादि से लाखों असुरों को मारडाला और कितनों को घण्टे के शब्द से मोहित कर पृथ्वी पर गिरा दिया ५५ ॥

मू० असुरान्भुवि पाशेन बद्ध्वाचान्यानकर्षयत् ।
केचिद्द्विधाकृतास्तीक्ष्णैः खड्गपातैस्तथापरे ५६ ॥

टी० । और कितने दैत्योंको पाश में बांध कर खींच लिया और कितने दैत्यों को पैनी तीक्ष्ण तलवार की चोटों से दो खण्ड कर डाला ५६ ॥

मू० विपोथिता निपातेन गदया भुवि शेरते ।
वेमुश्च केचिद्रुधिरं मुशलेन भृशं हताः ५७ ॥

टी० । मर्दन किये हुये और कितने उस गदा की मार से पृथ्वी पर अचेत हो पड़े थे और कितने वारंवार मूशल की बहुत मार से रक्त वमन करते थे ५७ ॥

मू० केचिन्निपतिता भूमौ भिन्नाः शूलेन वक्षसि ।
निरन्तराः शरौघेण कृताः केचिद्रणाजिरे ५८ ॥

टी० । और कितने छातीमें शूल के घाव लगने से कटे हुये पृथ्वी पर गिर पड़े और कितनें बाणों के घाव लगने से उस रणाजिरमें निरन्तर मरे पड़े थे ५८ ॥

मू० सेनानुकारिणः प्राणान् मुमुचुस्त्रिदशार्दनाः ।
केषाञ्चिद्बाहवश्छिन्नाश्छिन्नग्रीवास्तथापरे ५९ ॥

टी० । और जो असुर लोग उस रण में सेनाके आगे आगे चलते थे वे लोग कितने तो बाणों के लगने से मर गये और कितनों की भुजा कट-गईं और कितनों का गला कटगया ५९ ॥

मू० शिरांसि पेतुरन्येषामन्ये मध्ये विदारिताः ।
विच्छिन्नजङ्घास्त्वपरे पेतुरुर्व्यां महासुराः ६० ॥

टी० । और कितनों के शिर कटकर गिरपड़े और कितने दैत्यलोग आधे धड़ से कटकर मरगये और कितने महासुर जांघ कटजाने से पृथ्वी पर गिरे पड़े थे ६० ॥

मू० एकबाह्वक्षिचरणाः केचिद्देव्या द्विधा कृताः।
छिन्नेपि चान्ये शिरसि पतिताः पुनरुत्थिताः ६१ ॥

टी०। और कितने दैत्यों की एकही बांह और एक आंख और एकही पांव कटगया था ऐसा देवी ने काटकर दो खण्ड करदिया था और कितने शिर कटजाने पर भी गिर कर फिर उठके ६१ ॥

मू० कबन्धा युयुधुर्देव्या गृहीतपरमायुधाः।
ननृतुश्चापरे तत्र युद्धे तूर्यलयाश्रिताः ६२ ॥

टी०। कबन्ध उत्तम हथियार लेकर देवीसे युद्ध करतेथे और कितने उस युद्ध में तुरही की लय के साथ नृत्य करते थे ६२ ॥

मू० कबन्धाश्छिन्नशिरसः खड्गशक्त्यृष्टिपाणयः।
तिष्ठतिष्ठेतिभाषन्तो देवीमन्ये महासुराः ६३ ॥

टी०। और कितने असुरों के शिर तो कटगये थे परन्तु वे कबन्ध खड्ग और शक्ति और ऋष्टि जिसके दोनों तरफ़ धार होती है उसे हाथ में लिये हुये जिन्होंने मस्तक काटा था उनसे युद्ध करनेलगे व तिष्ठ तिष्ठ ऐसा भगवती से कहते हुये अन्य महासुर युद्ध कर रहे थे ६३ ॥

मू० पातितै रथनागाश्वैरसुरैश्च वसुन्धरा।
अगम्या साभवत्तत्र यत्राभूत्स महारणः ६४ ॥

टी०। जिस पृथ्वी पर देवी से वह महायुद्ध हुआ था वह हाथी और घोड़ों और रथ और असुरों के कटने से अगम्य होगई ६४ ॥

मू० शोणितौघा महानद्यः सद्यस्तत्र विसुस्रुवुः।
मध्ये चासुरसैन्यस्य वारणासुरवाजिनाम् ६५ ॥

टी०। वहां उस दैत्य सेनाके मध्यमें उसीक्षण हाथी और घोड़ों और असुरोंके रुधिरके प्रवाहवाली बड़े जोर शोरसे बड़ीनदियां बहनिकलीं ६५॥

मू० क्षणेन तन्महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका।
निन्ये क्षयं यथा वह्निस्तृणदारुमहाचयम् ६६ ॥

टी०। और जिस तरह सूखे हुये तृण और काठ के बड़े ढेर को अग्नि बहुत जल्द जलादेती है उस तरह अम्बिका देवी ने असुरों की उस महासेनाको एक क्षणमात्र में नाश करडाला ६६ ॥

मू० स च सिंहो महानादमुत्सृजन्धुतकेशरः ।
शरीरेभ्योऽमरारीणामसूनिव विचिन्वति ६७ ॥

टी० । और वह सिंह देवी का वाहन गले के बालों को हिलाताहुआ व बहुत गर्जकर दैत्योंके देहों से प्राणों को मानो ढूंढ़रहाहै ६७ ॥

मू० देव्या गणैश्च तैस्तत्र कृतं युद्धं तथासुरैः ।
यथैषान्तुष्टुवुर्देवाः पुष्पवृष्टिमुचो दिवि ६८ ॥

टी० । और वहां उसीतरह देवी के वे गणलोग असुरों से युद्ध करते थे कि जिसतरह उन के ऊपर देवता लोग आकाशसे सुमनवृष्टि करते थे व स्तुति करते थे ६८ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेसावर्णिकेमन्वन्तरेदेवीमाहात्म्येमहिषासुरसैन्यवधोनाम द्व्यशीतितमोध्यायः ८२ ॥

अथ तिरासीवां अध्याय ॥

ऋषिरुवाच ॥

मू० निहन्यमानं तत्सैन्यमवलोक्य महासुरः ।
सेनानीश्चिक्षुरःकोपाद्ययौयोद्धुमथाम्बिकाम् १ ॥

टी० । मेधा ऋषि बोले कि हे महाराज सुरथ ! महिषासुर के सेनापति चिक्षुरनाम महाअसुर ने जब उस सेनाको नाश होतेहुये देखा तब बड़े क्रोधसे आप अम्बिका देवी के सम्मुख युद्ध करने को आया १ ॥

मू० स देवीं शरवर्षेण ववर्ष समरेऽसुरः ।
यथा मेरुगिरेःशृङ्गं तोयवर्षेण तोयदः २ ॥

टी० । और जैसे मेघ मेरु पर्व्वत के कँगूराके ऊपर जल वर्षाता है वैसेही वह असुर युद्ध में देवीके ऊपर बाणोंकी वृष्टि करने लगा २ ॥

मू० तस्यच्छित्त्वाततो देवी लीलयैवशरोत्करान् ।
जघानतुरगान् बाणैर्यन्तारञ्चैव वाजिनाम् ३ ॥

टी० । उसके बाद देवी ने अपने बाणोंसे उसके बाणों को खेलकी तरह काटकर और उसके घोड़े को भी कोचवान सहित मारडाला ३ ॥

मू० चिच्छेद च धनुस्सद्यो ध्वजं चातिसमुच्छ्रितम् ।
विव्याध चैव गात्रेषु छिन्नधन्वानमाशुगैः ४ ॥

टी० । और शीघ्रही उसके धनुष और रथ के बड़े ऊँचे ध्वजाको भी काटडाला और फिर अपने बाणों से उसके सारे शरीर को छेदडाला कि जिसका धन्वा कटगया है ४ ॥

मू० सच्छिन्नधन्वाविरथो हताश्वो हतसारथिः ।
अभ्यधावतताँ देवीं खड्गचर्म्मधरोसुरः ५ ॥

टी० । परन्तु वह असुर धनुष और रथ और घोड़ा और सारथी के कटजाने पर भी ढाल तलवार लेकर उस देवी के सामने दौड़ा ५ ॥

मू० सिंहमाहत्य खड्गेन तीक्ष्णधारेण मूर्द्धनि ।
आजघान भुजे सव्ये देवीमप्यतिवेगवान् ६ ॥

टी० । और तीक्ष्ण धारवाले खड्ग से सिंह के शिर पर मारकर बड़े वेगवाले दैत्य ने जल्दी से एक वार देवी के भी बायें भुजा पर किया ६ ॥

मू० तस्याःखड्गो भुजं प्राप्य पफाल नृपनन्दन ।
ततो जग्राह शूलं सकोपादरुणलोचनः ७ ॥

टी० । ऋषि कहते हैं कि हे सुरथ ! वह खड्ग उसका देवी की भुजा पर पड़ने से खण्ड खण्ड होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा तब उस असुर ने क्रोध से लाल नेत्र करके शूल को उठालिया ७ ॥

मू० चिक्षेप च ततस्तत्तु भद्रकाल्यां महासुरः ।
जाज्वल्यमानंतेजोभीरविबिम्बमिवाम्बरात् ८ ॥

टी० । और महादैत्य ने वह शूल देवी पर चलाया तब वह शूल आकाश से सूर्य्यबिम्ब के समान तेजोंसे सम्पूर्ण दिशाओं को प्रकाशमान करता हुआ भद्रकाली के ऊपर चला ८ ॥

मू० दृष्ट्वातदापतच्छूलं देवीशूलममुञ्चत ।
तच्छूलं शतधा तेन नीतंसचमहासुरः ९ ॥

टी० । तब भगवती ने उस शूल को अपनी तरफ आते हुये देखकर अपने शूल से उस शूल के सैकड़ों टुकड़े करडाले और उस असुरको भी मारडाला ९ ॥

मू० हतेतस्मिन् महावीर्ये महिषस्य चमूपतौ।
आजगाम गजारूढश्चामरस्त्रिदशार्दनः १० ॥

टी०। महिषासुरके उस महापराक्रमी सेनापति के मरने के बाद देवतोंको क्लेश देनेवाला चामर नाम असुर हाथीपर सवार होकर देवी से युद्ध करने के वास्ते सम्मुख आया १० ॥

मू० सोपि शक्तिं मुमोचाथ देव्यास्तामम्बिका द्रुतम्।
हुङ्काराभिहतां भूमौ पातयामास निष्प्रभाम् ११ ॥

टी०। और वह भी देवी के ऊपर शक्ति चलाया तब देवी ने शीघ्रही उस शक्ति के तेज को भी उसीसमय हुंकार शब्द से हरण करके पृथ्वी पर गिरा दिया ११ ॥

मू० भग्नां शक्तिं निपतितां दृष्ट्वा क्रोधसमन्वितः।
चिक्षेप चामरः शूलं बाणैस्तदपि साच्छिनत् १२ ॥

टी०। तब चामर ने अपनी शक्ति को टूटीहुई देखकर क्रोधकरके देवी के ऊपर अपना शूल चलाया परन्तु उन देवी ने उसको भी अपने बाणों से काटडाला १२ ॥

मू० ततः सिंहः समुत्पत्य गजकुम्भान्तरेस्थितः।
बाहुयुद्धेन युयुधे तेनोच्चैस्त्रिदशारिणा १३ ॥

टी०। उसके बाद सिंह जो देवीका वाहन था वह कूदकर हाथी के मस्तक पर जिस पर वह असुर सवार था गया और वहीं पर उस असुर से बाहुयुद्ध करने लगा १३ ॥

मू० युध्यमानौ ततस्तौतु तस्मान्नागान्महीं गतौ।
युयुधातेतिसंरब्धौ प्रहारैरतिदारुणैः १४ ॥

टी०। उसके बाद वह असुर और सिंह दोनों लड़ते हुये उस हाथी से पृथ्वी पर आये और बड़े क्रोधित होकर अत्यन्त दारुण प्रहारों से युद्ध करने लगे १४ ॥

मू० ततो वेगात्खमुत्पत्य निपत्य च मृगारिणा।
करप्रहारेण शिरश्चामरस्य पृथक्कृतम् १५ ॥

टी० । उस के बाद सिंहने वेगसे आकाश में कूदकर और सामने जाकर एक ऐसा तमाचा मारा कि उस चामर असुर का शिर धड़ से अलग होगया १५ ॥

मू० उदग्रश्चरणे देव्या शिलावृक्षादिभिर्हतः ।
दन्तमुष्टितलैश्चैव करालश्च निपातितः १६ ॥

टी० । तत्पश्चात् उदग्रनामक दैत्य ने युद्ध किया उसको भी देवी ने युद्धमें शिला और वृक्ष इत्यादि लेकर ऐसा मारा कि वह भी मरगया तब कराल नाम असुर आया उसको भी देवी ने दांत और मुष्टि और चपेटों से मारडाला १६ ॥

मू० देवी क्रुद्धा गदापातैश्चूर्णयामास चोद्धतम् ।
बाष्कलं भिन्दिपालेन बाणैस्ताम्रं तथान्धकम् १७ ॥

टी० । इसके उपरान्त उद्धतनाम असुर आया उसको भी देवी ने क्रोध संयुक्त गदा से मारकर चूर्ण करदिया तब बाष्कल नाम असुर आया उसे भिन्दिपाल से मारडाला फिर ताम्र और अन्धक नाम असुर आये उनको भी बाणों से देवी ने मारडाला १७ ॥

मू० उग्रास्यमुग्रवीर्य्यञ्च तथैवच महाहनुम् ।
त्रिनेत्रा च त्रिशूलेन जघान परमेश्वरी १८ ॥

टी० फिर उग्रास्य और उग्रवीर्य्य और महाहनुनाम असुरों को भी त्रिनेत्रा याने तीन नयनोंवाली परमेश्वरी ने त्रिशूलसे मारडाला १८ ॥

मू० बिडालस्यासिना कायात्पातयामास वै शिरः ।
दुर्द्धरं दुर्मुखं चोभौ शरैर्निन्ये यमक्षयम् १९ ॥

टी० । बाद इसके बिडाल नाम दैत्य आया उसका भी शिर देवीने खड्ग से काटकर देह से गिरादिया फिर दुर्धर और दुर्मुख नाम दोनों असुरों को बाणों से मारकर यमलोक में भेज दिया १९ ॥

मू० एवं संक्षीयमाणे तु स्वसैन्ये महिषासुरः ।
माहिषेण स्वरूपेण त्रासयामास तान्गणान् २० ॥

टी० । जब इसप्रकार से महिषासुर की सेना नाश होगई तब महिषासुर ने आप महिषरूप धारण करके भगवतीके उन गणों को मारकर व्याकुल करदिया २० ॥

मू० कांश्चित्तुण्डप्रहारेण खुरक्षेपैस्तथापरान्।
लाङ्गूलताडितांश्चान्याञ्छृङ्गाभ्याञ्च विदारितान्२१

टी०। कितनों को तो तुण्ड अर्थात् थूथुन के प्रहारसे और कितनों को टाप फेंककर और कितनों को पूंछकी मारसे और कितनोंको सींगों से फाड़कर मारडाला २१॥

मू० वेगेन कांश्चिदपरान्नादेन भ्रमणेन च।
निःश्वासपवनेनान्यान् पातयामास भूतले २२॥

टी०। और कितनों को अपनी शीघ्रगामी चाल से और कितनों को अपने गर्जन शब्द से और कितनों को भ्रमण से और कितनों को श्वास की वायु से पृथ्वी पर गिरादिया २२॥

मू० निपात्य प्रमथानीकमभ्यधावत सोऽसुरः।
सिंहंहन्तुं महादेव्याः कोपं चक्रे ततोम्बिका २३॥

टी०। इसतरह पहिले गणों की सेना को पृथ्वी पर गिराकर फिर अम्बिका महादेवीके सिंहको मारने के वास्ते वह महिषासुर दौड़ा तब तो अम्बिका देवी के अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ २३॥

मू० सोपिकोपान्महावीर्य्यःखुरक्षुण्णमहीतलः।
शृङ्गाभ्यां पर्व्वतानुच्चांश्चिक्षेपच ननादच २४॥

टी०। और वह महापराक्रमी महिषासुर भी कोप करके अपने खुरों से पृथ्वी को खोदता हुआ सींगों से बड़े २ ऊंचे पर्वतों को उखाड़कर फेंका और गर्जा २४॥

मू० वेगभ्रमणविक्षुण्णा मही तस्य व्यशीर्य्यत।
लाङ्गूलेन हतश्चाब्धिः प्लावयामास सर्व्वतः २५॥

टी०। और उसके पैंतरे के धमकसे पृथ्वी फटगई और उसके पूंछके हिलाने से समुद्र उबलकर जल से सब ओर डुबाने लगा २५॥

मू० धुतशृङ्गविभिन्नाश्च खण्डंखण्डंययुर्घनाः।
श्वासानिलास्ताः शतशोनिपेतुर्नभसोऽचलाः २६॥

टी०। और उसके सींग हिलाने से घन अर्थात् बादल फटकर खण्ड

खण्डहोगया और उसके श्वासकी प्रबल पवन चलने से सैकड़ों पर्वत उखड़ उखड़कर आकाशकोगये व आकाशसे पृथ्वीके ऊपर गिरपड़े २६ ॥

मू० इति क्रोधसमाध्मातमापतन्तं महासुरम् ।
दृष्ट्वा सा चण्डिका कोपं तद्वधाय तदाकरोत् २७ ॥

टी० । इसप्रकार क्रोधसंयुक्त महिषासुरको आतेहुये देखकर उस दैत्य के मारने के लिये उसवक्त चण्डिका देवीने अत्यन्त कोप किया २७ ॥

मू० सा क्षिप्त्वा तस्य वै पाशं तं बबन्ध महासुरम् ।
तत्याज माहिषं रूपं सोपि बद्धोमहामृधे २८ ॥

टी० । तब देवी ने उसके ऊपर पाश (फँसरी) फेककर उस महाअसुरको बाँध लिया तब बंधेहुये भी उस असुर ने महायुद्ध में महिषरूप अपना छोड़ दिया २८ ॥

मू० ततःसिंहोभवत्सद्योयावत्तस्याम्बिकाशिरः ।
छिनत्ति तावत्पुरुषः खड्गपाणिरदृश्यत २९ ॥

टी० । और उसके बाद जल्दी से सिंहका रूप धारण करलिया फिर जबतक अम्बिकादेवी उसके शिरकाटने का यत्न करनेलगीं तबतक वह पुरुषरूप होकर खड्ग हाथ में लेकर सम्मुख देखपड़ा २९ ॥

मू० ततएवाशु पुरुषं देवी चिच्छेद सायकैः ।
तं खड्गचर्म्मणा सार्द्धं ततः सोभून्महागजः ३० ॥

टी० । तब जल्दी से ढाल तलवार समेत उस पुरुषरूपी महिषासुर को देवीने अपने बाणों से काटडाला तब उसने उस रूप को भी छोड़कर बड़ेभारी हाथी का रूप धारण करलिया ३० ॥

मू० करेण च महासिंहं तं चकर्ष जगर्ज च ।
कर्षतस्तु करं देवी खड्गेन निरकृन्तत ३१ ॥

टी० । और सूंड़से उस महासिंहको खैंचा और गरजा तब देवी ने अपने खड्ग से उस खैंचतेहुये की सूंड़को काटडाला ३१ ॥

मू० ततोमहासुरोभूयोमाहिषं वपुरास्थितः ।
तथैव क्षोभयामास त्रैलोक्यं सचराचरम् ३२ ॥

टी०। फिर उस महाअसुरने पहिलेकीतरह महिषरूप धारण करलिया व उसीतरह तीनों लोकोंके चराचर जीवोंको क्षोभित करनेलगा ३२॥

मू० ततः क्रुद्धा जगन्माता चण्डिका पानमुत्तमम्।
पपौ पुनः पुनश्चैव जहासारुणलोचना ३३॥

टी० उसके बाद जगत्की माता चण्डिका देवी महिषासुर को शिव का अवतार समझकर उसके मारने में दया और लज्जा करके सहम जाती थीं इसवास्ते क्रोधकरके वारंवार मदिरापान करनेलगीं उस मदिरा के पीने से आँखें लाल होगईं और जोर से हँसनेलगीं ३३॥

मू० ननर्द चासुरः सोपि बलवीर्य्यमदोद्धतः।
विषाणाभ्याञ्च चिक्षेप चण्डिकाम्प्रति भूधरान् ३४॥

टी०। और वह असुरभी अपने बल व वीर्य (उत्साह) के घमण्ड से गरजने लगा और सींगों से पहाड़ों को उठाउठाकर देवी के ऊपर फेंकने लगा ३४॥

मू० सा च तान्प्रहितांस्तेन चूर्णयन्ती शरोत्करैः।
उवाच तं मदोद्धूतमुखरागाकुलाक्षरम् ३५॥

टी०। पर उस चण्डिकाने उसके फेकेहुये पहाड़ों को अपने बाणों से चूर्णकरतीहुई और मदिराके नशे में बहुत मुँह लाल किये हुई लुरखरातेहुये अक्षरों से महिषासुर से कहने लगीं ३५॥

देव्युवाच॥

मू० गर्ज गर्ज क्षणं मूढ मधु यावत् पिबाम्यहम्।
मया त्वयि हतेत्रैव गर्जिष्यन्त्याशु देवताः ३६॥

टी०। देवी ने कहा कि हे मूढ! क्षणमात्र और तू गरज ले जबतक मैं मदिरा पानकरतीहूं तदनन्तर इसी स्थान पर मैं तुझे मारूंगी और तेरे मारेजानेपर तुरन्तही यहींपर देवतालोग गरजैंगे ३६॥

ऋषिरुवाच॥

मू० एवमुक्त्वा समुत्पत्य सारूढा तं महासुरम्।
पादेनाक्रम्य कण्ठे च शूलेनैनमताडयत् ३७॥

टी०। मेधाऋषि कहते हैं कि हे सुरथ! इसतरह देवी कहकहकर शीघ्रही उस महिषरूप महिषासुर के ऊपर कूदकर चढ़गई और पांव से दबाकर उसके कण्ठ में एकशूल मारा ३७॥

मू० ततः सोपि पदाक्रान्तस्तया निजमुखात्ततः।
अर्द्धनिष्क्रान्तएवासीद्देव्या वीर्य्येण संवृतः ३८॥

टी०। तब महिषासुर भगवती के पाँवतले दबाहुआ भी शूललगने पर अपना महिषस्वरूप छोड़कर पुरुषरूप धारणकर ढाल तलवार लिये हुये मुखकी ओर से निकलना चाहा परन्तु देवी के अतिपराक्रम से आधा शरीर निकला समूचा निकलने न पाया ३८॥

मू० अर्द्धनिष्क्रान्तएवासौ युद्ध्यमानोमहासुरः।
तया महासिना देव्या शिरश्छित्त्वा निपातितः ३९॥

टी०। उसी आधेही शरीर से वह महाअसुर युद्ध करनेलगा तब उस भगवती देवी ने एक बड़ी तलवार लेकर उसका शिर काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया ३९॥

मू० ततोहाहाकृतं सर्व्वं दैत्यसैन्यं ननाश तत्।
प्रहर्षञ्च परञ्जग्मुः सकलादेवतागणाः ४०॥

टी०। महिषासुरके वध होनेपर बाकी जो दैत्यों की सेना थी वह सब हाहाकार करतीहुई समर से भागगई यह देखकर सम्पूर्ण देवतागण परम हर्ष को प्राप्तहुये ४०॥

मू० तुष्टुवुस्तां सुरादेवीं सह दिव्यैर्महर्षिभिः।
जगुर्गन्धर्व्वपतयोननृतुश्चाप्सरोगणाः ४१॥

टी०। और सब देवता और दिव्यमहर्षिलोग उस भगवतीकी स्तुति करने लगे और गन्धर्व्वपतिलोग गाने लगे और अप्सराओं के गण नृत्य करनेलगे ४१॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेसावर्णिकेमन्वन्तरेदेवीमाहात्म्येमहिषासुरवधो नामत्र्यशीतितमोऽध्यायः ८३॥

अथ चौरासीवां अध्याय ॥

ऋषिरुवाच ॥

मू० शक्रादयः सुरगणानिहतेतिवीर्य्ये
तस्मिन्दुरात्मनि सुरारिबले च देव्या।
तान्तुष्टुवुःप्रणतिनम्रशिरोधरांसा
वाग्भिःप्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहाः १ ॥

टी०। मेधाऋषि कहते हैं कि हे सुरथ! जब देवी ने उस अत्यन्त पराक्रमी दुरात्मा महिषासुर को और उस दैत्यकी सेनाको मारडाला तब इन्द्रादि सब देवता गला और कन्धा झुकाकर अतिहर्ष से सुन्दर रोमांच शरीर हो वचनकरके उन देवी की स्तुति करनेलगे १ ॥

मू० देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या
निश्शेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या।
तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्या
म्भक्त्यानताःस्मविदधातु शुभानि सा नः २ ॥

टी०। कि हम सबलोग भक्तिपूर्व्वक उस अम्बिका देवी को प्रणाम करते हैं जो सब देवतों के तेज से उत्पन्न हैं और वह अपनीशक्ति से इस सम्पूर्णजगत् को उत्पन्नकरती हैं व सब ठौर व्याप्त रहती हैं और जिनको सम्पूर्णदेवता व बड़े बड़े ऋषिलोग पूजते हैं वह देवी हमलोगों का कल्याण करे २ ॥

मू० यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो
ब्रह्मा हरश्च नहि वक्तुमलम्बलञ्च।
सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय
नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु ३ ॥

टी०। और वह देवीजी कैसी हैं कि जिनका अतुलप्रभाव व बल वर्णन करने में ब्रह्मा और शेष भगवान् और महादेव थकित हैं वह चण्डिका भगवती सब जगत् का पालन करने के लिये और पापकरके जो भय उत्पन्न होताहै उसके नाश करने के लिये सदा चित्त रक्खें ३ ॥

मू०। या श्रीः स्वयं सुकृतिनाम्भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वान्नताः स्मपरिपालय देवि विश्वम् ४॥

टी०। हे देवि! जो आपही सुकृतीलोगों के घर में लक्ष्मी होकर और पापियों के घर में दरिद्र बनकर और निर्मलचित्तवालों के चित्त में बुद्धि होकर और सत् (अच्छे पुरुषों) के हृदय में श्रद्धा और कुलीनों के हृदय में लज्जा होकर स्थित रहती हैं उन आपको हमलोग प्रणाम करते हैं इस संसारका पालन कीजिये ४॥

मू० किं वर्णयाम तव रूपमचिन्त्यमेतत्कि
ञ्चातिवीर्य्यमसुरक्षयकारि भूरि।
किञ्चाहवेषु चरितानि तवाति यानि
सर्व्वेषु देव्यसुरदेवगणादिकेषु ५॥

टी०। और आपका यह देवता, दैत्य व सब गणादिकों में अचिन्त्य रूप और असुरों को क्षयकरनेवाला बहुत पराक्रम और समर में आपके जो बहुत चरित्र हैं वे हमसभों से किसप्रकार वर्णन होसक्ते हैं ५॥

मू० हेतुः समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषैर्न
ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा।
सर्व्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूतमव्या
कृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या ६॥

टी०। व आप सब जगत् की कारण और सतोगुण और रजोगुण और तमोगुण संयुक्त भी हैं तो फिर राग इत्यादि से आपको कौन जान सक्ता है विष्णु और महादेव भी आपकी अपारमहिमा को नहीं जान सके क्योंकि सब आपके आश्रय हैं और यह सब संसार आपके अंशसे पैदा है और आप सब विकारों से रहित हैं और परमआदि प्रकृतिहैं ६॥

मू० यस्याः समस्तसुरतासमुदीरणेन
तृप्तिं प्रयाति सकलेषु मखेषु देवि।

स्वाहासि वै पितृगणस्य च तृप्तिहेतु
रुच्चार्य्यसे त्वमतएव जनैःस्वधा च ७॥

टी०। हे देवि! सब यज्ञादिकों में जिन आपहीके नाम लेनेसे समस्त देवतालोग तृप्त होते हैं वह स्वाहा तुम्हीहो और पितृकर्म्म में पितर लोग तृप्त होते हैं इसीलिये देवकर्म्म में स्वाहा और पितृकर्म्म में स्वधा मनुष्य उच्चारण करते हैं ७॥

मू० या मुक्तिहेतुरविचिन्त्यमहाव्रता च
अभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः।
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषैर्विद्या
सि सा भगवती परमा हि देवि ८॥

टी०। हे देवि! जोकि आपमुक्तिकी कारण व अचिन्त्य महाव्रतवाली हैं और दया और सत्य और ब्रह्मचर्य्य इत्यादि आपका साधनहै और सम्पूर्ण दोषों को भञ्जनकरनेवाली वह ब्रह्मज्ञानस्वरूप विद्या आपही हैं इसलिये मोक्षचाहनेवाले जितेन्द्रिय व ब्रह्मही के जानने की योग्यतारूपसारवाले मुनिलोग राग इत्यादिको छोड़कर आपहीका सदा ध्यानकियाकरतेहैं ८॥

मू० शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधान
मुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम्।
देवी त्रयी भगवती भवभावनाय
वार्त्ता च सर्व्वजगतां परमार्त्तिहन्त्री ९॥

टी० हे देवि! दोषों से रहित ऋग्वेद व यजुर्वेद के पठित मन्त्रों का और प्रणवयुक्त सुन्दरपदपाठवाले सामवेद पठित मन्त्रोंका आश्रय व शब्दस्वरूपिणी तीनों वेदमयी आपही हैं और सब जगत् का संकटहरनेवाली व प्रकाशकरनेवाली और प्राणियों के जीवन के वास्ते कृषी और वाणिज्य और पशुपाल इत्यादि वार्त्ता (जीविका) भी आपहीहैं ९॥

मू० मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा
दुर्ग्गासि दुर्ग्गभवसागरनौरसङ्गा।
श्रीः कैटभारिहृदयैककृताधिवासा

गौरी त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा १० ॥

टी० । और हे देवी ! सब शास्त्रों की जाननेवाली मेधा (सरस्वती) तुम्हीं हो और दुर्गमसंसार सागर से ज्ञानरूपी असंग नौका होकर पारकरनेवाली दुर्गा आपही हैं क्योंकि प्राकृत नौकामें खेलनेवाले इत्यादिका सङ्ग रहता है और विष्णुके हृदय में रहनेवाली लक्ष्मी और महादेवजी के अर्द्धाङ्ग में रहनेवाली गौरी आपही हैं १० ॥

मू० ईषत्सहासममलं परिपूर्णचन्द्र
बिम्बानुकारि कनकोत्तमकान्तिकान्तम् ।
अत्यद्भुतं प्रहृतमात्तरुषा तथापि
वक्त्रं विलोक्य सहसा महिषासुरेण ११ ॥

टी० और हे देवी ! यह बड़े आश्चर्य्य की बात है कि आप के मुसकरातेहुये मुखको जो पूर्णमासी के निर्मल चन्द्रमा और उत्तम सुवर्णकी ज्योतिके समान सुन्दर है देखनेपर भी क्रोधसंयुत महिषासुर ने प्रहार किया याने यह बड़ा भेदहुआ कि जो आपके ऐसे मुखको जो सम्पूर्ण जगत् को मोहनेवाला है देखकर मोहित न हुआ ११ ॥

मू० दृष्ट्वा तु देवि कुपितं भ्रुकुटीकराल
मुद्यच्छशाङ्कसदृशच्छवियन्न सद्यः ।
प्राणान्मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं
कैर्जीव्यते हि कुपितान्तकदर्शनेन १२ ॥

टी० । और हे देवि ! आपके क्रोधसंयुक्त व तिरछी भौंहोंसे करालरूपवाले और उदयकाल के लालचन्द्रमासमान मुखको देखकर महिषासुर जो शीघ्रही वहीं न मरगया वह और भी बड़े आश्चर्य्य की बात है क्योंकि क्रोधयुक्त कृतान्त (यमराज) को देखकर कौन जीसक्ताहै १२ ॥

मू० देवि प्रसीद परमा भवती भवाय
सद्योविनाशयसि कोपवती कुलानि ।
विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेत
न्नीतंबलं सुविपुलं महिषासुरस्य १३ ॥

टी०। हे देवी! हम लोगोंपर आप दयालु रहिये व आप सदा दयावतीहैं क्योंकि जब जब हमलोगों पर कष्ट परता है तब तब आप क्रोध करके हमारे शत्रुओं के समूहों को नाश करदेती हैं यह सब बातें हमने इसीवक्त जाना क्योंकि इस महिषासुर की प्रबलसेनाको आपने नाश करदिया है १३॥

मू० ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां
तेषां यशांसि न च सीदति धर्म्मवर्गः।
धन्यास्तएव निभृतात्मजभृत्यदाराः
येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना १४॥

टी०। जिनलोगों पर आप सदा प्रसन्न रहती हैं व सब मनोरथों को देती हैं वही लोग धन्य हैं और उन्हीं को महात्मालोग बड़ा समझते हैं और उन्हींलोगों को हमेशा धन और यश और अर्थ और धर्म्म और काम और मोक्ष प्राप्तहोता है और उन्हीं के स्त्री और पुत्र और नौकर चाकर सदा पुष्ट रहते हैं १४॥

मू० धर्म्याणि देवि सकलानि सदैव कर्म्मा
ण्यत्यादृतः प्रतिदिनं सुकृती करोति।
स्वर्गं प्रयाति च ततोभवतीप्रसादा
ल्लोकत्रयेपि फलदा ननु देवि तेन १५॥

टी०। हे देवी! जिन पुण्यात्मालोगों पर आप दयालु रहती हैं वही पुण्यात्मालोग आप की प्रसन्नता से सदा श्रद्धायुक्त होकर हररोज नित्यनैमित्तिक आदि सब धर्म्म कर्म्म किया करते हैं और आपही की दया से वे लोग धर्म्म कर्म्म करके स्वर्ग को प्राप्त होते हैं व हे देवि! आपही की दया से लोग ज्ञान पाकर मोक्ष पाते हैं उसी से तीनों लोकों में फलदेनेवाली आपही हैं १५॥

मू० दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृतामतिमतीवशुभान्ददासि।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता १६॥

टी० । जो कोई संकट में आप का स्मरण करताहै उन सब प्राणियों का संकट आप निवारणकरदेती हैं और जो लोग स्वस्थहोकर आप का ध्यान करते हैं उनको आप अतिउत्तम ज्ञान देती हैं हे दारिद्र और दुःख और भय की नाशकरनेवाली ! आपके समान सर्व्वोपकार करने के लिये सदैव दयावान् चित्त दूसरा कोई नहीं है १६ ॥

मू० एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखं तथैते
कुर्व्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम् ।
संग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयान्तु
मत्वेति नूनमहितान्विनिहंसि देवि १७ ॥

टी० । हे देवि ! आप यह मानकर शत्रुवोंको मारतीहैं कि इन दैत्योंके मरने से एक तो संसार को सुख हो दूसरे दैत्यलोग बहुत दिनतक नरक के लिये पापकरेंगे इससे संग्राममें मारे जाने से उनको स्वर्ग प्राप्तहो १७ ॥

मू० दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म
सर्व्वासुरानरिषु यत्प्रहिणोषि शस्त्रम् ।
लोकान्प्रयान्तु रिपवोपि हि शस्त्रपूता
इत्थं मतिर्भवति तेष्वहितेषु साध्वी १८ ॥

टी० । और दैत्यलोग इस संग्राम में आप की कोपदृष्टिसे भस्म हो सक्ते थे शस्त्रचलाने की कुछ आवश्यकता न थी परन्तु इस हेतुसे उन-लोगोंपर आपने शस्त्र चलाया कि शस्त्र लगकर मरने से वे शत्रुलोग भी निष्पाप होकर स्वर्ग में जावैं इस से ज्ञात होताहै कि उनशत्रुवों पर भी जब आप की ऐसी बुद्धि रहती है तो आप के भक्तों के भाग्य का वर्णन कहाँतक किया जाय १८ ॥

मू० खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैस्तथोग्रैः
शूलाग्रकान्तिनिवहेन दृशोऽसुराणाम् ।
यन्नागताविलयमंशुमदिन्दुखण्ड
योग्याननन्तव विलोकयतां तदेतत् १९ ॥

टी० । और असुरों की आंखें जो आपके शूल के अग्रभागकी दमक और खड्गकीभयंकरचमकसे न फूटीं इसका यहीकारणहै कि आपकेमुखको

वे लोग देखते रहे जिसमें किरणयुक्त अर्द्धचन्द्रमा विराजमानहै १९॥

मू० दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवि शीलं
रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यमन्यैः ।
वीर्यं च हन्तृहृतदेवपराक्रमाणां
वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम् २० ॥

टी० । और हे देवि ! आप का स्वभाव सिद्धगुणहै जिस से पापियों-का भी पाप नाशहोताहै और आपका यह अचिन्त्यरूप औरों से उपमा-रहित है और आपका पराक्रम देवतोंके सतानेवाले दैत्यों को नाशकरने-वाला है ऐसा रूप व बल होने से जो आपने शस्त्रसे माराहै इससे वैरि-यों के ऊपर भी आपकी दयालुता प्रकट होती है २० ॥

मू० केनोपमा भवतु तेस्य पराक्रमस्य
रूपञ्च शत्रुभयकार्य्यतिहारि कुत्र ।
चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा
त्वय्येव देवि वरदे भुवनत्रयेपि २१ ॥

टी० । और हे देवि ! आप का यह पराक्रम और दुष्टों को भयदेने-वाला और मनोहररूप और दुष्टों के ऊपर चित्त में तो दया और समर विषयमें उनलोगों के साथ कठोरता देखीगई यह सब बातें तीनों लोक में सिवाय आप के और किसमें हैं कि जिसके साथ आपकी उपमा दीजाय २१ ॥

मू० त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपुनाशनेन
त्रातं त्वया समरमूर्द्धनि तेपि हत्वा ।
नीतादिवं रिपुगणाभयमप्यपास्त
मस्माकमुन्मदसुरारिभवन्नमस्ते २२ ॥

टी० । और आपने समर में दुष्टों का नाशकरके जो इनसब तीनों लोकों की रक्षा की है और उन शत्रुवों को भी मारकर स्वर्ग में प्राप्त किया है और बड़े गर्वीले दैत्यों से पैदाहुआ हम सब का भय दूर किया है इन सब बातोंके गुणानुवाद में सिवाय प्रणाम करने के और क्या हम सबसे होसक्ता है २२ ॥

मू० शूलेन पाहि नोदेवि पाहि खड्गेन चाम्बिके ।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च २३ ॥

टी० । हे अम्बिके, देवि ! आप अपने शूल व तलवार से हमलोगों की रक्षा कीजिये और घण्टाके शब्दसे और धनुषकी प्रत्यञ्चाकी आवाज से हमलोगों की रक्षा कीजिये २३ ॥

मू० प्राच्यां रक्ष प्रतीच्याञ्च चण्डिके रक्ष दक्षिणे ।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि २४ ॥

टी० । और हे चण्डिके ईश्वरि ! आप अपने शूलको घुमाकर पूर्व्व और पश्चिम और दक्षिण और वैसेही उत्तरदिशामें रक्षाकीजिये २४ ॥

मू० सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते ।
यानि चात्यर्थघोराणि तैरक्षास्मांस्तथा भुवम् २५ ॥

टी० । और तीनोंलोक में आपके सृष्टिपालनकरनेवाले और नाश-करनेवाले जो मंगल और भयानकरूप विचरते हैं उन रूपोंसे हम सब की और पृथ्वी की रक्षाकीजिये २५ ॥

मू० खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेम्बिके ।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्व्वतः २६ ॥

टी० । और हे अम्बिके ! आपके करपल्लव में खड्ग और शूल और गदा इत्यादि जो सब अस्त्र विराजमान हैं उन अस्त्रोंसे हमसबकी सब ओर से रक्षाकीजिये २६ ॥

ऋषिरुवाच ॥

मू० एवं स्तुता सुरैर्दिव्यैः कुसुमैर्नन्दनोद्भवैः ।
अर्चिता जगतां धात्री तथा गन्धानुलेपनैः २७ ॥

टी० । मेधा ऋषि कहते हैं कि हे सुरथ ! जब इसतरह सब देवता-लोगोंने नन्दनवनसे पैदाहुये दिव्यफूलों और गन्ध और चन्दन इत्या-दि से पूजन जगद्धात्री भगवती का किया २७ ॥

मू० भक्त्या समस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यैर्धूपैस्तु धूपिता ।
प्राह प्रसादसुमुखी समस्तान्प्रणतान् सुरान् २८ ॥

टी०। और सम्पूर्ण देवतालोगों ने भक्तिपूर्व्वक दिव्यधूपके धूम से जब भगवतीका धूपकिया तब भगवती कृपाकरके प्रणाम कियेहुये उनदेवतों की तरफ़ सम्मुख होकर बोलीं २८ ॥

देव्युवाच।

मू० व्रियतां त्रिदशाः सर्व्वे यदस्मत्तोभिवाञ्छितम्।

देवाऊचुः ॥

मू० भगवत्या कृतं सर्व्वं न किंचिदवशिष्यते २९ ॥

टी०। देवीने कहा कि हे देवतालोगो ! जो तुम्हारी इच्छाहो वह मुझ से सब मांगो मैं दूंगी देवतों ने कहा कि आप हमलोगों की सब इच्छा पूर्ण करचुकीं अब कुछ बाकी नहीं है २९ ॥

मू० यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः।
यदि वापि वरोदेयस्त्वयास्माकं महेश्वरि ३० ॥

टी०। क्योंकि हमलोगों का शत्रु जो यह महिषासुर था उसको आपने मारा परन्तु हे महेश्वरि ! जो आप हमसबको वर देनाही चाहतीहैं ३० ॥

मू० संस्मृता संस्मृता त्वन्नोहिंसेथाः परमापदः।
यश्च मर्त्यःस्तवैरेभिस्त्वां स्तोष्यत्यमलानने ३१ ॥

टी०। तो हमलोग जब २ आपका बहुत स्मरण करैं तब २ हम सब की परम विपत्ति को आप सदा प्रसन्न होकर नाश किया कीजिये और हे अमलानने ! इस स्तोत्र से जो मनुष्य आप की स्तुतिकरै ३१ ॥

मू० तस्य वित्तर्द्धिविभवैर्धनदारादिसंपदाम्।
वृद्धयेस्मत्प्रसन्ना त्वं भवेथाः सर्व्वदाम्बिके ३२ ॥

टी०। उसके ज्ञानकी वृद्धि और ऐश्वर्य्यसंयुक्त धन और स्त्री और पुत्र इत्यादि सम्पदाओं की वृद्धिके वास्ते हे अम्बिके ! हमलोगों के ऊपर प्रसन्न आप उसपर सदा सहाय रहिये ३२ ॥

ऋषिरुवाच ॥

मू० इति प्रसादिता देवैर्जगतोर्थे तथात्मनः।
तथेत्युक्त्वा भद्रकाली बभूवान्तर्हिता नृप ३३ ॥

टी० । मेधाऋषि कहते हैं कि हे राजन् ! इसतरह देवतालोगों ने अपने और संसार के वास्ते भगवती की प्रार्थना की तब वह भद्रकाली प्रसन्न होकर एवमस्तु कहकर अन्तर्द्धान होगई ३३ ॥

मू० इत्येतत्कथितं भूप संभूता सा यथा पुरा ।
देवी देवशरीरेभ्योजगत्त्रयहितैषिणी ३४ ॥

टी० । हे राजन् ! देवतों के शरीर से तीनोंलोक के उपकार के वास्ते पहले जिसतरह देवी उत्पन्न हुई उसका यह सब वृत्तान्त तुम से वर्णन किया ३४ ॥

मू० पुनश्च गौरीदेहात् सा समुद्भूता यथाभवत् ।
वधाय दुष्टदैत्यानां तथा शुम्भनिशुम्भयोः ३५ ॥

टी० । फिर जिसतरह दुष्ट दैत्यों और शुम्भ और निशुम्भ के मारने के वास्ते गौरी के शरीर से देवीजी प्रकट हुईं ३५ ॥

मू० रक्षणाय च लोकानां देवानामुपकारिणी ।
तच्छृणुष्व मयाख्यातं यथावत्कथयामि ते ३६ ॥

टी० । और सब लोगों की रक्षा और देवतों का उपकार किया संसार में प्रसिद्ध उसका वृत्तान्त भी विस्तारपूर्वक मैं तुमसे वर्णन करता हूँ सुनो ३६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेसावर्णिकेमन्वन्तरेदेवीमाहात्म्येशक्रादिकृत
देव्याःस्तुतिर्नामचतुरशीतितमोऽध्यायः ८४ ॥

अथ पचासीवां अध्याय ॥

ऋषिरुवाच ॥

मू० पुरा शुम्भनिशुम्भाभ्यामसुराभ्यां शचीपतेः ।
त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च हतामदबलाश्रयात् १ ॥

टी० । ऋषि कहते हैं कि हे सुरथ ! पूर्वकाल में शुम्भ और निशुम्भ नों असुरों ने अपने बल व अहङ्कार के आश्रय से इन्द्रका राज्य और

सम्पूर्ण देवतों का यज्ञभाग हरण करके तीनों लोकोंको अपने वश में करलिया १ ॥

मू० तावेव सूर्य्यतां तद्वदधिकारं तथैन्दवम्।
कौबेरमथ याम्यं च चक्राते वरुणस्य च २॥

टी०। और वेई दोनों सूर्य्य और चन्द्रमा और कुबेर और यम और वरुणका भी अधिकार छीनकर आपही करनेलगे २ ॥

मू० तावेव पवनर्द्धिंच चक्रतुर्वह्नि कर्म्म च।
ततोदेवाविनिर्द्धूताभ्रष्टराज्याः पराजिताः ३॥

टी०। इसीतरह वे दोनों पवन का अधिकार और अग्निका कर्म भी आपही करते थे तब देवतालोग उसके डरसे कांपकर और पराजित हो-कर अपनी राज्यसे अलग होगये ३ ॥

मू० हृताधिकारास्त्रिदशास्ताभ्यां सर्व्वे निराकृताः।
महासुराभ्यां तां देवीं संस्मरन्त्यपराजिताम् ४॥

टी०। तौ भी उन दोनों महाअसुरों ने अधिकारों से हीन देवताओं को चैन न लेने दिया किन्तु सबको स्वर्ग से निकाल दिया तब देवताओं ने उन अपराजिता देवीका ध्यान किया ४ ॥

मू० तयास्माकं वरोदत्तो यथापत्सु स्मृताखिलाः।
भवतां नाशयिष्यामि तत्क्षणात्परमापदः ५॥

टी०। और सोचा कि उस भगवती ने हम सबको पूर्व्वही वरदान दिया है कि जब तुमलोग विपत्तिमें मेरा ध्यान करोगे तब मैं उसी समय तुम्हारी बड़ी विपत्ति को नाशकर दूँगी ५ ॥

मू० इति कृत्वा मतिं देवाहिमवन्तं नगेश्वरम्।
जग्मुस्तत्र ततोदेवीं विष्णुमायां प्रतुष्टुवुः ६॥

टी०। तात्पर्य्य यह है कि देवतालोग यह बात अपने जीमें सोचकर हिमवन्तनाम गिरिराज पर गये और वहां जाकर विष्णुमाया भगवती की इसतरह स्तुति करनेलगे ६ ॥

देवाऊचुः ॥

मू० नमोदेव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताःप्रणताः स्म ताम् ७॥

टी०। देवतालोग बोले कि उस देवी को हमलोग हित चित्तसे प्रणाम करतेहैं व महादेवी के लिये प्रणामहै प्रकृतिरूपिणीके वास्ते नमस्कार है जो ब्रह्मादिकों से स्वर्ग इत्यादि का व्यवहार कराती है और जो कल्याण करतीहै उस शिवाके लिये सदैव प्रणामहै और सबकी उत्पत्तिकरनेवाली और पालनकरनेवाली भद्रा भगवती के लिये प्रणाम है ७॥

मू० रौद्रायै नमोनित्यायै गौर्य्यै धात्र्यै नमोनमः।
ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ८॥

टी०। और उसी देवीको हम सब हरसमय प्रणाम करते हैं जो सबकी नाशकरनेवाली है और अविनाशिनीजी के लिये प्रणाम है और गौरी और सम्पूर्ण जगत् की धारणकरनेवाली के लिये नमस्कार है व ज्योतिस्वरूपिणी व चन्द्ररूपिणी और परमानन्दरूपिणी के वास्ते प्रणाम है ८॥

मू० कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्म्मोनमोनमः।
नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमोनमः ९॥

टी०। और प्रणतजनोंका कल्याणकरनेवाली और वृद्धि और सिद्धिदेनेवाली भगवती के लिये हमलोग बार २ प्रणाम करतेहैं व नैर्ऋती और जो राजाओंकी लक्ष्मी और शिवशक्ति हो उस तुमको हमलोग वारंवार प्रणाम करते हैं ६॥

मू० दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्व्वकारिण्यै।
ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः १०॥

टी०। और दुःख से जाननेयोग्य व संसारसागर से पारकरनेवाली और बलवती व सब जगत् का कार्य्यकरनेवाली और प्रकृतिपुरुष में भेद ज्ञानरूपिणी और कृष्णा अर्थात् काली और धूम्रा अर्थात् जिनका रूप धुआं साहै उनको हमारा सदैव प्रणाम है १०॥

मू० अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमोनमः।

नमोजगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यैनमोनमः ११ ॥

टी० । और उस भगवती को हमारा वारंवार प्रणाम है जो संसार को स्थिरकरनेवाली और संसार से निवृत्तिकरनेवाली अतिरौद्रा हैं और सम्पूर्ण जगत्का उपादान कारण देवशक्तिसती और क्रियारूपहैं ११ ॥

मू० या देवी सर्व्वभूतेषु विष्णुमायेतिशब्दिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः १२ ॥

टी० । और जो देवी सब प्राणियोंमें विष्णुमाया मूलविद्या ऐसी कहलाती हैं उनको मन वचन कर्म्म से हमलोग प्रणाम करते हैं १२ ॥

मू० या देवी सर्व्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः १३ ॥

टी० । और जो देवी सब प्राणियों में चैतन्यरूप होकर विराजती हैं इससे चेतना ऐसी कहीजाती हैं उनको हमलोग बार २ प्रणाम करते हैं १३ ॥

मू० या देवी सर्व्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः १४ ॥

टी० । और जो देवी सब प्राणियों में बुद्धिरूप होकर विराजती हैं उनके वास्ते हम सबका प्रणामहै तीनबार प्रणाम करने से मन, वचन, कर्म तीनों से नमस्कार सूचित होताहै १४ ॥

मू० या देवी सर्व्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः १५ ॥

टी० । और जो देवी सब प्राणियों में निद्रारूप होकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणाम है १५ ॥

मू० या देवी सर्व्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः १६ ॥

टी० । और जो देवी सब प्राणियों में क्षुधारूप होकर रहती हैं उनको हमारा प्रणाम है १६ ॥

मू० या देवी सर्व्वभूतेषु छायारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः १७॥

टी०। और जो देवी सब प्राणियों में छायारूप होकर रहती हैं उन को हमारा प्रणाम है १७॥

मू० या देवी सर्व्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः १८॥

टी०। और जो देवी सब प्राणियों में शक्तिरूप होकर रहती हैं उनको हमारा प्रणाम है १८॥

मू० या देवी सर्व्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः १९॥

टी०। और जो देवी सब जीवों में तृष्णारूप होकर विराजती हैं उन को हमारा प्रणाम है १९॥

मू० या देवी सर्व्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः २०॥

टी०। और जो देवी सब किसी में क्षमारूप होकर रहती हैं उन को हमारा प्रणाम है २०॥

मू० या देवी सर्व्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः २१॥

टी०। और जो देवी सब प्राणियों में जातिरूप होकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणामहै २१॥

मू० या देवी सर्व्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः २२॥

टी०। और जो देवी सब प्राणियों में लज्जारूप होकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणाम है २२॥

मू० या देवी सर्व्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः २३॥

टी०। और जो देवी सब प्राणियों में शान्तिरूप होकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणाम है २३॥

मू० या देवी सर्व्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः २४॥

टी०। और जो देवी सब प्राणियों में श्रद्धारूप होकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणाम है २४॥

मू० या देवी सर्व्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः २५॥

टी०। और जो देवी सब जीवों में, कान्ति अर्थात् शोभारूप होकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणाम है २५॥

मू० या देवी सर्व्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः २६॥

टी०। और जो देवी सब प्राणियों में लक्ष्मी (धनादि सम्पत्ति) रूप होकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणाम है २६॥

मू० या देवी सर्व्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः २७॥

टी०। और जो देवी सब जीवों में जीविकारूप होकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणाम है २७॥

मू० या देवी सर्व्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः २८॥

टी०। और जो देवी सब प्राणियों में स्मृति अर्थात् अनुभवरूपहोकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणाम है २८॥

मू० या देवी सर्व्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः २९॥

टी०। और जो देवी सब प्राणियों में दयारूप होकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणाम है २९॥

मू० या देवी सर्व्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ३० ॥

टी० । और जो देवी सब प्राणियों में तुष्टि अर्थात् सन्तोषरूप होकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणाम है ३० ॥

मू० या देवी सर्व्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ३१ ॥

टी० । और जो देवी सब प्राणियों में मातारूप होकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणाम है ३१ ॥

मू० या देवी सर्व्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ३२ ॥

टी० । और जो देवी सब प्राणियों में भ्रांति याने भ्रमरूप होकर विराजती हैं उनको प्रणाम है ३२ ॥

मू० इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानामखिलेषु या ।
भूतेषु सततं तस्यै व्याप्त्यै देव्यै नमोनमः ३३ ॥

टी० । और जो देवी सब प्राणियों में इन्द्रियों की मालिक और सब जीवोंमें व्याप्त हैं उन देवीको हम सबका बार २ प्रणाम है ३३ ॥

मू० चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत् ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ३४ ॥

टी० । फिर वह देवी जो चैतन्यशक्तिरूप होकर इस सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त हैं उनको मन वचन कर्म से हमलोग प्रणाम करते हैं ३४ ॥

मू० स्तुता सुरैः पूर्व्वमभीष्टसंश्रया
तथासुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता ।
करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी
शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ३५ ॥

टी० । और जिस शुभहेतुवाली देवी ईश्वरी भगवती को ब्रह्माआदि देवताओं ने पहिले स्तुतिकी है और महिषासुर के वध होनेपर अपना

वाञ्छित मनोरथ सिद्ध होनेसे इन्द्रने जिनकी प्रतिदिन सेवा की है वह देवी हमलोगोंकी विपत्ति को नाशकरैं व अत्यन्त कल्याण करैं ३५॥

मू० या सांप्रतं चोद्धतदैत्यतापितै
रस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते।
या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः
सर्व्वापदोभक्तिविनम्रमूर्त्तिभिः ३६॥

टी०। और वह ईश्वरी देवी हमलोगों की सम्पूर्णविपत्तियों को हरण करैं जिनकी स्तुति इस समय प्रबलदैत्यों से पीडित होकर हम देवलोग करते हैं और जो देवी भक्तिसे नम्रमूर्त्तियोंवाले हमलोगों के स्मरणकरने पर शीघ्रही सम्पूर्णविपत्तियों को नाश करती हैं ३६॥

ऋषिरुवाच॥

मू० एवं स्तवादियुक्तानां देवानां तत्र पार्व्वती।
स्नातुमभ्याययौ तोये जाह्नव्यानृपनन्दन ३७॥

टी०। मेधाऋषि कहते हैं कि हे राजासुरथ! वहां इसतरह देवतों के स्तुतिकरने से प्रसन्नहोकर श्रीपार्व्वतीजी शिवशक्तिरूप से गङ्गास्नान करने के बहाने से देवताओं के सामने प्रकट हुईं ३७॥

मू० साब्रवीत्तान्सुरान्सुभ्रूर्भवद्भिः स्तूयतेत्र का।
शरीरकोशतश्चास्याः समुद्भूताब्रवीच्छिवा ३८॥

टी०। और वे सुन्दरी उन देवतालोगों से कहनेलगीं कि तुमलोग यहां किसकी स्तुति करते हो तत्पश्चात् इनके शरीररूपी गृहसे सात्विकरूप शिवा प्रकट होकर देवताओं से कहनेलगीं ३८॥

मू० स्तोत्रं ममैतत्क्रियते शुम्भदैत्यनिराकृतैः।
देवैःसमेतैः समरे निशुम्भेन पराजितैः ३९॥

टी०। कि तुम देवतालोग समर में निशुम्भअसुरसे पराजित व शुम्भ से स्वर्गसे निकालेहुये होकर फिर यहां इकट्ठा होकर हमारी यह स्तुति करते हो ३९॥

मू० शरीरकोशाद्यत्तस्याः पार्व्वत्यानिःसृताम्बिका।

कौशिकीति समस्तेषु ततोलोकेषु गीयते ४० ॥

टी० । मेघाऋषि कहते हैं कि हे सुरथ ! जोकि वह देवी श्रीपार्वतीजी के शरीरकोशसे प्रकट हुईं इससे सबलोकों में कौशिकी ऐसी कहलाती हैं ४० ॥

मू० तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत्सापि पार्व्वती ।
कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया ४१ ॥

टी० । और वह देवी उसी हिमाचल पर्व्वत पर रहनेलगीं इनके प्रकट होने से अर्थात् निकलजाने से श्रीपार्व्वतीजी भी कृष्णा अर्थात् काली होगईं इसी से कालिका कहलानेलगीं ४१ ॥

मू० ततोम्बिकां परं रूपं बिभ्राणां सुमनोहरम् ।
ददर्श चण्डोमुण्डश्च भृत्यौ शुम्भनिशुम्भयोः ४२ ॥

टी० । उसके बाद उस अम्बिका देवी के अतिमनोहर रूपको शुम्भ निशुम्भके नौकरों ने जिनका नाम चण्डमुण्ड था देखा ४२ ॥

मू० ताभ्यां शुम्भाय चाख्याता अतीवसुमनोहरा ।
काप्यास्ते स्त्री महाराज भासयन्ती हिमाचलम् ४३ ॥

टी० । और वे दोनों अपने स्वामी शुम्भ के पास जाकर बोले कि हे महाराज ! एक कोई स्त्री बहुतसुन्दरी अपने प्रकाश से सम्पूर्ण हिमाचल पर्व्वत को प्रकाशमान कियेहुये है ४३ ॥

मू० नैव तादृक् क्वचिद्रूपं दृष्टं केनचिदुत्तमम् ।
ज्ञायतां काप्यसौ देवी गृह्यतां चासुरेश्वर ४४ ॥

टी० । वैसा उत्तमरूप किसीने कहीं नहीं देखाहै निश्चय होताहै कि वह कोई देवी है मनुष्य के द्वारा जानिये व हे असुरेश्वर ! इस देवी को आप ग्रहण कीजिये ४४ ॥

मू० स्त्रीरत्नमतिचार्वङ्गी द्योतयन्ती दिशस्त्विषा ।
सा तु तिष्ठति दैत्येन्द्र तां भवान्द्रष्टुमर्हति ४५ ॥

टी० । क्योंकि वह स्त्री अत्यन्तसुन्दरी सब स्त्रियों में रत्न है हिमाचल पर्व्वत पर वह टिकी है व अपने शरीर के प्रकाश से दशों दिशाओं

को प्रकाशित कर रही है हे दैत्यराज ! आपके देखनेयोग्य है उसको देखिये ४५ ॥

मू० यानि रत्नानि मणयोगजाश्वादीनि वै प्रभो ।
त्रैलोक्ये तु समस्तानि सांप्रतं भान्ति ते गृहे ४६ ॥

टी० । क्योंकि हे प्रभो ! जितने रत्न और मणि और हाथी और घोड़े त्रिलोक में रत्न याने अपनी जातिमें श्रेष्ठ हैं वे सब इससमय आपके घर में वर्त्तमान हैं ४६ ॥

मू० ऐरावतः समानीतोगजरत्नं पुरन्दरात् ।
पारिजाततरुश्चायं तथैवोच्चैःश्रवाह्वयः ४७ ॥

टी० । जिस प्रकार ऐरावत गज रत्नको इन्द्रसे छीनकर आप लाये और पारिजात वृक्ष रत्नको और घोड़ोंमें रत्न उच्चैश्रवा घोड़ेको लाये ४७ ॥

मू० विमानं हंससंयुक्तमेतत्तिष्ठति तेङ्गणे ।
रत्नभूतमिहानीतं यदासीद्वेधसोद्भुतम् ४८ ॥

टी० । और ब्रह्मा का हंसयुक्त यह विमान जो रत्नभूत है उसको आप अपने बलसे यहां लेआकर घरमें रक्खा है यह आश्चर्य है ४८ ॥

मू० निधिरेषमहापद्मः समानीतोधनेश्वरात् ।
किञ्जल्किनीं ददौ चाब्धिर्मालामम्लानपङ्कजाम् ४९ ॥

टी० । और यह महापद्मनाम निधि जो सब निधियों में रत्न है उस को भी आप कुबेर से छीनकर लेआये और बिनकुम्हिलायेहूये कमलों की किंजल्किनीनाम माला समुद्र ने आपको डरकर देदिया ४९ ॥

मू० छत्रं ते वारुणं गेहे काञ्चनस्रावि तिष्ठति ।
तथायं स्यन्दनवरोयः पुरासीत्प्रजापतेः ५० ॥

टी० । और वरुण का छाता जो सुवर्णवर्षण करताहै वह भी आप के घरमें मौजूद है उसीतरह यह उत्तम स्यन्दन अर्थात् रथभी जोपहिले प्रजापति के पास था आपके घर में मौजूद है ५० ॥

मू० मृत्योरुत्क्रान्तिदानाम शक्तिरीश त्वया हृता ।
पाशः सलिलराजस्य भ्रातुस्तव परिग्रहे ५१ ॥

टी०। और हे स्वामिन्! मृत्यु से उत्क्रांतिदानाम अर्थात् मौत देनेवाली मृत्युकी शक्तिभी आप छीनकर लेआये हैं और वरुणका पाश छीनकर आपके भाई निशुम्भ अपने हाथ में रक्खेहुये है ५१॥

मू० निशुम्भस्याब्धिजाताश्च समस्तारत्नजातयः।
वह्निरपि ददौ तुभ्यमग्निशौचे च वाससी ५२॥

टी०। और जो जो रत्नकी जातियां समुद्र से उत्पन्न हैं वह सब निशुम्भ के हाथमें सर्वकाल रहती हैं और अग्निने मारेडरके आपके पहिरनेके वास्ते दो सुन्दर वस्त्र देदिया है जो अग्निमें डालकर निर्मल किये जाते हैं ५२॥

मू० एवं दैत्येन्द्र रत्नानि समस्तान्याहृतानि ते।
स्त्रीरत्नमेषा कल्याणी त्वया कस्मान्न गृह्यते ५३॥

टी०। हे दैत्येन्द्र! इसीतरह जितने रत्न हैं वे सब आपने हरणकरके अपने पास रक्खे हैं तो यह कल्याणी स्त्रीरत्नको आप क्यों नहीं ग्रहण करते हैं ५३॥

ऋषिरुवाच॥

मू० निशम्येति वचः शुम्भः सतदा चण्डमुण्डयोः।
प्रेषयामास सुग्रीवं दूतं देव्या महासुरम् ५४॥

टी०। मेधाऋषि कहते हैं कि हे सुरथ!यह वचन चण्ड मुण्डका सुनकर उससमय शुम्भने सुग्रीवनाम महादैत्य दूतको देवीके पास भेजा ५४॥

मू० इति चेति च वक्तव्या सा गत्वा वचनान्मम।
यथा चाभ्येति संप्रीत्या तथा कार्य्यं त्वया लघु ५५॥

टी०। और उससे कह दिया कि जाकर मेरा यह हुक्म उसको सुनाओ और जिस तरह वह राजी होकर आवे उसी तरह तुमको जल्दी करना चाहिये ५५॥

मू० सतत्र गत्वा यत्रास्ते शैलोद्देशेतिशोभने।
सा देवी तां ततः प्राह श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ५६॥

टी०। तब वह दूत शुम्भ की आज्ञा पाकर उस अतिसुन्दर पर्वतपर जहाँ देवीजी रहतीथीं जाकर मीठेशब्द से नम्रतापूर्वक कहनेलगा ५६॥

दूतउवाच॥

मू० देवि दैत्येश्वरः शुम्भस्त्रैलोक्ये परमेश्वरः।
दूतोहं प्रेषितस्तेन त्वत्सकाशमिहागतः ५७॥

टी०। दूत बोला कि हे देवि! शुम्भनाम दैत्योंका राजा जो तीनों लोकका ईश्वर है उसका भेजाहुआ दूत मैं यहां आपके पास आयाहूं ५७॥

मू० अव्याहताज्ञः सर्व्वासु यः सदा देवयोनिषु।
निर्जिताखिलदैत्यारिः सयदाह शृणुष्व तत् ५८॥

टी०। जिसका हुक्म सब देवतालोग मानते हैं और जो सब देवताओं को भी जीते हुये है उसने जो सन्देशा आपसे कहने को मुझसे कहा है वह मैं कहता हूँ सुनिये ५८॥

मू० मम त्रैलोक्यमखिलं मम देवावशानुगाः।
यज्ञभागानहं सर्व्वानुपश्नामि पृथक् पृथक् ५९॥

टी०। अर्थात् उसने कहा है कि यह सब त्रैलोक्य हमारा है और सब देवतालोग हमारे वश में हैं और यज्ञों के सबभाग पृथक् पृथक् मैंही भोग करता हूँ ५६॥

मू० त्रैलोक्ये वररत्नानि मम वश्यान्यशेषतः।
तथैव गजरत्नं च हृत्वा देवेन्द्रवाहनम् ६०॥

टी०। और तीनोंलोक में जो अच्छे अच्छे रत्न हैं वह सब मेरे पास हैं वैसेही हाथियों में रत्न इन्द्रका वाहन ऐरावत हाथी मैंने इन्द्र से छीन लिया है ६०॥

मू० क्षीरोदमथनोद्भूतमश्वरत्नंममामरैः।
उच्चैःश्रवससंज्ञं तत्प्रणिपत्य समर्पितम् ६१॥

टी०। और क्षीरसमुद्रमथन में जो उच्चैश्रवासंज्ञक घोड़ा रत्न निकला था उसको भी देवतालोग प्रणाम कर मुझे दे गये ६१॥

मू० यानि चान्यानि देवेषु गन्धर्व्वेषूरगेषु च।
रत्नभूतानि भूतानि तानि मय्येव शोभने ६२॥

टी०। और हे शोभने! देवगण और गन्धर्व्वगण और नागगणों के पास जो जो रत्नभूत पदार्थ थे वे सब के सब मेरे पास मौजूद हैं ६२॥

मू० स्त्रीरत्नभूतां त्वां देवि लोके मन्यामहे वयम्।
सा त्वमस्मानुपागच्छ यतो रत्नभुजो वयम् ६३॥

टी०। और हे देवि! इस लोक में तुमको स्त्रियों में रत्न समझता हूँ इससे तुम मेरे पास चली आवो क्योंकि इससमय रत्नभोक्ता मैंही हूँ ६३॥

मू० मां वा ममानुजं वापि निशुम्भमुरुविक्रमम्।
भज त्वं चञ्चलापाङ्गि रत्नभूतासि वै यतः ६४॥

टी०। हे चञ्चलापाङ्गि! मेरे पास अथवा बहुतबलवाले मेरे छोटे भाई निशुम्भ के पास जहां तुम्हारी इच्छाहो आकर रहो और सेवाकरो क्योंकि तुम रत्नरूपहो ६४॥

मू० परमैश्वर्य्यमतुलं प्राप्स्यसे मत्परिग्रहात्।
एतद्बुद्ध्या समालोच्य मत्परिग्रहतां व्रज ६५॥

टी०। मेरे आश्रय से तुमको अतुल धन प्राप्त होगा इन बातों का बुद्धिसे विचारकरके मेरी स्त्री होकर रहो ६५॥

ऋषिरुवाच॥

मू० इत्युक्ता सा तदा देवी गम्भीरान्तस्मिता जगौ।
दुर्गा भगवती भद्रा ययेदं धार्य्यते जगत् ६६॥

टी०। मेधा ऋषि कहते हैं कि हे राजन्! इस तरह जब असुरके दूत ने उस देवी से कहा तब भीतर गंभीर हास्य से संयुत वह दुर्गा व भद्रा भगवती जो इस जगत् को धारणकरती हैं बोलीं ६६॥

देव्युवाच॥

मू० सत्यमुक्तं त्वया नात्र मिथ्याकिञ्चित्त्वयोदितम्।
त्रैलोक्याधिपतिः शुम्भो निशुम्भश्चापि तादृशः ६७॥

टी०। देवीनेकहा कि तुम ने जो कहा वह सब सत्य है इसमें तुमने किञ्चित् मिथ्या नहीं कहा है कि शुम्भ और वैसाही निशुम्भ तीनों लोकके मालिक हैं ६७॥

मू० किं त्वत्र यत्प्रतिज्ञातं मिथ्या तत्क्रियते कथम्।
श्रूयतामल्पबुद्धित्वात्प्रतिज्ञा या कृता पुरा ६८॥

टी०। परन्तु स्वामी करने के वास्ते जो मैंने प्रतिज्ञा कीहै उसको किस प्रकार मिथ्या करूं प्रतिज्ञा छोड़ना बड़ा दोष है मैंने मूर्खता से जो प्रतिज्ञा पहिले की है वह सुनो ६८॥

मू० यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्प्पं व्यपोहति।
यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्त्ता भविष्यति ६९॥

टी०। प्रतिज्ञा मेरी यह है कि जो कोई समर में मुझको जीत ले या जो मेरे अहंकारको किसी तरह तोड़ दे अथवा संसार में जिसको मेरे बराबर बलहो वही मेरा पति होगा ६९॥

मू० तदागच्छतु शुम्भोत्र निशुम्भो वा महासुरः।
मां जित्वा किं चिरेणात्र पाणिं गृह्णातु मे लघु ७०॥

टी०। ऐसी सामर्थ्य जो शुम्भ में हो अथवा महादैत्य निशुम्भ में हो तो यहां आकर मुझको समर में जीतकर इसी समय विवाह लें इस में देरसे क्या है ७०॥

दूतउवाच॥

मू० अवलिप्तासि मैवं त्वं देवि ब्रूहि ममाग्रतः।
त्रैलोक्ये कः पुमांस्तिष्ठेदग्रे शुम्भनिशुम्भयोः ७१॥

टी०। यह बात सुनकर दूत बोला कि हे देवि! तुम इस तरह घमंड की बात हमारे आगे मत बोलो तीनोंलोक में ऐसा कौन पुरुष समर्थ है शुम्भ निशुम्भ के आगे खड़ारहै तुम तो स्त्री हो ७१॥

मू० अन्येषामपि दैत्यानां सर्व्वे देवा न वै युधि।
तिष्ठन्ति सम्मुखे देवि किं पुनः स्त्री त्वमेकिका ७२॥

टी०। और हे देवि! जो उनके दूसरे दैत्यलोग हैं उनके सामने भी सब कोई देवता समर में नहीं खड़े होसक्के फिर तुम तो स्त्री और अकेली हो किस तरह समर में सामना उनका करसकोगी ७२॥

मू० इन्द्राद्याः सकला देवास्तस्थुर्येषां न संयुगे।

शुम्भादीनां कथं तेषां स्त्री प्रयास्यसि सम्मुखम् ७३ ॥

टी०। और जिन शुम्भ इत्यादि असुरों के आगे इन्द्र सहित सम्पूर्ण देवता मिलकर समर में नहीं खड़े होसके हैं उन लोगों के सामने तुम स्त्री होकर किसतरह जावोगी ७३ ॥

मू० सा त्वं गच्छ मयैवोक्ता पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः।
केशाकर्षणनिर्धूतगौरवामागमिष्यसि ७४ ॥

टी०। मेरा कहा मानों तुम शुम्भ निशुम्भ के पास चलो नहीं तो कोई दूसरा दुष्टदैत्य उनका आवैगा तो वह तुम्हारा सब घमण्ड तोड़कर और तुम्हारे शिरके बाल पकड़कर लेजायगा ७४ ॥

देव्युवाच ॥

मू० एवमेतद्बली शुम्भो निशुम्भश्चातिवीर्यवान्।
किं करोमि प्रतिज्ञा मे यदनालोचिता पुरा ७५ ॥

टी०। दूत की यह बात सुनकर देवी बोलीं कि यह सत्य है शुम्भ और निशुम्भ ऐसेही बली और पराक्रमी हैं परन्तु क्या करूं मैं पहिले बिना विचारे ऐसी प्रतिज्ञा करचुकी हूँ अब दूसरी बात नहीं होसकी ७५॥

मू० सत्वं गच्छ मयोक्तं ते यदेतत्सर्वमादृतः।
तदाचक्ष्वासुरेन्द्राय स च युक्तं करोतु यत् ७६ ॥

टी०। अब सो तुम जावो और जो कुछ मैंने तुम से कहाहै यह सब न्यूनाधिक्य विना असुरों के स्वामी शुम्भ से जाकर आदरपूर्वक कहो फिर इस बात में जो योग्य होगा वह उसको करैगा ७६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेसावर्णिकेमन्वन्तरेदेवीमाहात्म्ये
दूतसंवादोनाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ८५ ॥

अथ छियासीवां अध्याय ॥

ऋषिरुवाच ॥

मू० इत्याकर्ण्य वचो देव्याः स दूतोऽमर्षपूरितः।
समाचष्ट समागम्य दैत्यराजाय विस्तरात् १ ॥

टी०। मेधा ऋषि कहते हैं कि हे सुरथ! ये बातें देवीजी की सुनकर वह दूत क्रोधसंयुक्त हो दैत्यराज अर्थात् शुम्भ के पास जाकर देवी की सब बातें विस्तारपूर्व्वक कहसुनाया १॥

मू० तस्य दूतस्य तद्वाक्यमाकर्ण्यासुरराट् ततः।
सक्रोधः प्राह दैत्यानामधिपं धूम्रलोचनम् २॥

टी०। तदनन्तर उस दूत की वह बात सुनतेही असुरराज शुम्भ क्रोधित होकर अपने सेनापति धूम्रलोचन से कहने लगा २॥

मू० हे धूम्रलोचनाशु त्वं स्वसैन्यपरिवारितः।
तामानय बलाद्दुष्टां केशाकर्षणविह्वलाम् ३॥

टी०। कि हे धूम्रलोचन! तुम अपनी सेना को साथ लेकर शीघ्र वहां जावो और उस दुष्टा को केश पकड़कर विह्वल करके ज़बरदस्ती यहां लेआवो ३॥

मू० तत्परित्राणदः कश्चिद्यदिवोत्तिष्ठतेपरः।
स हन्तव्योमरो वापि यक्षो गन्धर्व्व एव वा ४॥

टी०। अगर जो उसका कोई और रक्षक सामना करै चाहै वह देवता हो चाहै यक्ष चाहै गन्धर्व्व कोईहो उसको तुम मारडालना ४॥

ऋषिरुवाच॥

मू० तेनाज्ञप्तस्ततः शीघ्रं स दैत्यो धूम्रलोचनः।
वृतः षष्ट्या सहस्राणामसुराणा द्रुतं ययौ ५॥

टी०। ऋषि कहते हैं कि इतनी आज्ञा शुम्भ की पाकर उसके बाद शीघ्रही वह धूम्रलोचन दैत्य साठ हजार असुर साथ लेकर शीघ्रही चला ५॥

मू० स दृष्ट्वा तां ततो देवीं तुहिनाचलसंस्थिताम्।
जगादोच्चैः प्रयाहीति मूलं शुम्भनिशुम्भयोः ६॥

टी०। और वह वहां जाकर हिमाचल पर्व्वत पर उन देवी को विराजमान देखकर बड़े ज़ोर से यह बोला कि तुम शुम्भ निशुम्भ के पास चलो ६॥

मू० न चेत्प्रीत्याद्य भवती मद्भर्त्तारमुपैष्यति।
तततो बलान्नयाम्येष केशाकर्षणविह्वलाम् ७॥

टी०। यदि इससमय आप प्रीतिसंयुक्त मेरे स्वामी के पास नहीं चलोगी तो मैं तुम्हारा झोंटा पकड़कर विह्वल करके बरजोरी लेजाऊंगा ७॥

देव्युवाच॥

मू० दैत्येश्वरेण प्रहितो बलवान्बलसंवृतः।
बलान्नयसि मामेवं ततः किन्ते करोम्यहम् ८॥

टी०। देवीजीने कहा कि तुम दैत्यराज की आज्ञा से सेना साथ लेकर आये हो बलवान् हो यदि बरजोरी मुझे इसीतरह से लेजावोगे तो मैं तुम्हारा क्या करसकूंगी ८॥

ऋषिरुवाच॥

मू० इत्युक्तः सोभ्यधावत्तामसुरो धूम्रलोचनः।
हुङ्कारेणैव तं भस्म साचकाराम्बिका ततः ९॥

टी०। मेधाऋषि कहते हैं कि इतना कहनेपर वह असुर धूम्रलोचन क्रोधकरके उन देवीपर दौड़ा तब अम्बिका देवीने हुंकारही शब्द करके उसको भस्म करडाला ९॥

मू० अथ क्रुद्धं महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका।
ववर्ष शायकैस्तीक्ष्णैस्तथा शक्तिपरश्वधैः १०॥

टी०। तत्पश्चात् असुरोंकी महासेना क्रोधकरके लड़नेके वास्ते उपस्थित हुई और देवीजी भी क्रोधसंयुक्त होकर अच्छे २ पैने बाणों और शक्ति और परश्वधों से वर्षा करनेलगीं १०॥

मू० ततो धुतसटः कोपात्कृत्वा नादं सुभैरवम्।
पपातासुरसेनायां सिंहो देव्याः स्ववाहनः ११॥

टी०। तब देवीजी के निज वाहन सिंहने अपने मनमें विचार किया कि विना सेनापति के समरमें देवीको परिश्रम करना उचित नहीं इससे अपने गलेके बालोंको हिलाकर भयङ्कर शब्द से गरजता हुआ असुरोंकी सेना में कूदकर पहुँचा ११॥

मू० कांश्चित्करप्रहारेण दैत्यानास्येन चापरान्।
आक्रान्त्या चाधरेणान्यान्स जघान महासुरान् १२॥

टी०। और बहुत से दैत्योंको हाथ के प्रहार से कितनों को मुख से व अन्य असुरों को अपने भ्रमण के ज़ोरसे व अन्य महासुरों को अपने ओष्ठसे उसने मारडाला १२॥

मू० केषांचित् पाटयामास नखैः कोष्ठानि केशरी।
तथा तलप्रहारेण शिरांसि कृतवान्पृथक् १३॥

टी०। औरउस सिंहने नखसे कितनोंके पेटही फाड़डाला और अन्य दैत्योंको हाथही से मारकर शिर तोड़डाला १३॥

मू० विच्छिन्नबाहुशिरसः कृतास्तेन तथापरे।
पपौ च रुधिरं कोष्ठादन्येषां धुतकेसरः १४॥

टी०। और वैसेही कितनोंका उस सिंहने बाहु और शिर काटडाला और गलेके बाल हिलाताहुआ कितनों का पेट फाड़कर रुधिर पान करगया १४॥

मू० क्षणेन तद्बलं सर्वं क्षयन्नीतं महात्मना।
तेन केशरिणा देव्या वाहनेनातिकोपिना १५॥

टी०। इसीतरह उस देवीके वाहन महात्मा सिंहने अत्यन्त कोपकर के क्षणमात्र में उस समस्त असुरबल को मारडाला १५॥

मू० श्रुत्वा तमसुरं देव्या निहतं धूम्रलोचनम्।
बलं च क्षयितं कृत्स्नं देवीकेशरिणा ततः १६॥

टी०। जब देवीके हाथ से उस धूम्रलोचन दैत्यका मरना और उनके वाहन सिंह करके सम्पूर्ण सेनाका नाशहोना शुम्भने सुना १६॥

मू० चुकोप दैत्याधिपतिः शुम्भः प्रस्फुरिताधरः।
आज्ञापयामास च तौ चण्डमुण्डौ महासुरौ १७॥

टी०। तब दैत्योंका अधिपति शुम्भ अत्यन्त क्रोधित हुआ और मारे क्रोधके ओंठ कांपनेलगे तब उसने उन चण्ड और मुण्ड महाअसुरों से कहा १७॥

मू० हे चण्ड हे मुण्ड बलैर्बहुलैः परिवारितौ।
तत्र गच्छत गत्वा च सा समानीयतां लघु १८॥

टी०। कि हे चण्ड हे मुण्ड! तुमलोग बहुतसी सेना लेकर वहां जावो और जाकर उस देवी को जल्द लेआवो १८॥

मू० केशेष्वाकृष्य बद्ध्वा वा यदि वः संशयो युधि।
तदाशेषायुधैः सर्व्वैरसुरैर्विनिहन्यताम् १९॥

टी०। केश पकड़कर अथवा बांधकर लेआना यदि उसतरह लानेमें तुमलोगों को सन्देह हो तो सब कोई दैत्य मिलकर अस्त्रोंसे समर कर मारही डालना १९॥

मू० तस्यां हतायां दुष्टायां सिंहे च विनिपातिते।
शीघ्रमागम्यतां बद्ध्वा गृहीत्वा तामथाम्बिकाम् २०॥

टी०। और उस दुष्टाके मारेजाने पर उसके वाहन सिंहको भी मार डालना और जल्द आवो व शक्तिभर उस अम्बिका को बांधही कर लेआना २०॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेसावर्णिकेमन्वन्तरेदेवीमाहात्म्येधूम्रलोचनवधो नामषडशीतितमोऽध्यायः ८६॥

अथ सत्तासीवां अध्याय॥

ऋषिरुवाच॥

मू० आज्ञप्तास्ते ततो दैत्याश्चण्डमुण्डपुरोगमाः।
चतुरङ्गबलोपेता ययुरभ्युद्यतायुधाः १॥

टी०। मेधाऋषि कहते हैं कि हे सुरथ! इसतरह शुम्भ की आज्ञा पाकर चण्ड और मुण्ड इत्यादि वे सब दैत्य अस्त्र शस्त्र उठायेहुये चतुरङ्गिणी सेना लेकर देवीजी को लेआने के वास्ते गये १॥

मू० ददृशुस्ते ततो देवीमीषद्धासां व्यवस्थिताम्।
सिंहस्योपरिशैलेन्द्रशृङ्गे महति काञ्चने २॥

टी०। तब उन असुरों ने हिमाचल पर्वत के सुवर्णवाले भारी शृङ्ग पर सिंहपर चढ़ी व मन्द २ मुसकराती हुई भगवती को देखा २॥

मू० ते दृष्ट्वा तां समादातुमुद्यमं चक्रुरुद्यताः।
आकृष्टचापासिधरास्तथान्येतत्समीपगाः ३॥

टी०। वे देखकर दैत्योंमें से कोई तो अपना धनुष चढ़ाकर कोई खड्ग लेकर कोई समीप जाकर देवीजी को पकड़ने पर नियुक्त हुये ३॥

मू० ततः कोपं चकारोच्चैरम्बिकातानरीन्प्रति।
कोपेन चास्या वदनं मषीवर्णमभूत्तदा ४॥

टी०। तब अम्बिका देवीने उन शत्रुओं पर बड़ा क्रोध किया और मारे क्रोध के इन भगवती का मुख उस समय कज्जल के सदृश काला होगया ४॥

मू० भ्रुकुटीकुटिलात्तस्या ललाटफलकादुद्रुतम्।
कालीकरालवदना विनिष्क्रान्तासिपाशिनी ५॥

टी०। और उस कोप से भगवती के भृकुटी कुटिल संयुक्त ललाट से शीघ्रही हाथों में खड्ग और पाश धारण किये हुई व भयानक मुखवाली श्रीकालीजी प्रकट हुईं ५॥

मू० विचित्रखट्वाङ्गधरा नरमालाविभूषणा।
द्वीपिचर्म्मपरीधाना शुष्कमांसातिभैरवा ६॥

टी०। और वह विचित्र खट्वाङ्ग धरा अर्थात् मुरदेका पांजर अथवा खटिया का अङ्ग याने पाटी लिये और मुण्डमाल पहिनेहुई और बाघकी खाल ओढ़ेथी व जो बिन मांसकी थी इसीसे अत्यन्त भयावनी थी ६॥

मू० अतिविस्तारवदना जिह्वाललनभीषणा।
निमग्नारक्तनयना नादापूरितदिङ्मुखा ७॥

टी०। और बड़ेभारी मुखवाली व जीभ काढ़े हिलाती हुई और भयानक थी व कुवां के समान गहिरे तीन नेत्र धारण कियेहुई और अपने गर्जनशब्द से दशो दिशा को पूरित करतीथी ७॥

मू० सा वेगेनाभिपतिता घातयन्ती महासुरान्।
सैन्ये तत्र सुरारीणामभक्षयत तद्बलम् ८॥

टी०। वह काली बड़ेवेग से उस असुरदल में पहुँचकर उन महाअसुरोंको मारनेलगीं व दैत्यों की उस सेनामें दैत्योंके उस दलको भक्षण करगई ८॥

मू० पार्ष्णिग्राहाङ्कुशग्राहियोधघण्टासमन्वितान्।
समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप वारणान् ९॥

टी०। और एकही हाथसे हाथी के पांजर रक्षाकरनेवाले सहित व महावत और सवार और घण्टा इत्यादिक संयुक्त हाथियों को पकड़कर अपने मुख में डाललिया ९॥

मू० तथैव योधंतुरगै रथं सारथिनासह।
निक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयन्त्यतिभैरवम् १०॥

टी०। इसीतरह घोड़ोंको भी सहित उनके सवारों के और रथों को भी सहित उनके कोचवानों के मुख में डालकर दांतों से अतिविकरालतासे चबाडाला १०॥

मू० एकं जग्राह केशेषु ग्रीवायामथ चापरम्।
पादेनाक्रम्य चैवान्यमुरसान्यमपोथयत् ११॥

टी०। और किसी के केशपकड़कर किसीको छातीका धक्का मारकार किसीका गला दबाकर किसीको पांव तले दबाकर मारडाला ११॥

मू० तैर्मुक्तानि च शस्त्राणि महास्त्राणि तथासुरैः।
मुखेनजग्राहरुषादशनैर्मथितान्यपि १२॥

टी०। और जो वे असुर महाअस्त्र और शस्त्र चलाते थे उन सबको भी क्रोधसे मुख में डालकर दांतों से पीसडाला १२॥

मू० बलिनां तद्बलं सर्व्वमसुराणां महात्मनाम्।
ममर्दाभक्षयच्चान्यानन्यांश्चाताडयत्तथा १३॥

टी०। और बड़े बड़े बली व महातमा याने बड़ी देहवाले असुरों की उस समस्त सेनाको हथियारोंसे मारडाला और कितनों को खागई और किसीको ताड़ना किया १३॥

मू० असिना निहताः केचित् केचित्खट्वाङ्गताडिताः।
जग्मुर्विनाशमसुरा दन्ताग्राभिहतास्तथा १४॥

टी०। कितने तो तलवार की मारसे और कितने षट्वाङ्ग की मार से और कितने दन्ताग्र अर्थात् दांतोंकी नोककी मार से मरगये इसीतरह असुरों की सब सेना नाशको प्राप्तहोगई १४ ॥

मू० क्षणेन तद्बलं सर्व्वमसुराणां निपातितम्।
दृष्ट्वाचण्डोभिदुद्राव तां कालीमतिभीषणाम् १५ ॥

टी०। तात्पर्य्य यह है कि एकही क्षणमात्रमें जब देवीजी ने दैत्योंकी उस सम्पूर्ण सेनाको नाशकर दिया तब चण्ड देखकर अतिविकराली उन श्रीकालीजी की तरफ़ दौड़ा १५ ॥

मू० शरवर्षैर्महाभीमैर्भीमाक्षीं तां महासुरः।
छादयामास चक्रैश्च मुण्डः क्षिप्तैः सहस्रशः १६ ॥

टी०। और चण्ड महादैत्य भयङ्कर नेत्रोंवाली उन महाकाली को महाभयङ्कर बाणोंकी वर्षा करके और मुण्ड हजारोंचक्र भी फेंककर कालीजी को छाप लिया १६ ॥

मू० तानि चक्राण्यनेकानि विशमानानि तन्मुखम्।
बभुर्यथार्कबिम्बानि सुबहूनि घनोदरम् १७ ॥

टी०। वह सब चक्र कालीजी के मुख में पैठतेहुये ऐसे मालूम होते थे कि जैसे मेघमें पैठतेहुये बहुतसे सूर्य्योंके बिम्ब शोभायमानहो १७ ॥

मू० ततो जहासातिरुषा भीमं भैरवनादिनी।
कालीकरालवक्त्रान्तर्दुर्दर्शदशनोज्ज्वला १८ ॥

टी०। उस समय बड़े क्रोधसे भयङ्कर मुख के बीचमें निकट दांतोंके तेजसे उजली कालीजी महाभयानक गर्जन संयुक्त हँसी १८ ॥

मू० उत्थाय च महासिंहं देवी चण्डमधावत।
गृहीत्वा चास्यकेशेषु शिरस्तेनासिनाच्छिनत् १९ ॥

टी०। और महाखड्ग उठाकर बड़े क्रोधसंयुक्त हं ऐसा शब्द उच्चारण करके देवी चण्ड की तरफ़ दौड़ीं और उसके केश पकड़कर उसी तलवार से शिर उसका काट लिया १९ ॥

मू० अथ मुण्डोभ्यधावत्तां दृष्ट्वा चण्डं निपातितम्।
तमप्यपातयद्भूमौ सा खड्गाभिहतं रुषा २० ॥

टी०। जब चण्ड मारागया तब मुण्ड देखकर उन देवीके सामने दौड़ा तो उसको भी क्रोधकरके कालीजी ने तलवार से मारकर पृथ्वी पर गिरादिया २० ॥

मू० हतशेषं ततः सैन्यं दृष्ट्वा चण्डं निपातितम्।
मुण्डञ्च सुमहावीर्य्यं दिशोभेजे भयातुरम् २१ ॥

टी०। फिर तो उन दोनों चण्ड और बड़े पराक्रमी मुण्डके मारेजाने पर मरने से बाक़ी सेना असुरों की डरकर जहां तहां भाग गई २१ ॥

मू० शिरश्चण्डस्य काली च गृहीत्वा मुण्डमेव च।
प्राह प्रचण्डाट्टहासमिश्रमभ्येत्य चण्डिकाम् २२ ॥

टी०। तब कालीजी चण्ड का शिर और मुण्ड का शिर धड़सहित लेकर बड़े जोरसे हँसती हुई चण्डिकादेवीके पास जिनके ललाट से निकली थीं आकर बोलीं २२ ॥

मू० मया तवात्रोपहृतौ चण्डमुण्डौ महापशू।
युद्धयज्ञे स्वयं शुम्भं निशुम्भं च हनिष्यसि २३ ॥

टी०। कि हे देवि ! इस समरके यज्ञमें मैंने तुम्हारे वास्ते इन दोनों महापशु चण्ड और मुण्ड को बलिदान दिया है व अपने हाथसे तुम आपही शुम्भ और निशुम्भ को मारोगी २३ ॥

ऋषिरुवाच ॥

मू० तावानीतौ ततो दृष्ट्वा चण्डमुण्डौ महासुरौ।
उवाच कालीं कल्याणी ललितं चण्डिका वचः २४ ॥

टी०। मेधाऋषि कहते हैं कि हे सुरथ ! उस महाअसुर चण्ड और मुण्ड के लायेहुये मृतक शरीरको देखकर कल्याणरूपिणी चण्डिकादेवी कालीजीसे सुन्दर वचन कहनेलगीं ॥२४॥

मू० यस्माच्चण्डञ्च मुण्डञ्च गृहीत्वा त्वमुपागता।
चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवि भविष्यसि २५ ॥

टी० कि जिस लिये तुम चण्ड मुण्ड को मारकर मेरे सामने लाईहो इस वास्ते हे देवि ! तुम चामुण्डा ऐसे नामसे जगत् में विख्यातहोगी २५॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेसावर्णिकेमन्वन्तरदेवीमाहात्म्येचण्डमुण्डवधो नामसप्ताशीतितमोऽध्यायः ८७ ॥

अथ अट्ठासीवां अध्याय ॥

ऋषिरुवाच ॥

मू० चण्डे च निहते दैत्ये मुण्डे च विनिपातिते।
बहुलेषु च सैन्येषु क्षयितेष्वसुरेश्वरः १ ॥

टी०। मेधाऋषि कहते हैं कि हे सुरथ! जब कालीजीने चण्ड और मुण्ड दैत्यों को मारडाला और बहुत सेनाको भी मारडाला तब असुरों का मालिक १ ॥

मू० ततः कोपपराधीनचेताः शुम्भः प्रतापवान्।
उद्योगं सर्व्वसैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह २ ॥

टी०। महाप्रतापी शुम्भ ने कोपसे पराधीनचित्त होकर दैत्यों की समस्त सेनाको देवीसे लड़ने के वास्ते तैयार होनेका हुक्म दिया २ ॥

मू० अद्य सर्व्वबलैर्दैत्याः षडशीतिरुदायुधाः।
कम्बूनां चतुरशीतिर्निर्यान्तु स्वबलैर्वृताः ३ ॥

टी०। कि इससमय जो उदायुधनाम छियासी बलवान् दैत्यहैं और कम्बूनाम जो चौरासी दैत्य हैं वे सबलोग अपनी अपनी समस्तसेना लेकर देवीसे लड़ने को चलें ३ ॥

मू० कोटिवीर्य्याणि पञ्चाशदसुराणां कुलानि वै।
शतं कुलानि धौम्राणां निर्गच्छन्तु ममाज्ञया ४ ॥

टी०। और कोटिवीर्य्यनाम जो पचास दैत्यों के कुल हैं और धूम-वंशके जो सौकुल हैं वे सब कोई मेरी आज्ञा से तैयारहोकर लड़ने के वास्ते चलें ४ ॥

मू० कालका दौर्हृदा मौर्य्याः कालकेयास्तथासुराः।
युद्धाय सज्जा निर्य्यान्तु आज्ञया त्वरिता मम ५ ॥

टी०। और कालकनाम करके जो असुर हैं और दुर्हृदनाम असुर

के जो बेटेलोगहैं और मौर्य्यनाम करके जो असुरहैं और वैसेही काल-काके बेटेलोग सब के सब युद्धका सामान लेकर मेरी आज्ञा से शीघ्रही रणभूमि में जायँ ५ ॥

मू० इत्याज्ञाप्यासुरपतिः शुम्भोभैरवशासनः ।
निर्जगाम महासैन्यसहस्रैर्बहुभिर्वृतः ६ ॥

टी० । इसतरह की प्रबल आज्ञादेकर उग्रआज्ञावाला शुम्भ असुरों का मालिक हजारों बड़ी फौजें अपने साथ लेकर लड़ने के वास्ते निकला ६ ॥

मू० आयातं चण्डिका दृष्ट्वा तत्सैन्यमतिभीषणम् ।
ज्यास्वनैः पूरयामास धरणीगगनान्तरम् ७ ॥

टी० । इसतरह की बड़ीभयानक आईहुई उसकी सेना को देखकर चण्डिकादेवी ने अपने धनुष को चढ़ाया कि जिसकी प्रत्यंचाका शब्द आकाश और पृथ्वी में पूरित होगया ७ ॥

मू० ततः सिंहोमहानादमतीवकृतवान्नृप ।
घण्टास्वनेन तन्नादमम्बिका चोपबृंहयत् ८ ॥

टी० । हे राजन् ! तत्पश्चात् सिंह देवीका वाहन भी बहुत गरजा और उसके गरजने के शब्दको चण्डिका ने घंटे के शब्दसे और भी बढ़ाया ८ ॥

मू० धनुर्ज्यासिंहघण्टानां नादापूरितदिङ्मुखा ।
निनादैर्भीषणैः काली जिग्ये विस्तारितानना ९ ॥

टी० । इसतरह सिंह और धनुष की प्रत्यंचा और घण्टे की भयानक आवाज से बड़े चौड़ेमुखवाली कालीजी जीतलीगईं कि जिनके निज शब्द से दशोंदिशायें पूर्ण होगईं थीं ९ ॥

मू० तन्निनादमुपश्रुत्य दैत्यसैन्यैश्चतुर्दिशम् ।
देवी सिंहस्तथाकाली सरोषैः परिवारिताः १० ॥

टी० । वह शब्द सुनकर दैत्योंकी सेनाने क्रोधकरके देवी और काली और सिंहको चारों तरफ से घेर लिया १० ॥

मू० एतस्मिन्नन्तरे भूप विनाशाय सुरद्विषाम्।
भवायामरसिंहानामतिवीर्य्यबलान्विताः ११॥

टी०। हे राजन्! इसीसमय में उन असुरों के नाश और देवताओं के कल्याण होनेके वास्ते बड़े बड़े वीरोंको साथ लेकर ११॥

मू० ब्रह्मेशगुहविष्णूनां तथेन्द्रस्य च शक्तयः।
शरीरेभ्योविनिष्क्रम्य तद्रूपैश्चण्डिकां ययुः १२॥

टी०। ब्रह्मा और महादेव स्वामिकार्त्तिक और विष्णु और इन्द्र और अन्य देवतालोगोंकी शक्तियां देहोंसे निकलकर उन्हीं देवताओं का रूप धारणकरके चण्डिकादेवी के पास पहुँचीं १२॥

मू० यस्य देवस्य यद्रूपंयथाभूषणवाहनम्।
तद्वदेवहि तच्छक्तिरसुरान्योद्धुमाययौ १३॥

टी०। और जिन जिन देवताओं का जैसा जैसा रूप और जैसी सवारी और जैसी पोशाक थी वैसीही उन देवताओंकी शक्तियां भी धारण करके असुरों से युद्धकरने के वास्ते आईं १३॥

मू० हंसयुक्तविमानाग्रे साक्षसूत्रकमण्डलुः।
आयाता ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणी साभिधीयते १४॥

टी०। अर्थात् हंसयुक्त विमान पर बैठकर हाथ में कमल की माला और कमण्डलु लिये ब्रह्माजी की शक्ति जो ब्रह्माणी कहलाती हैं वे आईं १४॥

मू० माहेश्वरी वृषारूढा त्रिशूलवरधारिणी।
महाहिवलया प्राप्ता चन्द्ररेखाविभूषणा १५॥

टी०। और एक बड़ा त्रिशूल हाथमें लियेहुई व महातक्षक सर्प और शेषके कङ्कण बांहमें पहिने व चन्द्रकलाभूषण मस्तक में धारे और बैल पर सवार महादेव की शक्ति माहेश्वरी आईं १५॥

मू० कौमारीशक्तिहस्ता च मयूरवरवाहना।
योद्धुमभ्याययौ दैत्यानम्बिका गुहरूपिणी १६॥

टी०। इसीतरह हाथमें सांग लिये उत्तम मोर के ऊपर सवार

दैत्योंसे युद्धकरने के वास्ते कार्त्तिकेय की शक्ति कौमारी आई १६ ॥
मू० तथैव वैष्णवीशक्तिर्गरुडोपरिसंस्थिता ।
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गखड्गहस्ताभ्युपाययौ १७ ॥
टी० । उसीतरह चक्र गदा शङ्ख धनुष व बाण और तलवार हाथोंमें लियेहुई विष्णुकी शक्ति लक्ष्मीजी गरुडपर सवार होकर आई १७ ॥
मू० यज्ञवाराहमतुलं रूपं या बिभ्रतोहरेः ।
शक्तिःसाप्याययौ तत्र वाराहीं बिभ्रती तनुम् १८ ॥
टी० । और यज्ञवाराहका अतुलरूप धारणकरनेवाले विष्णुकी जो शक्ति हैं वह भी वाराहीरूप बनकर वहां आई १८ ॥
मू० नारसिंही नृसिंहस्य बिभ्रती सदृशं वपुः ।
प्राप्ता तत्र सटाक्षेपक्षिप्तनक्षत्रसंहतिः १९ ॥
टी० । और नृसिंहजीकी शक्ति नृसिंहके तुल्य रूप बनाकर रणभूमि में आई जो अपने आलके बालोंको आकाश में फहराकर नक्षत्रों को अलग अलग करतीथी १९ ॥
मू० वज्रहस्ता तथैवैन्द्री गजराजोपरिस्थिता ।
प्राप्ता सहस्रनयना यथा शक्रस्तथैव सा २० ॥
टी० । उसी तरह हाथमें वज्र लिये ऐरावत हाथी पर सवार सहस्रलोचनवाली इन्द्र की शक्ति भी उस रणभूमि में पहुँची जैसे इन्द्र वैसे ही वह थी २० ॥
मू० ततः परिवृतस्ताभिरीशानोदेवशक्तिभिः ।
हन्यन्तामसुराः शीघ्रं मम प्रीत्याह चण्डिकाम् २१ ॥
टी० । इसके बाद उन देवशक्तियों से घिरेहुये महादेवजी भी वहां आकर चण्डिकासे बोले कि मेरी प्रीति से इन असुरोंको शीघ्रमारो २१ ॥
मू० ततोदेवीशरीरात्तुविनिष्क्रान्तातिभीषणा ।
चण्डिकाशक्तिरत्युग्रा शिवाशतनिनादिनी २२ ॥
टी० । उसके बाद चण्डिकादेवी के शरीर से बहुत भयानक स्वभाववाली हजारों सियारनी बोलती हुईं साथ लेकर अतिविकराल चण्डिका देवी निकलीं २२ ॥

मू० सा चाह धूम्रजटिलमीशानमपराजिता।
दूत त्वं गच्छ भगवन् पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः २३॥

टी०। वह अपराजिता धूम्रवर्णके जटाधारणकरनेवाले महादेवजीसे बोलीं कि हे भगवन्! आप मेरी ओरसे दूत होकर शुम्भ और निशुम्भ के पास जाइये २३॥

मू० ब्रूहि शुम्भं निशुम्भञ्च दानवावतिगर्वितौ।
ये चान्ये दानवास्तत्र युद्धाय समुपस्थिताः २४॥

टी०। और उन अतिघमण्डी शुम्भ निशुम्भ दानवों से और दूसरे असुरलोगों से भी जो लड़ाईकरनेके वास्ते आयेहों उन सबसे कहिये २४॥

मू० त्रैलोक्यमिन्द्रोलभतां देवाःसन्तु हविर्भुजः।
यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ २५॥

टी०। कि अब इन्द्र अपना त्रिलोक का राज्य करैंगे और देवता लोग अपना यज्ञभाग लेंगे इससे तुमलोगोंकी भलाई और जिन्दगी इसी में है कि तुमलोग पाताल में चलेजावो २५॥

मू० बलावलेपादथ चेद्भवन्तो युद्धकाङ्क्षिणः।
तदागच्छत तृप्यन्तु मच्छिवाः पिशितेन वः २६॥

टी०। और जो तुमलोग बलके अहंकार से युद्धकरना चाहतेहो तो आतेजावो कि तुमलोगोंका मांस मेरी सियारिनी खा खाकर तृप्त होजायँ २६॥

मू० यतोनियुक्तोदौत्येन तया देव्या शिवः स्वयम्।
शिवदूतीति लोकेस्मिंस्ततः साख्यातिमागता २७॥

टी०। जोकि उस समय देवी ने साक्षात् महादेवजीको अपना दूत बनाया था इसलिये इसलोक में वह भगवती शिवदूती ऐसी प्रसिद्ध हुई २७॥

मू० तेपि श्रुत्वा वचोदेव्याः शर्वाख्यातं महासुराः।
अमर्षापूरिताजग्मुर्यत्र कात्यायनी स्थिता २८॥

टी०। तात्पर्य्य यह कि देवी की आज्ञानुसार महादेवजी ने महा-

असुरोंमें जाकर कहा तब वे असुरलोग भी इस बात को सुनकर जहां पर वह देवी विराजमान थी वहांपर क्रोध से पूर्ण सब असुर गये २८ ॥

मू० ततः प्रथममेवाग्रे शरशक्त्यृष्टिवृष्टिभिः ।
ववर्ष रुद्धतामर्षास्तां देवीममरारयः २९ ॥

टी० । और उसके बाद भगवती के सामने जातेही पहलेही उन देवी पर बड़े क्रोधवाले दैत्य बाणों और शक्तियों का मेह बरसाने लगे २९ ॥

मू० सा च तान्प्रहितान्बाणाञ्छूलशक्तिपरश्वधान् ।
चिच्छेद लीलया ध्मातधनुर्मुक्तैर्महेषुभिः ३० ॥

टी० । परन्तु देवीजी ने उनके चलायेहुये बाणों और शूल और शक्ति और परश्वध इत्यादिको खेलही करके अपने शब्दायमान धनुष से छूटेहुये बाणों से काटडाला ३० ॥

मू० तस्याग्रतस्तथा काली शूलपातविदारितान् ।
खट्वाङ्गपोथितांश्चान्यान्कुर्वती व्यचरत्तदा ३१ ॥

टी० । उसी तरह उस वक्त कालीजी जो देवीजी के ललाट से निकली थीं अपने शूल से भेदती और खट्वाङ्ग से असुरोंको मारतीहुई उस रण में उन चण्डिका भगवती के आगे विचरने लगीं ३१ ॥

मू० कमण्डलुजलाक्षेपहतवीर्यान्हतौजसः ।
ब्रह्माणी चाकरोच्छत्रून्येन येन स्म धावति ३२ ॥

टी० । और ब्रह्माजी की शक्ति उस रण में घूम घूम कर अपने कमण्डलु का पानी छिड़क छिड़क कर उन असुरोंका बल और तेज हरण करती थीं ३२ ॥

मू० माहेश्वरी त्रिशूलेन तथा चक्रेण वैष्णवी ।
दैत्याञ्जघान कौमारी तथा शक्त्यातिकोपना ३३ ॥

टी० । उसी तरह माहेश्वरी बड़े क्रोधयुक्त अपने त्रिशूल से और वैसेही वैष्णवी अपने चक्र से और कौमारी अपनी शक्ति से दैत्यों को मारती थीं ३३ ॥

मू० ऐन्द्री कुलिशपातेन शतशो दैत्यदानवाः ।

पेतुर्विदारिताःपृथ्व्यां रुधिरौघप्रवर्षिणः ३४॥

टी०। और ऐन्द्री के वज्रपात से हजारों दैत्य और दानव कटे हुये रुधिरका प्रवाह करते हुये पृथ्वी पर गिरे पड़े थे ३४॥

मू० तुण्डप्रहारविध्वस्ता दंष्ट्राग्रक्षतवक्षसः।
वाराहमूर्त्यान्यपतंश्चक्रेण च विदारिताः ३५॥

टी०। और वाराही के तुण्ड (थूथुन) के प्रहार से विध्वस्त और उनकी दाढ़ों के अग्रभाग से छाती फट फट कर. और चक्र की मार से टुकड़े टुकड़े होहोकर पृथ्वीपर गिरे पड़े थे ३५॥

मू० नखैर्विदारितांश्चान्यान्भक्षयन्ती महासुरान्।
नारसिंही चचाराजौ नादापूर्णदिगन्तरा ३६॥

टी०। और कितने महाअसुरों को नारसिंही अपने नखों से फाड़ फाड़ कर खाती थीं और उस रणभूमि में टहल टहल कर अपने गरज का शब्द दशों दिशाओं में पहुँचाती थीं ३६॥

मू० चण्डाट्टहासैरसुराः शिवदूत्यभिदूषिताः।
पेतुःपृथिव्याम्पतितांस्तांश्चखादाथ सा तदा ३७॥

टी०। और कितने असुर शिवदूती के महाप्रचण्ड अट्टहाससे मूर्च्छित होकर पृथ्वी के ऊपर गिर जाते थे और गिरेहुये उनको वह शिवदूती उस वक़्त खाजाती थीं ३७॥

मू० इति मातृगणं क्रुद्धं मर्दयन्तं महासुरान्।
दृष्ट्वाभ्युपायैर्विविधैर्नेशुर्देवारिसैनिकाः ३८॥

टी०। इस तरह उन महाअसुरों को तरह तरह के उपायों से क्रोधित होकर शक्तियों ने मारडाला और जो कुछ सेना असुरों की बाक़ी रह गई वह यह हाल देखकर भाग गई ३८॥

मू० पलायनपरान् दृष्ट्वा दैत्यान्मातृगणार्दितान्।
योद्धुमभ्याययौ क्रुद्धो रक्तबीजो महासुरः ३९॥

टी०। उन शक्तियों से पीड़ित होकर भागते हुये दैत्यों की सेना को देखकर बड़े कोपके साथ रक्तबीज नाम महाअसुर उस संग्राम में लड़ने के वास्ते उपस्थित हुआ ३९॥

मू० रक्तबिन्दुर्यदा भूमौ पतत्यस्य शरीरतः।
समुत्पतति मेदिन्यास्तत्प्रमाणस्तदासुरः ४० ॥

टी०। और स्वभाव उसका यह था कि घाव लगने से जब बूँद रुधिर का इसके शरीर से पृथ्वी पर गिरता था तब उतनेही प्रमाण का असुर उसके सामने भूमिसे उत्पन्न होजाता था ४० ॥

मू० युयुधे सगदापाणिरिन्द्रशक्त्यामहासुरः।
ततश्चैन्द्रीस्ववज्रेण रक्तबीजमताडयत् ४१ ॥

टी०। और वह रक्तबीज महाअसुर हाथ में गदा लेकर इन्द्र की शक्ति से लड़ने लगा तदनन्तर इन्द्रकी शक्ति ने अपने वज्र से रक्तबीज को मारा ४१ ॥

मू० कुलिशेनाहतस्याशु बहु सुस्राव शोणितम्।
समुत्तस्थुस्ततो योधास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ४२ ॥

टी०। उस वज्र के घाव लगने से उसके शरीर से पृथ्वी पर बहुत रक्त गिरा उसी से उतनेही असुर रक्तबीज के समान रूप व बलवाले उसी समय प्रकट होगये ४२ ॥

मू० यावन्तः पतितास्तस्य शरीराद्रक्तबिन्दवः।
तावन्तः पुरुषा जातास्तद्वीर्य्यबलविक्रमाः ४३ ॥

टी०। जितने रक्तबिन्दु उसके शरीर से गिरते थे उतने असुर पराक्रमी व प्रभाव तथा उत्साह में रक्तबीज के समान उत्पन्न होते थे ४३ ॥

मू० ते चापि युयुधुस्तत्र पुरुषा रक्तसम्भवाः।
समं मातृभिरत्युग्रशस्त्रपातातिभीषणम् ४४ ॥

टी०। और वहाँ रक्तसे उपजे हुये वे भी सब असुर उन शक्तियों के साथ अति उग्र शस्त्रों के गिरने से अतिभयानक युद्ध करते थे ४४ ॥

मू० पुनश्च वज्रपातेन क्षतमस्य शिरो यदा।
ववाह रक्तं पुरुषास्ततो जाताःसहस्रशः ४५ ॥

टी०। और फिर जब इन्द्र की शक्ति के वज्र से रक्तबीज के शिर में घावलगा तब उसके शरीर से बहुत सा रुधिर पृथ्वी पर गिरा और उस रुधिर से हजारों असुर उसके समान उत्पन्न हुये ४५ ॥

मू० वैष्णवी समरे चैनं चक्रेणाभिजघान ह।
गदया ताडयामास ऐन्द्री तमसुरेश्वरम् ४६॥

टी०। और वह इन्द्र की शक्ति के सामने से भागकर जब वैष्णवी के सामने गया तो वैष्णवी ने समर में अपने चक्र और गदा से उस दैत्यराज को मारा ४६॥

मू० वैष्णवीचक्रभिन्नस्य रुधिरस्रावसम्भवैः।
सहस्रशो जगद् व्याप्तं तत्प्रमाणैर्महासुरैः ४७॥

टी०। वैष्णवी के उस चक्र का घाव लगने से जो रुधिर उसके शरीर से गिरा उस से भी उसीकी प्रमाण भर महासुर हजारों रक्तबीज उत्पन्न हुये और सम्पूर्ण लोक उन रक्तबीजों से भरगया ४७॥

मू० शक्त्या जघान कौमारी वाराही च तथासिना।
माहेश्वरी त्रिशूलेन रक्तबीजं महासुरम् ४८॥

टी०। फिर उस रक्तबीज महाअसुर को कौमारी ने अपनी शक्ति से और वाराही ने अपने खड्ग से और माहेश्वरी ने अपने त्रिशूलसे मारा ४८॥

मू० स चापि गदया दैत्यस्सर्व्वा एवाहनत्पृथक्।
मातृः कोपसमाविष्टो रक्तबीजो महासुरः ४९॥

टी०। और उधर से क्रोधसे भराहुवा उस रक्तबीज महाअसुर ने भी उन सब शक्तियों को गदासे अलग अलग करके मारा ४९॥

मू० तस्याहतस्य बहुधा शक्तिशूलादिभिर्भुवि।
पपात यो वै रक्तौघस्तेनासञ्छतशोसुराः ५०॥

टी०। निदान सांग और शूल आदि से उस रक्तबीज असुरके रक्तका प्रवाह जो भूमिमें गिरा उससे हजारों रक्तबीज दैत्य उत्पन्न हुये ५०॥

मू० तैश्चासुरासृक्सम्भूतैरसुरैः सकलं जगत्।
व्याप्तमासीत्ततो देवा भयमाजग्मुरुत्तमम् ५१॥

टी०। यहांतक कि रक्तबीज दैत्यके रक्तसे उत्पन्न हुये उन रक्तबीज असुरोंसे सम्पूर्ण पृथ्वी भरगई यह दशा देखकर देवताओं को बड़ा भय उत्पन्न हुआ ५१॥

मू० तान्विषण्णान्सुरान्दृष्ट्वा चण्डिका प्राह सत्वरा।

उवाच कालीं चामुण्डे विस्तीर्णं वदनं कुरु ५२ ॥

टी० । तब चण्डिका देवी देवताओं को त्रसित देखकर शीघ्रही बोलीं कि मत डरो व कालीजी से कहनेलगीं कि हे चामुण्डे ! तुम अपना मुख फैलावो ५२ ॥

मू० मच्छस्त्रपातसम्भूतान् रक्तबिन्दून्महासुरान् ।
रक्तबिन्दोः प्रतीच्छ त्वं वक्त्रेणानेन वेगिता ५३ ॥

टी० । मेरे शस्त्र का घात लगने और रक्तबीज के रुधिर गिरने से जितने असुर लोग उत्पन्न हों उन सबको खाजाया करो और फिर उन के रुधिर के बूंद पृथ्वी पर गिरने न पावैं बीचही में जल्दी से लेलिया करो ५३ ॥

मू० भक्षयन्ती चर रणे तदुत्पन्नान्महासुरान् ।
एवमेष क्षयं दैत्यः क्षीणरक्तो गमिष्यति ५४ ॥

टी० । और जितने महाअसुर उसके रुधिर से उत्पन्नहों उन सबको भक्षण करती हुई तुम युद्धमें विचरो इसतरह से जब इस दैत्यका रक्त क्षीण होजायगा तब यह दैत्य क्षय होजायगा ५४ ॥

मू० भक्ष्यमाणास्त्वया चोग्रा न चोत्पत्स्यन्ति चापरे ।
इत्युक्त्वा तां ततो देवी शूलेनाभिजघान तम् ५५ ॥

टी० । और जब तुम उन उग्र असुरों को भक्षण करोगी तब फिर और असुर पैदा न होंगे यह सब बातें उन कालीजी को समझाकर उसके बाद देवी जीने रक्तबीज को शूल से मारा ५५ ॥

मू० मुखेन काली जगृहे रक्तबीजस्य शोणितम् ।
ततोसावाजघानाथ गदया तत्र चण्डिकाम् ५६ ॥

टी० । और जो रुधिर उसके शरीरसे निकला उसको कालीजीने मुख में लेलिया पृथ्वी के ऊपर गिरने न दिया तब उस युद्धमें रक्तबीजने कोप करके देवीजी के ऊपर गदा चलाया ५६ ॥

मू० न चास्या वेदनां चक्रे गदापातोल्पिकामपि ।
तस्याहतस्य देहात्तु बहु सुस्राव शोणितम् ५७ ॥

टी० । परन्तु उस गदाके पातने देवीजी के ऊपर कुछ थोड़ीभी पीड़ा

न किया और देवीजी के वार करने से बहुत रुधिर उसके शरीर से निकला ५७॥

मू० यतस्ततस्तद्वक्त्रेण चामुण्डा सम्प्रतीच्छति।
मुखे समुद्गता येऽस्या रक्तपातान्महासुरान् ५८॥

टी०। उस रुधिर को चामुण्डा देवी जहां तहां मुखमें लेलेतीथीं और उस रक्त गिरने से जो असुर चामुण्डा देवीके मुखमें उत्पन्न होतेथे ५८॥

मू० तांश्चखादाथ चामुण्डा पपौ तस्य च शोणितम्।
देवी शूलेन वज्रेण बाणैरसिभिर्ऋष्टिभिः ५९॥

टी०। उनको चामुण्डा खाजातीथीं और उसके रक्तको पानकरतीथीं इस तरह से जो असुर रुधिर से उत्पन्न हुयेथे वह सब समाप्त होगये तब भगवती ने असल रक्तबीजको शूल और वज्र और बाण और खड्ग और ऋष्टि (दोनों तरफ़ धारवाली तलवार) से मारा ५९॥

मू० जघान रक्तबीजं तं चामुण्डा पीतशोणितम्।
स पपात महीपृष्ठे शस्त्रसङ्घसमाहतः ६०॥

टी०। इसतरह जब चामुण्डादेवीने उसका रुधिर पीलिया और देवीजीनें उसको शस्त्रों से मारा तब वह रक्तबीज नीरक्त होकर पृथ्वीके ऊपर मरकर गिरपड़ा ६०॥

मू० नीरक्तश्च महीपाल रक्तबीजो महासुरः।
ततस्ते हर्षमतुलमवापुस्त्रिदशा नृप ६१॥

टी०। मेधाऋषि कहते हैं कि हे सुरथ! जब महासुर रक्तबीज नीरक्त होकर मरगया तब वे देवतालोग अतुल हर्षको प्राप्त हुये ६१॥

मू० तेषां मातृगणो जातो ननर्त्तासृङ्मदोद्धतः ६२॥

टी०। और सब देवोंसे पैदाहुईं शक्तियां रुधिर पी पीकर मस्तहोके उस समरभूमि में नृत्य करनेलगीं ६२॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेसावर्णिकेमन्वन्तरेदेवीमाहात्म्येरक्तबीजवधो नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ८८॥

अथ नवासीवां अध्याय॥

राजोवाच॥

मू० विचित्रमिदमाख्यातं भगवन् भवता मम।
देव्याश्चरितमाहात्म्यं रक्तबीजवधाश्रितम् १॥

टी०। राजा सुरथने कहा कि हे भगवन्! देवीजी के चरित्र और प्रभाव और रक्तबीज के वध होनेकी यह आश्चर्यकथा तो आपने मुझसे वर्णन किया १॥

मू० भूयश्चेच्छाम्यहं श्रोतुं रक्तबीजे निपातिते।
चकार शुम्भो यत्कर्म्म निशुम्भश्चातिकोपनः २॥

टी०। अब फिर रक्तबीज के मरनेपर क्रोधसंयुक्त शुम्भ और निशुम्भ ने जो काम किया हो उसको मैं सुना चाहता हूँ वर्णन कीजिये २॥

ऋषिरुवाच॥

मू० चकार कोपमतुलं रक्तबीजे निपातिते।
शुम्भासुरो निशुम्भश्च हतेष्वन्येषु चाहवे ३॥

टी०। मेधाऋषि कहते हैं कि हे सुरथ! जब उस लड़ाई में रक्तबीज और अन्य असुर सब मारेगये तब शुम्भ और निशुम्भने बड़ाकोप किया ३॥

मू० हन्यमानं महासैन्यं विलोक्यामर्षमुद्वहन्।
अभ्यधावन्निशुम्भोऽथ मुख्ययाऽसुरसेनया ४॥

टी०। इसके बाद अपनी सेनाके बड़े बड़े वीरोंको मरतेहुये देखकर क्रोधमें आकर निशुम्भ अपनी मुख्य सेना साथ लेकर देवी से लड़ने के वास्ते दौड़ा ४॥

मू० तस्याग्रतस्तथा पृष्ठे पार्श्वयोश्च महासुराः।
संदष्टौष्ठपुटाः क्रुद्धा हन्तुं देवीमुपाययुः ५॥

टी०। और निशुम्भ के आगे व पीछे और उसके दोनों बगलों में याने चारों तरफ़ से बड़े बड़े असुर लोग क्रोधित होतेहुये दांत पीसकर देवीजी के मारने के वास्ते चले ५॥

मू० आजगाम महावीर्य्यः शुम्भोऽपि स्वबलैर्वृतः।

निहन्तुं चण्डिकां कोपात्कृत्वा युद्धन्तु मातृभिः ६ ॥

टी०। इसीतरह बड़ा पराक्रमी शुम्भ भी शक्तियोंसे युद्धकरके अपनी सेना साथ लेकर रणभूमि में चण्डिका देवीके मारनेके वास्तेआया ६ ॥

मू० ततो युद्धमतीवासीद्देव्याः शुम्भनिशुम्भयोः।
शरवर्षमतीवोग्रं मेघयोरिव वर्षतोः ७ ॥

टी०। उसके बाद देवीजी के साथ शुम्भ और निशुम्भ दोनों ने बड़ा युद्ध किया दोनों ओरसे बड़ा विकराल बाणोंका मेह बरसताथा ७ ॥

मू० चिच्छेदास्ताञ्छरांस्ताभ्यां चण्डिका स्वशरोत्करैः।
ताडयामास चाङ्गेषु शस्त्रौघैरसुरेश्वरौ ८ ॥

टी०। शुम्भ और निशुम्भ के चलाये हुये बाणोंको चण्डिकादेवी ने अपने बाणों से काटकर और अपने शस्त्रोंसे उन दोनों दैत्योंको मारा८॥

मू० निशुम्भो निशितं खड्गं चर्म्म चादाय सुप्रभम्।
अताडयन्मूर्ध्नि सिंहं देव्या वाहनमुत्तमम् ९ ॥

टी०। तब निशुम्भ ने भी एक हाथ में सुन्दर ढाल और दूसरे हाथ में तलवार तेज़ लेकर पहिले देवीजी के उत्तम वाहन सिंह के माथे पर मारा ९ ॥

मू० ताडिते वाहने देवीक्षुरप्रेणासिमुत्तमम्।
निशुम्भस्याशु चिच्छेद चर्म्म चाप्यष्टचन्द्रकम् १० ॥

टी०। देवीजी ने सिंहको उस घाव से पीड़ित देखकर शीघ्रही अपने बाण से निशुम्भ की तलवार को और उसकी ढालको भी जिसमें रत्नोंके आठ चन्द्रमा के आकार बनेहुयेथे काटडाला १० ॥

मू० छिन्ने चर्म्मणि खड्गे च शक्तिं चिक्षेप सोसुरः।
तामप्यस्य द्विधा चक्रे चक्रेणाभिमुखागताम् ११ ॥

टी०। जब ढाल तलवार कटगई तब निशुम्भ दैत्यने शक्ति चलाया देवीजी ने सामने आईहुई उस शक्तिको भी अपने चक्र से दो टुकड़े करडाला ११ ॥

मू० कोपाध्मातो निशुम्भोथ शूलं जग्राह दानवः।
आयान्तं मुष्टिपातेन देवी तच्चाप्यचूर्णयत् १२ ॥

टी० । तब निशुम्भ ने क्रोध करके देवीजी पर शूल चलाया देवीजीने आतेहुये उस शूलको भी अपने मुक्कासे चूर चूर करडाला १२ ॥

मू० आविध्याथ गदां सोपि चिक्षेप चण्डिकां प्रति ।
साऽपि देव्या त्रिशूलेन भिन्ना भस्मत्वमागता १३ ॥

टी० । फिर उसने चण्डिका पर गदाको घुमाकर चलाया उस गदाको भी देवीने त्रिशूल से काटडाला और वह भस्म होगई १३ ॥

मू० ततः परशुहस्तं तमायान्तं दैत्यपुङ्गवम् ।
आहत्य देवी बाणौघैरपातयत भूतले १४ ॥

टी० । तब वह दैत्यराज हाथमें फरसा लेकर दौड़ा फिर तो देवीजीने उसको बाणों से मारकर पृथ्वी पर गिरादिया १४ ॥

मू० तस्मिन्निपतिते भूमौ निशुम्भे भीमविक्रमे ।
भ्रातर्यतीवसंक्रुद्धः प्रययौ हन्तुमम्बिकाम् १५ ॥

टी० । उस शूरवीर निशुम्भ अपने भाई को पृथ्वीपर गिराहुआ देख कर उसका बड़ा भाई शुम्भ अत्यन्त क्रोधयुक्त होकर अम्बिकादेवी को मारनेके वास्ते आया १५ ॥

मू० सरथस्थस्तथात्युच्चैर्गृहीतपरमायुधैः ।
भुजैरष्टाभिरतुलैर्व्याप्याशेषं बभौ नभः १६ ॥

टी० । वह शुम्भ रथपर सवार होकर बड़े बड़े ऊंचे आठों भुजाओं में अस्त्र और शस्त्रादि धारण कियेहुये और उससे सम्पूर्ण आकाशको व्याप्त करताहुआ शोभित हुआ १६ ॥

मू० तमायान्तं समालोक्य देवी शङ्खमवादयत् ।
ज्याशब्दं चापि धनुषश्चकारातीवदुःसहम् १७ ॥

टी० । उसको आतेहुये देखकर देवीजी ने शङ्ख बजाया और धनुष की प्रत्यञ्चाका अत्यन्त दुस्सह शब्द किया १७ ॥

मू० पूरयामास ककुभो निजघण्टास्वनेन च ।
समस्तदैत्यसैन्यानां तेजोवधविधायिना १८ ॥

टी० । और फिर घण्टेका शब्द दशोंदिशाओं में भरदिया जोकि सब दैत्यों की सेनाके तेजको नाश करनेवाला था १८ ॥

मू० ततः सिंहो महानादैस्त्याजितेभमहामदैः।
पूरयामास गगनं गां तथोपदिशो दश १९॥

टी०। तत्पश्चात् सिंह गरजा उसके गरजने से जिससे कि हाथियों का बड़ा मद दूर होजाता था आकाश और पृथ्वी समेत दशों दिशायें भरगईं १९॥

मू० ततः काली समुत्पत्य गगनं क्ष्मामताडयत्।
कराभ्यां तन्निनादेन प्राक्स्वनास्तेतिरोहिताः २०॥

टी०। फिर कालीजी ने ऊपर आकाश में उछलकर दोनों हाथ पृथ्वी पर ऐसा मारा कि जिसके शब्दसे पहले के शब्द छिपगये २०॥

मू० अट्टहासमशिवं शिवदूती चकार ह।
तैः शब्दैरसुरास्त्रेसुः शुम्भः कोपं परं ययौ २१॥

टी०। तदनन्तर शिवदूती ऐसे भयङ्कर शब्द से गरजीं कि उस शब्द से असुरों की सेना डरगई और शुम्भ को बड़ा क्रोध हुआ २१॥

मू० दुरात्मंस्तिष्ठतिष्ठेति व्याजहाराम्बिका यदा।
तदाजयेत्यभिहितं देवैराकाशसंस्थितैः २२॥

टी०। फिर जिस समय अम्बिका देवीने शुम्भ से यह कहा कि हे दुरात्मा! खड़ारहु उस समय आकाश में टिकेहुये देवता लोग जय जय मनानेलगे २२॥

मू० शुम्भेनागत्य या शक्तिर्मुक्ता ज्वालातिभीषणा।
आयान्ती वह्निकूटाभा सा निरस्ता महोल्कया २३॥

टी०। तब शुम्भने आकर बड़ीभारी सांग देवीजी के ऊपर चलाया उस अतिडरावनी सांगको अग्निके ढेरसमान आतीहुई देखकर महोल्का नाम गदा से देवीजीने काटडाला २३॥

मू० सिंहनादेन शुम्भस्य व्याप्तं लोकत्रयान्तरम्।
निर्घातनिःस्वनो घोरो जितवानवनीपते २४॥

टी०। मेधाऋषि कहते हैं कि हे सुरथ! उस समय शुम्भ ऐसा गरजा कि उसके गरज के शब्दसे तीनों लोक भरगये तिसपर भी उत्पातके भयङ्कर शब्दने उसको जीत लिया २४॥

मू० शुम्भमुक्ताञ्छराऩ्देवीशुम्भस्तत्प्रहिताञ्छरान्।
चिच्छेद स्वशरैरुग्रैः शतशोथ सहस्रशः २५॥

टी०। फिर उससमय शुम्भके चलायेहुये सैकड़ों हजारों बाणोंको देवी जीने अपने उग्र बाणों से काटडाला और इसीतरह शुम्भने भी देवीजी के चलाये हुये बाणोंको काटडाला २५॥

मू० ततः सा चण्डिका क्रुद्धा शूलेनाभिजघान तम्।
स तदाभिहतो भूमौ मूर्च्छितो निपपात ह २६॥

टी०। तत्पश्चात् उस चण्डिका देवीने क्रोधयुक्त होकर शूलसे शुम्भ को मारा कि जिससे वह घायल होकर उसवक्त मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिरपड़ा २६॥

मू० ततो निशुम्भः संप्राप्य चेतनामात्तकार्मुकः।
आजघान शरैर्देवीं कालीं केसरिणं तथा २७॥

टी०। तबतक उधर से निशुम्भ ने चेतमें आकर और हाथ में धनुष लेकर कालीजी को और उनके वाहन सिंहको बाणोंसे मारना शुरू किया २७॥

मू० पुनश्च कृत्वा बाहूनामयुतं दनुजेश्वरः।
चक्रायुधेन दितिजश्छादयामास चण्डिकाम् २८॥

टी०। फिर दशहजार बाहु धारण करके और उन सब हाथोंमें चक्र लेकर दितिकेपुत्र दैत्यराजने चण्डिका देवीको आच्छादित करदिया २८॥

मू० ततो भगवती क्रुद्धा दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी।
चिच्छेद तानि चक्राणि स्वशरैः सायकांश्च तान् २९॥

टी०। तब उस सङ्कट में पीड़ा की नाश करनेवाली दुर्गाभगवती ने क्रोधसे उस चक्रको और उसके हाथ के उन बाणों को अपने बाणों से काटडाला २९॥

मू० ततो निशुम्भो वेगेन गदामादाय चण्डिकाम्।
अभ्यधावत वै हन्तुं दैत्यसेनासमावृतः ३०॥

टी०। तत्पश्चात् निशुम्भ जल्दीसे दैत्यों की सेना साथ लेकर हाथों में गदालिये हुये चण्डिका के मारने के वास्ते सामने दौड़ा ३०॥

मू० तस्यापतत एवाशु गदां चिच्छेद चण्डिका।
खड्गेन शितधारेण स च शूलं समाददे ३१॥

टी०। उसके आतेही उसकी गदाको चण्डिकाने शीघ्रही अपनी तीव्र धारवाली खड्गसे काटडाला तब उसने शूल उठालिया ३१॥

मू० शूलहस्तं समायान्तं निशुम्भममरार्दनम्।
हृदि विव्याध शूलेन वेगाविद्धेन चण्डिका ३२॥

टी०। शूल हाथमें लेकर जब दैत्यों को दुःखदायी निशुम्भ सामने आया तब चण्डिका ने तत्कालही उसकी छातीमें वेगसे फेंकाहुआ अपना शूल मारा ३२॥

मू० भिन्नस्य तस्य शूलेन हृदयान्निःसृतोपरः।
महाबलो महावीर्य्यस्तिष्ठेति पुरुषो वदन् ३३॥

टी०। उस शूलके लगने से उसकी छातीसे एक दूसरा महापराक्रमी दैत्य प्रकट होकर खड़ीरहु यह कहताहुआ निकला ३३॥

मू० तस्य निष्क्रामतो देवी प्रहस्य स्वनवत्ततः।
शिरश्चिच्छेद खड्गेन ततोसावपतद्भुवि ३४॥

टी०। उसके प्रकट होनेपर देवीजी बहुत शब्द करके हँसीं और उसके बाद शिर उसका खड्ग से काटकर इसने पृथ्वीपर गिरादिया ३४॥

मू० ततः सिंहश्चखादोग्रं दंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान्।
असुरांस्तांस्तथा काली शिवदूती तथापरान् ३५॥

टी०। तब सिंह और काली और शिवदूती दाढ़ोंसे कटेहुये मस्तकों वाले उन दैत्योंको विकरालतापूर्वक खागई ३५॥

मू० कौमारीशक्तिनिर्भिन्नाः केचिन्नेशुर्महासुराः।
ब्रह्माणीमन्त्रपूतेन तोयेनान्ये निराकृताः ३६॥

टी०। कोई महाअसुर तो कौमारी की शक्तिसे कटकर नाश होगये और कितने अन्य असुर ब्रह्माणी के मन्त्रित जल फेंकने से भस्म होगये ३६॥

मू० माहेश्वरीत्रिशूलेन भिन्नाः पेतुस्तथापरे।
वाराहीतुण्डघातेन केचिच्चूर्णीकृता भुवि ३७॥

टी०। इसीतरह और असुर माहेश्वरी के त्रिशूल से कटकर गिरपड़े और कोई वाराही के तुण्ड (थूथुन) की चोट से चूरचूर होकर भूमिमें गिरकर मरगये ३७॥

मू० खण्डखण्डं च चक्रेण वैष्णव्या दानवाः कृताः।
वज्रेण चैन्द्रीहस्ताग्रविमुक्तेन तथापरे ३८॥

टी०। और कितने दानव वैष्णवी के चक्रसे टुकड़े टुकड़े होगये और कितने असुर इन्द्राणीके हाथसे छोड़ेहुये वज्रकी चोट खाकर मरगये ३८॥

मू० केचिद्विनेशुरसुराः केचिन्नष्टामहाहवात्।
भक्षिताश्चापरे काली शिवदूतीमृगाधिपैः ३९॥

टी०। इसतरह कोई असुर मारेगये और कोई महारण से भागगये और अन्य दैत्योंको काली और शिवदूती और सिंहने खा लिया ३९॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेसावर्णिकेमन्वन्तरेदेवीमाहात्म्येनिशुम्भवधो नामनवाशीतितमोऽध्यायः ८९॥

अथ नब्बेवां अध्याय॥

ऋषिरुवाच॥

मू० निशुम्भं निहतं दृष्ट्वा भ्रातरं प्राणसंमितम्।
हन्यमानं बलञ्चैव शुम्भः क्रुद्धोब्रवीद्वचः १॥

टी०। इतनी कथा कहकर मेधाऋषि कहनेलगे कि हे सुरथ! शुम्भ प्राणोंके समान प्रिय अपने भाई निशुम्भको माराहुआ देखकर व मारीजातीहुई सेनाको देखकर क्रोधसंयुक्त होकर भगवतीसे बचन कहनेलगा १॥

मू० बलावलेपाद्दुष्टे त्वं मा दुर्गे गर्व्वमावह।
अन्यासां बलमाश्रित्य युद्ध्यसे यातिमानिनी २॥

टी०। कि हे दुर्गे! तुम अपने बलका घमण्ड मतकरो क्योंकि अन्य शक्तियों के बलसे लड़ती हो जोकि अतिमानिनी हो २॥

देव्युवाच॥

मू० एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा।

पश्यैता दुष्ट मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतयः ३ ॥

टी०। देवीजी ने कहा कि हे दुष्ट ! इस जगत् में मैं अकेली हूँ मेरी दूसरी सहायिनी कौन है यह सब शक्तियां मेरे विभव से हैं इन सब शक्तियों को मुझमें पैठती हुई देखो ३ ॥

मू० ततः समस्तास्ता देव्यो ब्रह्माणीप्रमुखालयम् ।
तस्या देव्यास्तनौ जग्मुरेकैवासीत्तदाम्बिका ४ ॥

टी०। इतनी बात कहनेपर ब्रह्माणी इत्यादि सब शक्तियां उन अम्बिका देवीके शरीर में मिलगईं उस समय अम्बिका देवी अकेलीही रहगईं ४॥

देव्युवाच ॥

मू० अहं विभूत्या बहुभिरिहरूपैर्यदास्थिता ।
तत्संहृतं मयैकैव तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव ५ ॥

टी०। और देवी कहनेलगीं कि मैं ऐश्वर्य्य से जो इस रणमें बहुत रूप धारण कियेहुये थी अब उन सब रूपोंको मैंने अपने शरीर में मिला लिया अब मैं अकेली समर में खड़ीहूँ तू भी खड़ारहु ५ ॥

ऋषिरुवाच ॥

मू० ततः प्रववृते युद्धं देव्याःशुम्भस्य चोभयोः ।
पश्यतां सर्व्वदेवानामसुराणाञ्च दारुणम् ६ ॥

टी०। मेधाऋषि कहते हैं कि हे सुरथ ! उसके बाद देवता और असुर सब अलग से देखते रहे और देवीजी और शुम्भ दोनोंसे बड़ा युद्ध होनेलगा ६ ॥

मू० शरवर्षैः शितैः शस्त्रैस्तथास्त्रैश्चैव दारुणैः ।
तयोर्युद्धमभूद्भूयः सर्व्वलोकभयङ्करम् ७ ॥

टी०। और कठिन कठिन बाणों और दूसरे अस्त्र और शस्त्रोंकी वृष्टि से उन दोनोंका बड़ायुद्धहुआ जिससे सम्पूर्ण लोक भयभीत होगये ७ ॥

मू० दिव्यान्यस्त्राणि शतशो मुमुचे यान्यथाम्बिका ।
बभञ्ज तानि दैत्येन्द्रस्तत्प्रतीघातकर्तृभिः ८ ॥

टी०। अम्बिका देवीने जो सैकड़ों दिव्य अस्त्र चलाये उन सबको

दैत्योंके मालिक शुम्भने उनके नाश करनेवाले अपने अस्त्रोंसे काटडाले ८॥

मू० मुक्तानि तेन चास्त्राणि दिव्यानि परमेश्वरी ।
बभञ्ज लीलयैवोग्रहुंकारोच्चारणादिभिः ९ ॥

टी० । इसीतरह उनके भी चलाये हुये दिव्य अस्त्रोंको परमेश्वरी ने भयङ्करहुङ्कारशब्द पहले उच्चारण करके अस्त्रोंसे खेलकीतरह काटडाले ६

मू० ततः शरशतैर्देवीमाच्छादयत सोसुरः ।
सापितत्कुपिता देवी धनुश्चिच्छेद चेषुभिः १० ॥

टी० । तब उस असुरने सैकड़ों बाणों से देवीजीको ढांक लिया और देवीजीने भी कोप करके उन सब बाणोंको काटकर उसके हाथ के धनुष को भी काटडाला १० ॥

मू० छिन्ने धनुषि दैत्येन्द्रस्तथा शक्तिमथाददे ।
चिच्छेद देवी चक्रेण तामप्यस्य करे स्थिताम् ११ ॥

टी० । धनुष के कटजाने पर दैत्यराज शुम्भने शक्ति उठालिया परन्तु वह शक्तिको चलाने भी न पाया कि देवीजी ने हाथही में प्राप्त उसको भी चक्र से काटडाला ११ ॥

मू० ततः खड्गमुपादाय शतचन्द्रं च भानुमत् ।
अभ्यधावत तां देवीं दैत्यानामधिपेश्वरः १२ ॥

टी० । तब शुम्भ खड्ग और शतचन्द्र ढाल जिसमें सौ चन्द्रमा सूर्य्य समान लगेथे हाथ में लेकर दैत्योंका स्वामी उन देवीजी की तरफ़ दौड़ा १२ ॥

मू० तस्यापतत एवाशु खड्गं चिच्छेद चण्डिका ।
धनुर्मुक्तैः शितैर्बाणैश्चर्म्मचार्ककरामलम् १३ ॥

टी० । उसके पहुँचतेही देवीजीने धनुष से छोड़हुये अपने पैने बाणों से उसकी ढाल और सूर्य्यकी किरणोंके समान निर्मल तलवारको जल्दी से काटडाला और उसके घोड़े और रथ और रथवान् इत्यादि को भी काटडाला १३ ॥

मू० हताश्वः स तदा दैत्यश्छिन्नधन्वा विसारथिः ।
जग्राह मुद्गरं घोरमम्बिकानिधनोद्यतः १४ ॥

टी०। इन सबके कटजाने पर जिसके घोड़े कटगये हैं उस कटे धनुष व विना सारथीवाले शुम्भने अम्बिकादेवी के मारने के वास्ते बड़ा भयंकर मुगदर उठालिया १४॥

मू० चिच्छेदापततस्तस्य मुद्गरं निशितैः शरैः।
तथापि सोऽभ्यधावत्तां मुष्टिमुद्यम्य वेगवान् १५॥

टी०। जब वह असुर मुगदर लेकर चला तब देवीजी ने उसको भी अपने पैने बाणों से काटडाला तौ भी वह शीघ्रतासे मुक्का तानकर दौड़ा १५॥

मू० स मुष्टिं पातयामास हृदये दैत्यपुङ्गवः।
देव्यास्तं चापि सा देवी तलेनोरस्यताडयत् १६॥

टी०। और दैत्योंमें श्रेष्ठ उस शुम्भ ने जातेही देवीजी की छातीपर जोर से मुक्का मारा तब देवीजी ने भी उसकी छाती पर एक तमाचा इस जोर से मारा १६॥

मू० तलप्रहाराभिहतो निपपात महीतले।
स दैत्यराजः सहसा पुनरेव तथोत्थितः १७॥

टी०। कि चपोटे की चोट से मारा हुआ वह असुरराज अचानकही पृथ्वी के ऊपर गिरपड़ा परन्तु फिर भी सँभल कर खड़ा होगया १७॥

मू० उत्पत्य च प्रगृह्योच्चैर्देवीं गगनमास्थितः।
तत्रापि सा निराधारा युयुधे तेन चण्डिका १८॥

टी०। और बड़े ऊँचे उछलकर देवीजीको पकड़कर आकाशमें लेगया परन्तु वहां भी चण्डिका देवी बिना सहारे रथ इत्यादि के उस दैत्य से लड़ने लगीं १८॥

मू० नियुद्धं खे तदा दैत्यश्चण्डिका च परस्परम्।
चक्रतुः प्रथमं सिद्धमुनिविस्मयकारकम् १९॥

टी०। उसवक्त आकाश में चण्डिका देवी और उस दैत्यसे ऐसा आपसमें बाहु युद्ध होने लगा कि जिससे सिद्ध और मुनि लोग तअज्जुब में आगये १९॥

मू० ततो नियुद्धं सुचिरं कृत्वा तेनाम्बिकासह।

उत्पाट्य भ्रामयामास चिक्षेप धरणीतले २० ॥

टी० । फिर तो अम्बिका देवीने बहुत देरतक युद्धकरके उस शुम्भ दैत्य को गेंद की तरह ऊपर फेंकदिया और गिरने के समय उसका पांव पकड़कर ज़ोरसे घुमाकर पृथ्वी के ऊपर पटक दिया २० ॥

मू० स क्षिप्तो धरणीं प्राप्य मुष्टिमुद्यम्य वेगतः ।
अभ्यधावत दुष्टात्मा चण्डिकानिधनेच्छया २१ ॥

टी० । व फेंकाहुआ वह दुष्टात्मा पृथ्वी परसे सँभलकर उठा और जल्दी से देवीजी को मारने के वास्ते मुक्का उठाकर सामने दौड़ा २१ ॥

मू० तमायान्तं ततो देवीसर्व्वदैत्यजनेश्वरम् ।
जगत्यां पातयामास भित्त्वा शूलेन वक्षसि २२ ॥

टी० । तब देवीजी ने आतेहुये उस समस्तदैत्येश्वर शुम्भ की छाती में शूल से छेदकर पृथ्वी पर गिरादिया २२ ॥

मू० स गतासुः पपातोर्व्यां देवीशूलाग्रविक्षतः ।
चालयन्सकलां पृथ्वीं साब्धिद्वीपां सपर्व्वताम् २३ ॥

टी० । तब वह दैत्य देवीजी के शूल का घाव खाकर पृथ्वी पर गिरते ही मरगया उसके गिरने की धमक से समुद्र और द्वीप और पर्व्वत इत्यादि समेत सम्पूर्ण पृथ्वी डोल गई २३ ॥

मू० उत्पातमेघाः सोल्का ये प्रागासंस्ते शमं ययुः ।
सरितो मार्गवाहिन्यस्तथासंस्तत्र पातिते २४ ॥

टी० । और पहिले जो उत्पात के सूचक मेघ व आकाश से लूक इत्यादि गिरते थे वे मिटगये इसी तरह उस शुम्भके मरने पर जितनी नदियां उलटी बहती थीं वे सब सीधी बहने लगीं अर्थात् सब उत्पात मिटगये २४ ॥

मू० ततः प्रसन्नमखिलं हते तस्मिन्दुरात्मनि ।
जगत्स्वास्थ्यमतीवाप निर्म्मलञ्चाभवन्नभः २५ ॥

टी० । और उस दुरात्मा के मरने उपरान्त सम्पूर्ण जगत् प्रसन्न होकर अत्यन्तही स्थिर होगया और आकाश भी निर्म्मल होगया २५ ॥

मू० ततो देवगणाः सर्व्वे हर्षनिर्भरमानसाः ।

बभूवुर्निहते तस्मिन् गन्धर्वा ललितं जगुः २६ ॥

टी०। और उसके मरने से सब देवतालोग भी प्रसन्नमानस होगये और गन्धर्व लोग सुन्दर गीत गानेलगे २६ ॥

मू० अवादयंस्तथैवान्ये ननृतुश्चाप्सरोगणाः।
ववुः पुण्यास्तथावाताः सुप्रभोभूद्दिवाकरः २७ ॥

टी०। और कोई बाजा बजानेलगे और अप्सराओं के समूह नृत्य करनेलगे और मन्द सुगन्ध वायु चलने लगी और सूर्य्य का प्रकाश उत्तम होगया २७ ॥

मू० जज्वलुश्चाग्नयः शान्ताः शान्तदिग्जनितस्वनाः २८ ॥

टी०। और अग्नि की ज्वाला जो अत्यन्त शान्त होरहीथी वह भी प्रज्वलित होगई व उत्पातके सूचक स्फोटनादिक शब्द जो दिशाओं में उत्पन्न थे वे शान्त होगये २८ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेसावर्णिकेमन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये शुम्भवधो नामनवतितमोऽध्यायः ६०॥

अथ इक्यानबेवां अध्याय॥

ऋषिरुवाच ॥

मू० देव्याहते तत्र महासुरेन्द्रे
सेन्द्राः सुरा वह्निपुरोगमास्ताम्।
कात्यायनीं तुष्टुवुरिष्टलाभा-
द्विकाशिवक्त्रास्तु विकाशिताशाः १ ॥

टी०। इतना कहकर फिर मेधा ऋषि कहने लगे कि युद्धमें देवी से उस शुम्भ महादैत्य के मारे जाने पर इन्द्र के साथ प्रसन्न मुखवाले अग्नि आदि देवतालोग शुम्भादि के वधहोने से प्रियके लाभसे सब दिशाओं को प्रकाशित करते हुये देवीजी की इस प्रकार से स्तुतिकरनेलगे१॥

मू० देवि प्रपन्नार्त्तिहरे प्रसीद
प्रसीद मातर्जगतोखिलस्य।

प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं
त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य २॥

टी०। कि हे देवि ! व हे शरणागतों के दुःख दूर करनेवाली ! प्रसन्न हूजिये और हे सब जगत् की माता ! तुम प्रसन्नहोवो और हे विश्वेश्वरि, देवि ! आप प्रसन्नहोकर इस संसारकी रक्षा कीजिये इस चराचरके बीच में तुम्हीं स्वामिनीहो २॥

मू० आधारभूता जगतस्त्वमेका
महीस्वरूपेण यतः स्थितासि।
अपांस्वरूपस्थितया त्वयैत-
दाप्यायते कृत्स्नमलङ्घ्यवीर्य्ये ३॥

टी०। व सम्पूर्ण जगत् की आपही एक आधार हैं क्योंकि आपही पृथ्वी होकर सबका भार अपने ऊपर उठायेहुये हैं और हे अलंघ्यवीर्ये ! आपही जल होकर इस सम्पूर्ण संसारकी वृद्धि करती हैं ३॥

मू० त्वं वैष्णवीशक्तिरनन्तवीर्य्या
विश्वस्य बीजं परमासि माया।
संमोहितं देवि समस्तमेतत्
त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः ४॥

टी०। फिर अत्यन्त पराक्रमी वैष्णवी शक्ति होकर इस जगत् का पालन आपही करती हैं और संसार की कारण परममाया अविद्या आपही हैं हे देवि ! आपहीसे यह सब जीव मोहित रहते हैं और आपहीकी प्रसन्नता पृथ्वी में मुक्तिकी जड़ है ४॥

मू० विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताःसकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
का ते स्तुतिः स्तव्यपरापरोक्तिः ५॥

टी०। और हे देवि ! संसार में जितनी विद्या हैं चौंसठिकलाओं समेत वे सब आपही के भेद हैं और जितनी पतिव्रता स्त्री हैं वे सब आपही की अंशभूत हैं और हे अम्ब ! एक आपही हैं जो इस संसार के

भीतर और बाहर सम्पूर्ण व्यापित हैं कोई वस्तु आपसे अलग नहीं है इससे तुम्हारी स्तुति में मुख्य व गुणकी उक्तिवाली कौनसी स्तुति आपकी हम लोग करसक्ते हैं ५ ॥

मू० सर्व्वभूता यदा देवि स्वर्गमुक्तिप्रदायिनी।
त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तयः ६ ॥

टी०। हे देवि! जब आप स्वर्ग और मुक्तिदेनेवाली हैं और सब प्राणियोंमें आप विराजमान रहती हैं ऐसी तुम्हारी स्तुति कीजाय तो आपकी स्तुति के वास्ते क्या अधिक उक्तियां होवेंगी ६ ॥

मू० सर्व्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते।
स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोस्तुते ७ ॥

टी०। हे सब जीवोंके हृदयमें बुद्धिरूप होकर विराजमान होनेवाली व जीवोंको स्वर्ग और मुक्ति देनेवाली, और हे नारायणि, देवि! आपको हमलोग प्रणाम करते हैं ७ ॥

मू० कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदायिनी।
विश्वस्योपरतौ शक्ते नारायणि नमोस्तुते ८ ॥

टी०। और कला और काष्ठा अर्थात् घड़ी और पल इत्यादि जो कालहै उसका रूप धारण करके जिन्दगी को आखिर तक पहुँचानेवाली आपही हैं और संसार के नाश करने में भी आप समर्थ हैं हे नारायणी! आप को प्रणाम है ८ ॥

मू० सर्व्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्व्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोस्तुते ९ ॥

टी०। और हे सब मङ्गलोंकी मङ्गलतारूपवाली! और हे कल्याणि! और हे सम्पूर्ण अर्थोंकी सिद्धि करनेवाली और हे शरण देनेवाली! हे त्रिनेत्रे! हे गौरि! हे नारायणि! आपको हमलोग प्रणाम करते हैं ९ ॥

मू० सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोस्तुते १० ॥

टी०। और ब्रह्मा और विष्णु और महेश इन तीनों देवतों में उत्पत्ति और पालन और प्रलय करनेवाली शक्ति होकर आपही विराजमान रहती

हैं और आप नित्या हैं और महदादि गुणोंकी आप आधारहैं और तीनों गुणोंसे आप संयुक्तहैं हे नारायणि ! आपको हम सबका प्रणामहै १० ॥

मू० शरणागतदीनार्त्तपरित्राणपरायणे ।
सर्व्वस्यार्त्तिहरे देवि नारायणि नमोस्तुते ११ ॥

टी० । और जो दुःखी लोग आप की शरण में आते हैं उनकी आप रक्षा करती हैं व आप सब जगत् की पीड़ा हरण करनेवाली हैं हे नारायणि, देवि ! आपको नमस्कार है ११ ॥

मू० हंसयुक्तविमानस्थे ब्रह्माणीरूपधारिणि ।
कौशाम्भःक्षरिके देवि नारायणि नमोस्तुते १२ ॥

टी० । हंसयुक्त विमानपर बैठकर ब्रह्माणी रूप धारण कियेहुई हे कमण्डलु का जल छिड़कनेवाली, नारायणि, देवि ! तुमको हम लोगोंका प्रणामहै १२ ॥

मू० त्रिशूलचन्द्राहिधरे महावृषभवाहिनि ।
माहेश्वरीस्वरूपेण नारायणि नमोस्तुते १३ ॥

टी० । और माहेश्वरी रूपकरके त्रिशूल और चन्द्रमा और नागराज शेषको धारण कियेहुये हे बैलपर सवार होनेवाली, नारायणि ! तुमको हम सब नमस्कार करतेहैं १३ ॥

मू० मयूरकुक्कुटवृते महाशक्तिधरेनघे ।
कौमारीरूपसंस्थाने नारायणि नमोस्तुते १४ ॥

टी० । और कौमारी शक्तिरूप को धारण करके मोरपंख से घिरी हुई हे पापरहिते ! व हे महाशक्ति धारण करनेवाली, नारायणि ! तुमको प्रणाम है १४ ॥

मू० शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गगृहीतपरमायुधे ।
प्रसीद वैष्णवीरूपे नारायणि नमोस्तुते १५ ॥

टी० । और शंख चक्र गदा व शार्ङ्गधनुषआदि उत्तम अस्त्रोंको धारण कियेहुये हे वैष्णवी शक्तिरूप धारण करनेवाली, नारायणि ! तुमको प्रणाम है १५ ॥

मू० गृहीतोग्रमहाचक्रे दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरे ।

वराहरूपिणि शिवे नारायणि नमोस्तुते १६॥

टी०। और वराहरूप धारण कियेहुये महाचक्र हाथमें लेकर हे दाँतों से पृथ्वीको उठानेवाली! और हे कल्याण देनेवाली, नारायणि! तुमको हम सब प्रणाम करते हैं १६॥

मू० नृसिंहरूपेणोग्रेण हन्तुं दैत्यान्कृतोद्यमे।
त्रैलोक्यत्राणसहिते नारायणि नमोस्तुते १७॥

टी०। दैत्योंके मारने के लिये हे उग्र नृसिंह रूप धारण करके उद्यम करनेवाली, त्रिलोक की रक्षा करने में लगीहुई! हे नारायणि! तुम्हारे लिये नमस्कार है १७॥

मू० किरीटिनि महावज्रे सहस्रनयनोज्ज्वले।
वृत्रप्राणहरे चैन्द्रि नारायणि नमोस्तुते १८॥

टी०। और किरीट धारण करके महावज्र हाथ में लेकर हे हजारों आँखों से प्रकाशमान होनेवाली! व हे वृत्रासुरके प्राण हरण करनेवाली, इन्द्र की शक्तिरूप! हे नारायणि! तुमको नमस्कार है १८॥

मू० शिवदूतीस्वरूपेण हतदैत्यमहाबले।
घोररूपे महारावे नारायणि नमोस्तुते १९॥

टी०। और शिवदूती स्वरूप धारण करके हे दैत्योंका बड़ा बल नाश करनेवाली, भयानकरूपिणि, व भयानक शब्द करनेवाली, नारायणि! तुमको प्रणाम है १९॥

मू० दंष्ट्राकरालवदने शिरोमालाविभूषणे।
चामुण्डे मुण्डमथने नारायणि नमोस्तुते २०॥

टी०। और हे दाढ़ों से विकराल मुखवाली, मुण्डमाला पहिनने वाली! व हे चण्ड मुण्ड के मारनेवाली! हे नारायणि! तुमको नमस्कार है २०॥

मू० लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये श्रद्धे पुष्टिस्वधे ध्रुवे।
महारात्रि महामाये नारायणि नमोस्तुते २१॥

टी०। और लक्ष्मी और लज्जा और महाविद्या और श्रद्धा और पुष्टि व

स्वधा व ध्रुवा और हे महारात्रि ! व हे सब के मोहित करने में समर्थ, महामायारूप, नारायणि, तुमको नमस्कार है २१ ॥

मू० मेधे सरस्वति वरे भूति बाभ्रवि तामसि ।
नियते त्वं प्रसीदेशे नारायणि नमोस्तुते २२ ॥

टी० । और ऐ धारण करनेवाली बुद्धि और सरस्वती और उत्तम व सत्त्व गुणसे प्रधान और रजोगुणयुक्त और तमोगुणयुक्त और मूल शक्ति व हे भाग्यवति, शक्तिमति ! और हे नारायणि ! प्रसन्न हूजिये आप को नमस्कार है २२ ॥

मू० सर्व्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोस्तुते २३ ॥

टी० । और ऐ सर्वस्वरूपे, सर्वेशे और सब शक्तियों से युक्त व हे दुर्गे, देवि ! प्रसन्न हूजिये और हम लोगों का भय छुड़ाय दीजिये आपको नमस्कार है २३ ॥

मू० एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम् ।
पातु नः सर्व्वभूतेभ्यः कात्यायनि नमोस्तुते २४ ॥

टी० । और हे कात्यायनि ! तीन नेत्रों से जो यह आपका परम शोभित मुख है वह हम लोगों की रक्षा सम्पूर्ण संसारी प्राणियोंके बिकारों से करै आपको हम सब प्रणाम करते हैं २४ ॥

मू० ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम् ।
त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोस्तुते २५ ॥

टी० । और हे भद्रकाली ! आपको प्रणाम है आपका त्रिशूल जो ज्वाला करके भयंकर व अत्यन्त उग्र और असुरोंका मारनेवाला है वह डर से हम लोगों की रक्षा करै २५ ॥

मू० हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत् ।
सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्यो नः सुतानिव २६ ॥

टी० । और हे देवि ! आपका घण्टा जिसका शब्द सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त होकर दैत्यों के तेजोंको नाश करता है वह हम सबोंकी पुत्र के समान रक्षा करै २६ ॥

मू० असुरासृग्वसापङ्कचर्चितस्ते करोज्ज्वलः।
शुभाय खड्गो भवतु चण्डिके त्वां नता वयम् २७॥

टी०। और हे चण्डिके ! किरणोंसे उज्ज्वल व जो असुरोंके मांस और रुधिर के कीचड़से भराहुआ खड्ग है उससे सदा हमलोगों का कल्याण हो हम लोग आपको प्रणाम करते हैं २७॥

मू० रोगानशेषानपहंसि तुष्टा
रुष्टा तु कामान्सकलानभीष्टान्।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति २८॥

टी०। हे देवी ! जिसपर आप प्रसन्न होती हैं उसके सब रोगोंको दूरकर देतीहैं और जिस पर आप अप्रसन्न होती हैं उसकी सब प्यारी कामना नाश होजाती हैं और जो कोई आपकी शरण में हैं उन लोगों को कभी दुःख नहीं होता और जो लोग आपकी शरणमें रहते हैं उन लोगों की शरण पकड़नेसे दूसरे लोग भी सुखी होजाते हैं २८॥

मू० एतत्कृतं यत्कदनं त्वयाद्य
धर्मद्विषां देवि महासुराणाम्।
रूपैरनेकैर्बहुधात्ममूर्त्तिं
कृत्वाम्बिके तत्प्रकरोति कान्या २९॥

टी०। और हे अम्बिका देवी ! आपने अपनी मूर्तिके अनेकरूप धारण करके धर्मद्रोही असुरों को जो नाश किया है सिवाय आप के दूसरा कौन इस काम को करनेवालाहै २९॥

मू० विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपेष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या।
ममत्वगर्तेऽतिमहान्धकारे विभ्रामयत्येतदतीवविश्वम् ३०॥

टी०। और ज्ञान और शास्त्र और उपनिषद् और कर्मकाण्ड के बतानेवाले जो वेद के वचन हैं इन सब के होते हुये भी इस संसार के ममतारूपी बड़े अँधेरे कूपमें इस संसार को अत्यन्त भ्रमानेवाली सिवाय आप के दूसरा कौन है ३०॥

मू॰ रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा
यत्रारयोदस्युबलानि यत्र ।
दावानलोयत्र तथाब्धिमध्ये
तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम् ३१ ॥

टी॰ । और जहां पर राक्षस और महाविषवाले सांप और शत्रु और चोर और जिस वन में चारों तरफ़ से आग में घिरकर या समुद्र की लहर में पड़कर कोई व्याकुल हो इन इन जगहों पर जो कोई आप का स्मरण करता है वहां पर पहुँच कर आप उसकी रक्षा करती हैं ३१ ॥

मू॰ विश्वेश्वरी त्वं परिपासि विश्वं
विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् ।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति
विश्वाश्रयाये त्वयि भक्तिनम्राः ३२ ॥

टी॰ । और आप संसार की रक्षा करने से विश्वेश्वरी और संसार के धारण करने से विश्वात्मिका कहलाती हैं और आपको विश्व के ईश ब्रह्मा व इन्द्रादि देवता और इसी तरह संसार के आश्रित जो लोग हैं वे भक्तिपूर्व्वक नम्रहोकर आपकी वन्दना करते हैं ३२ ॥

मू॰ देवि प्रसीद परिपालय नोरिभीते
नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः ।
पापानि सर्व्वजगतां प्रशमं नयाशु
उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान् ३३ ॥

टी॰ । हे देवि ! जिस तरह आपने इससमय असुरों को मारकर हम लोगों की रक्षा की है इसीतरह सर्व्वकाल हमलोगों की रक्षा कीजिये व प्रसन्न हूजिये शत्रुओं के डरसे और सब जगत् के पापोंको शीघ्रही क्षय करके उत्पात के फलसे पैदाहुये महाविघ्नोंको भी शमन कीजिये ३३ ॥

मू॰ प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्त्तिहारिणि ।
त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव ३४ ॥

टी॰ । और हे देवि ! आप संसार की पीडाहरणकरनेवाली हैं और

तीनों लोकके रहनेवाले मनुष्य आपकी स्तुति करते हैं आपके चरणारविन्द में हमलोग प्रणाम करते हैं अब आप प्रसन्न होकर हमलोगों को वरदान दीजिये ३४ ॥

देव्युवाच ॥

मू० वरदाहं सुरगणावरं यं मनसेच्छथ ।
तं वृणुध्वं प्रयच्छामि जगतामुपकारकम् ३५ ॥

टी० । इतनी स्तुति देवताओं के मुख से सुनकर देवी ने कहा कि हे देवतालोगो ! तुमलोग जो मनसे चाहतेहो उसको मांगो मैं वरदान दूंगी कि जिससे तुमलोगोंका और सम्पूर्णजगत्का उपकार होगा ३५ ॥

देवाऊचुः ॥

मू० सर्व्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि ।
एवमेव त्वया कार्य्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ३६ ॥

टी० । तब देवतालोग बोले कि हे अखिलेश्वरि ! शुम्भ इत्यादि असुरों के मारे जाने से सकल दुःख नाश होगया फिर इसीतरह जब कभी हमलोगोंको दुःखदेनेवाला शत्रु प्रकट हो तो उन सबको भी आप नाश किया कीजिये ३६ ॥

देव्युवाच ॥

मू० वैवस्वतेन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतमे युगे ।
शुम्भोनिशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येते महासुरौ ३७ ॥

टी० । यह सुनकर देवीजी ने कहा कि अट्ठाईसवें चतुर्युग में वैवस्वत मन्वन्तर के प्राप्त होनेपर जब दूसरे शुम्भ निशुम्भ महाअसुर उत्पन्न होवेंगे ३७ ॥

मू० नन्दगोपगृहे जाता यशोदागर्भसम्भवा ।
ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचलनिवासिनी ३८ ॥

टी० । उस समय में नन्दगोप के घर में यशोदा के गर्भ से उत्पन्न होकर उसके बाद उन शुम्भ निशुम्भ महाअसुरों को नाश करूंगी और विन्ध्याचल पर्वत पर निवास करूंगी ३८ ॥

मू० पुनरप्यतिरौद्रेण रूपेण पृथिवीतले ।
अवतीर्य हनिष्यामि वैप्रचित्तांश्च दानवान् ३९ ॥

टी० । व फिर भी पृथ्वीतल में अत्यन्तभयंकररूप से अवतार लेकर के विप्रचित्ति सन्तान के दैत्योंको मारूंगी ३६ ॥

मू० भक्षयन्त्याश्च तानुग्रान्वैप्रचित्तान्महासुरान् ।
रक्ता दन्ता भविष्यन्ति दाडिमीकुसुमोपमाः ४० ॥

टी० । और उस विप्रचित्ति सन्तान के उन भयंकर महाअसुरों को मारकर खाने से मेरे सब दांत रुधिर से अनार के फूल की तरह लाल होजायँगे ४० ॥

मू० ततोमां देवताः स्वर्गे मर्त्यलोके च मानवाः ।
स्तुवन्तोव्याहरिष्यन्ति सततं रक्तदन्तिकाम् ४१ ॥

टी० । उसीसे मुझको देवतालोग और मनुष्यलोग स्वर्गलोक और मृत्युलोक में हरसमय मेरी स्तुति करतेहुये रक्तदन्तिकानाम करके कहेंगे ४१ ॥

मू० भूयश्च शतवार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि ।
मुनिभिःसंस्तुता भूमौ सम्भविष्याम्ययोनिजा ४२ ॥

टी० । फिर जब सौ वर्ष तक पृथ्वीपर वर्षा नहीं होगी और कुवां इत्यादि में कहीं पानी न रहैगा उस समय मुनिलोग पानी होने के वास्ते मेरी स्तुति करैंगे तब मैं पृथ्वी में पार्वती के समान अयोनिजा (आप से आप) उत्पन्न हूंगी ४२ ॥

मू० ततः शतेन नेत्राणां निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन् ।
कीर्त्तयिष्यन्ति मनुजाः शताक्षीमिति मां ततः ४३ ॥

टी० । उसके बाद सौनेत्र धारणकरके जिस लिये उन सब नेत्रों से मुनियों को देखूंगी उस कारण से मनुष्यलोग मेरा नाम शताक्षी ऐसा कहेंगे ४३ ॥

मू० ततोहमखिलं लोकमात्मदेहसमुद्भवैः ।
भरिष्यामि सुराः शाकैरावृष्टेः प्राणधारकैः ४४ ॥

टी०। हे देवतालोगो तब मैं अपने शरीर से प्राणधारनेवाला साग उत्पन्न करके वृष्टिहोनेतक उसी से सब लोगोंका पालन करूंगी ४४ ॥

मू० शाकम्भरीति विख्यातिं तदा यास्याम्यहं भुवि।
तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम् ४५ ॥

टी०। तब पृथ्वी में मेरा नाम शाकम्भरी ऐसा विख्यात होगा फिर उसी शाकम्भरी अवतार में दुर्गमनाम महाअसुर का वधकरूंगी ४५ ॥

मू० दुर्गादेवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति।
पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वाहिमाचले ४६ ॥

टी०। उसी से मेरानाम दुर्गादेवी प्रसिद्ध होगा फिर जबमैं हिमाचल पर्वत पर भयङ्कररूप से प्रकट होकर ४६ ॥

मू० रक्षांसि भक्षयिष्यामि मुनीनां त्राणकारणात्।
तदा मां मुनयः सर्व्वे स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्त्तयः ४७ ॥

टी०। मुनिलोगों की रक्षाके वास्ते राक्षसोंको भक्षण करूंगी तब सब मुनिलोग शिर झुकाकर मेरी स्तुतिकरैंगे ४७ ॥

मू० भीमादेवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति।
यदारुणाख्यस्त्रैलोक्ये महाबाधां करिष्यति ४८ ॥

टी०। तब मेरा नाम भीमा देवी यह विख्यात होगा फिर जब तीनों लोकमें अरुणनाम असुर महापीडा करैगा ४८ ॥

मू० तदाहं भ्रामरं रूपं कृत्वासंख्येयषट्पदम्।
त्रैलोक्यस्य हितार्थाय वधिष्यामि महासुरम् ४९ ॥

टी०। तब मैं भ्रामररूप जिसमें असंख्य भौंरा लिपटे होंगे धारण करके तीनों लोक के उपकार के वास्ते अरुणनामक बड़े दैत्य को मारूँगी ४९ ॥

मू० भ्रामरीति च मां लोकास्तदा स्तोष्यन्ति सर्व्वतः।
इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति ५० ॥

टी०। उस समय मेरा नाम भ्रामरी प्रचलित होगा और सब जगह सब लोग मेरी स्तुति करैंगे इसीतरह जब जब दैत्योंसे उपजा हुआ तुम लोगोंको दुःख पहुँचैगा ५० ॥

मू० तदा तदावतीर्य्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम् ५१ ॥

टी०। तब तब मैं इस पृथ्वी में उत्पन्न होकर तुमलोगों के शत्रुवोंका नाश करूंगी ५१ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेसावर्णिकेमन्वन्तरेदेवीमाहात्म्येनारायणीस्तुति र्नामैकनवतितमोऽध्यायः ९१ ॥

अथ बानबेवां अध्याय ॥

देव्युवाच ॥

मू० एभिः स्तवैश्च मां नित्यं स्तोष्यते यः समाहितः।
तस्याहं सकलां बाधां नाशयिष्याम्यसंशयम् १ ॥

टी०। इतना वरदान देकर देवीजी बोलीं कि हे देवतालोगो! इन स्तोत्रोंसे जो कोई चित्त स्थिरकरके नित्य मेरी स्तुति करैगा उसका सब दुःख मैं निस्सन्देह नाश करदूंगी १ ॥

मू० मधुकैटभनाशञ्च महिषासुरघातनम्।
कीर्त्तयिष्यन्ति ये तद्वद्वधं शुम्भनिशुम्भयोः २ ॥

टी०। और जो कोई मधुकैटभका नाश और महिषासुर का वधऔर वैसेही शुम्भ निशुम्भ के मरण की कथा पढ़ैगा २ ॥

मू० अष्टम्यां च चतुर्द्दश्यां नवम्यां चैकचेतसः।
श्रोष्यन्ति चैव ये भक्त्या मम माहात्म्यमुत्तमम् ३ ॥

टी०। और अष्टमी और नवमी और चतुर्दशी को एकचित्त होकर मेरे इस उत्तम माहात्म्य को जे भक्तिसे सुनैंगे व पढ़ैंगे ३ ॥

मू० न तेषां दुष्कृतं किंचिद्दुष्कृतोत्था न चापदः।
न भविष्यति दारिद्र्यं न चैवेष्टवियोजनम् ४ ॥

टी०। उनको किसी प्रकार का पाप और पापसे उठीहुई आपदा न होंगी और दारिद्र्य न होगा और उसको इष्ट और मित्रसे कभी वियोग न होगा ४ ॥

मू० शत्रुतोन भयं तस्य दस्युतोवा न राजतः।
न शस्त्रानलतोयौघात्कदाचित्संभविष्यति ५॥

टी०। और उसको शत्रुओं और चोरों और राजाओं और हथियारों और अग्नि और जल से किसीतरह का भय कभी न होगा ५॥

मू० तस्मान्ममैतन्माहात्म्यं पठितव्यं समाहितैः।
श्रोतव्यं च सदा भक्त्या परं स्वस्त्ययनं हि तत् ६॥

टी०। इस वास्ते मेरे इस माहात्म्य को एकाग्रचित्त होकर भक्तिसे हमेशा पढ़ना और सुनना चाहिये क्योंकि यह माहात्म्य परमकल्याण-कारक है ६॥

मू० उपसर्गानशेषांस्तु महामारीसमुद्भवान्।
तथा त्रिविधमुत्पातं माहात्म्यं शमयेन्मम ७॥

टी०। और महामारीसे उत्पन्न समस्त उपसर्गों (उपद्रवों) को और इसीप्रकार दैहिक दैविक भौतिक तीनों तरहके उत्पातोंको मेरा माहात्म्य शांतकरता है ७॥

मू० यत्रैतत्पठ्यते सम्यग्नित्यमायतने मम।
सदा न तद्विमोक्ष्यामि सान्निध्यं तत्र मे स्थितम् ८॥

टी०। और जिस घरमें मेरा यह माहात्म्य नित्य भलीभांति पढ़ाजा-यगा उस घरमें हमेशा मैं रहूँगी कभी उससे अलग न हूँगी ८॥

मू० बलिप्रदाने पूजायामग्निकार्य्ये महोत्सवे।
सर्व्वं ममैतच्चरितमुच्चार्य्यं श्राव्यमेव च ९॥

टी०। और बलिप्रदान और पूजा और होम और पुत्र के जन्म और विवाहादि मङ्गलोंमें मेरेइससमस्तचरित्रको पढ़ना और सुनना चाहिये९॥

मू० जानताजानतावापि बलिपूजां तथा कृताम्।
प्रतीच्छिष्याम्यहं प्रीत्या वह्निहोमं तथा कृतम् १०॥

टी०। और विधि जानता हो अथवा न जानताहो जो कोई बलिप्र-दान और पूजा और वैसेही अग्निमें होम करै उसको भी मैं प्रीतियुक्त अङ्गीकारकरती हूँ १०॥

मू० शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी ।
तस्यां ममैतन्माहात्म्यं श्रुत्वा भक्तिसमन्वितः ११ ॥

टी० । और शरत्काल याने कुवांर की उजेरी परेवा से लगाकर जो मेरी पूजा कीजाती है और जो वर्ष के आदि याने चैत्रके उजेरेपक्षमें की जाती है उसमें इस मेरे माहात्म्यको श्रद्धाके साथ जो कोई सुनैगा ११॥

मू० सर्व्वाबाधाविनिर्मुक्तोधनधान्यसुतान्वितः ।
मनुष्योमत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः १२ ॥

टी० । वह मनुष्य सब दुःखों से छूटकर मेरे प्रसाद से अन्न और धन और पुत्र इत्यादि से संयुक्त होगा इसमें कुछ किसीतरह का सन्देह न करना चाहिये १२ ॥

मू० श्रुत्वा ममैतन्माहात्म्यं तथा चोत्पत्तयः शुभाः ।
पराक्रमं च युद्धेषु जायते निर्भयः पुमान् १३ ॥

टी० । और मेरे इस माहात्म्य और मेरी शुभ उत्पत्तियां और युद्ध में मेरे पराक्रम को सुनकर मनुष्य निर्भय होजाताहै १३ ॥

मू० रिपवः संक्षयं यान्ति कल्याणं चोपपद्यते ।
नन्दते च कुलं पुंसां माहात्म्यं मम शृण्वताम् १४ ॥

टी० । और जो पुरुष मेरे इस माहात्म्य को जी लगाकर सुनैंगे उन लोगों के शत्रुलोग क्षय होजायँगे और उन सुननेवालों का कल्याण होगा और उनके कुलकी बढ़ती होगी १४ ॥

मू० शान्तिकर्म्मणि सर्व्वत्र तथा दुःस्वप्नदर्शने ।
ग्रहपीडासु चोग्रासु माहात्म्यं शृणुयान्मम १५ ॥

टी० । और सब शांतिकर्म्मों में और उसी तरह दुःस्वप्नों के देखने म और उग्र ग्रहंपीडाओं में मेरे माहात्म्यको सुननाचाहिये १५ ॥

मू० उपसर्गाः शमं यान्ति ग्रहपीडाश्च दारुणाः ।
दुःस्वप्नं च नृभिर्दृष्टं सुस्वप्नमुपजायते १६ ॥

टी० । इसके सुनने से सब उपसर्ग (उपद्रव) और भयङ्कर ग्रहपीडा

शान्त होजाती हैं और मनुष्यों का देखाहुआ दुःस्वप्न भी सुस्वप्न हो जाता है १६ ॥

मू० बालग्रहाभिभूतानां बालानां शान्तिकारकम् ।
संघातभेदे च नृणां मैत्रीकरणमुत्तमम् १७ ॥

टी० । और पूतना इत्यादि बालग्रहों से ग्रसित बालकों के वास्ते यह मेरा माहात्म्य शान्तिकारक है और जो मनुष्यों के आपुस में बिगाड़होगयाहो तो इस मेरे माहात्म्य के पढ़ने से उत्तम मिलाप होजाता है १७॥

मू० दुर्वृत्तानामशेषाणां बलहानिकरं परम् ।
रक्षोभूतपिशाचानां पठनादेव नाशनम् १८ ॥

टी० । और फिर यह मेरा माहात्म्य बाघ इत्यादि समस्त दुष्ट जानवरों का बल नाश करदेता है और राक्षस और भूत और पिशाचोंका भी नाश इसके पढ़नेही से होजाता है १८ ॥

मू० सर्व्वं ममैतन्माहात्म्यं मम सन्निधिकारकम् ।
पशुपुष्पार्घ्यधूपैश्च गन्धदीपैस्तथोत्तमैः १९ ॥

टी० । और यह सम्पूर्ण मेरा माहात्म्य मेरी सन्निधिकरनेवाला है और बलिदान और पुष्पाञ्जलि और अर्घ्य व धूप और गन्ध व उत्तम दीप इत्यादिकों से १९ ॥

मू० विप्राणां भोजनैर्होमैः प्रोक्षणीयैरहर्निशम् ।
अन्यैश्च विविधैर्भोगैः प्रदानैर्वत्सरेण या २० ॥

टी० । और ब्राह्मणों को भोजन कराने से और होम और रात दिन पञ्चामृत से स्नानकराने से और उनको विविधप्रकार के भोग व वस्त्र भूषण देनेसे जितना मनुष्यों पर मैं वर्षभर में प्रसन्न होती हूँ २० ॥

मू० प्रीतिर्मे क्रियते सास्मिन्सकृत्सुचरिते श्रुते ।
श्रुतं हरति पापानि तथारोग्यं प्रयच्छति २१ ॥

टी० । उतना जो एक बार मेरे उत्तम चरित्र को सुनता है उस पर मैं प्रसन्न होती हूँ जिस समय मेरे चरित्रको कोई सुनताहै उसीसमय उस का पाप नाश होजाता है और उसके शरीर का रोग छूटजाता है २१ ॥

मू० रक्षां करोति भूतेभ्योजन्मनां कीर्त्तनं मम ।

युद्धेषु चरितं यन्मे दुष्टदैत्यनिबर्हणम् २२॥

टी०। और मेरे जन्मके चरित्र कीर्त्तन करने से मनुष्यों को भूत और पिशाचादिसे रक्षा होतीहै और समर में दुष्ट दैत्योंके नाश करनेके वास्ते मैंने जो जो चरित्र किये हैं २२॥

मू० तस्मिञ्छ्रुते वैरिकृतं भयं पुंसां न जायते।
युष्माभिःस्तुतयोयाश्च याश्च ब्रह्मर्षिभिः कृताः २३॥

टी०। उनके सुनने से मनुष्यों को शत्रुओं से भय नहीं होताहै फिर हे देवतालोगो! आप और ब्रह्मर्षिलोगोंने जो मेरी स्तुति की है २३॥

मू० ब्रह्मणा च कृतास्तास्तु प्रयच्छन्ति शुभां मतिम्।
अरण्ये प्रान्तरे वापि दावाग्निपरिवारितः २४॥

टी०। और ब्रह्माने जो मेरी स्तुतिकी है उसके सुनने और पढ़ने से मनुष्यों को उत्तम ज्ञान होताहै फिर उस वनमें जहां मनुष्य चारों ओरसे अग्नि से घिरगया हो या कहीं दूरतक शून्य जगह में अकेले पड़गयाहो २४॥

मू० दस्युभिर्वा वृतः शून्ये गृहीतोवापि शत्रुभिः।
सिंहव्याघ्रानुयातोवा वने वा वनहस्तिभिः २५॥

टी०। या चारों ओरसे शून्य जगह में डाकुवों ने घेर लियाहो या शत्रुओं ने पकड़लियाहो या किसी जङ्गल में बाघ या सिंह या जंगली हाथीके घेरमें आगया हो २५॥

मू० राज्ञा क्रुद्धेन चाज्ञप्तोवध्योबन्धगतोपि वा।
आघूर्णितोवा वातेन स्थितः पोते महार्णवे २६॥

टी०। या राजा ने नाराज होकर मारने का हुक्म दियाहो या क़ैदमें पड़गया हो या जहाज पर चढ़कर हवा से महाजलार्णवमें घूमताहो २६॥

मू० पतत्सु चापि शस्त्रेषु संग्रामे भृशदारुणे।
सर्व्वाबाधासु घोरासु वेदनाभ्यर्दितोपि वा २७॥

टी०। या कहीं बड़ी दारुण लड़ाई में उसपर हथियारों का मेंह बरसता हो या कैसेही घोरदुःख में पड़ा हो या वेदना से पीडितहो २७॥

मू० स्मरन्ममैतच्चरितं नरोमुच्येत संकटात्।

मम प्रभावात्सिंहाद्या दस्यवो वैरिणस्तथा २८ ॥

टी०। तो इस मेरे चरित्र को स्मरण करने से मनुष्य उन सब दुःख और उपद्रवों से छूटजाताहै और मेरे प्रभाव से सिंहआदिक और चोर लोग वैसेही वैरीलोग २८ ॥

मू० दूरादेव पलायन्ते स्मरतश्चरितं मम।

ऋषिरुवाच ॥

इत्युक्त्वा सा भगवती चण्डिका चण्डविक्रमा २९ ॥

टी०।जो मेरा चरित स्मरणकरनेवाले पुरुष से दूरही से भागजाते हैं मेधाऋषि कहते हैं कि हे सुरथ! प्रचण्डविक्रमवाली चण्डिका भगवती यह सब बातें देवताओं से कहकर २६ ॥

मू० पश्यतामेव देवानां तत्रैवान्तरधीयत।
तेऽपि देवानिरातङ्काः स्वाधिकारान्यथा पुरा ३० ॥

टी०। देखतेही देखते देवताओं की दृष्टि से वहींपर अन्तर्द्धान होगईं और वे देवतालोग भी निर्भय होकर पहिले की तरह अपना २ अधिकार वर्त्तनेलगे ३० ॥

मू० यज्ञभागभुजः सर्वे चक्रुर्विनिहतारयः।
दैत्याश्च देव्या निहते शुम्भे देवरिपौ युधि ३१ ॥

टी०। और निस्सन्देह यज्ञभाग अपना अपना लेने लगे क्योंकि उन के शत्रु मारडालेगये और जब देवी ने देवों के वैरी शुम्भको युद्ध में मार-डाला तब दैत्यलोग ३१ ॥

मू० जगद्विध्वंसिनि तस्मिन्महोग्रेतुलविक्रमे।
निशुम्भे च महावीर्ये शेषाः पातालमाययुः ३२ ॥

टी०। जो कि वह शुम्भ महाउग्र व अतुलपराक्रमी और जगत् का विध्वंसकरनेवाला था और जब महापराक्रमी निशुम्भ भी मारलिया गया तब बाकी जो दैत्यलोग रहगयेथे वे भागकर पातालको चलेगये ३२॥

मू० एवं भगवती देवी सा नित्यापि पुनः पुनः।
सम्भूय कुरुते भूप जगतः परिपालनम् ३३ ॥

टी०। हे सुरथ! वह देवी नित्या भी हैं जब जब देवताओं के ऊपर दुःख पड़ताहै तब तब बार २ अवतार लेकर जगत्की रक्षा करतीहैं ३३॥

मू० तयैतन्मोह्यते विश्वं सैव विश्वं प्रसूयते।
सा याचिता च विज्ञानं तुष्टा ऋद्धिं प्रयच्छति ३४॥

टी०। और वही भगवती सम्पूर्ण संसार को मोहलेती हैं और वही सब संसार को पैदा करती हैं फिर वही देवी निष्काम भक्तिपूर्वक पूजन करने से मुक्ति और आत्मतत्त्वज्ञान देती हैं और फल प्राप्त निमित्त पूजा करने से प्रसन्न होकर ऐश्वर्य्य देती हैं ३४॥

मू० व्याप्तं तयैतत्सकलं ब्रह्माण्डं मनुजेश्वर।
महाकाल्या महाकालीमहामारीस्वरूपया ३५॥

टी०। मेधाऋषि कहते हैं कि हे राजन्! महाप्रलय में महामारी स्वरूप से जो महाकाली रहतीहैं उन्हीं से यह सब ब्रह्माण्ड व्याप्तहै ३५॥

मू० सैव काले महामारी सैव सृष्टिर्भवत्यजा।
स्थितिं करोति भूतानां सैव काले सनातनी ३६॥

टी०। और वही महाकाली प्रलयकाल में संहारशक्ति और सृष्टिकाल में वही अजा याने जन्मरहित सृष्टिशक्ति और स्थितिकाल में वही सनातनी शक्ति होकर प्राणियों का पालनकरती हैं ३६॥

मू० भवकाले नृणां सैव लक्ष्मीर्वृद्धिप्रदा गृहे।
सैवाभावे तथा लक्ष्मीर्विनाशायोपजायते ३७॥

टी०। फिर वही भगवती सम्पत्ति के समय में मनुष्यों के घर में वृद्धि की देनेवाली लक्ष्मीहोकर रहती हैं और फिर वही भगवती आपदाके समये में मनुष्यों के घर में धन को नाशकरनेके वास्ते दारिद्र रूपहोजाती हैं ३७॥

मू० स्तुता संपूजिता पुष्पैर्धूपगन्धादिभिस्तथा।
ददाति वित्तं पुत्रांश्च मतिं धर्म्मे तथा शुभाम् ३८॥

टी०। और फिर वही भगवती स्तुति कीहुई वैसेही और पुष्प तथा धूप गन्धादिकों से भलीभांति पूजन कीहुई प्रसन्न होकर धन और पुत्रों को देती हैं और धर्म्मकरने में अच्छीबुद्धि देती हैं ३८॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेसावर्णिकेमन्वन्तरे देव्याश्चरितमाहात्म्यंनामद्वि-
नवतितमोऽध्यायः॥ ९२॥

अथ तिरानबेवां अध्याय॥

ऋषिरुवाच॥

मू० एतत्ते कथितं भूप देवीमाहात्म्यमुत्तमम्।
एवंप्रभावा सा देवी ययेदं धार्यते जगत् १॥

टी०। इतना कहकर मेधाऋषि फिर बोले कि हे सुरथ! जिस देवी का यह प्रभाव और उत्तममाहात्म्य कहआये वही सम्पूर्णजगत्की उत्पन्नकरनेवाली और पालनेवाली और नाशकरनेवाली हैं १॥

मू० विद्या तथैव क्रियते भगवद्विष्णुमायया।
तया त्वमेषवैश्यश्च तथैवान्ये विवेकिनः २॥

टी०। और वही भगवती जो भगवान् विष्णु की माया हैं और उन भगवती से तत्त्वज्ञान कियाजाता है और उसी देवी से आप और यह वैश्य और इसीतरह वेद और शास्त्र के जाननेवाले और मनुष्यभी २॥

मू० मोह्यन्ते मोहिताश्चैव मोहमेष्यन्ति चापरे।
तामुपैहि महाराज शरणं परमेश्वरीम् ३॥

टी०। मोहितहुये हैं और मोहित रहते हैं और मोहको प्राप्त होंगे हे सुरथ! आप उसी जगत्मोहनी महामाया परमेश्वरी की शरण पकड़िये ३॥

मू० आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा।

मार्कण्डेयउवाच॥

इति तस्य वचश्श्रुत्वा सुरथस्सनराधिपः ४॥

टी०। क्योंकि आराधना करने से वही देवी मनुष्यों को भोग और स्वर्ग और मुक्ति देती हैं मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि! इतनी बातें मेधाऋषि की सुनकर वे राजा सुरथ ४॥

मू० प्रणिपत्य महाभागं तमृषिं शंसितव्रतम्।
निर्विण्णोऽतिममत्वेन राज्यापहरणेन च ५॥

टी०। ममत्व और राज छिनजानेके दुःख से आकुलहोकर महाभाग और महाव्रत को धारणकरनेवाले मेधाऋषिको साष्टांग प्रणामकरके ५॥

मू० जगाम सद्यस्तपसे सच वैश्योमहामुने ।
संदर्शनार्थमम्बायानदीपुलिनसंस्थितः ६ ॥

टी० । उसीवक्त उस वैश्यसमेत तपस्याकरने के वास्ते वहां से चले और ऐ महामुने ! एक जगह नदी के किनारे पर देवीजी के दर्शन होने के लिये बैठगये ६ ॥

मू० सच वैश्यस्तपस्तेपे देवीसूक्तं परं जपन् ।
तौ तस्मिन् पुलिने देव्याः कृत्वा मूर्तिं महीमयीम् ७ ॥

टी० । और देवीजी का परमसूक्त जपताहुआ तपस्या करनेलगा और वे दोनों उसी किनारे पै देवी का स्वरूप मिट्टी से बनाकर ७ ॥

मू० अर्हणां चक्रतुस्तस्याः पुष्पधूपाग्नितर्पणैः ।
निराहारौ यताहारौ तन्मनस्कौ समाहितौ ८ ॥

टी० । एकचित्त होकर देवीजी में मन लगाकर पहले थोड़ा भोजन करतेहुये फिर निराहार होकर पुष्प धूप दीप होम इत्यादि से उन भगवतीका पूजन किया ८ ॥

मू० ददतुस्तौ बलिं चैव निजगात्रासृगुक्षितम् ।
एवं समाराधयतोस्त्रिभिर्वर्षैर्यतात्मनोः ९ ॥

टी० । फिर महाराज सुरथ और वैश्यने अपना अपना शरीर काटकर रुधिर निकाल देवीजी को बलिदान दिया जब इसतरह सब इन्द्रियोंको साधकर तीनवर्षतक पूजनकिया ९ ॥

मू० परितुष्टा जगद्धात्री प्रत्यक्षं प्राह चण्डिका ।
देव्युवाच ॥
यत्प्रार्थ्यते त्वया भूप त्वया च कुलनन्दन १० ॥

टी० । तब वह जगत् की माता चण्डिका देवी प्रसन्न होकर प्रगटहो और दर्शन देकर बोलीं कि हे महाराज सुरथ ! और हे कुलनन्दन वैश्य! तुमलोग जो वर चाहते हो १० ॥

मू० मत्तस्तत्प्राप्यतां सर्व्वं परितुष्टा ददामि तत् ।
मार्कण्डेयउवाच ॥
ततोवव्रेनृपोराज्यमविभ्रंश्यन्यजन्मनि ११ ॥

टी० । वह सब हम से तुमलोग पाओगे और हम प्रसन्न होकर वह तुमलोगों को देंगी मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि ! इतनी आज्ञा देवीजी की पाकर राजा सुरथ ने दूसरे जन्म में बहुत दिनों तक राज्य रहनेका वरदान देवीजी से मांगा ११ ॥

मू० अत्रैव च निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात् ।
सोपि वैश्यस्ततोज्ञानं वव्रे निर्विण्णमानसः १२ ॥

टी० । और इस जन्म में भी अपने बल से शत्रुवोंको मारकर अपना राज्य अपने वश में लाने का वरदान देवीजी से मांगलिया तदनन्तर उस वैश्य ने भी संसार से विरक्तचित्त होकर देवीजी से तत्त्वज्ञान का वरदान मांगलिया १२ ॥

मू० ममेत्यहमिति प्राज्ञः सङ्गविच्युतिकारकम् ।
देव्युवाच ॥
स्वल्पैरहोभिर्नृपते स्वं राज्यं प्राप्स्यते भवान् १३ ॥

टी० । कि जिससे यह मेरा और मैं ऐसा सङ्ग सब छूटजाय सुरथ और वैश्य के वरदान मांगने पर देवीजी ने कहा कि हे राजा सुरथ ! थोड़ेंही दिनमें तुम अपना राज्य पावोगे १३ ॥

मू० हत्वा रिपूनस्खलितं तव तत्र भविष्यति ।
मृतश्च भूयः संप्राप्य जन्म देवाद्विवस्वतः १४ ॥

टी० । और तुम्हारे सब शत्रु नाश होकर राज्य में एक तुम्हाराही हुक्म चलैगा और दूसरेजन्ममें तुम विवस्वान् (सूर्य) के पुत्र होकर १४॥

मू० सावर्णिकोमनुर्नाम भवान्भुवि भविष्यति ।
वैश्यवर्य त्वया यश्च वरोस्मत्तोभिवाञ्छितः १५ ॥

टी० । आप सावर्णिकनाम मनु पृथ्वी में होंगे और हे वैश्यवर्य ! तुम जो वरदान हमसे चाहते हो १५ ॥

मू० तं प्रयच्छामि संसिद्ध्यै तव ज्ञानं भविष्यति ।
मार्कण्डेयउवाच ॥
इति दत्त्वा तयोर्देवी यथाभिलषितं वरम् १६ ॥

टी० । वह वरदान तुम्हारी मुक्ति के वास्ते मैं दूँगी कि जिससे तुम

को ज्ञान होगा मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि! इसतरह महाराज सुरथ और वैश्य को चाहाहुआ वरदान देकर १६ ॥

मू० बभूवान्तर्हिता सद्योभक्त्या ताभ्यामभिष्टुता।
एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः।
सूर्य्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः १७ ॥

टी०। और भक्ति से उन लोगों का किया स्तोत्र सुनकर उसी समय देवीजी अन्तर्द्धान, होगईं इसतरह देवीजी के वरदान से क्षत्रियों में श्रेष्ठ महाराज सुरथ दूसरे जन्म में सूर्य्य के पुत्र होकर सावर्णिनाम मनु होंगे १७ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेसावर्णिकेमन्वन्तरेदेवीमाहात्म्येसुरथ वैश्ययोर्वर प्रदानंनामत्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

इति देवीमाहात्म्यं समाप्तम् ॥

अथ चौरानबेवां अध्याय ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० सावर्णिकमिदं सम्यक्प्रोक्तं मन्वन्तरं तव।
तथैव देवीमाहात्म्यं महिषासुरघातनम् १ ॥

टी०। इसके बाद फिर मार्कण्डेयजी कहनेलगे कि हे क्रौष्टुकि! यह सावर्णिक मन्वन्तर व महिषासुर का वध और देवीजी का माहात्म्य विस्तारपूर्व्वक आप से कहा १ ॥

मू० उत्पत्तयश्च यादेव्यामातृणाञ्च महाहवे।
तथैव सम्भवोदेव्याश्चामुण्डायायथाभवत् २ ॥

टी० और फिर देवीजी की उत्पत्ति और असुरों की बड़ी लड़ाई में शक्तियों का प्रगट होना और महालक्ष्मी और सरस्वती और पार्व्वती और चामुण्डा का प्रगट होना २ ॥

मू० शिवदूत्याश्च माहात्म्यं वधः शुम्भनिशुम्भयोः।
रक्तबीजवधश्चैव सर्व्वमेतत्तवोदितम् ३ ॥

टी०। और शिवदूती का माहात्म्य और शुम्भ निशुम्भ व रक्तबीज इत्यादि असुर जिसतरह मारेगये यह सब आपसे कहादिया ३॥

मू० श्रूयतां मुनिशार्दूल सावर्णिकमथापरम्।
दक्षपुत्रश्च सावर्णोभावी योनवमो मनुः ४॥

टी०। अब हे मुनिराज! फिर दूसरे सावर्णिक को सुनो जो दक्ष के पुत्र सावर्ण नवें मनु होंगे ४॥

मू० कथयामि मनोस्तस्य ये देवामुनयोनृपाः।
पारामरीचिभर्गाश्च सुधर्म्माणस्तथासुराः ५॥

टी०। और फिर उस मनुके मन्वन्तर में जो देवता और मुनिलोग और राजा सब होंगे उनको भी कहता हूं सुनो अर्थात् पार और मरीचि और भर्ग और सुधर्म्मानाम देवता सब होंगे ५॥

मू० एते त्रिधा भविष्यन्ति सर्व्वे द्वादशकागणाः।
तेषामिन्द्रोभविष्यस्तु सहस्राक्षोमहाबलः ६॥

टी०। और ये लोग तीनप्रकार के होंगे और सब बारह गण होंगे व उन सब के इन्द्र सहस्राक्ष महापराक्रमी होंगे ६॥

मू० साम्प्रतं कार्त्तिकेयोयोवह्निपुत्रः षडाननः।
अद्भुतोनाम शक्रोऽसौ भावी तस्यान्तरे मनोः ७॥

टी०। अर्थात् इस समय छःमुखवाले कार्त्तिकेय जो वह्निके पुत्र हैं वही उस मन्वन्तर में अद्भुत नाम इन्द्र होंगे ७॥

मू० मेधातिथिर्व्वसुः सत्योज्योतिष्मान्द्युतिमांस्ततः।
सप्तर्षयोऽन्यः सबलस्तथान्योहव्यवाहनः ८॥

टी०। मेधातिथि और वसु और सत्य और ज्योतिष्मान् और द्युतिमान् और हव्यवाहन और सबल यहीलोग उस मन्वन्तर में सप्तऋषि होंगे ८॥

मू० धृष्टकेतुर्ब्बर्हकेतुः पञ्चहस्तोनिरामयः।
पृथुश्रवास्तथार्च्चिष्मान् भूरिद्युम्नोबृहद्भयः ९॥

टी०। और धृष्टकेतु और बर्हकेतु और पंचहस्त और निरामय और पृथुश्रवा और आर्चिष्मान् और भूरिद्युम्न और बृहद्भय ६॥

मू० एते नृपसुतास्तस्य दक्षपुत्रस्य वै नृपाः।
मनोस्तु दशमस्यान्यच्छृणुमन्वन्तरं द्विज १० ॥

टी०। उस दक्षके पुत्र के ये बेटेलोग राजा होंगे हे द्विज! अब अन्य दशवें मनुका मन्वन्तर मैं कहता हूं सुनो १० ॥

मू० मन्वन्तरे च दशमे ब्रह्मपुत्रस्य धीमतः।
सुखासीनानिरुद्धाश्च त्रिप्रकाराः सुराः स्मृताः ११ ॥

टी०। दशवें मन्वन्तरमें ब्रह्माके पुत्र धीमान्के सुखासीन और निरुद्धनामवाले तीनप्रकार के देवता होंगे ११ ॥

मू० शतसंख्याहिते देवाभविष्याभाविनोमनोः।
यत्प्राणिनां शतं भावि तद्देवानां तदा शतम् १२ ॥

टी०। भावी मनुके शतसंख्यक वे देवता होंगे जोकि प्राणियोंका सैकड़ा होनेवाला है उस समय वह देवताओंका सैकड़ा होगा १२ ॥

मू० शान्तिरिन्द्रस्तथा भावी सर्व्वैरिन्द्रगुणैर्युतः।
सप्तर्षींस्तान् निबोध त्वं ये भविष्यन्ति वै तदा १३ ॥

टी०। और शांतिनाम सब इन्द्रके गुणों से युक्त उस मन्वन्तर में इन्द्र होंगे और सप्तर्षिलोग जो उस मन्वन्तर में होंगे उसको मैं कहता हूं सुनो १३ ॥

मू० आपोमूर्त्तिर्हविष्मांश्च सुकृती सत्यएव च।
नाभागोऽप्रतिमश्चैव वाशिष्ठश्चैव सप्तमः १४ ॥

टी० आपोमूर्त्ति और हविष्मान् और सुकृती और सत्य और नाभाग और अप्रतिम और वाशिष्ठ यही सातवां १४ ॥

मू० सुक्षेत्रश्चोत्तमौजाश्च भूमिसेनश्च वीर्य्यवान्।
शतानीकोऽथ वृषभोह्यनमित्रोजयद्रथः १५ ॥

टी०। और सुक्षेत्र और उत्तमौजा और भूमिसेन और बड़ेपराक्रमी शतानीक और वृषभ और अनमित्र और जयद्रथ १५ ॥

मू० भूरिद्युम्नः सुपर्व्वा च तस्यैते तनयामनोः।
भविष्याधर्म्मपुत्रस्य सावर्णस्यान्तरं शृणु १६ ॥

टी०। और भूरिद्युम्न और सुपर्व्वा यही लोग उस मनुके बेटे उस-मन्वन्तर में राजा होंगे इसके पश्चात् ग्यारहवें मनु धर्म्म के पुत्र जो सावर्णि होंगे उनका मन्वन्तर मैं कहता हूं सुनो १६॥

मू० विहङ्गमाः कामगाश्च निर्म्माणरतयस्तथा।
त्रिप्रकाराभविष्यन्ति स्वेकैकस्त्रिंशकोगणः १७॥

टी०। कि विहङ्गम और कामग और निर्म्माणरति तीनप्रकार के देवता उस मन्वन्तर में होंगे और एक एक प्रकार के देवता वा तीस २ संख्याका गण होगा १७॥

मू० मासर्त्तुदिवसायि तु निर्म्माणरतयस्तु ते।
विहङ्गमारात्रयोऽथ मौहूर्त्ताः कामगागणाः १८॥

टी०। मास और ऋतु और दिन यही सब निर्म्माणरति कहलावैंगे और रात्रि सब विहंगम कहलावैंगी और मुहूर्त्त सब कामगगण कह-लावैंगे १८॥

मू० इन्द्रोवृषाख्योभविता तेषां प्रख्यातविक्रमः।
हविष्मांश्च वरिष्टश्च ऋष्टिरन्यस्तथारुणिः १९॥

टी०। और उस मन्वन्तर में प्रसिद्धपराक्रमवाले वृषनामके उन देवों के इन्द्र होंगे और हविष्मान् और वरिष्ट और इसीतरह अरुणके बेटे ऋष्टि १६॥

मू० निश्चरश्चानघश्चैव विष्टिश्चान्योमहामुनिः।
सप्तर्षयोऽन्तरे तस्मिन्नग्निदेवश्च सप्तमः २०॥

टी०। और निश्चर और अनघ और अन्य विष्टि महामुनि और सातवां अग्निदेव यहीलोग उस मन्वन्तर में सप्तऋषि कहलावैंगे २०॥

मू० सर्व्वत्रगः सुशर्म्मा च देवानीकः पुरूद्वहः।
हेमधन्वा दृढायुश्च भाविनस्तत्सुतान्नृपाः २१॥

टी०। और सर्व्वत्रग और सुशर्मा और देवानीक और पुरूद्वह और हेमधन्वा और दृढायु ये सब उस मनुके बेटेलोग राजा होंगे २१॥

मू० द्वादशे रुद्रपुत्रस्य प्राप्ते मन्वन्तरे मनोः।
सावर्णाख्यस्य ये देवामुनयश्च शृणुष्व तान् २२॥

टी०। और मनु रुद्र के बेटे जो सावर्णनाम होंगे उनकाव रहवां मन्वन्तरप्राप्तहोनेपर जो देवता व मुनिलोग होंगे उनको कहताहूंसुनो २२॥

मू० सुधर्म्माणः सुमनसोहरितारोहितास्तथा।
सुवर्णाश्च सुरास्तत्र पञ्चैते दशकागणाः २३॥

टी०। कि सुधर्म्मा और सुमनस और हरित और रोहित तथा सुवर्ण नामवाले ये पांचो उस मन्वन्तर में देवताहोंगे और पांचों में दश दश गण होंगे २३॥

मू० तेषामिन्द्रस्तु विज्ञेयऋतधामा महाबलः।
सर्व्वैरिन्द्रगुणैर्युक्तः सप्तर्षीनपि मे शृणु २४॥

टी०। और उन सबके मालिक इन्द्रके सब गुणों से संयुत बड़ेबली ऋतधामानाम इन्द्र होंगे और उस मन्वन्तर में जो सप्तर्षिलोगहोंगे उनको भी सुनो २४॥

मू० द्युतिस्तपस्वी सुतपास्तपोमूर्त्तिस्तपोनिधिः।
तपोरतिस्तथैवान्यः सप्तमस्तु तपोधृतिः २५॥

टी०। द्युति और तपस्वी और सुतपा और तपोमूर्त्ति और तपोनिधि और तपोरति औ वैसेही अन्य तपोधृति सातवें सप्तर्षि होंगे २५॥

मू० देववानुपदेवश्च देवश्रेष्ठोविदूरथः।
मित्रवान् मित्रविन्दश्च भाविनस्तत्सुतान्नृपाः २६॥

टी०। और देववान् और उपदेव और देवश्रेष्ठ विदूरथ और मित्रवान् और मित्रविन्द यही सब उस मनुके बेटेलोग राजाहोंगे २६॥

मू० त्रयोदशस्य पर्य्याये रौच्याख्यस्य मनोः सुतान्।
सप्तर्षींश्च नृपांश्चैव गदतोमे निशामय २७॥

टी०। और तेरहवें रौच्यनाम मनु होंगे उनके पर्याय मन्वन्तर में और सप्तर्षि और उनके बेटेलोग जो राजाहोंगे उनको कहतेहुए मुझसे सुनो २७

मू० सुधर्म्माणः सुरास्तत्र सुकर्म्माणस्तथापरे।
सुशर्म्माणः सुराह्येते समस्तामुनिसत्तम २८॥

टी०। हे मुनिसत्तम! उस मन्वन्तर में सुधर्म्मा और सुकर्म्मा तथा और सुशर्म्मा ये सब देवता होंगे २८॥

मू० महाबलोमहावीर्य्यस्तेषामिन्द्रोदिवस्पतिः।
भविष्यानथ सप्तर्षीन् गदतोमे निशामय २९॥

टी०। उन सबके इन्द्र बड़ेप्रभाववान् दिवस्पतिनाम महाबली होंगे और इस मन्वन्तर में जो जो सप्तर्षि होंगे उनको मैं कहताहूं सुनो २६॥

मू० धृतिमानव्ययश्चैव तत्त्वदर्शी निरुत्सुकः।
निर्मोहः सुतपाश्चान्योनिष्प्रकम्पश्च सप्तमः ३०॥

टी० कि धृतिमान् और अव्यय और तत्त्वदर्शी और निरुत्सुक और निर्मोह और अन्य सुतपा औरसातवां निष्प्रकम्प ३०॥

मू० चित्रसेनोविचित्रश्च नयतिर्निर्भयोदृढः।
सुनेत्रः क्षत्रबुद्धिश्च सुव्रतश्चैव तत्सुताः ३१॥

टी०। और चित्रसेन और विचित्र और नयति और निर्भय और दृढ और सुनेत्र और क्षत्रबुद्धि और सुव्रत यही सब उस मनु के बेटेलोग राजा होंगे ३१॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेरौच्यमन्वन्तरेनामचतुर्नवतितमोऽध्यायः ९४॥

अथ पंचानबेवां अध्याय॥

मार्कण्डेयउवाच॥

मू० रुचिः प्रजापतिः पूर्व्वं निर्ममोनिरहंकृतः।
अत्र स्तोमितशायी च चचार पृथिवीमिमाम् १॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि! पूर्व्वकाल में रुचि नाम प्रजापति थे जिनको किसीतरह की ममता और घमण्ड न था सदा संसार में घूमाकरते और बहुतथोड़ा सोते थे व निडर १॥

मू० अनग्निमनिकेतन्तमेकाहारमनाश्रमम्।
विमुक्तसङ्गं तं दृष्ट्वा प्रोचुस्तत्पितरोमुनिम् २॥

टी०। उनको विनाअग्नि और विनागृह और एकबेर भोजनकरते और विनाआश्रय और विनासंगत किसी के मुनियों के रूप में देखकर उनके पितरलोग प्रकटहोकर उनसे कहनेलगे २॥

पितरऊचुः॥

मू० वत्स कस्मात्त्वया पुण्योन कृतोदारसंग्रहः।
स्वर्गापवर्गहेतुत्वाद्बन्धस्तेनानिशं विना ३॥

टी०। पितर बोले कि हे वत्स! तुम ने विवाह क्यों नहीं किया जिसके करने से पुण्य और स्वर्ग और मुक्ति होती है विना उस विवाह के यह जीव सदा बन्धन में रहता है ३॥

मू० गृही समस्तदेवानां पितॄणाञ्च तथार्हणाम्।
ऋषीणामतिथीनाञ्च कुर्वँल्लोकानुपाश्नुते ४॥

टी०। गृहस्थ देवता और पितरों और ऋषियों और अभ्यागतों का पूजन करने से उत्तमलोकों में प्राप्त होताहै ४॥

मू० स्वाहोच्चारणतोदेवान् स्वधोच्चारणतः पितॄन्।
विभजत्यन्नदानेन भूताद्यानतिथीनपि ५॥

टी०। व गृहस्थलोग स्वाहा कहकर देवताओं को और स्वधा कहकर पितरों को और भाग लगाकर अन्न के दान से भूतों को और अभ्यागतों को भी तृप्त करते हैं ५॥

मू० सत्वं दैवाद्दणाद्बन्धं बन्धमस्मद्दणादपि।
अवाप्नोषि मनुष्येभ्योभूतेभ्यश्च दिने दिने ६॥

टी०। और सो तुम विवाह न करने और गृहत्याग करने से देवतों और हमलोगों और मनुष्यों और भूतों के ऋण से दिन बदिन इस संसार के बन्धन में बँधते जातेहो ६॥

मू० अनुत्पाद्य सुतान् देवानसन्तर्प्य पितॄंस्तथा।
भूतादींश्च कथं मौढ्यात् सुगतिं गन्तुमिच्छसि ७॥

टी०। विना पुत्र उत्पन्न किये और विना पितरों के तर्पण किये और विना देवताओं के पूजन किये और विना भूतादिकों को भोजन दिये मूढ़तासे किस तरह अच्छी गति को चाहते हो ७॥

मू० क्लेशमेवैहिकं पुत्र मन्यामोऽत्र भवेत्तव ।
मृतस्य नरकं तद्वत् क्लेशमेवान्यजन्मनि ८ ॥

टी० । और हे पुत्र ! तुम्हारे इसजन्ममें तुमको क्लेशही हमलोगमानते हैं और मरने पर नरक और फिर दूसरे जन्ममें वैसेही भी क्लेशहोगा ८ ॥

रुचिरुवाच ॥

मू० परिग्रहोऽतिदुःखाय पापायाधोगतिस्तथा ।
भवत्यतोमया पूर्व्वं न कृतोदारसंग्रहः ९ ॥

टी० । यह सुनकर रुचि बोले कि मनुष्यों को विवाह करने से बहुत पाप और दुःख होता है और उसी पाप के सबब से नरक होता है इस वास्ते मैंने पहले विवाह नहीं किया ९ ॥

मू० आत्मनः संयमोयोऽयं क्रियते सुनियन्त्रणात् ।
समुक्तिहेतुर्नभवत्यसावपि परिग्रहात् १० ॥

टी० । और इन्द्रियों को अच्छीतरह रोंककरके जो इस आत्मा का संयम कियाजाताहै वह विवाह करने से मुक्ति का कारण नहीं होताहै १० ॥

मू० प्रक्षाल्यतेऽनुदिवसं यदात्मा निष्परिग्रहैः ।
ममत्वपङ्कदिग्धोऽपि चित्ताम्भोभिर्वरं हि तत् ११ ॥

टी० यह आत्मा जो ममतारूपी कीचड़ से लिपाहुआ भी है वह कीचड़ विवाहादि न करने के सबब से चित्तरूपी जलों से हररोज़ धोया जाता है वही अच्छा है ११ ॥

मू० अनेकभवसम्भूतकर्म्मपङ्काङ्कितोबुधैः ।
आत्मा सद्वासनातोयैः प्रक्षाल्यो नियतेन्द्रियैः १२ ॥

टी० । और इसलिये इन्द्रियजित् ज्ञानीलोगों को जन्म जन्म के कर्म्मरूपी कीचड़ से लिपीहुई आत्मा को सत्कर्मरूपी जलों से धोडालना चाहिये १२ ॥

पितरऊचुः ॥

मू० युक्तं प्रक्षालनं कर्त्तुमात्मनोनियतेन्द्रियैः ।
किन्तु न न्यायमार्गोऽयं यत्रत्वं पुत्र वर्त्तसे १३ ॥

टी० । यह बात रुचि की सुनकर पितरलोग बोले कि हे पुत्र ! इन्द्रियों को वशकरनेवाले जनों को आत्मा स्वच्छ रखनाचाहिये परन्तु यह न्याय की राह नहीं है जिसपर तुम प्रवृत्त हो १३ ॥

मू० पञ्चर्णदानैरशुभं नुद्यतेऽनभिसन्धितैः ।
फलैस्तथोपभोगैश्च पूर्व्वकर्म्मशुभाशुभैः १४ ॥

टी० । और पांच ऋण जो हैं फलकी इच्छारहित उनके अदा करने से पाप की क्षय होतीहै और पूर्व्वजन्म का कियाहुआ भला या बुरा प्रारब्ध कर्म्म को भोगकरने से पापनाश होताहै १४ ॥

मू० एवं न बन्धो भवति कुर्व्वतः कारणं विना ।
न च बन्धाय तत्कर्म्म भवत्यनभिसन्धितम् १५ ॥

टी० । इस तरह बिना कारण (फलकी इच्छा) के कर्म्म करनेसे आत्मा को बन्धन नहीं होताहै और जिस कर्म्म में फल की इच्छा नहीं होती है उस कर्म्म के करने से भी आत्मा को बन्धन नहीं होता १५ ॥

मू० पूर्व्वकर्म्मकृतं भोगैः क्षीयतेऽहर्निशं तथा ।
सुखदुःखात्मकैर्व्वत्स पुण्यापुण्यात्मकं नृणाम् १६ ॥

टी० । हे वत्स ! पूर्व्वजन्म का कियाहुआ जो मनुष्यों का कर्म्म है वह दूसरे जन्म में पाप पुण्य रूपवाला दुःख या सुख दिन रात भोगकरने से घटता है १६ ॥

मू० एवं प्रक्षाल्यते प्राज्ञैरात्मा बन्धैश्च रक्ष्यते ।
न त्वेवमविवेकेन पापपङ्केन गृह्यते १७ ॥

टी० । इसी तरह ज्ञानीलोग अपनी आत्मा को धोकर शुद्ध करते हैं और बन्धन से बचातेहैं और इसतरह करने से अज्ञानता और पापरूपी जो कीचड़ है वह आत्मा में नहीं लगता है १७ ॥

रुचिरुवाच ॥

मू० अविद्या पठ्यते वेदे कर्म्ममार्गः पितामहाः ।
तत्कथं कर्म्मणोमार्गे भवन्तोयोजयन्ति माम् १८ ॥

टी० । यह बात पितरों से सुनकर रुचि बोले कि हे पितामहलोगो !

कर्म्म का मार्ग जो वेद में पढ़ाजाता है उसके करने से अज्ञानता होती है तो फिर आपलोग मुझको उस राह पर क्यों युक्त करते हैं १८ ॥

पितरऊचुः ॥

मू० अविद्या सत्यमेवैतत्कर्म्म नैतन्मृषा वचः।
किन्तु विद्यापरिप्राप्तौ हेतुः कर्म्म न संशयः १९ ॥

टी०। पितरलोग बोले कि हे पुत्र ! सत्य है कर्म्ममार्ग में अविद्या होती है यह झूंठ नहीं है परन्तु विद्या (ज्ञान) के मिलने में निस्सन्देह कर्म कारण है १६ ॥

मू० विहिताकरणात्पुम्भिरसद्भिः क्रियते तु यः।
संयमोमुक्तये सोऽन्ते प्रत्युताऽधोगतिप्रदः २० ॥

टी०। जो असत्पुरुष वेदके अनुसार कर्म्म नहीं करते हैं केवल आत्मा का संयम करतेहैं उनको उस संयम से मुक्ति नहीं होती किन्तु अन्त को नरक होता है २० ॥

मू० प्रक्षालयामीति भवान् वत्सात्मानं तु मन्यते।
विहिताकरणोद्भूतैः पापैस्त्वन्तु विलिप्यसे २१ ॥

टी०। और हे वत्स ! तुम जो यह जानते हो कि मैं आत्मा को प्रक्षालित करता हूं सो यह बात नहीं है किन्तु विहितकर्म्म के त्यागकरने से जो पाप पैदा होतेहैं उनसे तुम युक्त होते हो २१ ॥

मू० अविद्याप्युपकाराय विषवज्जायते नृणाम्।
अनुष्ठिताभ्युपायेन बन्धायान्यापि नो हि सा २२ ॥

टी०। और विहितकर्म्म के करने से अविद्या भी मनुष्यों को मुक्ति देती है जिसतरह विष को शोधकर खाने से वह विष अमृत का फल देता है और उपाय करके विहितकर्म्म को छोड़देने से वह विद्या भी आत्मा को बन्धन देती है २२ ॥

मू० तस्माद्वत्स कुरुष्व त्वं विधिवद्दारसंग्रहम्।
मा जन्म विफलन्तेस्तु असंप्राप्य तु लौकिकम् २३ ॥

टी०। इसलिये हे वत्स ! तुम विधिपूर्वक विवाह करो जिसमें लौकिक व्यवहार छोड़ने के सबब से तुम्हारा जन्म निष्फल न हो २३ ॥

रुचिरुवाच ॥

मू० वृद्धोऽहं साम्प्रतं कोमे पितरः सम्प्रदास्यति ।
भार्य्यां तथा दरिद्रस्य दुष्करोदारसंग्रहः २४ ॥

टी० । रुचि बोले कि हे पितरलोगो ! मैं अब वृद्ध हुआ हूं मुझ वृद्ध को कौन कन्या देगा और दरिद्र होकर स्त्री करने से बड़े २ दुःख का सामना होता है २४ ॥

पितरऊचुः ॥

मू० अस्माकं पतनं वत्स भवतश्चाप्यधोगतिः ।
नूनं भावी भवित्री च नाभिनन्दसि नो वचः २५ ॥

टी० । यह बातें रुचि की सुनकर पितरलोग बोले कि हे वत्स ! जो तुम हमलोगों का कहा न मानौगे तो हम सबोंको नरक में गिरना होगा और तुम भी नरक में गिरौगे २५ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० इत्युक्त्वा पितरस्तस्य पश्यतोमुनिसत्तम ।
बभूवुः सहसाऽदृश्यादीपावाताहताइव २६ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे मुनिसत्तम ! पितरलोग इस तरह कहकर रुचि की दृष्टि से इसतरह अलोप होगये जिस तरह वायु के लगने से दीपक अलोप होजाते हैं २६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेरुच्युपाख्यानेनामपञ्चनवतितमोऽध्यायः ९५ ॥

अथ छानबेवां अध्याय ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० स तेन पितृवाक्येन भृशमुद्विग्नमानसः ।
कन्याभिलाषी विप्रर्षिः परिबभ्राम मेदिनीम् १ ॥

टी० । फिर मार्कण्डेयजी बोले कि हे क्रौष्टुकि ! वह रुचि पितरों के कहने से बहुत घबराकर स्त्री करने की इच्छा में पृथ्वीपर घूमने लगे १ ॥

मू० कन्यामलभमानोऽसौ पितृवाक्याग्निदीपितः।
चिन्तामवाप महतीमतीवोद्विग्नमानसः २॥

टी०। परन्तु जब उनको कहीं स्त्री न मिली तब वह पितरों की वाक्य-रूपी अग्नि से दग्ध होकर बड़ी चिन्ता में प्राप्त होकर बहुत उदास हो-गये २॥

मू० किं करोमि क्व गच्छामि कथं मे दारसंग्रहः।
क्षिप्रं भवेन्मत्पितॄणां स चाभ्युदयकारकः ३॥

टी०। और शोचने लगे कि क्या करूं कहां जाऊँ किस तरह से स्त्री मुझको जल्दी प्राप्त हो कि जिसके ग्रहण करने से मेरे पितरों का जल्दी उद्धार हो ३॥

मू० इति चिन्तयतस्तस्य मतिर्जाता महात्मनः।
तपसाराधयाम्येनं ब्रह्माणं कमलोद्भवम् ४॥

टी०। इसतरह चिन्ता करते करते रुचि महात्मा के यह बुद्धि पैदा हुई कि कमल से पैदाहुये इनब्रह्माजी को तपस्या करके आराधनाकरूं ४॥

मू० ततो वर्षशतं दिव्यं तपस्तेपे स वेधसः।
आराधनार्थं स तदा परं नियममास्थितः ५॥

टी०। यह बात अपने जी में ठानकर उसके बाद ब्रह्माजी की आरा-धनाके लिये बहुत नेम के साथ देवतों के वर्ष से सौ वर्ष तक उसवक्त तपस्या की ५॥

मू० ततः स्वं दर्शयामास ब्रह्मा लोकपितामहः।
उवाच तं प्रसन्नोऽस्मीत्युच्यतामभिवाञ्छितम् ६॥

टी०। तब लोकों के पितामह ब्रह्माजीने प्रकट होकर अपना को दिख-लाया व रुचि से बोले कि मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूं तुमको जिस बातकी इच्छाहो मुझसे कहो ६॥

मू० ततोऽसौ प्रणिपत्याह ब्रह्माणं जगतो गतिम्।
पितॄणां वचनात्तेन यत्कर्त्तुमभिवाञ्छितम्॥
ब्रह्माचाह रुचिं विप्रं श्रुत्वा तस्याभिवाञ्छितम् ७॥

टी०। तब रुचि ने संसारकी गति ब्रह्माजी को प्रणाम करके पितरों

की आज्ञानुसार स्त्री करने की इच्छा को आपने प्रकट किया तब ब्रह्मा जी उनकी इच्छा को सुनकर रुचिब्राह्मण से बोले ७॥

ब्रह्मोवाच॥

मू० प्रजापतिस्त्वं भविता स्रष्टव्याभवता प्रजाः।
सृष्ट्वा प्रजाः सुतान् विप्र समुत्पाद्य क्रियास्तथा ८॥

टी०। ब्रह्मा बोले कि तुम प्रजापति होगे और प्रजा को उत्पन्न करोगे और पुत्र उत्पन्न करके सम्पूर्ण विहितकर्म्मों को ८॥

मू० कृत्वा कृताधिकारस्त्वं ततःसिद्धिमवाप्स्यसि।
सत्वं यथोक्तं पितृभिः कुरु दारपरिग्रहम् ९॥

टी०। करके जब अधिकारके कार्य करोगे तब हे वत्स! तुम सिद्ध होजाओगे इस लिये तुमको उचित है कि तुम पितरों की आज्ञानुसार स्त्री ग्रहण करो ९॥

मू० कामञ्चेममभिध्याय क्रियतां पितृपूजनम्।
त एव तुष्टाः पितरः प्रदास्यन्ति तवेप्सितान्॥
पत्नीं सुतांश्च संतुष्टाः किन्न दद्युः पितामहाः १०॥

टी०। और इस कामना की इच्छाकरके पितरों का पूजन करो वही पितरलोग तुष्ट होकर तुम्हारी इच्छानुसार कामनाओं को देवेंगे व प्रसन्नहोकर पितर स्त्री और पुत्र क्या नहीं देतेहैं याने सब कुछ देतेहैं १०॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० इत्यृषेर्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
नद्याविविक्ते पुलिने चकार पितृतर्पणम् ११॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि! यह सब बातें अप्रकट-जन्मवाले ब्रह्माजीकी सुनकर रुचिने नदी के किनारे एकान्तमें जाकर पितरों का तर्पणकिया ११॥

मू० तुष्टाव च पितॄन् विप्रःस्तवैरेभिस्तथादृतः।
एकाग्रः प्रयतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकन्धरः १२॥

टी०। और आदरपूर्वक जी लगाकर रुचि विप्रजी पवित्र होकर

भक्ति के साथ कन्धा झुकाके प्रणाम करके इसतरह पितरों की स्तुति करने लगे १२ ॥

रुचिरुवाच ॥

मू० नमस्येहं पितॄञ्छ्राद्धे ये वसन्त्यधिदेवताः ।
देवैरपि हि तर्प्यन्ते ये च श्राद्धे स्वधोत्तरैः १३ ॥

टी०। कि मैं उन पितरों को प्रणाम करताहूं जो देवता होकर आवाहन करने से श्राद्धमें आकर निवास करते हैं और जिनको श्राद्धमें स्वधा कहकर देवतालोग भी तृप्त करते हैं १३ ॥

मू० नमस्येहं पितॄन्स्वर्गे ये तर्प्यन्ते महर्षिभिः ।
श्राद्धैर्मनोमयैर्भक्त्या भुक्तिमुक्तिमभीप्सुभिः १४ ॥

टी०। और मैं उन पितरों को प्रणाम करता हूं जिनको महर्षिलोग स्वर्ग में भुक्ति और मुक्तिकी इच्छा करके भक्तिपूर्वक मनोमय श्राद्धोंसे तृप्त करते हैं १४ ॥

मू० नमस्येहं पितॄन्स्वर्गे सिद्धाः संतर्पयन्ति यान् ।
श्राद्धेषु दिव्यैः सकलैरुपहारैरनुत्तमैः १५ ॥

टी०। फिर मैं उन पितरों को प्रणाम करताहूं जिनको स्वर्ग में सिद्धलोग स्वर्गवाले बहुतउत्तम समस्त उपहारों से श्राद्धों में अच्छीतरह तृप्त करते हैं १५ ॥

मू० नमस्येहं पितॄन् भक्त्या येऽर्च्यन्ते गुह्यकैरपि ।
तन्मयत्वेन वाञ्छद्भिर्ऋद्धिमात्यन्तिकीं पराम् १६ ॥

टी०। और उन पितरोंको मैं प्रणाम करताहूं जिनको गुह्यकलोगभी बहुत उत्तम ऋद्धिकी इच्छासे भक्तिपूर्वक तन्मयता करके पूजतेहैं १६॥

मू० नमस्येहं पितॄन्मर्त्यैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा ।
श्राद्धेषु श्रद्धयाभीष्टलोकप्राप्तिप्रदायिनः १७ ॥

टी०। और मैं उन पितरों को प्रणाम करताहूं जिनको पृथ्वीमें मनुष्य लोग सब दिन श्राद्धों में श्रद्धासे अभीष्टलोक प्राप्तहोने की इच्छा से पूजते हैं १७ ॥

मू० नमस्येहं पितॄन् विप्रैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा ।

वाञ्छिताभीष्टलाभाय प्राजापत्यप्रदायिनः १८ ॥

टी०। और ब्रह्मलोक प्राप्तकरनेवाले उन पितरों को मैं प्रणाम करता हूं जिनको पृथ्वी में सदा अपनी इच्छा प्राप्त होने के वास्ते ब्राह्मणलोग पूजते हैं १८ ॥

मू० नमस्येहं पितॄन् ये वै तर्प्यन्तेऽरण्यवासिभिः।
वन्यैः श्राद्धैर्यताहारैस्तपोनिर्धूतकिल्बिषैः १९ ॥

टी०। और उन पितरों को प्रणाम करताहूं जिनको वनवासी व तपस्यासे निष्पापी यताहारीलोग वनमें होनेवाली श्राद्धोंसे तृप्तकरतेहैं१९॥

मू० नमस्येहं पितॄन् विप्रैर्नैष्ठिकव्रतचारिभिः।
ये संयतात्मभिर्नित्यं सन्तर्प्यन्ते समाधिभिः २० ॥

टी०। और उन पितरों को मैं प्रणाम करताहूं जिनको नेमनिष्ठावाले व्रतचारी चित्त को रोंकेहुये ब्राह्मणलोग समाधियोंसे सदा तृप्तकरतेहैं २०॥

मू० नमस्येहं पितॄञ्छ्राद्धैराजन्यास्तर्पयन्ति यान्।
कव्यैरशेषैर्विधिवल्लोकत्रयफलप्रदान् २१ ॥

टी०। और उन पितरों को प्रणाम करताहूं कि त्रिलोकीका फलदेनेवाले जिन पितरोंको क्षत्रीलोग श्राद्ध में विधिपूर्व्वक समस्त काव्यों से तृप्त करते हैं २१ ॥

मू० नमस्येहं पितॄन् वैश्यैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा।
स्वकर्म्माभिरतैर्नित्यं पुष्पधूपान्नवारिभिः २२ ॥

टी०। और मैं उन पितरों को प्रणाम करताहूं जिनको पृथ्वीमें वैश्यलोग सदैव अपने कर्म्म में प्रवृत्तहोकर पुष्प और धूप और अन्न और जल से सदा पूजते हैं २२ ॥

मू० नमस्येहं पितॄञ्छ्राद्धैर्ये शूद्रैरपि भक्तितः।
सन्तर्प्यन्ते जगत्यत्र नाम्नाख्याताः सुकालिनः २३ ॥

टी०। और फिर उन पितरों को मैं प्रणाम करताहूं जोकि इसजगत् में सुकालीनामसे विख्यात हैं व जिनको शूद्रलोगभी भक्तिपूर्व्वक श्राद्धों से तृप्त करते हैं २३ ॥

मू० नमस्येहं पितृञ्छ्राद्धैःपाताले ये महासुरैः।
सन्तर्प्यन्ते स्वधाहारास्त्यक्तदम्भमदैः सदा २४॥

टी०। फिर उन पितरों को मैं प्रणाम करताहूं कि स्वधा से भोजन करनेवाले जिन पितरों को पाताल में पाखण्ड के गर्वको छोड़ेहुए महाअसुरलोग सदैव श्राद्धकरके तृप्त करते हैं २४॥

मू० नमस्येहं पितृञ्छ्राद्धैरर्च्यन्ते ये रसातले।
भोगैरशेषैर्विधिवन्नागैः कामानभीप्सुभिः २५॥

टी०। फिर मैं उन पितरोंको प्रणाम करताहूं जिनको रसातलमें नागलोग कामनाप्राप्त होनेकेवास्ते समस्त भोगोंसे विधिपूर्व्वक पूजतेहैं २५॥

मू० नमस्येहं पितृञ्छ्राद्धैः सर्पैः सन्तर्पितान्सदा।
तत्रैव विधिवन्मन्त्रभोगसम्पत्समन्वितैः २६॥

टी०। फिर उनपितरों को मैं प्रणाम करताहूं जिनको उसी रसातलमें सुखोंकी संपदासे संयुक्त सर्पलोग विधिपूर्व्वक श्राद्धोंकरके सदा तृप्त किया करतेहैं २६॥

मू० पितॄन् नमस्ये निवसन्ति साक्षा
द्येदेवलोके च तथान्तरिक्षे।
महीतले ये च सुरादिपूज्या
स्ते मे प्रतीच्छन्तु मयोपनीतम् २७॥

टी०। और उन पितरों को मैं प्रणाम करताहूं जो देवलोक और आकाश और पृथ्वी में बसते हैं व देवता और मनुष्य इत्यादि जिनकोपूजते हैं वही पितरलोग मेरा दियाहुआ जल इत्यादि ग्रहणकरें २७॥

मू० पितॄन् नमस्ये परमात्मभूता
ये वै विमाने निवसन्ति मूर्त्ताः।
यजन्ति यानस्तमलैर्मनोभि
र्योगीश्वराःक्लेशविमुक्तहेतून् २८॥

टी०। और परमात्मभूत उन पितरों को मैं नमस्कार करताहूं जो मूर्त्तिमान् होके बिमानपर चढ़कर आकाश में निवास करते हैं और जिनको योगीश्वरलोग अपना क्लेश मिटनेके वास्ते शुद्धचित्तसे पूजनकरतेहैं २८॥

मू० पितॄन् नमस्ये दिवि ये च मूर्त्ताः
स्वधाभुजः काम्यफलाभिसन्धौ।
प्रदानशक्ताः सकलेप्सितानां
विमुक्तिदा येनभितं हितेषु २९॥

टी०। और मैं उन पितरों को प्रणाम करताहूं जोकि मूर्त्तिमान्होकर स्वर्ग में स्वधा के उच्चारणसे दीहुई कव्य को भोजन करते हैं व जो कामना की इच्छा करने पर सब इच्छा पूरी करते हैं और अकामना में जो मुक्ति देते हैं २६॥

मू० तृप्यन्तु तेस्मिन् पितरः समस्ता
इच्छावतां ये प्रदिशन्ति कामान्।
सुरत्वमिन्द्रत्वमतोधिकं वा
सुतान् पशून् स्वानि बलं गृहाणि ३०॥

टी०। और वे सब पितरलोग मेरे इस जल देने से तृप्तहों जो इच्छावाले जनों को प्रसन्न होकर देवत्व और इन्द्रत्व और इससे अधिक याने ब्रह्मत्व आदि और पुत्रऔर पशु और बल और धन व गृह आदिकामनाओं को देतेहैं ३०॥

मू० सोमस्य ये रश्मिषु येर्कबिम्बे
शुक्ले विमाने च सदा वसन्ति।
तृप्यन्तु तेस्मिन्पितरोऽन्नतोयै
र्गन्धादिना पुष्टिमितो व्रजन्तु ३१॥

टी०। और जो पितरलोग सूर्य्य और चन्द्रमा की किरणों में और श्वेत अर्थात् सुफेद विमान पर सदा निवास करते हैं वे लोग इस जगह हमारे दियेहुये अन्न और जल और गन्ध इत्यादि से तृप्त होकर पुष्टि को प्राप्त हों ३१॥

मू० येषां हुतेऽग्नौ हविषा च तृप्ति
र्ये भुञ्जते विप्रशरीरसंस्थाः।
ये पिण्डदानेन मुदं प्रयान्ति

तृप्यन्तुतेऽस्मिन् पितरोऽन्नतोयैः ३२ ॥

टी० । और जो पितरलोग अग्नि में हविष्य हवन करने से तृप्त होते हैं और जो पितरलोग ब्राह्मण के शरीर में रहकर भोजन करते हैं और जो पितरलोग पिण्डदान करने से प्रसन्न होते हैं वे लोग इस जगह मेरे दियेहुये अन्न और जल से तृप्त हों ३२ ॥

मू० ये खड्गिमांसेन सुरैरभीष्टैः
कृष्णैस्तिलैर्दिव्यमनोहरैश्च ।
कालेन शाकेन महर्षिवर्य्यैः
संप्रीणितास्ते मुदमत्र यान्तु ३३ ॥

टी० । और जो पितरलोग गेंडे के मांस से और सुन्दरेदिव्य काले तिलों से और महर्षियों के दिये हुये कालनाम साग से तृप्त होते हैं वही पितर इस जगह प्रसन्न हों ३३ ॥

मू० कव्यान्यशेषाणि च यान्यभीष्टा
न्यतीवतेषाममरार्च्चितानाम् ।
तेषान्तु सान्निध्यमिहास्तुपुष्प
गन्धान्नभोज्येषु मया कृतेषु ३४ ॥

टी० । और जो पितरलोग देवतों से पूजित होकर उन लोगों के जिन दिये हुये सब कव्यों को बहुत अभीष्ट मानते हैं वे पितरलोग इस जगह मेरा दियाहुआ फूलऔर गन्ध और अन्न इत्यादि भोजनोंकोग्रहणकरें३४॥

मू० दिने दिने ये प्रतिगृह्णतेर्च्चां
मासान्तपूज्या भुवि येऽष्टकासु ।
ये वत्सरान्तेभ्युदये च पूज्याः
प्रयान्तु ते मे पितरोऽत्र तृप्तिम् ३५ ॥

टी० । और जो पितरलोग हर रोज पूजाको ग्रहण करते हैं और अष्टका और मासांन्त और वत्सरान्त अर्थात् महीने और साल के अन्त में और अभ्युदय काल में पूजित होते हैं वे मेरे पितरलोग इस जगह पर तृप्ति को प्राप्त हों ३५ ॥

मू० पूज्या द्विजानां कमुदेन्दुभासो
ये क्षत्रियाणां च नवार्कवर्णाः ।
तथा विशां ये कनकावदाता
नीलीनिभाः शूद्रजनस्य ये च ३६ ॥

टी० । और जो पितरलोग कोकाबेली व चन्द्रमा के समान प्रकाशमान होकर ब्राह्मणों से पूजितहैं और प्रातःकाल के सूर्य्य समान ज्योतिवाला होकर क्षत्रियों से पूजित हैं और जो पितर लोग सोने की तरह प्रकाशमान होकर वैश्यों से पूजित हैं और जो पितरलोग श्याम वर्ण होकर शूद्रों से पूजित हैं ३६ ॥

मू० तेऽस्मिन्समस्ता मम पुष्पगन्ध
धूपान्नतोयादिनिवेदनेन ।
तथाग्निहोमेन च यान्तु तृप्तिं
सदा पितृभ्यः प्रणतोऽस्मि तेभ्यः ३७ ॥

टी० । वे सब पितरलोग मेरे दिये हुये पुष्प और धूप और गन्ध और अन्न और जल इत्यादि और होमसे तृप्त हों और मैं सदा उन पितरोंको प्रणाम करता हूं ३७ ॥

मू० ये देव पूर्व्वान्यतितृप्तिहेतो-
रश्नन्ति कव्यानि शुभाहुतानि ।
तृप्ताश्च येभूतिसृजो भवन्ति
तृप्यन्तु तेऽस्मिन्प्रणतोऽस्मि तेभ्यः ३८ ॥

टी० । और मैं देवपूर्वक उन पितरों को प्रणाम करता हूं जो अति तृप्ति के वास्ते उत्तम होम क्रिया जो कव्य होताहै उसको खाकर तृप्तहो ऐश्वर्य्य के देनेवाले होते हैं वे पितरलोग यहां पर तृप्तहों व उन के लिये मैं प्रणाम करता हूं ३८ ॥

मू० रक्षांसि भूतान्यसुरांस्तथोग्रान्
निर्नाशयन्तस्त्वशिवं प्रजानाम् ।
आद्याः सुराणाममरेशपूज्या-
स्तृप्यन्तुतेऽस्मिन्प्रणतोस्मि तेभ्यः ३९ ॥

टी०। और जो पितरलोग राक्षसों और भूतों और प्रचण्ड असुरोंको नाश करत हैं और प्रजाओं के भीतर का अकल्याण नाश करते हैं और देवतों के आदि और इन्द्र से पूजित हैं वे पितरलोग इस जगह तृप्त हों मैं उनको प्रणाम करता हूं ३९ ॥

मू० अग्निष्वात्ता बर्हिषद आज्यपाः सोमपास्तथा।
व्रजन्तु तृप्तिं श्राद्धेऽस्मिन्पितरस्तर्पिता मया ४० ॥

टी०। और जो पितरलोग अग्निष्वात्त और बर्हिषद् और आज्यपा और सोमपा हैं मुझसे तृप्त किये हुये वे लोग इस श्राद्ध में तृप्तहों ४० ॥

मू० अग्निष्वात्ताः पितृगणाः प्राचीं रक्षन्तु मे दिशम्।
तथा बर्हिषदः पान्तु याम्यां ये पितरः स्मृताः ४१ ॥

टी०। और अग्निष्वात्त पितर पूर्व दिशा में मेरी रक्षा करें और वैसे ही जोबर्हिषद् पितर कहे गये हैं वे दक्षिण दिशा में मेरी रक्षा करें ४१ ॥

मू० प्रतीचीमाज्यपास्तद्वदुदीचीमपि सोमपाः।
रक्षोभूतपिशाचेभ्यस्तथैवासुरदोषतः ४२ ॥

टी०। और वैसेही आज्यपा पितरलोग पश्चिम दिशामें और सोमपा पितर लोग उत्तर दिशा में भी राक्षसों और भूतों और पिशाचों और असुरों के दोषों से मेरी रक्षा करें ४२ ॥

मू० सर्व्वतश्चाधिपस्तेषां यमो रक्षां करोतु मे।
विश्वो विश्वभुगाराध्यो धर्मो धन्यः शुभाननः ४३ ॥

टी०। और उन पितरगणों के अधिपति जो यम हैं वे सब ओर से मेरी रक्षा करें और विश्व और विश्वभुग् और आराध्य और धर्म्म और धन्य और शुभानन ४३ ॥

मू० भूतिदो भूतिकृद् भूतिः पितॄणां ये गणा नव।
कल्याणः कल्यताकर्त्ता कल्यः कल्यतराश्रयः ४४ ॥

टी०। और भूतिद और भूतिकृत् और भूति ये पितरों के जो नव गण हैं और कल्याण और कल्यता (निरोगता) के कर्त्ता और कल्य और कल्यतराश्रय ४४ ॥

मू० कल्यताहेतुरनघः षडिमे ते गणाः स्मृताः।
करो वरेण्यो वरदः पुष्टिदस्तुष्टिदस्तथा ४५॥

टी०। और कल्यताका हेतु और अनघ ये छहों वे गण कहे गये हैं और कर और वरेण्य और वरद और पुष्टिद और वैसेही तुष्टिद ४५॥

मू० विश्वपाता तथा धाता सप्तैवैते तथा गणाः।
महान्महात्मा महितो महिमावान्महाबलः ४६॥

टी०। और विश्वपाता और धाता यह सातों गणहैं और महान् और महात्मा और महित और महिमावान् और महाबल ४६॥

मू० गणाः पञ्च तथैवैते पितॄणां पापनाशनाः।
सुखदो धनदश्चान्यो धर्मदोऽन्यश्च भूतिदः ४७॥

टी०। वैसेही ये पाचों गण पितरों के पाप नाश करनेवाले और सुखद और अन्य धनद और धर्म्मद और भूतिद ४७॥

मू० पितॄणां कथ्यते चैतत्तथा गणचतुष्टयम्।
एकत्रिंशत्पितृगणा यैर्व्याप्तमखिलं जगत्॥
ते मेऽनुतृप्तास्तुष्यन्तु यच्छन्तु च सदा हितम् ४८॥

टी०। ये चारों गण भी पितरों के हैं जो सब मिलकर इकतीस पितर गण हैं व जो सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त हैं वे लोग तृप्त होकर प्रसन्न होवें और सदा मेरे हित को देवैं ४८॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेरुच्युपाख्यानेनामषण्णवतितमोध्यायः॥ ९६॥

अथ सत्तानबेवां अध्याय॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० एवन्तु स्तुवतस्तस्य तेजसोराशिरुच्छ्रितः।
प्रादुर्बभूव सहसा गगनव्याप्तिकारकः १॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि! इसप्रकार रुचि ब्राह्मण

के स्तुति करने से एक ऊंचा तेज समूह उस जगह अचानक प्रकट होकर जल्द आकाश तक व्याप्त होगया १ ॥

मू० तद् दृष्ट्वा सुमहत्तेजः समासाद्य स्थितं जगत् ।
जानुभ्यामवनिं गत्वा रुचिःस्तोत्रमिदं जगौ २ ॥

टी० । और सम्पूर्ण जगत् में भी वह तेज व्याप्त होगया उस महातेज को देखकर रुचि ब्राह्मण दोनों घुटनों से पृथ्वी पर झुककर प्रणाम करके यह स्तुति करनेलगा २ ॥

रुचिरुवाच ॥

मू० अर्चितानाममूर्त्तानां पितॄणां दीप्ततेजसाम् ।
नमस्यामि सदा तेषां ध्यानिनां दिव्यचक्षुषाम् ३ ॥

टी० । कि पूजे हुये अमूर्त्त नाम और दीप्त तेज और ध्यानी व दिव्यचक्षु जो पितरलोग हैं उनलोगों को मैं हमेशा प्रणाम करता हूँ ३ ॥

मू० इन्द्रादीनाञ्च नेतारो दक्षमारीचयोस्तथा ।
सप्तर्षीणां तथान्येषां तान्नमस्यामि कामदान् ४ ॥

टी० । और उन कामद नाम पितर गणों को नमस्कार करता हूँ जो इन्द्र और दक्ष और मारीच और सप्तऋषि इत्यादि देवताओं के स्वामी हैं ४ ॥

मू० मन्वादीनां मुनीन्द्राणां सूर्य्याचन्द्रमसोस्तथा ।
तान्नमस्याम्यहं सर्व्वान् पितॄनप्सूदधावपि ५ ॥

टी० । और मनु इत्यादि मुनीद्रों और सूर्य्य और चन्द्रमा के स्वामी पितरों को और जल और समुद्र के रहनेवाले भी उन सब पितरों को मैं प्रणाम करता हूँ ५ ॥

मू० नक्षत्राणां ग्रहाणाञ्च वाय्वग्न्योर्नभसस्तथा ।
द्यावापृथिव्योश्च तथा नमस्यामि कृताञ्जलिः ६ ॥

टी० । और हाथ जोड़कर उन पितरों को प्रणाम करता हूँ जोकि नक्षत्र और सबग्रह और वायु और अग्नि और आकाश और पृथ्वी के स्वामी हैं ६ ॥

मू० देवर्षीणां जनितॄंश्च सर्वलोकनमस्कृतान्।
अक्षय्यस्य सदा दातॄन् नमस्येऽहं कृताञ्जलिः ७॥

टी०। और जो पितरलोग देवऋषियों के पिता हैं व जिनको सब लोग प्रणाम करते हैं और जो अक्षय फल सदा देतेहैं उन पितरोंको हाथ जोड़कर मैं प्रणाम करता हूँ ७॥

मू० प्रजापतेः कश्यपाय सोमाय वरुणाय च।
योगेश्वरेभ्यश्च सदा नमस्यामि कृताञ्जलिः ८॥

टी०। और प्रजापति और कश्यप और चन्द्रमा और वरुण और योगीश्वरों को हाथ जोड़कर मैं सदा प्रणाम करता हूँ ८॥

मू० नमो गणेभ्यः सप्तभ्यस्तथा लोकेषु सप्तसु।
स्वयम्भुवे नमस्यामि ब्रह्मणे योगचक्षुषे ९॥

टी०। और सातों लोकोंके सातों गणोंको और योगदृष्टिवाले स्वयम्भू ब्रह्माजीके लिये मैं प्रणाम करता हूँ ९॥

मू० सोमाधारान् पितृगणान् योगमूर्त्तिधरांस्तथा।
नमस्यामि तथा सोमं पितरं जगतामहम् १०॥

टी०। और सोमाधार और योगमूर्ति धारण करनेवाले पितरगणों को और सब जगत् के पिता चन्द्रमा को मैं प्रणाम करता हूँ १०॥

मू० अग्निरूपांस्तथैवान्यान्नमस्यामि पितॄनहम्।
अग्नीषोममयं विश्वं यत एतदशेषतः ११॥

टी०। इसी प्रकार अन्य अग्निरूप पितरों को मैं प्रणाम करता हूँ कि जिनसे यह सम्पूर्ण जगत् अग्नीषोममय है ११॥

मू० ये तु तेजसि ये चैते सोमसूर्य्याग्निमूर्त्तयः।
जगत्स्वरूपिणश्चैव तथा ब्रह्मस्वरूपिणः १२॥

टी०। और जो ये पितर तेजोमय विराजमान हैं और चन्द्रमा और सूर्य्य और अग्निस्वरूप व जगत्स्वरूपी और ब्रह्मस्वरूपी हैं १२॥

मू० तेभ्योऽखिलेभ्यो योगिभ्यः पितृभ्यो यतमानसः।
नमो नमो नमस्ते मे प्रसीदन्तु स्वधाभुजः १३॥

टी०। उन सब योगी स्वधाभोगी पितरों को मन रोककर मैं बार बार प्रणाम करता हूँ वे लोग मुझपर प्रसन्न हों १३ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० एवंस्तुतास्ततस्तेन तेजसा मुनिसत्तम।
निश्चक्रमुस्ते पितरो भासयन्तो दिशो दश १४ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे मुनिश्रेष्ठ! इसतरह रुचिकी स्तुति करने पर तब उस तेजपुंज से पितर लोग अपनी ज्योति से दशों दिशाओं को प्रकाशित करते हुये निकले १४ ॥

मू० निवेदितञ्च यत्तेन पुष्पगन्धानुलेपनम्।
तद्भूषितानथ स तान् ददृशे पुरतःस्थितान् १५ ॥

टी०। और जो कुछ उस रुचि ब्राह्मणका चढ़ाया हुआ गन्ध और चन्दन और पुष्प इत्यादि था उस सब से भूषित होकर रुचिके सामने खड़े हुये तब रुचि ब्राह्मण ने उन पितरों को देखा १५ ॥

मू० प्रणिपत्य पुनर्भक्त्या पुनरेव कृताञ्जलिः।
नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यमित्याह पृथगादृतः १६ ॥

टी०। फिर हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक सब पितरों को प्रणाम करके फिर भी आदरसे उन सब की अलग अलग स्तुति करनेलगा कि "तुभ्यं नमः" तुम्हारे लिये नमस्कार है १६ ॥

मू० ततः प्रसन्नाः पितरस्तमूचुर्मुनिसत्तमम्।
वरं वृणीष्वेति स तानुवाचानतकन्धरः १७ ॥

टी०। तब वे पितरलोग प्रसन्न होकर उन मुनिश्रेष्ठ रुचिसे बोले कि वरदान मांगो तब रुचि ने कन्धा झुकाके प्रणाम करके कहा १७ ॥

रुचिरुवाच ॥

मू० साम्प्रतं सर्गकर्तृत्वमादिष्टं ब्रह्मणा मम।
सोऽहं पत्नीमभीप्सामि धन्यां दिव्यां प्रजावतीम् १८ ॥

टी०। रुचि बोले कि इससमय सृष्टि रचने के वास्ते ब्रह्माजी ने मुझ को आज्ञादीहै इस वास्ते प्रजावती व सुन्दरी पतिव्रता स्त्री मैं चाहताहूँ १८ ॥

पितर ऊचुः ॥

मू० अत्रैव सद्यः पत्नी ते भवत्वतिमनोरमा ।
तस्यां च पुत्रो भविता भवतो मनुरुत्तमः १९ ॥

टी०। तब पितरों ने कहा कि इसी जगह अत्यन्त सुन्दरी स्त्री तुमको इसीक्षण मिलैगी उसीसेतुम्हारे पुत्र उत्पन्न होगा जो उत्तम मनुहोगा १६ ॥

मू० मन्वन्तराधिपो धीमांस्त्वन्नाम्नैवोपलक्षितः ।
रुचेरौच्यइतिख्यातिं यो यास्यति जगत्त्रये २० ॥

टी०। और वह मन्वन्तर का मालिक व बहुत बुद्धिमान् होगा और तुम्हारे नामसे उसका भी रौच्य ऐसा नाम त्रिलोकमें विख्यात होगा २० ॥

मू० तस्यापि बहवः पुत्रा महाबलपराक्रमाः ।
भविष्यन्ति महात्मानः पृथिवीपरिपालकाः २१ ॥

टी०। व उस के भी बड़े बड़े महाबली व पराक्रमी महात्मा पृथ्वी-पालक बहुत पुत्र उत्पन्न होंगे २१ ॥

मू० त्वञ्च प्रजापतिर्भूत्वा प्रजाः सृष्ट्वा चतुर्विधाः ।
क्षीणाधिकारो धर्म्मज्ञ ततः सिद्धिमवाप्स्यसि २२ ॥

टी०। और ऐ धर्मज्ञ ! तुम भी प्रजापति होकर चार प्रकार की प्रजा को उत्पन्न करके जब उस अधिकार से अलग होगे तब तुम सिद्धि को पावोगे २२ ॥

मू० स्तोत्रेणानेन च नरो योऽस्मान् स्तोष्यति भक्तितः ।
तस्य तुष्टा वयं भोगानात्मज्ञानं तथोत्तमम् २३ ॥

टी०। और जिस स्तोत्र से तुमने हम सबों की स्तुति की है इसस्तोत्र को भक्तिसे पढ़कर जो कोई हम सबों की स्तुति करेगा उस पर हम सब प्रसन्न होकर उसको भोग और उत्तम आत्मज्ञान २३ ॥

मू० शरीरारोग्यमर्थञ्च पुत्रपौत्रादिकन्तथा ।
वाञ्छद्भिः सततं स्तव्याःस्तोत्रेणानेन वै यतः २४

टी०। और शरीर की आरोग्यता और अर्थ (धन) और बेटा और पोता देंगे और जिन लोगों को इन पदार्थोंकी इच्छाहो वे लोग इसीस्तोत्र से सदैव हमारी स्तुति करें २४ ॥

मू० श्राद्धे च य इमं भक्त्याऽस्मत्प्रीतिकरं स्तवम्।
पठिष्यति द्विजाग्र्याणां भुञ्जतां पुरतः स्थितः २५॥

टी०। और जो कोई इस हमारे प्रीतिकारक स्तोत्रको श्राद्धमें भोजन करते हुये उत्तम ब्राह्मणों के आगे खड़ाहोकर भक्तिपूर्वक पढ़ैगा २५॥

मू० स्तोत्रश्रवणसंप्रीत्या सन्निधानेपरे कृते।
अस्माकमक्षयं श्राद्धं तद्भविष्यत्यसंशयम् २६॥

टी०। व इस स्तोत्र के सुनने की प्रीतिसे वहां पर हम लोग वर्त्तमान रहैंगे और वह श्राद्ध अक्षय होगी इस में कुछ सन्देह नहीं है २६॥

मू० यद्यप्यश्रोत्रियं श्राद्धं यद्यप्युपहतं भवेत्।
अन्यायोपात्तवित्तेन यदि वा कृतमन्यथा २७॥

टी०। और जिस श्राद्ध में वेद न जाननेवाला पण्डित ब्राह्मण नहीं रहैगा और उस में किसी तरह का उपहत (दोष) भी होजाय अथवा अन्याय के द्वारा उपार्जित धन से अन्यथा श्राद्ध भी कियाजायगा २७॥

मू० अश्राद्धार्हैरुपहतैरुपहारैस्तथाकृतम्।
अकालेऽप्यथवाऽदेशे विधिहीनमथापि वा २८॥

टी०। और श्राद्धमें अविहित और उपहत अर्थात् किसी तरह से दूषित होगया हो इन सामग्रियों से जो श्राद्ध कियाजाय या अकाल या अदेश में अथवा विधिहीन होगया हो २८॥

मू० अश्रद्धया वा पुरुषैर्दम्भमाश्रित्य वा कृतम्।
अस्माकं तृप्तये श्राद्धं तथाप्येतदुदीरणात् २९॥

टी०। या विना श्रद्धाके व पाखण्डी पुरुषोंसे श्राद्ध किया जाय तौभी वह श्राद्ध इस स्तोत्र के पढ़ने से हमलोगों की तृप्तिके लिये होगी २९॥

मू० यत्रैतत्पठ्यते श्राद्धे स्तोत्रमस्मत्सुखावहम्।
अस्माकं जायते तृप्तिस्तत्र द्वादशवार्षिकी ३०॥

टी०। जिस श्राद्धमें हमलोगों का सुखदेनेवाला यह स्तोत्र पढ़ाजायगा उस श्राद्ध से हमलोग बारह वर्ष तक तृप्त रहैंगे ३०॥

मू० हेमन्ते द्वादशाब्दानि तृप्तिमेतत्प्रयच्छति।

शिशिरे द्विगुणाब्दांश्च तृप्तिं स्तोत्रमिदं शुभम् ३१ ॥

टी०। और हेमन्त ऋतु में श्राद्ध करके जो यह स्तोत्र पढ़े तो भी बारह वर्ष तक और शिशिर ऋतु में श्राद्ध करके इस उत्तम स्तोत्र के पढ़ने से चौबीस वर्ष तक हमलोग तृप्त रहेंगे ३१ ॥

मू० वसन्तेषोडशसमास्तृप्तये श्राद्धकर्म्मणि।
ग्रीष्मे च षोडशैवैतत्पठितं तृप्तिकारकम् ३२ ॥

टी०। और वसन्त ऋतु में श्राद्ध कर्म में इस स्तोत्र के पढ़ने से सोलह वर्ष तक श्राद्ध तृप्ति के लिये होगी और ग्रीष्म ऋतु में श्राद्ध करके यह स्तोत्र पढ़ने से सोलह वर्ष तक तृप्तिकारक होगा ३२ ॥

मू० विकलेऽपि कृते श्राद्धे स्तोत्रेणानेन साधिते।
वर्षासु तृप्तिरस्माकमक्षया जायते रुचे ३३ ॥

टी०। और हे रुचे ! वर्षाकाल में विधिहीन भी श्राद्धकीजाय तो भी इस स्तोत्र के उस जगह पाठकरने से हमलोगोंकी अक्षयतृप्तिहोगी ३३॥

मू० शरत्कालेऽपि पठितं श्राद्धकाले प्रयच्छति।
अस्माकमेतत्पुरुषैस्तृप्तिं पञ्चदशाब्दिकीम् ३४॥

टी०। और शरदकाल में भी श्राद्ध के समय यह पुरुषों से पढ़ाहुआ स्तोत्र पन्द्रह वर्षतक हमलोगों को तृप्तिदेवैगा ३४ ॥

मू० यस्मिन् गृहे च लिखितमेतत्तिष्ठति नित्यदा।
सन्निधानं कृते श्राद्धे तत्रास्माकं भविष्यति ३५ ॥

टी०। और जिस घरमें यह स्तोत्र लिखकर रक्खा होगा उस घरमें श्राद्ध करने से हमलोग सबदिन उसके समीप बनेरहैंगे ३५ ॥

मू० तस्मादेतत्त्वया श्राद्धे विप्राणां भुञ्जतांपुरः।
श्रावणीयं महाभाग अस्माकं पुष्टिहेतुकम् ३६ ॥

टी०। इसवास्ते हे महाभाग ! श्राद्ध में ब्राह्मणों के भोजन करने के समय हमलोगों की पुष्टिका कारण यह स्तोत्र उनलोगों के आगे खड़े होकर तुम सुनाया करो ३६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेरौच्यमन्वन्तरेपितृवरप्रदानंनाम
सप्तनवतितमोऽध्यायः ९७ ॥

अथ अट्ठानबेवां अध्याय ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० ततस्तस्मान्नदीमध्यात्समुत्तस्थौ मनोरमा।
प्रम्लोचा नामतन्वङ्गी तत्समीपे वराप्सरा १ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि पितरों के इस तरह कहने के बाद उसी नदी के बीचसे छोटे अंगों वाली अत्यन्त सुन्दरी प्रम्लोचा नाम उत्तम अप्सरा निकलकर रुचिब्राह्मण के समीप खड़ी हुई १ ॥

मू० साचोवाच महात्मानं रुचिं सुमधुराक्षरम्।
प्रश्रयावनता सुभ्रूः प्रम्लोचा वै वराप्सरा २ ॥

टी०। और सुन्दरी भौंहोंवाली वह प्रम्लोचा नामक उत्तम अप्सरा नम्रता से झुककर महात्मा रुचिब्राह्मण को प्रणाम करके मधुर बाणीके साथ कहने लगी २ ॥

मू० अतीवरूपिणी कन्या मत्सुता तपतांवर।
जाता वरुणपुत्रेण पुष्करेण महात्मना ३ ॥

टी०। कि हे तपस्वी वर ! एक मेरी कन्या अत्यन्त सुन्दरी वरुण के पुत्र पुष्कर नाम महात्मा से उत्पन्न हुई है ३ ॥

मू० तां गृहाण मया दत्तां भार्य्यार्थेवरवर्णिनीम्।
मनुर्महामतिस्तस्यां समुत्पत्स्यति ते सुतः ४ ॥

टी०। उस उत्तम वर्णवाली कन्या को मैं आपको देती हूँ आप स्त्री के लिये ग्रहण करके उससे विवाह कीजिये उसीसे अत्यन्त बुद्धिमान् मनु आपके पुत्र पैदा होंगे ४ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० तथेति तेन साऽप्युक्ता तस्मात्तोयाद्वपुष्मतीम्।
उज्जहार ततः कन्यां मालिनी नाम नामतः ५ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि ! प्रम्लोचाके इस तरह कहने पर रुचिब्राह्मण बोला कि बहुत अच्छा उस कन्या को दीजिये मैं

उस से विवाह करूंगा तब उस अप्सरा ने उसी जलसे मालिनी नाम अपनी सुन्दरी कन्या को निकाला ५॥

मू० नद्याश्च पुलिने तस्मिन्सरुचिर्मुनिसत्तमः।
जग्राह पाणिं विधिवत्समानाय्य महामुनीन् ६॥

टी०। तब मुनिश्रेष्ठ रुचिब्राह्मण ने बहुत से महामुनिलोगों को बुलाकर उसी नदी के किनारे विधिपूर्वक उस कन्या के साथ अपना विवाह किया ६॥

मू० तस्यां तस्य सुतो जज्ञे महावीर्य्यो महामतिः।
रौच्योऽभवत्पितुर्नाम्नाख्यातोऽत्र वसुधातले ७॥

टी०। उसी स्त्री से उस रुचि ब्राह्मण के बड़े बुद्धिमान् और पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुये जिसका नाम पिता के नाम से रौच्य इस पृथ्वी में विख्यात हुआ ७॥

मू० तस्य मन्वन्तरे देवास्तथासप्तर्षयश्च ये।
तनयाश्च नृपाश्चैव ते सम्यक् कथितास्तव ८॥

टी०। उनके मन्वन्तरमें जो देवता और जो सप्तर्षि और उसके बेटे जो राजालोग हुएहैं उनसबका हाल सम्पूर्ण आपसे कह चुकाहूं ८॥

मू० धर्म्मवृद्धिस्तथारोग्यं धनधान्यसुतोद्भवः।
नृणां भवत्यसंदिग्धमस्मिन्मन्वन्तरे श्रुते ९॥

टी०। इस मन्वन्तर की कथा सुनने से धर्म्म की वृद्धि होती है और शरीरमें कोई रोग नहीं होताहै आराम से रहता है और धन धान्य और पुत्र मनुष्यों को निस्सन्देह मिलता है ९॥

मू० पितृस्तवं तथा श्रुत्वा पितॄणाञ्च तथा गणान्।
सर्व्वान्कामानवाप्नोति तत्प्रसादान्महामुने १०॥

टी०। इसीतरह हे महामुने! पितरों की स्तुति और पितरगणों की कथा सुनने से उनलोगों के प्रसाद से सम्पूर्ण कामनाओं को मनुष्य प्राप्त होताहै १०॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेमालिनीपरिणयोनामरौच्यमन्वन्तरं समाप्तंनामाष्टनवतितमोऽध्यायः ९८॥

अथ निन्नानबेवां अध्याय ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० ततः परन्तु भौत्यस्यसमुत्पत्तिं निशामय।
देवानृषींस्तथा पुत्रांस्तथैव वसुधाधिपान् १ ॥

टी०। फिर मार्कण्डेयजीबोले कि हे क्रौष्टुकि ! बाद इसके भौत्य मनु की उत्पत्ति और उनके मन्वन्तर में जो देवता और सप्तर्षि और जो उनके पुत्रलोग राजाहोंगे उनको मैं कहता हूं सुनो १ ॥

मू० वभूवाङ्गिरसः शिष्यो भूतिर्नाम्नातिकोपनः।
चण्डशापप्रदोऽल्पेऽर्थे मुनिरागस्यसौम्यवाक् २ ॥

टी०। कि अङ्गिरा मुनि के शिष्य भूति नामक मुनि बड़े क्रोधी और थोड़े अपराध में भी प्रचण्ड शापके देनेवाले व कटुवादी थे २ ॥

मू० तस्याश्रमे मातरिश्वा न ववावतिनिष्ठुरम्।
नातितापं रविश्चक्रे पर्ज्जन्यो नातिकर्द्दमम् ३ ॥

टी०। उनके आश्रम पर उनके डरसे वायु बहुत उत्पात से न बहता था और सूर्य्य अपना तेज बहुत न करते थे और बादल भी उनके डरसे इतना नहीं वर्षता कि जिससे उनके आश्रम पर बड़ा कीचड़ हो ३ ॥

मू० नातिशीतञ्च शीतांशुः परिपूर्णोऽपि रश्मिभिः।
चकार भीत्या वै तस्य कोपनस्यातितेजसः ४ ॥

टी०। और पूर्णमासी का भी चन्द्रमा बड़े तेजवाले व क्रोधी उन मुनि के डरसे बहुत शरदी अपनी किर्णों से नहीं पड़ने देता ४ ॥

मू० ऋतवश्चक्रमं त्यक्त्वा वृक्षेष्वाश्रमजन्मसु।
तस्य पुष्पफलञ्चक्रुराज्ञया सर्व्वकालिकम् ५ ॥

टी०। और सब ऋतु भी उनकी आज्ञा से अपना अपना क्रम छोड़ कर उन के आश्रम के आस पास लगे हुये वृक्षों में फूल और फल सदा दिया करते थे ५ ॥

मू० ऊहुरापश्च छन्देन तस्याश्रमसमीपगाः।

कमण्डलुगताश्चैव तस्य भीता महात्मनः ६ ॥

टी०। और उस महात्मा के डरसे उनके आश्रम के पास जल बहता था व उनके कमण्डलु में भी इच्छा से सदा जल भरा रहता था कभी नहीं घटता था ६ ॥

मू० नातिक्लेशसहो विप्र सोऽभवत्कोपनो भृशम्।
अपुत्रश्च महाभागः संतपस्यकरोन्मनः ७ ॥

टी०। हे क्रौष्टुकि विप्र! वह भूति बहुत क्लेश नहीं उठा सक्ता था और उसके चित्त में सदा बड़ा क्रोध बना रहता था उस महाभाग ने पुत्र न होने के कारण तपस्या करने का विचार किया ७ ॥

मू० पुत्रकामो यताहारः शीतवातानलाहतः।
तपस्याभि विचिन्त्येति तपस्येव मनो दधे ८ ॥

टी०। व पुत्र होने के वास्ते भोजन न करके और जाड़ा और गर्मी और अग्नि इत्यादि का क्लेश अपने ऊपर उठाकर जप करूंगा यह जी में ठानकर तपस्या करने में मन लगाया ८ ॥

मू० तस्येन्दुर्नातिशीताय नातितापाय भास्करः।
अभवन्मातरिश्वा च ववौ नातिमहामुने ९ ॥

टी०। हे महामुने! उसके तपस्या करने के समय में भी उसके डरसे चन्द्रमा अत्यन्त शीतलता और सूर्य्य अत्यन्त उष्णता न करते थे और वायु भी बहुत उत्पातकारक न बहता था ६ ॥

मू० आपीड्यमानो द्वन्द्वैश्च स भूतिर्मुनिसत्तमः।
अनवाप्याभिलाषन्तं तपसः संन्यवर्त्तत १० ॥

टी०। व मुनिसत्तम उस भूति ने शीत व उष्णताके क्लेश से पीडित होकर तपस्या किया परन्तु उस अभिलाष को न पाकर उसने तपस्या करना छोड़ दिया १० ॥

मू० तस्य भ्राता सुवर्चोऽभूद्यज्ञे तेनाभिमन्त्रितः।
यियासुः शान्तिनामानं शिष्यमाह महामतिम् ११ ॥

टी०। तत्पश्चात् भूति मुनिके भाई सुवर्चा नाम ने अपने यज्ञ में आने

के वास्ते अपने भाई भूति को न्योता दिया तब भूति मुनि अपने भाई सुवर्चा के यज्ञ में जाने की इच्छा से बड़े बुद्धिमान् अपने शिष्य शान्ति से कहने लगा ११॥

मू० प्रशान्तमक्षुद्रतमं विनीतं गुरुकर्म्मणि।
सदोद्युक्तं शुभाचारमुदारं मुनिसत्तमम् १२॥

टी०। जो मुनिश्रेष्ठ शान्ति कि बहुत शान्त और अतिउत्तम और सदैव उद्योगवाला और गुरु के कार्य में नम्र और अच्छी क्रियावाला और उदार था १२॥

भूतिरुवाच॥

मू० अहं यज्ञं गमिष्यामि भ्रातुःशान्ते सुवर्चसः।
तेनाहूतस्त्वया चेह यत्कर्त्तव्यं शृणुष्व तत् १३॥

टी०। भूति ने उससे कहा कि हे शान्ति! मैं अपने भाई सुवर्चा के यज्ञ में जाऊँगा उसने मुझे बुलायाहै तुमको यहां रक्खे जाताहूं तुम को यहां रहकर जो करना चाहिये मैं उसको कहता हूं सुनो १३॥

मू० प्रतिजागरणं वह्नेस्त्वया कार्य्यं ममाश्रमे।
तथा तथा प्रयत्नेन यथाग्निर्न शमं व्रजेत् १४॥

टी०। कि मेरे आश्रम में तुमको अग्निका जागरण (दीपन) करना चाहिये व उस उस तरह से उपायपूर्वक करना कि जिस तरह अग्नि बुझने न पावै १४॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० इत्याज्ञाप्य तथेत्युक्तो गुरुः शिष्येण शान्तिना।
जगाम यज्ञं तं भ्रातुराहूतः स यवीयसा १५॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि! गुरु की आज्ञा सुन कर शान्ति शिष्य बोला कि बहुत अच्छा आपकी आज्ञानुसार करूंगा तब छोटे भाई से बुलायाहुआ भूति अपने भाई के उस यज्ञ में चलागया १५॥

मू० स च शान्तिर्वनाद्यावत्समित्पुष्पफलादिकम्।
उपानयति भृत्यर्थं गुरोस्तस्य महात्मनः १६॥

टी० । भूति के जाने के बाद वह शान्ति ने जबतक वनसे फल और फूल और लकड़ी इत्यादि उस महात्मा गुरुकी सेवकाई के लिये लाया १६॥

मू० अन्यच्च कुरुते कर्म्म गुरुभक्तिवशानुगः ।
प्रशान्तस्तावदनलो योऽसौ भूतिपरिग्रहः १७ ॥

टी० । और गुरु की भक्ति के वश्य होकर गुरु का जो और दूसरा भी काम था वह भी करनेलगा तब तक वह अग्नि बुझ गई जो कि भूति ने सौंपी थी १७॥

मू० तं दृष्ट्वा सोऽनलं शान्तं शान्तिरत्यन्तदुःखितः ।
भीतश्च भूतेर्बहुधा चिन्तामाप महामतिः १८ ॥

टी० । उस अग्नि को बुझी हुई देखकर शान्ति मुनि अत्यन्त दुःखी होगया और भूति मुनि के डरसे वह बुद्धिमान् बहुत तरह की चिन्ता करने लगा १८ ॥

मू० किं करोमि कथं वात्र भविता गमनं गुरोः ।
मयाद्य प्रतिपत्तव्यं किंकृते सुकृतं भवेत् १९ ॥

टी० । और शोचने लगा कि मैं क्या करूं व यहां किस तरह गुरुका आना होगा मुझ को आज क्या सिद्ध करना चाहिये कौन सा यत्न करूं जिसमें मेरा भला हो १६ ॥

मू० प्रशान्ताग्निमिमं धिष्ण्यं यदि पश्यति मे गुरुः ।
ततो मां विषमे ह्यद्य व्यसने स नियोक्ष्यति २० ॥

टी० । यदि मेरे गुरु अग्निको आश्रममेंबुझा हुआ देखेंगे तो वे आज मुझ को कठिन क्लेश में युक्त करेंगे २०॥

मू० यद्यन्यमग्निमत्राहमग्निस्थाने करोमि तत् ।
सर्व्वप्रत्यक्षदृग्भस्म सोऽवश्यं मां करिष्यति २१ ॥

टी० । व जो इस अग्नि स्थान में दूसरी अग्नि लाकर जलाता हूँ तो मेरे गुरु सर्व्वदर्शी हैं दूसरी अग्नि समझ कर अवश्य मुझे भस्म कर डालेंगे २१ ॥

मू० सोऽहं पापो गुरोस्तस्य निमित्तं कोपशापयोः ।

तथात्मानं न शोचामि यथा पापं कृतं गुरोः २२ ॥

टी०। निश्चय कर सो मैं बड़ा पापी हूँ और गुरु के कोप व शापके निमित्तवाले आत्मा को वैसा नहीं शोचता हूं जैसा कि किये हुये गुरुके अपराध को शोचता हूं २२ ॥

मू० दृष्ट्वा प्रशान्तमनलं नूनं शप्स्यति मां गुरुः।
अथवा पावकः क्रुद्धस्तथा वीर्य्यो हि स द्विजः २३ ॥

टी०। जिसतरह अग्नि क्रोध करके सब वस्तुओं को भस्म करडालता है उसी तरह के पराक्रमवाले वे द्विज मेरे गुरु भी अग्नि को बुझी हुई देखके मुझको निश्चयकर शाप देवैंगे २३ ॥

मू० यस्य प्रभावाद्बिभ्यन्तो देवास्तिष्ठन्ति शासने।
कृतागसं स मां युक्त्या कया नाद्य शपिष्यति २४ ॥

टी०। जिनके प्रभाव से डरते हुये देवता लोग भी आज्ञा में रहते हैं वे गुरु मुझ अपराधी को कौनसी यत्न से आज मुझको शाप न देवैंगे २४ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० बहुधैवं विचिन्त्यासौ भीतस्तस्मात्सदा गुरोः।
ययौ मतिमतां श्रेष्ठः शरणं जातवेदसम् २५ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि ! इसतरह बहुत प्रकार से चिन्तन कर बुद्धिमान् जनों में उत्तम शान्ति ने गुरु के डरसे सदैव डरकर अग्नि की शरण पकड़ा २५ ॥

मू० स चकार तदा स्तोत्रं सप्तर्च्चैर्यतमानसः।
सचैकचित्तो मेदिन्यां न्यस्तजानुः कृताञ्जलिः २६ ॥

टी०। व उस समय एक चित्त होकर मनको रोंके व घुटुनुवों को पृथ्वी में धरे हुये वह इसतरह अग्नि की स्तुति हाथ जोड़ कर करने लगा २६ ॥

शान्तिरुवाच ॥

मू० ॐनमः सर्वभूतानां साधनाय महात्मने।
एकत्रिपञ्चधिष्ण्याय राजसूयषडात्मने २७ ॥

टी०। शान्ति बोले कि सब भूतों के कर्म्मसाधक और महात्मा व एकत्रिपञ्चस्थानी और राजसूययज्ञ में षडात्मा जो अग्नि है उसको मैं प्रणाम करता हूं २७॥

मू० नमः समस्तदेवानां वृत्तिदाय सुवर्च्चसे।
शुक्ररूपाय जगतामशेषाणां स्थितिप्रदः २८॥

टी०। और सब देवतों की वृत्ति अर्थात् जीविकाके दायक और सुकान्तिमान् और शुक्ररूप अग्नि को जो सम्पूर्ण जगत् की स्थिति को देनेवाले हैं उनको मैं प्रणाम करता हूं २८॥

मू० त्वं मुखं सर्व्वदेवानां त्वयात्तंभगवन् हविः।
प्रीणयत्यखिलान्देवांस्त्वत्प्राणाः सर्वदेवताः २९॥

टी०। हे भगवन्! आप सब देवताओं का मुखहैं व आपसे ग्रहण कीहुई हविष्य सब देवताओं को तृप्त करती है इस वास्ते सब देवताओं के आप प्राण हैं २६॥

मू० हुतं हविस्त्वय्यनलमेघत्वमुपगच्छति।
ततश्च जलरूपेण परिणाममुपैति यत् ३०॥

टी०। ऐ अग्ने! तुममें हवन कियाहुआ हविष्य मेघताको प्राप्त होताहै उसकेबाद जो कि जलरूप से परिणामको प्राप्त होजाता है ३०॥

मू० तेनाखिलौषधीजन्मभवत्यनिलसारथे।
ओषधीभिरशेषाभिः सुखं जीवन्ति जन्तवः ३१॥

टी०। हे अनिलसारथे! उसी जल से सब खाने की वस्तु और ओषधि इत्यादि उत्पन्न होती हैं समस्त औषधियों से सब जीव सुखपूर्व्वक जीते हैं ३१॥

मू० वितन्वते नरायज्ञांस्त्वत्सृष्टास्वोषधीषु च।
यज्ञैर्देवास्तथा दैत्यास्तद्वद्रक्षांसि पावक ३२॥

टी०। हे अग्ने! फिर उन्हीं ओषधियोंसे तुमसे उत्पन्न मनुष्यलोग यज्ञ करतेहैं और उन यज्ञों से देवता और दैत्य और राक्षस इत्यादि सब ३२॥

मू० आप्यायन्ते च ते यज्ञास्त्वदाधाराहुताशन।

अतः सर्वस्य योनिस्त्वं वह्ने सर्व्वमयस्तथा ३३ ॥

टी० । तृप्त होते हैं हे हुताशन ! उन सब यज्ञों के आपही आधार हैं इस लिये आप सब की आदि हैं और हे अग्ने ! वैसेही आप सर्व्वमय हैं ३३ ॥

मू० देवतादानवायक्षादैत्यागन्धर्व्वराक्षसाः ।
मानुषाः पशवोवृक्षामृगपक्षिसरीसृपाः ३४ ॥

टी० और देवता और दानव और यक्ष और दैत्य और गन्धर्व्व और राक्षस और मनुष्य और पशु और वृक्ष और मृग और पक्षी और सर्प इत्यादि सब जीवों को ३४ ॥

मू० आप्यायन्ते त्वया सर्व्वे संव्वर्ध्यन्ते च पावक ।
त्वत्तएवोद्भवं यान्ति त्वय्यन्ते च तथालयम् ३५ ॥

टी० । आप तृप्त करते हैं और बढ़ाते हैं और हे पावक ! आपही से सब पैदा होतेहैं फिर अन्तके समय सब जीव आपहीमें मिलजातेहैं ३५॥

मू० अपः सृजसि देव त्वं त्वमत्सि पुनरेव ताः ।
पच्यमानास्त्वया ताश्च प्राणिनां पुष्टिकारणम् ३६ ॥

टी० । और हे देव ! आपही जल को उत्पन्न करते हैं और फिर आप ही उनको पीजाते हैं और आपही से पकायेहुये वे जल सब जीवोंके पुष्टि का हेतु होते हैं ३६ ॥

मू० देवेषु तेजोरूपेण कान्त्या सिद्धेष्ववस्थितः ।
विषरूपेण नागेषु वायुरूपः पतत्रिषु ३७ ॥

टी० । देवताओं में तेजरूप और सिद्धों में कान्तिरूप और सर्पों में विषरूप और पक्षियों में वायुरूप होकर आप स्थित हैं ३७ ॥

मू० मनुजेषु भवान् क्रोधोमोहः पक्षिमृगादिषु ।
अवष्टम्भोसि तरुषु काठिन्यं त्वं महींप्रति ३८ ॥

टी० । और मनुष्यों में आप क्रोधरूप और पक्षी और मृगादिकों में मोह रूप और वृक्षों में अवष्टम्भ (अचल) रूप और पृथ्वी में कठोररूप होकर स्थित हो ३८ ॥

मू० जले द्रवत्वं भगवाञ्जवरूपी तथाऽनिले।
व्यापित्वेन तथैवाग्ने नमसित्वं व्यवस्थितः ३९ ॥

टी०। और हे अग्ने ! जलमें द्रवत्व अर्थात् गीलापन और वायु में वेगरूप और आकाशमें व्यापित्वरूप होकर आप व्यवस्थित रहतेहैं ३९ ॥

मू० त्वमग्ने सर्वभूतानामन्तश्चरसि पालयन्।
त्वामेकमाहुः कवयस्त्वामाहुस्त्रिविधं पुनः ४० ॥

टी०। और हे अग्ने ! आप सब प्राणियों का पालन करतेहुये सब जीवों के हृदय में विराजमान रहतेहैं आप को कविलोगों ने एकहीकहा है व फिर तीनप्रकार से कहा है ४० ॥

मू० त्वामष्टधा कल्पयित्वा यज्ञवाहमकल्पयन्।
त्वया सृष्टमिदं विश्वं वदन्ति परमर्षयः ४१ ॥

टी०। और परमऋषिलोग यज्ञादिक में आपको आठ प्रकार के कल्पित करके यज्ञ को प्राप्तकरनेवाले कल्पित करते हैं और कहते हैं कि आपही से यह संसार उत्पन्न है ४१ ॥

मू० त्वामृते हि जगत्सर्व्वं सद्योनश्येद्धुताशन।
तुभ्यं कृत्वा द्विजाः पूजां स्वकर्म्मविहितां गतिम् ४२ ॥

टी०। हे अग्ने ! आपके विना सम्पूर्ण जगत् उसी क्षण नष्टहोजाता है व आपकी पूजाकरके अपने कर्म से विहित गतिको ब्राह्मणलोग ४२ ॥

मू० प्रयान्ति हव्यकव्याद्यैः स्वधास्वाहीत्युदीरणात्।
परिणामात्मवीर्य्याणि प्राणिनाममरार्च्चित ४३ ॥

टी०। स्वधा और स्वाहा उच्चारणकरके हव्य और कव्य इत्यादि से प्राप्त होते हैं और ऐ देवों से पूजित ! सब प्राणियों का परिणामात्मक वीर्य आपही हैं ४३ ॥

मू० दहन्ति सर्वभूतानि ततोनिष्क्रम्य हेतयः।
जातवेदस्तवैवेयं विश्वसृष्टिर्महाद्युते ४४ ॥

टी०। हे जातवेद ! हे महाद्युते ! आपही से ज्वाला निकलकर सब भूतों को जलातीहै और यह संसार उत्पन्न कियाहुआ आपहीका है ४४ ॥

मू० तवैव वैदिकं कर्म्म सर्वभूतात्मकं जगत्।
नमस्तेऽनल पिङ्गाक्ष नमस्तेस्तु हुताशन ४५॥

टी०। व सम्पूर्ण वैदिककर्म्म और सम्पूर्णप्राणियों समेत जगत् आप ही का उत्पन्न कियाहुआ है हे पिंगाक्ष! ऐहुताशन, अनल! आप के चरणों में वारंवार मेरा प्रणाम है ४५॥

मू० पावकाद्यनमस्तेऽस्तु नमस्ते हव्यवाहन।
त्वमेव भुक्तपीतानां पाचनाद्विश्वपाचकः ४६॥

टी०। और हे आदिपावक! और हे हव्यवाहन! मैं आपको प्रणाम करता हूँ आपही भोजन कीहुई व पीहुई वस्तुवों को पचाते हैं इस से आप विश्वपाचक हैं ४६॥

मू० सस्यानां पाचनं कर्त्ता त्वं पोष्टा जगतस्तथा।
त्वमेव सोमस्त्वं वायुस्त्वं बीजं सस्यहेतुकम् ४७॥

टी०। और सब अनाजों को पकानेऔर सब जगत् का पोषणकरने-वाले आपही हैं और आकाश और वायु आपही हैं और सब अनाजोंका कारण बीज आपही हैं ४७॥

मू० पोषाय सर्वभूतानां भूतभव्यभवोह्यसि।
त्वं ज्योतिः सर्वभूतेषु त्वमादित्योविभावसुः ४८॥

टी०। और सब प्राणियों के पोषणकरने के वास्ते आप जीवों के कल्याणकारकहैं और सब प्राणियों में तुम ज्योतिहो और सूर्य्य व अग्नि भी आप ही हैं ४८॥

मू० त्वमहस्त्वं तथा रात्रिरुभे सन्ध्ये तथा भवान्।
हिरण्यरेतास्त्वं वह्ने हिरण्योद्भवकारणम् ४९॥

टी०। और रात दिन और दोनों सन्ध्या भी आपहीहैं और हे अग्ने! सुवर्ण उत्पन्न होने का हेतु हिरण्यरेता भी आपही हैं ४९॥

मू० हिरण्यगर्भश्च भवान् हिरण्यसदृशप्रभः।
त्वं मुहूर्त्तः क्षणश्च त्वं त्वं त्रुटिस्त्वं तथा लवः ५०॥

टी०। औरसोने की तरह कान्तिमान् व हिरण्यगर्भ और मुहूर्त्त और क्षण और त्रुटि और वैसेही लव आपही हैं ५०॥

मू० कलाकाष्ठानिमेषादिरूपेणासि जगत्प्रभो ।
त्वमेतदखिलं कालः परिणामात्मकोभवान् ५१ ॥

टी० । और हे संसारके स्वामी ! कला और काष्ठा और निमेष इत्यादि रूप से इस सम्पूर्ण जगत् में आप व्याप्त रहतेहैं और परिणामात्मक अन्तकाल आपही हैं ५१ ॥

मू० या जिह्वा भवतः काली कालनिष्ठाकरी प्रभो ।
तया नः पाहि पापेभ्यऐहिकाच्च महाभयात् ५२ ॥

टी० । और हे प्रभो ! आपकी जो कालीनामक जीभहै वह काल की निष्ठा (सिद्धि) करनेवाली है उसी जीभ से हम सब को पापों से और सांसारिक बड़ेभयसे रक्षाकीजिये ५२ ॥

मू० करालीनाम या जिह्वा महाप्रलयकारणम् ।
तया नः पाहि पापेभ्यऐहिकाच्च महाभयात् ५३ ॥

टी० । और करालीनाम जो आपकी जीभ है वह महाप्रलय का हेतु है उस जीभसे भी हमसब को पापों से और सांसारिक महाडर से रक्षा कीजिये ५३ ॥

मू० मनोजवा च या जिह्वा लघिमागुणलक्षणा ।
तया नः पाहि पापेभ्यऐहिकाच्च महाभयात् ५४ ॥

टी० । और मनोजवा नाम जो आपकी जीभ है वह लघिमा के गुण की लक्षणोंवालीहै उससे हम सब को पापों से और सांसारिक महाभय से रक्षाकीजिये ५४ ॥

मू० करोति कामं भूतेभ्योया ते जिह्वा सुलोहिता ।
तया नः पाहि पापेभ्यऐहिकाच्च महाभयात् ५५ ॥

टी० । और प्राणियों की कामनादेनेवाली जो आप की सुलोहिता नाम जीभ है उससे हमलोगों को पापों से और संसार के महाभय से रक्षा कीजिये ५५ ॥

मू० सधूम्रवर्णा या जिह्वा प्राणिनां रोगदायिका ।
तया नः पाहि पापेभ्यऐहिकाच्च महाभयात् ५६ ॥

टी०। और प्राणियों को रोगदेनेवाली जो आपकी सधूम्रवर्णानाम जीभ है उससे हमलोगों को पापों से और संसारी महाभय से रक्षा कीजिये ५६॥

मू० स्फुलिङ्गिनी च या जिह्वा मता सकलपिङ्गला।
तया नः पाहि पापेभ्यऐहिकाच्च महाभयात् ५७॥

टी०। और जो सब पीलेवर्णवाली स्फुलिङ्गिनीनाम जीभ है उस से हमलोगों को पापों से और संसार के महाभय से रक्षाकीजिये ५७॥

मू० या ते विश्वासदा जिह्वा प्राणिनां शर्म्मदायिनी।
तया नः पाहि पापेभ्यऐहिकाच्च महाभयात् ५८॥

टी०। और प्राणियों को कल्याणदेनेवाली जो आपकी विश्वासदा नाम जीभ है उससे हमलोगों को पापों से और संसारी महाभय से रक्षाकीजिये ५८॥

मू० पिङ्गाक्षलोहितग्रीव कृष्णवर्ण हुताशन।
त्राहि मां सर्वदोषेभ्यः संसारादुद्धरेह माम् ५९॥

टी०। हे पिंगाक्ष, लोहितकंठ, कृष्णवर्ण, हुताशन! मुझको सम्पूर्ण दोषों से रक्षाकीजिये व इस संसार से मेरा उद्धार कीजिये ५९॥

मू० प्रसीद वह्ने सप्तार्चिः कृशानो हव्यवाहन।
अग्ने पावकशुक्रादिनामाष्टभिरुदीरितः ६०॥

टी०। और आप हे वह्ने! और हे सप्तार्चिः! और हे कृशानो! और हे हव्यवाहन! और हे अग्ने! और हे पावक और ऐ शुक्र! इत्यादि आठ नामों से पुकारेजाते हो मुझपर प्रसन्न हूजिये ६०॥

मू० अग्नेऽग्रेसर्वभूतानां समुद्भूतविभावसो।
प्रसीद हव्यवाहाख्य अभिष्टुत मयाऽव्यय ६१॥

टी०। और हे अग्ने! व हे सबजीवों से पहिले पैदाहोनेवाले! हे हव्यवाहन! हे मुझसे अभिष्टुत! हे अव्यय! आप प्रसन्न हूजिये ६१॥

मू० त्वमक्षयोवह्निरचिन्त्यरूपः
समृद्धिमान् दुष्प्रसहोऽतितीव्रः।

तवाव्ययं भीममशेषलोक
संवर्धकं भात्यतथातिवीर्य्यम् ६२ ॥

टी० । आप अक्षय वह्नि और अचिन्त्यरूप और समृद्धिमान् और दुष्प्रसह और अतितीव्र और वैसेही आपका बड़ा पराक्रम अव्यय और भीम (भयानक) सम्पूर्ण लोक को बढ़ानेवाला शोभित होताहै ६२ ॥

मू० त्वमुत्तमं तत्त्वमशेषसत्त्व
हृत्पुण्डरीकस्थमनन्तमीड्यम् ।
त्वया ततं विश्वमिदं चराचरं
हुताशनैकोबहुधा त्वमत्र ६३ ॥

टी० । और आप उत्तम तत्त्व हैं जो कि सबजीवों के हृदयकमलमें विराजमान रहते हैं व आप अनन्त हैं और स्तुति करनेयोग्य हैं और तुम करके यह सम्पूर्ण चराचर जगत् विस्तृतहै हे हुताशन! आप एकहैं परन्तु बहुत प्रकार से इस संसार में वर्त्तमान रहते हैं ६३ ॥

मू० त्वमक्षयःसगिरिवना वसुन्धरा
नभःससोमार्कमहर्दिवाखिलम् ।
महोदधेर्जठरगतश्च वाडवो
भवान् विभुःपिबति पयांसि पावक ६४ ॥

टी० । आप अक्षय हैं और पर्वत और वन और पृथ्वी और आकाश और चन्द्रमा और सूर्य्य और दिन और रात सब आपही हैं और समुद्र के मध्य में वड़वानल आपही हैं व हे पावक! आप व्यापक होकर पानी पीते हैं ६४ ॥

मू० हुताशनस्त्वमिति सदाभिपूज्यसे
महाक्रतौ नियमपरैर्महर्षिभिः ।
अभिष्टुतः पिबसि च सोममध्वरे
वषट्कृतान्यपि च हवींषि भूतये ६५ ॥

टी० । और आप हुताशन हैं इस से महायज्ञ में महर्षिलोग सदा तुमको पूजते हैं और ऐश्वर्य्य के लिये स्तुति करने से यज्ञ में सोमपान और वषट् उच्चारण कीहुई हविष्य भोजनकरते हैं ६५ ॥

मू० त्वं विप्रैः सततमिहेज्यसे फलार्थं
वेदाङ्गेष्वथ सकलेषु गीयसे त्वम्।
त्वद्धेतोर्यं जनपरायणा द्विजेन्द्राः
वेदाङ्गान्यधिगमयन्ति सर्वकाले ६६॥

टी० और यहां ब्राह्मणलोग फल मिलने के वास्ते सदा आपकी पूजा करते हैं और सम्पूर्ण वेदों में आपको गाते हैं और आपके निमित्त ब्राह्मणलोग यज्ञपरायण होके सब काल में वेदांगों को पढ़ते हैं ६६॥

मू० त्वां ब्रह्मा यजनपरस्तथैव विष्णु
र्भूतेशः सुरपतिरर्यमा जलेशः।
सूर्येन्दू सकलसुरासुराश्च हव्यैः
सन्तोष्याभिमतफलान्यथाप्नुवन्ति ६७॥

टी०। यज्ञमें परायण ब्रह्मा और महादेव और विष्णु और इंद्र और अर्य्यमा और वरुण और सूर्य्य और चन्द्रमा व सब देवता और असुर हविष्यों से आपको सन्तुष्टकरके उसके बाद चाहेहुये सुन्दर फल पाते हैं ६७॥

मू० अर्चिर्भिः परममहोपघातदुष्टं
संस्पृष्टं तव शुचि जायते समस्तम्।
स्नानानां परममतीवभस्मना
यत् सन्ध्यायां मुनिभिरतीव सेव्यसे तत् ६८॥

टी०। और कैसे ही बड़े उपघातसे कोई वस्तु दूषितहो तौभी आपकी ज्वाला के स्पर्श से पवित्र होजाती है और सन्ध्याकाल में मुनिलोग स्नानकरके आपकी पवित्रभस्म को शरीर शुद्धहोने के लिये लगाते हैं ६८॥

मू० प्रसीद वह्ने शुचिनामधेय
प्रसीद वायो विमलातिदीप्ते।
प्रसीद मे पावक वैद्युताद्य
प्रसीद हव्याशन पाहि मां त्वम् ६९॥

टी०। हे वह्ने! हे शुचिनामधेय! प्रसन्न हूजिये हे वायो! हे विमलातिदीप्ते प्रसन्न होवो हे पावक! हे वैद्युताद्य! हे हव्याशन! प्रसन्न हूजिये और आप हमारी रक्षाकीजिये ६९॥

मू० यत्ते वह्ने शिवं रूपं ये च ते सप्तहेतयः।
तेभ्योऽव नः स्तुतोदेव पिता पुत्रमिवात्मजम् ७० ॥

टी०। हे वह्ने! आपका जो कल्याणरूप है और जो तुम्हारी सातो ज्वालायें हैं स्तुति कियेहुये आप उनसे इसतरह हमारी रक्षा करें कि जिस तरह हे देव! पिता पुत्र की रक्षा करता है ७० ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽग्निस्तोत्रंनामनवनवतितमोध्यायः ९९ ॥

अथ सौका अध्याय ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० एवं स्तुतस्ततस्तेन भगवान् हव्यवाहनः।
ज्वालामालावृततनुस्तस्यासीदग्रतोमुने १ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं ऐ मुने! इस प्रकार शान्ति के स्तुति करने उपरान्त हव्यवाहन भगवान् बहुत ज्वालाओं की माला से युक्त तनुवाले होकर उनके सामने खड़े होगये १ ॥

मू० देवोविभावसुः प्रीतस्तोत्रेणानेन वै द्विज।
तं शान्तिमाह प्रणतं मेघगम्भीरवागथ २ ॥

टी० और ऐ द्विज! इस स्तोत्र से प्रसन्न होतेहुये अग्निदेवजी प्रणाम करतेहुये शान्तिसे मेघ की तरह भारी शब्द से बोले २ ॥

अग्निरुवाच ॥

मू० परितुष्टोऽस्मि ते विप्र भक्त्या या ते स्तुतिः कृता।
वरं ददामि भवते प्रार्थ्यतां यत्तवेप्सितम् ३ ॥

टी०। अग्निजी बोले कि हे ब्राह्मण! भक्तिपूर्वक जो तुमने मेरी स्तुति की इससे मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ आपके लिये वरदान दूंगा जो तुम्हारा मनोरथ हो उसको मांगो ३ ॥

शान्तिरुवाच ॥

मू० भगवन् कृतकृत्योऽस्मि यत्त्वां पश्यामि रूपिणम्।

तथापि भक्तिनम्रस्य भवता श्रूयताम्मम ४॥

टी०। अग्निदेवता के इसतरह कहनेपर शान्ति मुनि बोले कि हे भगवन्! आपके दर्शन से मैं कृतकृत्य होगया परन्तु तो भी भक्तिसे झुकेहुये मेरा वचन सुनिये ४॥

मू० भ्रातृयज्ञं गतोदेव ममाचार्य्योनिजाश्रमात्।
आगतश्चाश्रमेधिष्ण्यं त्वत्सनाथं सपश्यतु ५॥

टी०। हेदेव! मेरे गुरु अपने आश्रम से भाई के यज्ञ में गये हैं सो आप ऐसा कीजिये कि जिसमें फिर आने पर गुरुजी आश्रम में आपको वैसाही स्थानपर प्रज्वलित देखें जैसा कि छोड़गयेथे ५॥

मू० ममापराधात् सन्त्यक्तं धिष्ण्यं यत्ते विभावसो।
तत्त्वयाधिष्ठितं सोऽद्य पूर्व्ववत् पश्यताद्द्विजः ६॥

टी०। और हे विभावसो! मेरे अपराध से जो आपने स्थानको छोड़ दियाहै वह उनको मालूम न हो किन्तु उस स्थान में वह द्विज आज आपको पूर्व्ववत् प्रज्वलित देखैं ६॥

मू० तथान्यदपि मे देव प्रसादं कुरुषे यदि।
पुत्रोविशिष्टोभवतु तदपुत्रस्य मे गुरोः ७॥

टी०। और वैसेही हे देव! जो हमारे ऊपर आप अन्यभी प्रसन्नता करते हैं तो मैं यह वर चाहता हूँ कि मेरे गुरु अपुत्र हैं उनके उत्तम पुत्र उत्पन्न हो ७॥

मू० यथा च मैत्रीं तनये सकरिष्यति मे गुरुः।
तथा समस्तसत्त्वेषु भवत्वस्य मनोमृदु ८॥

टी०। और जिस प्रकार वे मेरे गुरुजी उस पुत्रके साथ बहुत प्रीति करैं और वैसेही सब जीवों में इनका मन कोमल होवे ८॥

मू० यस्तुत्वां स्तोष्यतेनेन प्रीतिं यातोऽसि मेऽव्यय।
स्तोत्रेण तस्य वरदोभवेथामत्प्रसादितः ९॥

टी०। और हे अव्यय! आप जो मेरे स्तुति करने से प्रसन्न हैं तो इसी स्तोत्र से जो तुम्हारी स्तुति करैं मुझसे प्रसन्न करायेहुये आप उसको वरदायक होवो ९॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य तमाह द्विजसत्तमम्।
स्तोत्रेणाराधितोभूयोगुरुभक्त्या च पावकः १० ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि शान्तिका यह वचन सुनकर गुरुकी भक्ति के सबब से फिर स्तोत्र से आराधन कियेहुये अग्नि उस द्विजोत्तम से बोले १० ॥

मू० गुरोरर्थे यतोब्रह्मन् याचितं ते वरद्वयम्।
नात्मार्थं तेन मे प्रीतिस्त्वय्यतीव महामुने ११ ॥

टी०। कि हे ब्रह्मन! और हे महामुने! जिससे तुमने अपने गुरु के वास्ते दो बात का वरदान मांगा और अपने वास्ते कुछ न मांगा उस कारण से मैं तुमपर बहुतही प्रसन्न हूँ ११ ॥

मू० भविष्यत्येतदखिलं गुरोर्यत्प्रार्थितं त्वया।
मैत्री समस्तभूतेषु पुत्रश्चास्य भविष्यति १२ ॥

टी०। गुरु के वास्ते जो तुमने वरदान मांगा है यह सब होगा कि तुम्हारे गुरु को सब किसी प्राणी के साथ प्रीति होगी और इनके पुत्र भी उत्पन्न होगा १२ ॥

मू० मन्वन्तराधिपः पुत्रोभौत्योनामभविष्यति।
महाबलोमहावीर्य्योमहाप्राज्ञोगुरोस्तव १३ ॥

टी०। और तुम्हारे गुरुका वह पुत्र मन्वन्तरका स्वामी और भौत्यनाम से विख्यात होगा और महाबली व बड़ाप्रतापी और पण्डित होगा १३ ॥

मू० अनेन यश्च स्तोत्रेण स्तोष्यते मां समाहितः।
तस्याभिलषितं सर्वं पुण्यं चाग्र्यं भविष्यति १४ ॥

टी० और सावधान होताहुआ जो कोई इस स्तोत्र से मेरी स्तुति करेगा उसकी सब अभिलाषा पूर्ण होगी और उत्तम पुण्यहोगी १४ ॥

मू० यज्ञेषु पर्वकालेषु तीर्थेज्याहोमकर्म्मसु।
धर्म्माय पठतामेतन्मम पुष्टिकरं परम् १५ ॥

टी०। और यज्ञों में और पर्वों में और तीर्थ और यज्ञ व होमकर्म्मों

मैं धर्म के वास्ते मुझको परम पुष्टिकारक इस स्तोत्र के पढ़नेवाले जनों का १५॥

मू० अहोरात्रकृतं पापं श्रुतमेतत्सकृद्द्विज।
नाशयिष्यत्यसन्दिग्धं मम तुष्टिकरं परम् १६॥

टी० दिन रात में कियाहुआ पाप नष्ट होजाता है व जो कोई इस मेरे पुष्टिकारक स्तोत्र को एकबार भी सुनैगा हे ब्राह्मण! उसका एक दिन और रात का कियाहुआ पाप निस्सन्देह छूटजायगा १६॥

मू० अहोमकाले देशे वा अयोग्यैरपि वा हुतैः।
ये दोषास्तानिदं सद्यः शमयिष्यति संश्रुतम् १७॥

टी० और सम्यक्प्रकार सुनाहुआ यह स्तोत्र होम न करने के काल का और देश का और अयोग्य ब्राह्मणोंसे होमकरने पर सब दोषोंको तुरन्त नाश करैगा १७॥

मू० पौर्णमास्याममावस्यां पर्वस्वन्येषु च स्तवः।
ममैषसंश्रुतोमर्त्यैर्भविता पापनाशनः १८॥

टी० और पौर्णमासी और अमावस्या व अन्य पर्वों में जो कोई मनुष्य मेरे इस स्तोत्र को सुनैगा उसके सब पाप नाश होजायँगे १८॥

मार्कण्डेयउवाच॥

मू० इत्युक्त्वा भगवानग्निः पश्यतस्तस्य वै मुने।
बभूवादर्शनः सद्योदीपस्थोनिर्वृतोयथा १९॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे मुने! इतना कहकर अग्नि भगवान् शान्ति मुनि के देखतेहुये शीघ्रही अन्तर्द्धान होगये जैसे कि दीपक में टिकेहुये अग्निदेव शान्त होजाते हैं १९॥

मू० सच शान्तिर्गते वह्नौ परितुष्टेन चेतसा।
हर्षरोमाञ्चिततनुः प्रविवेशाश्रमं गुरोः २०॥

टी०। अग्नि के अन्तर्द्धान होजानेपर वे शान्ति मुनि प्रसन्नचित्त और पुलकितशरीर होकर अपने गुरु के आश्रम पर गये २०॥

मू० जाज्वल्यमानं तत्रासौ गुरुधिष्ण्ये हुताशनम्।

दद्दर्श पूर्व्ववत्प्राप ततः स परमां मुदम् २१ ॥

टी० । और उस आश्रम में अग्निको पहिले की तरह प्रज्वलित देख कर उस के बाद ये बहुत प्रसन्न हुये २१ ॥

मू० एतस्मिन्नन्तरे सोऽपि गुरुस्तस्य महात्मनः ।
भ्रातुर्य्यवीयसो यज्ञादाजगाम स्वमाश्रमम् २२ ॥

टी० । इसी अन्तर में महात्मा शान्ति मुनि के वे गुरु भी जो अपने छोटे भाई के यज्ञ में गये थे वहांसे अपने आश्रम पर आगये २२ ॥

मू० तस्याग्रतश्च शिष्योऽसौ चक्रे पादाभिवन्दनम् ।
गृहीतासनपूजश्च तमाह स तदा गुरुः २३ ॥

टी० । इस शिष्य शान्ति मुनि ने गुरु के आगे जाकर और उनका पूजन कर व आसन देकरके उनके चरणों को प्रणाम किया तब उनके गुरु उनसे बोले २३ ॥

मू० वत्सातिहार्द्दं त्वयि मे तथान्येषु च जन्तुषु ।
न वेद्मि किमिदं त्वञ्चेद्वत्सैतत्कथयाशु मे २४ ॥

टी० । कि हे वत्स ! तुझ से और दूसरे लोगों से जितनी प्रीति मुझ को प्रथम थी अब उससे अधिक प्रीति है इसका कारण क्या है मैं नहीं जानता हूँ जो तुम्हें मालूम तो हे वत्स ! मुझसे शीघ्र कहो २४ ॥

मू० ततः स शान्तिस्तत्सर्व्वमाचार्य्याय महामुने ।
अग्निनाशादिकं विप्रः समाचष्टे यथातथम् २५ ॥

टी० । हे महामुने ! गुरु की आज्ञा पाकर उन शान्ति मुनि ने अग्नि के बुझजाने पर अग्नि की स्तुति करना और उस स्तोत्र से उनका प्रकट होकर वरदान देना सब यथायोग्य हाल कह सुनाया २५ ॥

मू० तच्छ्रुत्वा स परिष्वज्य स्नेहार्द्रनयनो गुरुः ।
शिष्याय प्रददौ वेदान् साङ्गोपाङ्गान् महामुने २६ ॥

टी० । हे महामुने ! वह सब वृत्तान्त सुनकर प्रेमसे भीगे लोचनोंवाले गुरु ने शान्तिको अपनी छाती से लगाया और फिर साङ्गोपाङ्ग चारों वेद शान्ति को पढ़ा दिया २६ ॥

मू० भौत्यो नाम मनुस्तस्य पुत्रो भूतेरजायत।
तस्य मन्वन्तरे देवान् ऋषीन् भूपांश्च मे शृणु २७॥

टी०। तत्पश्चात् भूति मुनि के भौत्य नाम पुत्र मनु उत्पन्न हुआ अब उसके मन्वन्तर में जो देवता और ऋषि और राजालोग होंगे उनको मैं कहता हूँ सुनो २७॥

मू० भविष्यस्यभविष्यस्तु गदतो मम विस्तरात्।
देवेन्द्रो यश्च भविता तस्य विख्यातकर्म्मणः २८॥

टी०। और प्रसिद्ध कर्मोंवाले उन भविष्य मनु के मन्वन्तर में जो इन्द्र होंगे उनको भी मैं विस्तार से कहता हूँ सुनो २८॥

मू० चाक्षुषाश्च कनिष्ठाश्च पवित्रा भ्राजिरास्तथा।
धारावृकाश्च इत्येते पञ्चदेवगणाः स्मृताः २९॥

टी०। चाक्षुष और कनिष्ठ और पवित्र व भ्राजिर और धारावृक यह सब पाँच देवगण जो कहलाते हैं यही लोग उस मन्वन्तर में देवता होंगे २६॥

मू० शुचिरिन्द्रस्तदा तेषां त्रिदशानां भविष्यति।
महाबलो महावीर्य्यः सर्व्वैरिन्द्रगुणैर्युतः ३०॥

टी०। और उन देवों के स्वामी शुचि नाम महाबली और बड़े प्रतापी और इन्द्र के सब गुणों से युक्त इन्द्र होंगे ३०॥

मू० अग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च शुचिर्मुक्तोऽथ माधवः।
शुक्रोऽजितश्च सप्तैते तदा सप्तर्षयः स्मृताः ३१॥

टी०। और अग्नीध्र और अग्निबाहु और शुचि और मुक्त और माधव और शुक्र और अजित यह सातों उस मन्वन्तर में सप्तऋषि कहलावेंगे ३१॥

मू० गुरुर्गभीरोब्रध्नश्च भरतोऽनुग्रहस्तथा।
श्रीमानी च प्रतीरश्च विष्णुः संक्रन्दनस्तथा ३२॥

टी०। और गुरु और गभीर और ब्रध्न और भरत व अनुग्रह और श्रीमानी और प्रतीर और विष्णु और संक्रन्दन ३२॥

मू० तेजस्वी सुबलश्चैव भौत्यस्यैते मनोः सुताः।
चतुर्दश मयैतत्ते मन्वन्तरमुदाहृतम् ३३॥

टी०। और तेजस्वी और सुबल ये भौत्य मनुके बेटे लोग राजा होंगे इतनी कथा कहकर मार्कण्डेय जी कहने लगे कि इन चौदह मन्वन्तरों का वृत्तान्त मैंने आपसे वर्णन किया ३३॥

मू० श्रुत्वा मन्वन्तराणीत्थं क्रमेण मुनिसत्तम।
पुण्यमाप्नोति मनुजस्तथा क्षीणाञ्च सन्ततिम् ३४॥

टी०। हे मुनिसत्तम ! इस प्रकार क्रमसे मन्वन्तरों को मनुष्य सुनकर पुण्य और न क्षीण होनेवाली सन्तति को प्राप्त होता है ३४॥

मू० श्रुत्वा मन्वन्तरं पूर्वं धर्म्ममाप्नोति मानवः।
स्वारोचिषस्य श्रवणात् सर्वकामानवाप्नुते ३५॥

टी०। प्रथम मन्वन्तर की कथा सुनने से मनुष्य. को धर्म्म प्राप्त होता है और स्वरोचिष मन्वन्तर की कथा सुनने से सब कामना पूर्णहोती है ३५॥

मू० औत्तमे धनमाप्नोति ज्ञानञ्चाप्नोति तामसे।
रैवते च श्रुते बुद्धिं सुरूपां विन्दते स्त्रियम् ३६॥

टी०। और उत्तम मन्वन्तर की कथा सुनने से धन और तामस मन्वन्तर की कथा सुनने से ज्ञान और रैवत मन्वन्तर की कथा सुनने से बुद्धि और सुन्दर स्त्री मिलती है ३६॥

मू० आरोग्यं चाक्षुषे पुंसां श्रुते वैवस्वते बलम्।
गुणवत्पुत्रपौत्रस्तु सूर्य्यसावर्णिके श्रुते ३७॥

टी०। और चाक्षुष मन्वन्तर की कथा सुनने से मनुष्यों के आरोग्य रहता है और वैवस्वत मन्वन्तर की कथा सुननेसे बल और सूर्य्य के पुत्र सावर्णिक मन्वन्तरकी कथा सुननेसे गुणवान् पुत्र और पौत्र मिलताहै ३७

मू० माहात्म्यं ब्रह्मसावर्णौ धर्म्मसावर्णिके शुभाम्।
मतिमाप्नोति मनुजो रुद्रसावर्णिके जयम् ३८॥

टी०। और ब्रह्मसावर्णिक मन्वन्तर की कथा सुनने से मनुष्य का

माहात्म्य बढ़ताहै और धर्म्मसावर्णिक मन्वन्तर की कथा सुनने से शुभ बुद्धि प्राप्त होती है और रुद्रसावर्णिक मन्वन्तरके सुननेसे जीतहोतीहै ३८॥

मू० ज्ञातिश्रेष्ठो गुणैर्युक्तो दक्षसावर्णिके श्रुते।
निशामयत्यरिबलं रौच्यं श्रुत्वा मनूत्तमम् ३९॥

टी०। और दक्षसावर्णिक मन्वन्तरकी कथा सुनने से मनुष्य अपनी ज्ञाति में उत्तम और गुणों में पूरा होता है और मनुवों में उत्तम रौच्य मन्वन्तर की कथा सुनने से उसके शत्रुवों का बल घट जाताहै ३९॥

मू० देवप्रसादमाप्नोति भौत्ये मन्वन्तरे श्रुते।
तथाग्निहोत्रं पुत्रांश्च गुणयुक्तानवाप्नुते ४०॥

टी०। और भौत्य मन्वन्तर की कथा सुनने से देवताओं की प्रसन्नता और अग्निहोत्र का फल और गुणवान् पुत्रों को प्राप्त होता है ४०॥

मू० सर्व्वाण्यनुक्रमाद्यश्च शृणोति मुनिसत्तम।
मन्वन्तराणि तस्यापि श्रूयतां फलमुत्तमम् ४१॥

टी०। और हे मुनिसत्तम! क्रम से सब मन्वन्तरों को जो सुनता है उस को जो उत्तम फल मिलेगा उसको भी मैं कहता हूँ सुनो ४१॥

मू० तत्र देवानृषीनिन्द्रान्मनूंस्तत्तनयान्नृपान्।
वंशांश्च श्रुत्वा सर्व्वेभ्यः पापेभ्यो विप्र मुच्यते ४२॥

टी०। कि हे विप्रजी! उन मन्वन्तरों में जो देवतालोग और इन्द्र और ऋषि और मनु व मनुके पुत्र राजा लोग और उनके वंश की कथाओं को सुन कर मनुष्य पापों से छूट जायँगे ४२॥

मू० देवर्षीन्द्रनृपाश्चान्ये ये तन्मन्वन्तराधिपाः।
ते प्रीयन्ते तथा प्रीताः प्रयच्छन्ति शुभां मतिम् ४३॥

टी०। देवता और ऋषि और राजा और अन्य मन्वन्तरों के मालिक उस सुननेवाले मनुष्य पर प्रसन्न होते हैं व प्रसन्न होकर उत्तम ज्ञान देते हैं ४३॥

मू० ततः शुभां मतिं प्राप्य कृत्वा कर्म्म तथाशुभम्।
शुभां गतिमवाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ४४॥

टी०। तब शुभ मति पाकर और वैसेही शुभ कर्म करके तबतक शुभ गति को पाता है जब तक चौदह इन्द्र बीततेहैं ४४ ॥

मू० सर्व्वैस्यऋतवः क्षेम्याः सर्वे सौम्यास्तथाग्रहाः।
भवन्त्यसंशयं श्रुत्वा क्रमान्मन्वन्तरस्थितिम् ४५ ॥

टी०। जो मनुष्य क्रम से मन्वन्तरों की कथा सुनता है उस पर सब ऋतु शुभ होजातेहैं और सब ग्रह शुभ होजातेहैं इसमें संशय नहींहै ४५॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेचतुर्दशमन्वन्तरवर्णनंनामशततमोऽध्यायः १०० ॥

अथ एकसौ एक का अध्याय ॥

क्रौष्टुकि रुवाच ॥

मू० भगवन् कथिता सम्यक् त्वया मन्वन्तरस्थितिः।
क्रमाद्विस्तरतस्त्वत्तो मया चैवावधारिता १ ॥

टी०। इतनी कथा सुनके क्रौष्टुकि बोले कि हे भगवन्! मन्वन्तरों का स्थित होना अच्छी तरह क्रम से विस्तार पूर्व्वक आपने वर्णन किया व मैंने सुना १ ॥

मू० ब्रह्माद्यमखिलं वंशं भूभुजां द्विजसत्तम।
श्रोतुं ममेच्छतः सम्यग् भगवन्प्रब्रवीहि मे २ ॥

टी०। अब हे द्विजोत्तम! सब राजाओं के वंश का वृत्तान्त जिस के आदि ब्रह्मा हैं विस्तार पूर्व्वक सुना चाहताहूँ उसको आप मुझसे कहिये २॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० शृणु वत्स नृपाणांत्वमशेषाणां समुद्भवम्।
चरितञ्च जगन्मूलमादौ कृत्वा प्रजापतिम् ३ ॥

टी०। यह प्रश्न क्रौष्टुकि का सुनकर मार्कण्डेय जी बोले कि हे वत्स! सब राजाओं की उत्पत्ति और उनके चरित्र जिनके आदि में जगत् के मूल ब्रह्मा को करके कहता हूँ सुनो ३ ॥

मू० अयं हि वंशो भूपालैरनेकक्रतुकर्तृभिः।
संग्रामजिद्भिर्धर्म्मज्ञैः शतसंख्यैरलंकृतः ४ ॥

टी०। यह वंश बहुत यज्ञ करनेवाले और संग्राम विजयी और धर्म्म के जानने वाले हज़ारों राजाओं से शोभावान् है ४॥

मू० श्रुत्वा येषां नरेन्द्राणां चरितानि महात्मनाम्।
उत्पत्तयश्च पुरुषः सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ५॥

टी०। और इन महात्मा राजाओं की उत्पत्ति और चरित्र सुनकर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ५॥

मू० मनुर्यत्र तथेक्ष्वाकुरनरण्यो भगीरथः।
अन्येच शतशोभूपाः सम्यक्पालितभूमयः ६॥

टी०। कि जिसमें मनु और इक्ष्वाकु और अनरण्य और भगीरथ इत्यादि हजारों राजालोग हुये हैं जिन्हों ने अच्छीतरह से पृथ्वी का पालन किया ६॥

मू० धर्म्मज्ञा यज्विनः शूराः सम्यक्परमवेदिनः।
श्रुते तस्मिन् पुमान् वंशे पापौघाद्विप्रमुच्यते ७॥

टी०। और ऐ विप्र जी! वे लोग धर्म्म के जानने वाले और यज्ञ करने वाले और शूरवीर सबतरहसे उत्तम वस्तु के जाननेवाले हुये हैं उनके वंश का हाल सुनने से मनुष्य पापों के समूह से छूट जाता है ७॥

मू० तदयं श्रूयतां वंशो यतो वंशाः सहस्रशः।
भिद्यन्ते मनुजेन्द्राणामवरोहा यथा वटात् ८॥

टी०। इसलिये इसवंश को सुनिये कि जिस वंश से हजारों राजा लोगों का वंश हुआ है जिसतरह एक बरगद के वृक्ष से हजारों शाखा निकलती हैं ८॥

मू० ब्रह्मा प्रजापतिः पूर्व्वं सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अंगुष्ठाद्दक्षिणाद्दक्षमसृजद्द्विजसत्तम ९॥

टी०। हे द्विजोत्तम! पहिले प्रजापति ब्रह्माजी ने तरह तरह की प्रजाओं की सृष्टि करने की इच्छा करके अपने दाहिने अंगूठा से दक्ष को उत्पन्न किया ९॥

मू० वामांगुष्ठाच्च तत्पत्नीं जगत्सूतिकरो विभुः।
ससर्ज भगवान् ब्रह्मा जगतां कारणं परम् १०॥

टी०। और बायें अँगूठा से जगत् के उत्पत्तिकारक व संसारके परमकारण विभु भगवान् ब्रह्मा ने दक्ष की स्त्री को उत्पन्न किया १० ॥

मू० अदितिस्तस्य दक्षस्य कन्याजायत शोभना।
तस्याञ्च कश्यपोदेवं मार्त्तण्डं समजीजनत् ११ ॥

टी०। उन दक्षके अदितिनाम उत्तम कन्या उत्पन्नहुई उस का विवाह कश्यप से हुआ फिर उस अदिति से कश्यप के मार्त्तण्डनाम याने सूर्य्य देवता उत्पन्नहुये ११ ॥

मू० ब्रह्मा स्वरूपं जगतामशेषाणां वरप्रदम्।
आदिमध्यान्तभूतश्च सर्गस्थित्यन्तकर्मसु १२ ॥

टी०। फिर ब्रह्माजी ने उत्पत्ति और पालन और प्रलयकर्म करने के वास्ते और आदि और अन्त और मध्य में रहनेवाले सब जगत् के वरदायक स्वरूप को निर्म्माणकिया १२ ॥

मू० यतोऽखिलमिदं यस्मिन्नशेषञ्च स्थितं द्विज।
यत्स्वरूपं जगच्चेदं सदेवासुरमानुषम् १३ ॥

और जिससे हे ब्राह्मण ! यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न और स्थित है व देवता और असुर और मनुष्य इत्यादिकोंसमेत यह संसार जिनका स्वरूप है १३ ॥

मू० यः सर्व्वभूतः सर्व्वात्मा परमात्मा सनातनः।
अदित्यामभवद्भास्वान् पूर्व्वमाराधितस्तया १४ ॥

टी०। और जो सर्व्वजीव और सर्व्वआत्मा और सनातन परमात्मा हैं वह भास्वान् सूर्य्य अदिति से उत्पन्नहुये क्योंकि वे अदिति पहिलेही से उनकी आराधना कियेहुये थी १४ ॥

क्रौष्टुकिरुवाच ॥

मू० भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि यत्स्वरूपं विवस्वतः।
यत्कारणं चादिदेवः सोऽभवत् कश्यपात्मजः १५ ॥

टी०। यह सुनकर क्रौष्टुकि बोले कि हे भगवन् ! विवस्वान् सूर्य्य का जो स्वरूप है और आदिदेव जिसके कारण कश्यप के पुत्र हुये वह सब सुना चाहता हूँ १५ ॥

मू० यथा चाराधितोदेव्या सोऽदित्या कश्यपेन च।
आराधितेन चोक्तं यत्तेन देवेन भास्वता १६॥

टी०। और जिसतरह देवी अदिति और कश्यप ने उनकी आराधना किया और आराधना कियेहुये भास्वान् देवने जो अदिति और कश्यप से कहा है १६॥

मू० प्रभावश्चावतीर्णस्य यथावन्मुनिसत्तम।
भवता कथितं सम्यक्छ्रोतुमिच्छाम्यशेषतः १७॥

टी०। और हे मुनिसत्तम! अवतार लियेहुये सूर्य्य का प्रभाव भी जो आप संक्षेप से कहचुके भी हैं उस सबको विस्तारपूर्व्वक मैं सुना चाहता हूँ १७॥

मार्कण्डेयउवाच॥

मू० विस्पष्टा परमा विद्या ज्योतिर्भा शाश्वती स्फुटा।
कैवल्यं ज्ञानमाविर्भूः प्राकाम्यं संविदेव च १८॥

टी० यह प्रश्न क्रौष्टुकि का सुनकर मार्कण्डेयजी बोले कि स्पष्ट परम विद्या और ज्योति और शाश्वती (सदैववाली) प्रकाशित दीप्त और कैवल्य ज्ञान और प्रकटहोना और प्राकाम्य (स्वेच्छाचार) और संविद् याने प्रतिज्ञा भी १८॥

मू० बोधश्चावगतिश्चैव स्मृतिर्विज्ञानमेव च।
इत्येतानीह रूपाणि तस्य रूपस्य भास्वतः १९॥

टी०। और बोध और अवगति (ज्ञान) और स्मृति और विज्ञान यह सब उन भास्वान् सूर्य्य के रूप हैं १९॥

मू० श्रूयताञ्च महाभाग विस्तराद्गदतोमम।
यत्पृष्टवानसि रवेराविर्भावोयथाभवत् २०॥

टी०। हे महाभाग! सूर्य्यदेवता का प्रकटहोना जो तुमने पूछा है सो जिस प्रकार से प्रकटहुये हैं उस को मैं विस्तारपूर्व्वक कहता हूँ सुनो २०॥

मू० निष्प्रभेऽस्मिन्निरालोके सर्व्वतस्तमसावृते।
बृहदण्डमभूदेकमक्षरं कारणं परम् २१॥

टी०। कि एक समय में जब इस जगत् से प्रभा जातीरही और सब अन्धकार होगया और कुछ नहीं दिखलाई दिया तब एक बहुत बड़ा अ-ण्डा उत्पन्नहुआ जो कि अक्षर याने अखण्ड व उत्तम कारण था २१॥

मू० तद्विभेद तदन्तःस्थोभगवान् प्रपितामहः।
पद्मयोनिः स्वयं ब्रह्मा यः स्रष्टा जगतां प्रभुः २२॥

टी०। फिर कुछदिनों के बाद वह अण्डा फटा और उसमें से भगवान् प्रपितामह पद्मयोनि व जो जगत् की सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजी हैं वे प्रभु उ-त्पन्न हुये २२॥

मू० तन्मुखादोमिति महानभूच्छब्दोमहामुने।
ततोभूस्तुभुवस्तस्मात् ततश्च स्वरनन्तरम् २३॥

टी० और ऐ महामुने! ब्रह्माजीके मुखसे महान् प्रणव(ॐकार) शब्द उत्पन्न हुआ और उसके बाद भू शब्द और भुव शब्द और तदनन्तर उसी से स्वः शब्द उत्पन्नहुआ २३॥

मू० एताव्याहृतयस्तिस्रः स्वरूपं तद्विवस्वतः।
ओमित्यस्मात्स्वरूपात्तु सूक्ष्मरूपं रवेः परम् २४॥

टी०। ये तीनों व्याहृतियां उन विवस्वान् सूर्य्य का स्वरूपहैं और प्रण-वस्वरूप से सूर्य्य का उत्तम सूक्ष्मस्वरूप उत्पन्न हुआ २४॥

मू० ततोमहरिति स्थूलं जनः स्थूलतरं ततः।
ततस्तपस्ततः सत्यमिति मूर्तानि सप्तधा २५॥

टी०। और उस सूक्ष्मस्वरूप से महः ऐसा स्थूलरूप उत्पन्नहुआ फिर उस स्थूल से भारी जनरूप उत्पन्नहुआ उससे तपरूप और उससे सत्य-स्वरूप उत्पन्नहुआ यही सात तरह के स्वरूप २५॥

मू० स्थितानि तस्य रूपाणि भवन्ति न भवन्ति च।
अभावंभावयेद्भावं यतोगच्छन्त्यसंशयम् २६॥

टी०। उस सूर्य्य देवता के स्थितरूप होते और नहीं होते हैं जिनका अभाव और भाव ध्यान करने से मनुष्य असंशय पदको प्राप्तहोताहै २६॥

मू० आद्यन्तं यत्परं सूक्ष्ममरूपं परमं स्थितम्।
ओमित्युक्तं मया विप्र तत्परं ब्रह्म तद्वपुः २७॥

टी०। जो सब जगत् के आदि और अन्त व परम सूक्ष्म और अरूप होकर स्थित हैं हे विप्र! वही प्रणव कहेजाते हैं और उन्हीं को परब्रह्मरूप भी कहते हैं २७॥

इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेवंशानुकीर्तनंनामैकाधिकशततमोऽध्यायः १०१॥

एकसौदोका अध्याय॥

मार्कण्डेयउवाच॥

मू० तस्माद्ण्डाद्विभिन्नात्तु ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
ऋचोबभूवुः प्रथमं प्रथमाद्वदनान्मुने १॥

टी०। इतनी कथा कहकर फिर मार्कण्डेयजी कहनेलगे कि हे मुने! उस अण्डे के फटने और उसके भीतर से अव्यक्तजन्मवाले ब्रह्माजी के निकलने पर पहले उनके पूर्वमुखसे ऋचासहित ऋग्वेद उत्पन्नहुआ १॥

मू० जपापुष्पनिभाः सद्यस्तेजोरूपाह्यसंहताः।
पृथक्पृथग्विभिन्नाश्च रजोरूपवहास्ततः २॥

टी०। वह सब जपा अर्थात् गुड़हल के फूल के समान तेजस्वरूपवाले तथा एकमें नहीं मिले व पृथक् पृथक् रजोगुणीरूपको धारणकिये-हुये थे याने कर्म के प्रवर्तन करनेवाले थे २॥

मू० यजूंषि दक्षिणाद्वक्त्रादनिरुद्धानि काञ्चनम्।
यादृग्वर्णन्तथावर्णान्यसंहतिधराणि च ३॥

टी०। तत्पश्चात् ब्रह्माजी के दक्षिण मुखसे अनिरुद्ध याने बंधनरहित और सुवर्णसमानस्वरूपवाले तथा संगरहित यजुर्वेदके सब मन्त्र उत्पन्नहुये ३॥

मू० पश्चिमं यद्विभोर्वक्त्रं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः।
आविर्भूतानि सामानि ततश्छन्दांसि तान्यथ ४॥

टी०। और परमेष्ठी ब्रह्माके पश्चिम मुखसे सामवेद के सब मन्त्र और सब छन्द भी प्रकटहुये ४॥

मू० अथर्वाणमशेषञ्च भिन्नाञ्जनचयप्रभम्।

घोराघोरस्वरूपन्तदाभिचारिकशान्तिकम् ५ ॥

टी० । और सम्पूर्ण अथर्व्वणवेद भिन्नहुये अञ्जनपुंज के समान श्यामवर्ण व घोर और अघोरस्वरूपवाला था जिससे अभिचारिक और शान्तिक क्रियायें होती हैं ५ ॥

मू० उत्तरात् प्रकटीभूतं वदनात्तस्य वेधसः ।
सुखसत्त्वतमःप्रायं सौम्यासौम्यस्वरूपवत् ६ ॥

टी० । वह उन ब्रह्माजी के उत्तरमुख से उत्पन्नहुआ वह सब मन्त्र प्रायःसुख व सतोगुण और तमोगुणसंयुक्त व सौम्य और असौम्यस्वरूप अर्थात् अच्छी और बुरी सूरत के हैं ६ ॥

मू० ऋचोरजोगुणाः सर्वं यजुषाञ्च गुणामुने ।
तमोगुणानि सामानि तमःसत्त्वमथर्व्वसु ७ ॥

टी० । और ऋग्वेद के मन्त्र सब रजोगुणी और यजुर्वेद के मन्त्र सब सतोगुणी हैं और हे मुने ! सामवेद के मन्त्र सब तमोगुणी और अथर्वण वेद के मन्त्र सब सतोगुणी और तमोगुणी दोनों संयुक्त हैं ७ ॥

मू० एतानि ज्वलमानानि तेजसाऽप्रतिमेन वै ।
पृथक्पृथगवस्थानं भाञ्जिपूर्व्वमिवाभवन् ८ ॥

टी० । ये सब अप्रमित तेज से प्रकाशमान पृथक् पृथक् अवस्थानको मर्दतेहुये पहिले के समान प्रकटहुये ८ ॥

मू० ततस्तदाद्यं यत्तेजओमित्युक्ताभिशब्द्यते ।
तस्यानुभावाद्यत्तेजस्तत्समावृत्य संस्थितम् ९ ॥

टी० । बाद इसके वह जो पहिले ऋग्वेदनामक तेज था सो प्रणव ऐसा कहकर उच्चारण कियाजाता है व उसके प्रभाव से जो तेजहै उस को घेरकर स्थित होगया ६ ॥

मू० यथायजुर्मयस्तेजस्तद्वत्साम्नां महामुने ।
एकत्वमुपयातानि परे तेजसि संश्रये १० ॥

टी० । फिर जैसा यजुर्मय तेजथा वैसेही सामका था हे महामुने ! फिर उत्तमतेज के साथ मिलकर एक होगये १० ॥

मू० शान्तिकं पौष्टिकञ्चैव तथा चैवाभिचारिकम्।
ऋगादिषु लयं ब्रह्मंस्त्रितयन्त्रिष्वथागमत् ११॥

टी०। और हे ब्रह्मन्! शान्तिक और पौष्टिक और अभिचारिक यह तीनों तेज ऋग् और यजुः और साम तीनों में मिलगये ११॥

मू० ततोविश्वमिदं सद्यस्तमोनाशात्सुनिर्म्मलम्।
बभावतीवविप्रर्षे तिर्य्यगूर्द्ध्वमधस्तथा १२॥

टी०। तब तम (अन्धकार) के नाशहोजानेसे यह विश्व शीघ्रही निर्म्मल होगया हे विप्रर्षे! इस तरह तिर्य्यक् और ऊर्द्ध्व और अधः अर्थात् तिरछा व ऊँचे और नीचे बड़ा प्रकाशहुआ १२॥

मू० ततस्तन्मण्डलीभूतं छान्दसं तेज उत्तमम्।
परेण तेजसा ब्रह्मन्नेकत्वमुपयाति तत् १३॥

टी०। तत्पश्चात् हे ब्रह्मन्! वह वेदोंका उत्तम तेज जो एक दूसरे तेज के साथ मिलकर एक मण्डल होगया १३॥

मू० आदित्यसंज्ञामगमदादावेव यतोऽभवत्।
विश्वस्यास्य महाभाग कारणञ्चाव्ययात्मकम् १४॥

टी०। और जिसलिये आदिही में हुआ उसी से उस का नाम आदित्य हुआ हे महाभाग! वही आदित्यनाम तेज इस विश्व का अव्ययात्मक कारण है १४॥

मू० प्रातर्म्मध्यन्दिने चैव तथा चैवापराह्णिके।
त्रयी तपति सा काले ऋग्यजुःसामसंज्ञिता १५॥

टी०। और वही ऋग् और यजुः और साममय तीनों तेज प्रातःकाल और मध्याह्नकाल और अपराह्णकाल में तपते हैं १५॥

मू० ऋचस्तपन्ति पूर्व्वाह्णे मध्याह्ने च यजूंषि वै।
सामानि चापराह्णे वै तपन्ति मुनिसत्तम १६॥

टी०। हे मुनिश्रेष्ठ! ऋग्नाम तेज पूर्व्वाह्णकालमें और यजुर्वेद मंत्र का तेज मध्याह्नकाल में और साममय तेज अपराह्णकाल में हे मुनिसत्तम! तपता है १६॥

मू० शान्तिकं ऋक्षु पूर्व्वाह्णे यजुष्ष्वेवं च पौष्टिकम् ।
मध्यन्दिने पराह्णे च सामस्वेवाभिचारिकम् १७ ॥

टी० । शान्तिककर्म्म ऋग्मय तेज के समय तक पूर्व्वाह्ण में और पौष्टिककर्म्म यजुस्तेजके समय मध्याह्न में और अभिचारिक कर्म्म अभिचारिकमन्त्र से सामतेज के समय अपराह्ण में कियाजाता है १७ ॥

मू० मध्यन्दिनेऽपराह्णे च पूर्व्वाह्णे चाभिचारिकम् ।
अपराह्णे पितॄणान्तु साम्ना कार्य्याणि तानि वै १८ ॥

टी० । और अभिचारिक कर्म मध्याह्न और अपराह्ण व पूर्वाह्णमें भी कियाजाता है पर पितरों का कर्म्म साममन्त्रसे अपराह्णकाल में किया जाताहै १८ ॥

मू० विसृष्टौ ऋङ्मयोब्रह्मा स्थितोविष्णुर्यजुर्म्मयः ।
रुद्रःसाममयोऽन्ते च तस्मात्तस्याशुचिर्ध्वनिः १९ ॥

टी० । सृष्टिकाल में ब्रह्माजी रजोगुण ऋग्मयतेज में स्थितहोकर सृष्टि और सतोगुण यजुर्मय तेजमें विष्णु स्थितहोकर जगत् का पालन और अन्त में साममय तेजमें तमोगुणी रुद्र स्थितहोकर प्रलयकाल में जगत् का नाश करतेहैं इसीकारण सामवेद का शब्द अपवित्र है १९ ॥

मू० तदेवं भगवान् भास्वान् वेदात्मा वेदसंस्थितः ।
वेदविद्यात्मकश्चैव परः पुरुषउच्यते २० ॥

टी० । इसतरह वह भगवान् भास्वान् वेदात्मा व वेदसंस्थित और वेद विद्यात्मक सब से परे पुरुष कहलाते हैं २० ॥

मू० सर्गस्थित्यन्तहेतुश्च रजः सत्त्वादिकान् गुणान् ।
आश्रित्य ब्रह्मविष्णवादिसंज्ञामभ्येति शाश्वतः २१ ॥

टी० । और वही सर्ग और स्थिति और अन्त अर्थात् उत्पत्ति और पालन और प्रलय के कारण हैं और वही अविनाशी सत्त्व रज व तममें आश्रित होकर ब्रह्मा विष्णु महेशकी संज्ञाको प्राप्त होतेहैं २१ ॥

मू० वेदैःसवेद्यः सतु वेदमूर्त्तिरमूर्त्तिराद्योऽखिलमर्त्यमूर्त्तिः ।
विश्वाश्रयज्योतिरवेद्यधर्म्माबेदान्तगम्यःपरमःपरेभ्यः२२

टी०। और वेदोंसे जाननेयोग्य और वेदरूप और अरूप व आदिकारण और सब मनुष्योंकी मूर्ति और विश्व के आधार ज्योतिरूप और अवेद्यधर्मा और वेदान्त से गम्य वह भगवान् सूर्य्य परों से परे हैं २२॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेमार्त्तण्डमाहात्म्येनामद्व्यधिक
शततमोऽध्यायः १०२॥

अथ एकसौतीनकाअध्याय॥

मार्कण्डेयउवाच॥

मू० तस्य सन्ताप्यमाने तु तेजसोर्ध्वमधस्तथा।
सिसृक्षुश्चिन्तयामास पद्मयोनिः पितामहः १॥

टी०। इतनी कथा कहकर फिर मार्कण्डेयजी बोले कि हे क्रौष्टुके! सूर्य्य भगवान् के तेज से ऊपर और नीचे तमाम जगत् जब संतप्त होकर जलनेलगा तब सृष्टि की इच्छासंयुक्त पद्मयोनि पितामह अर्थात् ब्रह्माजी चिन्ता करनेलगे १॥

मू० सृष्टिः कृतापि मे नाशं प्रयास्यत्यमितेजसः।
भास्वतः सृष्टिसंहारस्थितिहेतोर्महात्मनः २॥

टी०। कि यह मेरी रचना कीहुई सम्पूर्ण सृष्टि महात्मा सूर्य्य भगवान् के इस महातेज से जो सृष्टि और स्थित और संहार के कारण हैं नाश होजायगी २॥

मू० अप्राणाः प्राणिनः सर्व्वे आपः शुष्यन्ति तेजसा।
न चाम्भसा विना सृष्टिर्विश्वस्यास्य भविष्यति ३॥

टी०। और सम्पूर्णप्राणी विना प्राण के होजायँगे और इस तेज से जल जगत् के सूख जायँगे तोफिर विना जल के इससंसार की सृष्टि नहीं हो सकैगी ३॥

मू० इति सञ्चिन्त्य भगवान् स्तोत्रं भगवतोरवेः।
चकार तन्मयोभूत्वा ब्रह्मा लोकपितामहः ४॥

टी०। इस प्रकार चिन्ताकरके लोकपितामह भगवान् ब्रह्माजीने मन लगाकर सूर्य्य भगवान् की स्तुतिकरना आरम्भकिया ४॥

ब्रह्मोवाच ॥

मू० नमस्ये यन्मयं सर्व्वमेतत्सर्व्वमयश्च यः ।
विश्वमूर्त्तिः परंज्योतिर्यत्तद्ध्यायन्ति योगिनः ५ ॥

टी०। ब्रह्मा बोले कि मैं उन सूर्य्य भगवान् को प्रणाम करता हूँ जिनमें यह सम्पूर्ण संसार व्याप्त रहता है और आप भी इस संसार में व्याप्त रहते हैं और विश्वमूर्ति और परमज्योतिस्वरूप हैं कि जिस परमज्योति को योगीलोग ध्यान करते हैं ५ ॥

मू० यदृङ्मयोयोयजुषान्निधानं
साम्नाञ्च योयोनिरचिन्त्यशक्तिः ।
त्रयीमयस्थूलतयार्द्धमात्रा
परस्वरूपोऽणुतया च योग्रयः ६ ॥

टी०। और जो ऋग् और यजुर्मय हैं और सामयोनि और अचिन्त्यशक्ति हैं और जो स्थूलता से त्रयीमय अर्थात् तीनों वेद के तेज एकत्र हो स्थूलरूप और अर्द्धमात्रा जिनका सूक्ष्म स्वरूप है और सूक्ष्मता से श्रेष्ठ हैं ६ ॥

मू० तं सर्व्वहेतुं परमेड्यवेद्य
मादौ परं ज्योतिरवाच्यरूपम् ।
स्थूलञ्च देवात्मतया नमस्ये
भास्वन्तमाद्यं परमं परेभ्यः ७ ॥

टी०। और उन सूर्य्य भगवान् को प्रणाम करता हूँ जो सब के कारण हैं और उत्तमस्तुति करनेयोग्य व जाननेयोग्य और आदि में परमज्योतिस्वरूप हैं और जिनका रूप अवाच्य और सब देवताओं में व्याप्त हैं इससे स्थूलरूप और आदि में हुये हैं और उत्तमों से उत्तम हैं ७ ॥

मू० सृष्टिं करोमि यदहं तव शक्तिराद्या
तत्प्रेरितोजलमहीपवनाग्निरूपाम् ।
तद्देवतादिविषयां प्रणवाद्यशेषां
नात्मेच्छया स्थितिलयावपि तद्वदेव ८ ॥

टी०। और हे भगवन्! आप की जो आद्या शक्ति है उसी से प्रेरित होकर मैं जल और पृथ्वी और पवन और अग्नि और इन लोगों के जो देवता हैं और प्रणव इत्यादिसंयुक्त इस सब सृष्टि को करता हूँ इसी तरह पालन और संहार भी अपनी इच्छासे नहीं करता हूँ याने इन सब बातों की करनेवाली आपही की शक्ति है ८॥

मू० वह्निस्त्वमेव जलशोषणतः पृथिव्याः
सृष्टिं करोषि जगताञ्च तथा विपाकम्।
व्यापी त्वमेव भगवन् गगनस्वरूप-
स्त्वं पञ्चधा जगदिदं परिपासि विश्वम् ९॥

टी०। और आपही अग्निहोकर जल को सुखाते हैं और आपही पृथ्वी की सृष्टि करते हैं व संहारकरते हैं और हे भगवन्! आकाशरूप होकर भी आपही सम्पूर्ण में व्याप्त रहते हैं और पाँचस्वरूप होकर आपही इस विश्व की रक्षा करते हैं ६॥

मू० यज्ञैर्यजन्ति परमात्मविदोभवन्तं
विष्णुस्वरूपमखिलेष्टिमयं विवस्वन्।
ध्यायन्ति चापि यतयोनियतात्मचित्ताः
सर्व्वेश्वरं परममात्मविमुक्तिकामाः १०॥

टी०। और परम आत्मज्ञानी मुनिलोग यज्ञकरके समस्त यज्ञमय व विष्णुस्वरूप आपही का पूजनकरते हैं और हे विवस्वन्! यतीलोग भी अपनी मुक्ति की इच्छासे मन व चित्तको रोंककर उत्तम व सबों के ईश्वर आपही को ध्यान करते हैं १०॥

मू० नमस्ते देवरूपाय यज्ञरूपाय ते नमः।
परब्रह्मस्वरूपाय चिन्त्यमानाय योगिभिः ११॥

टी०। और देवरूप आपकेलिये और यज्ञरूपवाले तुम्हारेवास्ते प्रणामहै और परब्रह्मरूप और योगियोंसे चिन्त्यमानरूप तुमको मैं प्रणाम करता हूँ ११॥

मू० उपसंहर तेजोयत्तेजसः संहतिस्तव।
सृष्टेर्विघाताय विभो सृष्टौ चाहं समुद्यतः १२॥

टी० ॥ हे विभो ! मैं इस समय सृष्टि करने में प्रवृत्त हूँ पर सम्पूर्ण सृष्टि मेरे करनेपर भी आप के महातेज से नष्ट होजायगी इसवास्ते मैं आप की प्रार्थना करता हूँ कि अपना तेज शमन करलीजिये १२ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० इत्येवं तं स्तुतोभास्वान् ब्रह्मणा सर्गकर्तृणा ।
उपसंहृतवांस्तेजः परं स्वल्पमधारयत् १३ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी कहते हैं कि इसतरह सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजी की स्तुति करने पर भास्वान् सूर्य्य भगवान् ने अपने महातेज को शमनकरके बहुतथोड़ा तेज धारणकरलिया १३ ॥

मू० चकार च ततः सृष्टिं जगतः पद्मसम्भवः ।
यथा तेषु महाभागः पूर्व्वकल्पान्तरेषु वै १४ ॥

टी० । तब महाभाग पद्मसम्भव ब्रह्माजी ने उसी तरह जगत् की सृष्टि किया जिसतरह पहले उन प्रसिद्ध कल्पों में किया था १४ ॥

मू० देवासुरादीन् मर्त्यांश्च पश्वादीन् वृक्षवीरुधः ।
ससर्ज पूर्व्ववद्ब्रह्मा नरकांश्च महामुने १५ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे महामुने ! ब्रह्माजी ने देवता और असुर और मनुष्य और पशु और वृक्ष और लता और नरक इत्यादि को भी पहले की तरह रचनाकिया १५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेआदित्यस्तवोनामत्र्यधिक
शततमोऽध्यायः १०३ ॥

अथ एकसौचारकाअध्याय ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० सृष्ट्वा जगदिदं ब्रह्मा प्रविभागमथाकरोत् ।
वर्णाश्रमसमुद्राद्रिद्वीपानां पूर्व्ववद्यथा १ ॥

टी० । इतनी कथा कहकर मार्कण्डेयजी फिर बोले कि हे क्रौष्टुके ! ब्रह्माजी ने इस जगत्की सृष्टिकरके जिस जाति व जिस आश्रम का जो

धर्म्म है उसको बनाके समुद्र और पर्व्वत और द्वीप इत्यादि का पहिले की तरह विभाग करदिया १ ॥

मू० देवदैत्योरगादीनां रूपस्थानानि पूर्व्ववत्।
वेदेभ्यएव भगवानकरोत् कमलोद्भवः २ ॥

टी०। देवता और दैत्य और सर्प इत्यादि के रूप और स्थान भी पहले की तरह भगवान् ब्रह्माने वेदों से निर्म्माण करदिया २ ॥

मू० ब्रह्मणस्तनयोयोऽभून्मरीचिरिति विश्रुतः।
कश्यपस्तस्य पुत्रोऽभूत् कस्य पानात्सकश्यपः ३ ॥

टी०। फिर ब्रह्माजीके पुत्र जो मरीचि ऐसे नामसे विख्यातहुये और मरीचि के पुत्र कश्यपहुये जलके पीने से उनका कश्यप नाम भया ३ ॥

मू० दक्षस्य तनया ब्रह्मंस्तस्य भार्य्यास्त्रयोदश।
बह्वस्तत्सुताश्चासन् देवदैत्योरगादयः ४ ॥

टी०। और कश्यपके तेरह स्त्रियां थीं और वह सब दक्ष की कन्या थीं और उन स्त्रियों से कश्यप के देवता और दैत्य और सर्प इत्यादि बहुत संतति उत्पन्नहुई ४ ॥

मू० अदितिर्जनयामास देवांस्त्रिभुवनेश्वरान्।
दैत्यान् दितिर्दनुश्चोग्रान् दानवानुरुविक्रमान् ५ ॥

टी०। और अदिति से त्रिलोक के स्वामी देवतालोग और दिति से दैत्यलोग और दनु से बड़ेपराक्रमी व उग्र दानवलोग उत्पन्नहुये ५ ॥

मू० गरुडारुणौ च विनता यक्षरक्षांसि वैखसा।
कद्रू सुषाव नागांश्च गन्धर्व्वान् सुषुवे मुनिः ६ ॥

टी०। और विनता से गरुड और अरुण और वैखसा से यक्ष और राक्षसों का जन्महुआ और कद्रू से सब नाग और मुनिनामक स्त्री से गन्धर्व्वलोग उत्पन्नहुये ६ ॥

मू० क्रोधायाजज्ञिरे कुल्या रिष्टायाश्चाप्सरोगणाः।
ऐरावतादीन् मातङ्गानिरा च सुषुवे द्विज ७ ॥

टी०। और ऐ ब्राह्मण! क्रोधासे कुल्या और रिष्टा से अप्सराओं

के गण पैदाहुये और इरा ने ऐरावतइत्यादि हाथियोंको उत्पन्नकिया ७ ॥

मू० ताम्रा च सुषुवे श्येनीप्रमुखाः कन्यकाद्विज ।
यासां प्रसूताः खगमाः श्येनभासशुकादयः ८ ॥

टी० । और हे द्विज ! ताम्राने श्येनी इत्यादि कन्याओं को उत्पन्नकिया जिन कन्याओं से श्येन (बाज) भास और शुक इत्यादि पक्षियों का जन्महुआ ८ ॥

मू० इलायाः पादपाजाताः प्रधायायादसां गणाः ।
अदित्यां या समुत्पन्ना कश्यपस्येति सन्ततिः ९ ॥

टी० । और इला से सब वृक्ष और प्रधासे जलजन्तु इत्यादि उत्पन्न हुये व अदिति से जो संतति उत्पन्न हुई वह कश्यप की है ९ ॥

मू० तस्याश्च पुत्रदौहित्रैः पौत्रदौहित्रिकादिभिः ।
व्याप्तमेतज्जगत् सूत्या तेषां तासाञ्च वै मुने १० ॥

टी० । हे मुने ! उनके बेटे और पोते और परपोते इत्यादिकों से और अन्य अन्य स्त्रियों की संतति से भी यह सब संसार भरगया १० ॥

मू० तेषां कश्यपपुत्राणां प्रधानादेवतागणाः ।
सात्त्विकाराजसास्त्वन्ये तामसाश्च मुने गणाः ११ ॥

टी० । हे मुने ! कश्यप की संतति में से देवतालोग प्रधान हुये और वे लोग सत्त्वगुणवाले थे व अन्यगण राजस और तामस याने रजोगुणी व तमोगुणी थे ११ ॥

मू० देवान् यज्ञभुजश्चक्रे तथा त्रिभुवनेश्वरान् ।
ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठः परमेष्ठी प्रजापतिः १२ ॥

टी० । ब्रह्मके जाननेवालों में श्रेष्ठ व परमेष्ठी प्रजापति ब्रह्माजी ने देवताओंको त्रिभुवन का मालिक और यज्ञभाग का भोगकर्त्ता बनाया १२ ॥

मू० तानबाधन्त सहिताः सपत्नादैत्यदानवाः ।
राक्षसाश्च तथा युद्धं तेषामासीत् सुदारुणम् १३ ॥

टी० । फिर उन देवताओं के साथ दैत्य और दानव और राक्षस सब एकदिलहोकर शत्रुता करनेलगे और देवताओं को कष्ट देनेलगे फिर

तो उन सबों से और देवताओं से बड़ाभयंकर युद्ध होनेलगा १३ ॥

मू० दिव्यं वर्षसहस्रन्तु पराजीयन्त देवताः ।
जयिनश्चाभवन् विप्र बलिनोदैत्यदानवाः १४ ॥

टी० । और वह युद्ध देवताओं के वर्ष के प्रमाण से हजार वर्ष तक होतारहा अन्त को देवतालोगों को पराजय और ऐ विप्र ! दानव और दैत्य और राक्षसों को विजय प्राप्त हुई १४ ॥

मू० ततोनिराकृतान् पुत्रान् दैतेयैर्दानवैस्तथा ।
हृतत्रिभुवनान् दृष्ट्वा अदितिर्मुनिसत्तम १५ ॥

टी० । हे मुनिसत्तम ! उसके बाद अदिति अपने पुत्रों को दैत्य और दानवों से पीडित और त्रिभुवन के अधिकार से रहित देखकर १५ ॥

मू० आच्छिन्नयज्ञभागांश्च शुचा संपीडिता भृशम् ।
आराधनाय सवितुः परं यत्नं प्रचक्रमे १६ ॥

टी० । और यज्ञभाग उनका छिनगया यह देखकर शोच से बहुत विकलहुई व सूर्य्य भगवान्‌की आराधनाके लिये उत्तम यत्नकरनेलगी१६॥

मू० एकाग्रा नियताहारा परं नियममास्थिता ।
तुष्टाव तेजसां राशिं गगनस्थं दिवाकरम् १७ ॥

टी० । अर्थात् उस समय सावधानचित्त होकर नियम से भोजनकरतीहुई उत्तम नेम में स्थित हुई व आकाश में टिकेहुये तेजों की राशि सूर्य्य भगवान् की इसतरह स्तुति करनेलगी १७ ॥

अदितिरुवाच ॥

मू० नमस्तुभ्यं परां सूक्ष्मां सौवर्णीं बिभ्रते तनुम् ।
धामधामवतामीश धाम्नामाधार शाश्वत १८ ॥

टी० । अदिति बोलीं कि हे धामवालों के धाम ! और हे तेजों के आधार । ऐ शाश्वत, ईश ! सौवर्णी याने सोने के समान परमसूक्ष्म शरीर को आप धारण कियेहुये हैं आप के लिये मैं प्रणाम करती हूँ १८ ॥

मू० जगतामुपकाराय तथापस्तवगोपते ।
आददानस्य यद्रूपं तीव्रं तस्मै नमस्याहम् १९ ॥

टी० । हे गोपते ! आप सम्पूर्ण जगत् के उपकारके वास्ते जो तेज-रूप धारणकरके अपनी किरणों से जल को ग्रहण करते हैं आप के उस रूप को मैं प्रणाम करती हूँ १६ ॥

मू० गृहीतमष्टमासेन कालेनेन्दुमयं रसम् ।
बिभ्रतस्तव यद्रूपमति तीव्रं नतास्मि तत् २० ॥

टी० । और आठ महीने के समयसे चन्द्रमय रस ग्रहण करने के वास्ते जो यह तेजरूप आप धारण करते हैं उस आप के रूप को मैं प्रणाम करती हूँ २० ॥

मू० तमेव मुञ्चतः सर्व्वरसं वै वर्षणाय यत् ।
रूपमाप्यायकं भास्वंस्तस्मै मेघाय ते नमः २१ ॥

टी० । और हे भास्वन् ! उन्हीं सब रसों को आप मेघरूप धारण करके जो चार महीने वर्षा के लिये छोड़ते हैं उस तृप्तिकारक मेघरूप आपके लिये मैं प्रणाम करती हूँ २१ ॥

मू० वार्य्युत्सर्गविनिष्पन्नमशेषञ्चौषधीगणम् ।
पाकाय तत्र यद्रूपं भास्करं तं नमाम्यहम् २२ ॥

टी० । फिर उस बरसेहुये जल से उत्पन्न समस्त औषधीसमूह पकाने के लिये तुम्हारा प्रकाश था उस आपके भास्कररूप को मैं प्रणाम करती हूँ २२ ॥

मू० यच्च रूपं तवातीवहिमोत्सर्गादिशीतलम् ।
तत्कालसस्यपोषाय तरणे तस्य ते नमः २३ ॥

टी० । और शीतलकाल में अन्न व औषधियों के पोषणकरने के वास्ते अत्यन्त शीतलरूप आप धारण करते हैं ऐ सूर्यनारायण ! उस आपके शीतलरूप को मैं प्रणाम करती हूँ २३ ॥

मू० नातितीव्रं च यद्रूपं नातिशीतञ्च यत्तव ।
वसन्तर्त्तौ रवे सौम्यं तस्मै देव नमोनमः २४ ॥

टी० । और ऐ सूर्यदेव ! वसन्त ऋतु में जो आप का रूप न बहुत गर्म न बहुत ठण्डा है मैं उस सुन्दररूपधारणकरनेवाले आप को प्रणाम करती हूँ २४ ॥

मू० आप्यायनमशेषाणां देवानाञ्च तथापरम्।
पितॄणाञ्च नमस्तस्मै सस्यानां पाकहेतवे २५ ॥

टी० । और सब देवतों और वैसेही पितरों के तृप्तिकरनेवाले और औषधियों को पकानेवाले रूपको धारनेवाले आप के लिये मैं प्रणाम करती हूँ २५ ॥

मू० यद्रूपं जीवनायैकं वीरुधाममृतात्मकम्।
पीयते देवपितृभिस्तस्मै सोमात्मने नमः २६ ॥

टी० । व लतादिकों के जीवन के लिये जो अमृतात्मक एकरूप देवों व पितरों से पियाजाताहै उस सोमात्मरूप आपके लिये मैं प्रणाम करती हूँ २६ ॥

मू० आप्यायदाहरूपाभ्यां रूपं विश्वमयन्तव।
समेतमग्नीषोमाभ्यां नमस्तस्मै गुणात्मने २७ ॥

टी० । और दाह व तृप्तिकारक रूपवाले अग्नि और चन्द्रमासमेत विश्वमय जो रूप आपका है उस गुणात्मरूप आप के लिये मैं प्रणाम करती हूँ २७ ॥

मू० यद्रूपं ऋग्यजुः साम्नामैक्येन तपते तव।
विश्वमेतत्त्रयीसंज्ञं नमस्तस्मै विभावसो २८ ॥

टी० । ऋग् और यजुर् और साम यहसब इकट्ठा होने से त्रयीसंज्ञक-रूप जो आपका इस संसार को तप्त करता है हे विभावसो ! आपके उस रूप को मैं प्रणाम करती हूँ २८ ॥

मू० यत्तु तस्मात्परं रूपमोमित्युक्त्वाभिशब्दितम्।
अस्थूलानन्तममलं नमस्तस्मै सदात्मने २९ ॥

टी० । और उससे परे जो रूप प्रणव कहकर उच्चारण कियाजाता है व सूक्ष्म और अनन्त और अमलरूप आपका जो है उस उत्तम आत्मा के लिये मैं प्रणाम करती हूँ २९ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० एवं सा नियता देवी चक्रे स्तोत्रमहर्निशम्।

निराहारा विवस्वन्तमाराधयिषुर्मुने ३० ॥

टी० । मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे मुने ! इस तरह अदिति देवी विवस्वान् सूर्य्य का आराधनकरके नियमसंयुक्त निराहार होकर दिन रात स्तुति करनेलगी ३० ॥

मू० ततः कालेन महता भगवांस्तपनोऽम्बरे ।
प्रत्यक्षतामगादस्यादाक्षायण्याद्विजोत्तम ३१ ॥

टी० । उसके उपरान्त हे द्विजोत्तम ! बहुत दिनों के बाद भगवान् सूर्य्य ने अदिति को आकाश में प्रकटहोकर दर्शन दिया ३१ ॥

मू० सा ददर्श महाकूटं तेजसोऽम्बरसंश्रितम् ।
भूमौ च संस्थितं भास्वज्ज्वालामालातिदुर्दृशम् ३२ ॥

टी० । उस समय अदिति ने तेज के महाराशिरूप सूर्य्य को जिनकी ज्योति पृथ्वीसे आकाशतक व्याप्त थी और ज्वालाओं के समूहके सबब से जिसपर आंख नहीं ठहरती थी देखा ३२ ॥

मू० तं दृष्ट्वा सा तदा देवी साध्वसं परमङ्गता ।
जगाद मे प्रसीदेति न त्वां पश्यामि गोपते ३३ ॥

टी० । उस समय अदिति देवी बड़े डर को प्राप्तहोकर बोली कि हे गोपते ! मुझपर प्रसन्न हूजिये मैं आपके रूप को नहीं देखसक्ती हूँ ३३ ॥

मू० यथादृष्टवती पूर्व्वमम्बरस्थं सुदुर्दृशम् ।
निराहारा विवस्वन्तं तपन्तं तदनन्तरम् ३४ ॥

टी० । जिस तरह पहले मैं निराहार आकाशमें टिकेहुये आपको देखतीथी जो कि तपरहे थे उसके बाद ३४ ॥

मू० संघातं तेजसां तद्वदिह पश्यामि भूतले ।
प्रसादं कुरु पश्येयं यद्रूपन्ते दिवाकर ॥
भक्तानुकम्पक विभो भक्ताहं पाहि मे सुतान् ३५ ॥

टी० । हे विभो ! व हे भक्तों के ऊपर दयाकरनेवाले ! जैसा तेज का समूह आपका आकाश में था वैसाही दुर्दृश पृथ्वी में भी देखतीहूँ मैं आपकी सेवाकरनेवाली हूँ मुझपर प्रसन्नहोकर अपने रूपका दर्शन दीजिये व मेरे पुत्रों की रक्षा कीजिये ३५ ॥

मू० त्वं धाता विसृजसि देव विश्वमेतत्
त्वं पासि स्थितिकरणाय संप्रवृत्तः।
त्वय्यन्ते लयमखिलं प्रयाति तत्त्वं
त्वत्तोऽन्या न हि गतिरस्ति सर्व्वलोके ३६॥

टी०। हे देव! आप ब्रह्मा होकर इस संसार की उत्पत्ति करतेहैं और विष्णुरूप होकर पालनके लिये वर्त्तमान होते हैं और रुद्ररूप होकर संहार करते हैं और अन्तकाल में सब तत्त्व आपही में मिलजाते हैं सम्पूर्ण लोकोंमें आपके सिवाय दूसरी कोई गति नहीं है ३६॥

मू० त्वं ब्रह्मा हरिरजसंज्ञितस्त्वमिन्द्रो
वित्तेशः पितृपतिरम्बुपतिः समीरः।
सोमोऽग्निर्गगनमहीमहीधरोऽब्धिः
किं स्तव्यं तव सकलात्मरूपधाम्नः ३७॥

टी०। और ब्रह्मा और विष्णु और महादेव और इन्द्र और कुबेर और पितृपति [यमराज] और वरुण और वायु और चन्द्रमा और अग्नि और आकाश और पृथ्वी और पर्व्वत और समुद्र आपहीहैं आपकी स्तुति कहांतक करूँ जो तुम कि सम्पूर्ण आत्मा का रूप व तेज हो ३७॥

मू० यज्ञेश त्वामनुदिनमात्मकर्म्मसक्ताः
स्तुन्वन्तो विविधपदैर्द्विजायजन्ति।
ध्यायन्तो विनियतचेतसो भवन्तं
योगस्थाः परमपदं प्रयान्ति मर्त्याः ३८॥

टी०। हे यज्ञों के ईश! आपको सब दिन अपने कर्म्मोंमें प्रवृत्त होकर ब्राह्मणलोग विविधस्तोत्र से स्तुतिकर पूजनकरते हैं और योगीलोग चित्त को रोंककर आपके स्वरूप का ध्यानकरके परमपदको प्राप्त होते हैं ३८॥

मू० तपसि पचसि विश्वं पासि भस्मीकरोषि
प्रकटयसि मयूखैर्ह्लादयस्यम्बुगर्भैः।
सृजसि पुनरपि त्वं पालयस्यच्युताख्यः
क्षपयसि च युगान्ते पापकृद्भिस्त्वगाख्यः ३९॥

टी० । और संसार को आपही तप्त करते हैं और पकाते हैं और रक्षा करते हैं और भस्मकरते हैं और किरणों से प्रकट करते हैं और अम्बुगर्भनाम (जलवाली) किरणोंसे हर्षित करते हैं और ब्रह्मा होकर सृष्टि और विष्णु होकर पालन और रुद्ररूप होकर युगान्तमें संहार भी करते हैं और सम्पूर्ण देवता और असुर और मनुष्य आप के लिये प्रणाम करते हैं और पापियों से आप अगम्य हैं २६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेदिवाकरस्तुतिर्नामचतुरधिकशततमोऽध्यायः १०४ ॥

अथ एकसौपांचका अध्याय ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० ततः स्वतेजसस्तस्मादाविर्भूतोविभावसुः ।
अदृश्यत तदादित्यस्तप्तताम्रोपमः प्रभुः १ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी कहते हैं कि यह सब स्तुति अदिति से सुनकर उसके बाद सूर्य्य भगवान् ने अपने उस तेजसे अपना रूप तप्त तांबेके रंग का सा धारणकरके उस समय अदिति को दर्शन दिया १ ॥

मू० अथ तां प्रणतां देवीं तस्य संदर्शनान्मुने ।
प्राह भास्वान् वृणुष्वेष्टं वरं मत्तोयमिच्छसि २ ॥

टी० । इसके बाद उनको देखकर अदितिदेवी ने प्रणामकिया तब हे मुने ! सूर्य्य भगवान् बोले कि जो तुम्हारी इच्छा हो उस वरदान को मुझ से मांगो २ ॥

मू० प्रणता शिरसा सा च जानुपीडितमेदिनी ।
प्रत्युवाच विवस्वन्तं वरदं समुपस्थितम् ३ ॥

टी० । तब अदिति ने दोनों जानु अपनी पृथ्वी पर टेककर और शिर झुकाकर प्रणामकरके समीपमें प्राप्तहुये वरदायक सूर्यनारायणसे कहा ३ ॥

मू० देव प्रसीद पुत्राणां हृतं त्रिभुवनं मम ।
यज्ञभागाश्च दैत्यैश्च दानवैश्च बलाधिकैः ४ ॥

टी०। कि हे देव! मुझपर प्रसन्न हूजिये जो कि मेरे लड़कों से त्रिभुवन और यज्ञभाग इत्यादि पराक्रम म अधिक दैत्य और दानवों ने छीन लिया है ४॥

मू० तन्निमित्तप्रसादं त्वं कुरुष्व मम गोपते।
अंशेन तेषां भ्रातृत्वं गत्वा नाशय तद्रिपून् ५॥

टी०। उसके लिये मेरे ऊपर तुम प्रसन्नता करो कि आप अपने अंश से मेरे उदर में जन्मलेकर अपने भाइयों अर्थात् मेरे पुत्रों के शत्रुवों का नाश कीजिये ५॥

मू० यथा मे तनयाभूयोयज्ञभागभुजः प्रभो।
भवेयुरधिपाश्चैव त्रैलोक्यस्य दिवाकर ६॥

टी०। कि जिस प्रकार हे प्रभु, दिवाकर! मेरे लड़केलोग फिर त्रिलोक के मालिक हों और अपना यज्ञभाग पावैं ६॥

मू० तथानुकम्पां पुत्राणां सुप्रसन्नोरवे मम।
कुरु प्रपन्नार्तिहर स्थितिकर्त्ता त्वमुच्यसे ७॥

टी०। हे रवे! बहुत प्रसन्नहोकर वैसी कृपा मेरे लड़कों पर कीजिये क्योंकि हे शरणागतदुःखहरण! आप स्थितिकर्त्ता कहलाते हैं ७॥

मार्कण्डेयउवाच॥

मू० ततस्तामाह भगवान् भास्करोवारितस्करः।
प्रणतामदितिं विप्र प्रसादसुमुखोविभुः ८॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुके! अदिति से यह सब बातें सुनकर उसके बाद जलके चुरानेवाले व्यापक सूर्य्य भगवान् प्रसन्न होकर प्रणाम कियेहुई अदिति से बोले ८॥

मू० सहस्रांशेन ते गर्भे सम्भूयाहमशेषतः।
त्वत्पुत्रशत्रूनदिते नाशयाम्याशु निर्वृतः ९॥

टी०। कि हे अदिति! प्रसन्न होताहुआ सहस्र अंश से मैं तुम्हारे गर्भ में प्राप्तहोकर और जन्मलेकर बहुत जल्द तुम्हारे पुत्रों के शत्रुवों का नाश करताहूँ ९॥

मू० इत्युक्त्वा भगवान्भास्वानन्तर्द्धानमुपागमत् ।
निवृत्ता सापि तपसः संप्राप्ताखिलवाञ्छिता १० ॥

टी० । इतना कहकर सूर्य्य भगवान् अन्तर्द्धान होगये और अदिति भी अपनी सब कामना पाकर तप से निवृत्त होगई १० ॥

मू० ततोरश्मिसहस्रात्तु सौसुम्नाख्योरवेः करः ।
विप्रावतारं संचक्रे देवमातुरथोदरे ११ ॥

टी० । कुछ दिनों के बाद हे विप्रजी ! सूर्य्यभगवान् अपनी किरणों के सहस्र में से सौसुम्ननामं किरण के द्वारा जन्मलेने के वास्ते अदिति के उदर में प्रवेश करगये ११ ॥

मू० कृच्छ्रचान्द्रायणादीनि सा च चक्रे समाहिता ।
शुचिः संधारयामास दिव्यं गर्भमिति द्विज १२ ॥

टी० । हे क्रौष्टुके ब्राह्मण ! अदिति पवित्र और एकाग्रचित्त होकर कृच्छ्र और चान्द्रायण इत्यादि व्रतकरके उस दिव्य गर्भ को धारण किये रही १२ ॥

मू० ततस्तां कश्यपः प्राह किञ्चित्कोपप्लुताक्षरम् ।
किम्मारयसि गर्भाण्डमिति नित्योपवासिनी १३ ॥

टी० । उस गर्भवती को उन व्रतों में प्रवृत्त देखकर उसके बाद कश्यपजी कुछ क्रोधकरके अधखुले अक्षरों के द्वारा यह अदिति से बोले कि तू नित्य उपवासकरके अपने गर्भ को क्यों मारती है अर्थात् इस गर्भवासी को क्यों दुःख देती है १३ ॥

मू० सा च तं प्राह गर्भाण्डमेतत्पश्यसि कोपना ।
न मारितं विपक्षाणां मृत्यवे तद्भविष्यति १४ ॥

टी० । तब क्रोध से अदिति ने उन से कहा कि इस मेरे गर्भ को किसी तरह नुक़सान नहीं पहुँचसक्ता है इस को देखिये व इस गर्भ से जो पुरुष उत्पन्न होगा वह अपने शत्रुओं को मारेगा १४ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० इत्युक्त्वा तं तदा गर्भमुत्ससर्ज्ज सुरारणिः ।

जाज्वल्यमानन्तेजोभिः पत्युर्व्वचनकोपिता १५ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि उससमय पतिके वचन से क्रोधकिये हुई अदिति ने यह बात कश्यपसे कहकर तेजों के सबबसे जलतेहुये गर्भ को त्यागकिया १५ ॥

मू० तं दृष्ट्वा कश्यपोगर्भमुद्यद्भास्करवर्चसम् ।
तुष्टाव प्रणतोभूत्वा ऋग्भिराद्याभिरादरात् १६ ॥

टी०। कश्यप ने उस गर्भ को उदयकाल के सूर्यसमान तेजवान् देखकर प्रणामकरके आदिवाली ऋग्वेद की ऋचाओं से आदरपूर्वक उस की स्तुति किया १६ ॥

मू० संस्तूयमानः सतदा गर्भाण्डात्प्रकटोऽभवत् ।
पद्मपत्रसवर्णाभस्तेजसा व्याप्तदिङ्मुखः १७ ॥

टी०। उस स्तोत्र को सुनकर उसवक्त कमलपत्र की सदृश रक्तवर्ण और अपने तेज से सम्पूर्ण दिशाओं को प्रकाशमान करताहुआ उस गर्भ से एक बालक उत्पन्नहुआ १७ ॥

मू० अथान्तरिक्षादाभाष्य कश्यपं मुनिसत्तमम् ।
सतोयमेघगम्भीरवागुवाचाशरीरिणी १८ ॥

टी०। फिर मुनिश्रेष्ठ कश्यपजी से जलसमेत मेघ समान गम्भीर शब्द से अतन्त्री आकाशवाणी हुई १८ ॥

मू० मारितं ते यतः प्रोक्तमेतदण्डं त्वया मुने ।
तस्मान्मुने सुतस्तेऽयं मार्त्तण्डाख्योभविष्यति १९ ॥

टी०। कि हे मुनि! तुमने जो अदिति से कहाथा कि इस गर्भ को क्यों मारती है इसवास्ते हे मुने! यह तुम्हारा पुत्र मार्त्तण्डनाम से विख्यात होगा १९ ॥

मू० सूर्य्याधिकारं च विभुर्जगत्येषकरिष्यति ।
हनिष्यत्यसुरांश्चायं यज्ञभागहरानरीन् २० ॥

टी० और यह पुत्र तुम्हारा संसार में व्यापक होगा और सूर्य्य का अधिकार भी यह आपही करैगा और देवतों के यज्ञभागहर वैरी असुरों को मारैगा २० ॥

मू० देवानिशम्येति वचोगगनात्समुपागमन् ।
प्रहर्षमतुलं यातादानवाश्च हतौजसः २१ ॥

टी० । यह आकाशवाणी सुनकर देवतालोग बहुत प्रसन्नहोकर आये और दानव सब उस आकाशवाणी के सुनने से बलहीन होगये २१ ॥

मू० ततोयुद्धाय दैतेयानाजुहाव शतक्रतुः ।
सहदेवैर्मुदायुक्तादानवाश्च समभ्ययुः २२ ॥

टी० । बाद इसके इन्द्र ने दैत्यों को युद्धकरने के वास्ते ललकारकर पुकारा फिरतो हर्षसंयुत दानवलोग देवतों के साथ युद्धकरने के वास्ते चारों तरफ़ से पहुँचगये २२ ॥

मू० तेषां युद्धमभूद् घोरं देवानामसुरैस्सह ।
शस्त्रास्त्रदीप्तिसंदीप्तं समस्तभुवनान्तरम् २३ ॥

टी० । तब देवताओं का असुरों के साथ बड़ाभयानक युद्धहुआ अस्त्र और शस्त्र के प्रकाश से सम्पूर्ण पृथ्वी प्रकाशवान् होगई २३ ॥

मू० तस्मिन् युद्धे भगवता मार्त्तण्डेन निरीक्षिता ।
तेजसा दह्यमानास्ते भस्मीभूतामहासुराः २४ ॥

टी० । फिर तो उस युद्ध में भगवान् मार्त्तण्ड के तेजयुक्त देखने से सब महाअसुर जलकर भस्म होगये २४ ॥

मू० ततः प्रहर्षमतुलं प्राप्ताः सर्व्वे दिवौकसः ।
तुष्टुवुस्तेजसां योनिं मार्त्तण्डमदितिन्तथा २५ ॥

टी० । उस के बाद सब देवतालोग बहुतप्रसन्न हुये और प्रसन्नता की दशा में तेजोंकी खानि मार्तण्ड भगवान् और अदितिकी बहुत स्तुतिकी २५ ॥

मू० स्वाधिकारांस्तथा प्राप्तायज्ञभागांश्च पूर्व्ववत् ।
भगवानपि मार्त्तण्डः स्वाधिकारमथाकरोत् २६ ॥

टी० । और वैसेही देवतालोगों ने पूर्ववत् अपना अधिकार और यज्ञभाग पाया और भगवान् मार्त्तण्ड ने भी अपना अधिकार किया २६ ॥

मू० कदम्बपुष्पवद्भास्वानधश्चोर्ध्वं च रश्मिभिः ।
वृत्ताग्निपिण्डसदृशोदध्रे नातिस्फुरद्वपुः २७ ॥

टी०। कदम्ब के पुष्पसमान नीचे और ऊपर किरणों से प्रकाशवान् और गोल अग्निपिण्ड की तरह उनका शरीर हुआ अत्यन्तप्रकट शरीर को नहीं धारणकिया २७॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेमार्त्तण्डोत्पत्तिर्नामपञ्चाधिक शततमोऽध्यायः १०५॥

अथ एकसौ छःका अध्याय॥

मार्कण्डेयउवाच॥

मू० अथ तस्मै ददौ कन्यां संज्ञानाम्नीं विवस्वते।
प्रसाद्य प्रणतोभूत्वा विश्वकर्म्मा प्रजापतिः १॥

टी०। फिर मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुके! इसके बाद विश्वकर्म्मा प्रजापति ने प्रणामकरके व प्रसन्नकराके अपनी लड़की संज्ञा का विवस्वान् भगवान् के साथ विवाह करदिया १॥

मू० वैवस्वतस्तु सम्भूतोमनुस्तस्यां विवस्वतः।
पूर्व्वमेव तथाख्यातं तत्स्वरूपं विशेषतः २॥

टी०। उसी कन्या से विवस्वान् के वैवस्वत मनु पुत्र उत्पन्नहुये जिसका स्वरूप विस्तारपूर्व्वक पहले ही कहचुका हूं २॥

मू० त्रीण्यपत्यान्यसौ तस्यां जनयामास गोपतिः।
द्वौ पुत्रौ सुमहाभागौ कन्याञ्च यमुनां मुने ३॥

टी०। हे महाभाग! इन सूर्य के उस संज्ञा से मार्त्तण्ड भगवान् के तीन सन्तान उत्पन्नहुईं उन तीनों में दो महाभाग पुत्र और तीसरी यमुनानाम्नी कन्या थी ३॥

मू० मनुर्वैवस्वतोज्येष्ठः श्राद्धदेवः प्रजापतिः।
ततोयमोयमी चैव यमलौ संबभूवतुः ४॥

टी०। उनमें बड़े वैवस्वत मनु श्राद्धदेव प्रजापति हुये उनसे छोटे एक पुत्र दूसरी कन्या एक साथ उत्पन्नहुईं थी पुत्र का नाम यम और कन्या का नाम यमुना था ४॥

मू० यत्तेजोऽभ्यधिकन्तस्य मार्त्तण्डस्य विवस्वतः ।
तेनापि तापयामास त्रीँल्लोकान् सचराचरान् ५ ॥

टी० । परन्तु विवस्वान् (सूर्य) भगवान् का जो अत्यन्ततेज था उस से भी स्थावर जङ्गमसमेत तीनोंलोक तप्त होगये ५ ॥

मू० गोलाकारन्तु तं दृष्ट्वा संज्ञारूपं विवस्वतः ।
असहन्ती महत्तेजः स्वच्छायांपेद्यसाब्रवीत् ६ ॥

टी० । और वह गोलाकार विवस्वान् का रूप देखकर बड़े तेज को न सहतीहुई संज्ञा अपनी छाया से बोली ६ ॥

संज्ञोवाच ॥

मू० अहं यास्यामि भद्रन्ते स्वमेव भवनं पितुः ।
निर्विकारं त्वयाप्यत्र स्थेयंमच्छासनाच्छुभे ७ ॥

टी० । संज्ञाने कहा कि हे शुभे ! मैं अपने पिता के घर जाऊँगी तूभी मेरी आज्ञासे निडरहोकर इस स्थान में रहु तेरा कल्याण होगा ७ ॥

मू० इमौ च बालकौ मह्यं कन्या च वरवर्णिनी ।
सम्भाव्यौ नैव चाख्येयमिदम्भगवते त्वया ८ ॥

टी० । मेरे ये दोनों पुत्र और तीसरी उत्तमवर्णवाली कन्या इस स्थान में हैं इन सब की रक्षाकरना और यह बात विवस्वान् भगवान् मार्त्तण्ड से न कहना ८ ॥

छायोवाच ॥

मू० आकेशग्रहणाद्देवि आशापान्नैव कर्हिचित् ।
आख्यास्यामि मतं तुभ्यं गम्यतां यत्र वाञ्छितम् ९ ॥

टी० । यह बात संज्ञा से सुनकर छाया बोली कि जबतक मेरे शिरके बाल पकड़कर शाप न देंगे तबतक तुम्हारी बातको मैं किसीतरह न कहूँगी परन्तु जिस समय मेरे शिरके बाल पकड़कर शाप देनेपर मुस्तैद होंगे तब मैं कहदूँगी इस प्रण पर तुमको जहां इच्छा हो जाओ ६ ॥

मू० इत्युक्ता छायया संज्ञा जगाम पितृमन्दिरे ।
तत्रावसत् पितुर्गेहे कञ्चित्कालं शुभेक्षणा १० ॥

टी०। छायासे इस तरह कहीहुई शुभ नेत्रवाली संज्ञा पिता के घर को गई और कुछ दिन वहां पिताके घरमें रही १० ॥

मू० भर्तुः समीपं याहीति पित्रोक्ता सा पुनः पुनः।
अगच्छद्वडवा भूत्वा कुरून् विप्रोत्तरांस्ततः ११ ॥

टी०। उसके बाद हे द्विज ! एक दिन संज्ञाके पिताने कहा कि तुम अपने स्वामी के समीप जाओ इस तरह बार बार अपने पिता के कहने से संज्ञा घोड़ीका रूप धारणकरके उत्तर तरफ़ कुरुदेश में चलीगई ११॥

मू० तत्र तेपे तपः साध्वी निराहारा महामुने।
पितुः समीपं यातायाः संज्ञायावाक्यतत्परा १२ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहतेहैं कि हे महामुने ! वह पतिव्रता संज्ञा वहां निराहार होकर तप करनेलगी और पिताके समीप गईहुई संज्ञाके वचन में तत्पर १२ ॥

मू० तद्रूपधारिणी छाया भास्करं समुपस्थिता।
तस्याञ्च भगवान् सूर्य्यः संज्ञायामिति चिन्तयन् १३॥

टी०। और संज्ञा का रूप धारणकरके छाया भास्कर भगवान् के पासगई और सूर्य्य भगवान् ने उसको संज्ञा समझकर १३ ॥

मू० तथैव जनयामास द्वौ सुतौ कन्यका तथा।
पूर्व्वजस्य मनोस्तुल्यः सावर्णिस्तेन सोऽभवत् १४ ॥

टी०। वैसेही उससे दो पुत्र और एक कन्या उत्पन्नकिया उन तीनों में जो बड़ा लड़का था वह वैवस्वत मनुके तुल्य था उसीसे वह सावर्णि-नाम से विख्यातहुआ १४ ॥

मू० यस्तयोः प्रथमं जातः पुत्रयोर्द्विजसत्तम।
द्वितीयोयोऽभवच्चान्यः सग्रहोऽभूच्छनैश्चरः १५ ॥

टी०। जोकि उन दोनों पुत्रों से पहले पैदाहुआ था हे द्विजसत्तम ! अन्य जो दूसरा पुत्रथा वह शनैश्चरनाम ग्रह हुआ १५ ॥

मू० कन्याभूत्तपती या तां वव्रे संवरणोनृपः।
संज्ञातु पार्थिवी तेषामात्मजानां यथाऽकरोत् १६ ॥

टी०। और छोटी कन्या को महाराज संवरण विवाह करनेके वास्ते लेगये जिसका नाम तपती था फिर जैसा अपने अपने पुत्र और कन्या को पृथ्वी सम्बन्धिनी छाया प्यार करती थी १६ ॥

मू० स्नेहान्नपूर्व्वजातानां तथा कृतवती सती।
मनुस्तत्क्षान्तवांस्तस्या यमश्चास्या न चक्षमे १७॥

टी०। वैसा संज्ञा के लड़कों को पतिव्रता छाया प्यार न करती थी यह अपराध छाया का वैवस्वत मनु तो सह गये परन्तु यमराज से सहा न गया १७॥

मू० बहुशो वाच्यमानस्तु पितुः पत्न्या सुदुःखितः।
स वै कोपाच्च बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात् १८॥

टी०। छायाने यमको बहुत घुड़का तब कोप व लड़कपन व होनहार के बल से दुःखित हो यमराजने १८॥

मू० पदा सन्तर्जयामास छायासंज्ञां यमो मुने।
ततः शशाप च यमं संज्ञा सामर्षिणी भृशम् १९॥

टी०। छाया को मारने के वास्ते लात उठाया तब हे मुने! छाया ने भी बहुत क्रोध करके यम को शाप दिया १९॥

छायोवाच ॥

मू० पदा तर्जयसे यस्मात् पितृभार्य्यां गरीयसीम्।
तस्मात्तवैव चरणः पतिष्यति न संशयः २०॥

टी०। छाया बोली कि मैं तुम्हारे पिता की भार्य्या हूँ जिस लिये तुम मुझे जो मानने योग्य हूँ लात मारते हो उसीसे तुम्हारा वह पांव निस्सन्देह गिर जायगा २०॥

मू० यमस्तु तेन शापेन भृशं पीडितमानसः।
मनुना सह धर्म्मात्मा सर्व्वं पित्रे न्यवेदयत् २१॥

टी०। धर्मात्मा यम ने छाया के उस शापसे बहुत दुःखित होकर मनु समेत आकर अपने पिता से सब हाल कहा २१॥

यम उवाच ॥

मू० स्नेहेन तुल्यमस्मासु माता देव न वर्त्तते।

विसृज्य ज्यायसोऽप्यस्मान् कनीयांसौ बुभूर्षति २२ ॥

टी० । यमराज बोले कि हे देव ! माता हमारी हम सबों में बराबर स्नेह नहीं करती है क्यों कि जो बड़े हैं उन हम लोगों को छोड़ कर मेरे दोनों छोटे भाइयों को यह अधिक प्यार करती है २२ ॥

मू० तस्यां मयोद्यतः पादो न तु देहे निपातितः ।
बाल्याद्वा यदि वा मोहात्तद्भवान् क्षन्तुमर्हति २३ ॥

टी० । इस वास्ते मैंने क्रोध करके उस पर लात उठाया परन्तु उस के शरीर में मेरी लात नहीं लगी लड़कपन के सबबसे या अज्ञान से यह अपराध मुझ से हुआ आप क्षमा कीजिये २३ ॥

मू० शप्तोऽहं तात कोपेन जनन्या तनयो यतः ।
ततो न मन्ये जननीमिमां वै तपतांवर २४ ॥

टी० । जिससे माता होकर उन्होंने क्रोधसे मुझ लड़के को शाप दिया है इस वास्ते हे तपनेवालों में श्रेष्ठ, पिता जी ! मैं इसको माता नहीं समझता हूँ २४ ॥

मू० विगुणेष्वपि पुत्रेषु न माता विगुणा पितः ।
पादस्ते पततां पुत्र कथमेतत्प्रवक्ष्यति २५ ॥

टी० । क्यों कि हे पिता जी ! पुत्र यद्यपि कोई अपराध भी करै तौ भी माता उसका बदला नहीं लेती यदि यह मेरी माता होती तो यह कैसे कहती कि हे पुत्र ! तुम्हारा पांव गिर पड़े २५ ॥

मू० तव प्रसादाच्चरणो न पतेद्भगवन् यथा ।
मातृशापादयं मेऽद्य तथा चिन्तय गोपते २६ ॥

टी० । हे गोपते, भगवन् ! अब तुम्हारी प्रसन्नतासे जिस तरह माता के शाप से मेरा यह पांव न गिरै सो उपाय चिन्तन कीजिये २६ ॥

रविरुवाच ॥

मू० असंशयमिदं पुत्र भविष्यत्यत्र कारणम् ।
येन त्वामाविशत्क्रोधो धर्म्मज्ञं सत्यवादिनम् २७ ॥

टी० । यह बात सुनकर मार्त्तण्ड बोले कि हे पुत्र ! तुम ऐसे धर्मा-

त्मा व सत्यवादी को जो माता के ऊपर क्रोध हुआ है तो इसमें निस्सन्देह कुछ कारण है २७॥

मू० सर्व्वेषामेव शापानां प्रतिघातो हि विद्यते।
नतु मात्राभिशप्तानां क्वचिच्छापनिवर्त्तनम् २८॥

टी०। और सब किसी का शाप दिया हुआ तो निवृत्त भी होजाता है परन्तु माता का दिया हुआ शाप कहीं निवृत्त नहीं होसक्ता २८॥

मू० न शक्यमेतन्मिथ्या तु कर्त्तुं मातुर्वचस्तव।
किञ्चित्तव विधास्यामि पुत्रस्नेहादनुग्रहम् २९॥

टी०। तुम्हारी माता का यह वचन मिथ्या करनेकी सामर्थ्य नहीं है परन्तु हे पुत्र! तुम्हारे वास्ते मैं स्नेह से कुछ अनुग्रह करूंगा २६॥

मू० कृमयो मांसमादाय प्रयास्यन्ति महीतलम्।
कृतं तस्या वचः सत्यं त्वञ्च त्रातो भविष्यसि ३०॥

टी०। जब कीड़े मांस लेकर पृथ्वी में जायँगे तब उसका वचन सत्य होगा और तुम्हारी रक्षा भी होगी ३०॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० आदित्यस्त्वब्रवीच्छायां किमर्थं तनयेषु वै।
तुल्येष्वप्यधिकः स्नेह एकत्र क्रियते त्वया ३१॥

टी०। मार्कण्डेय जी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि! आदित्य भगवान् इतनी बात यम से कहकर संज्ञारूपी छाया से बोले कि तुम क्यों एक लड़के के साथ बहुत प्रीति रखती हो और दूसरे के साथ कम तुम्हारी प्रीति तो सब के साथ तुल्य रहनी चाहिये ३१॥

मू० ननं नैषां त्वं जननी संज्ञा कापि त्वमागता।
विगुणेष्वप्यपत्येषु कथं माता शपेत्सुतम् ३२॥

टी०। इस से मालूम होता है कि तुम इन सब की माता नहीं हो इन सब की माता संज्ञा कहीं चली गई तुम कोई दूसरी संज्ञा बनकर यहां हो क्योंकि माता अवगुणी पुत्र को भी क्योंकर शाप देवैगी ३२॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० सा तत्परिहरन्ती च नाचचक्षे विवस्वतः।

सचात्मानं समाधाय युक्तस्तत्त्वमपश्यत ३३ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि उस छायाने इस बातका जवाब असल हाल विवस्वान् से न कहा परन्तु विवस्वान् योगी ने ध्यान करके असल हाल को उसके जान लिया ३३ ॥

मू० तं शप्तुमुद्यतं दृष्ट्वा छायासंज्ञा दिवस्पतिम्।
भयेन कम्पती ब्रह्मन् यथा वृत्तं न्यवेदयत् ३४ ॥

टी०। और सब बात समझकर शाप देने पर मुस्तैद हुये यह दशा देखकर संज्ञारूपी छाया डर से कंपित हुई और हे ब्रह्मन्! सब वृत्तान्त अपना ठीक ठीक विवस्वान् से कह दिया ३४ ॥

मू० विवस्वांस्तु ततः क्रुद्धः श्रुत्वा श्वशुरमभ्यगात्।
स चापि तं यथान्यायमर्च्चयित्वा दिवाकरम् ॥
निर्दग्धुकामं रोषेण सान्त्वयामास सुव्रतः ३५ ॥

टी०। विवस्वान् भगवान् सबवृत्तान्त छायासे सुनकर उसके बाद क्रोधित होकर अपने श्वशुर के पास गये और अपने क्रोध से उनको जलादेने की इच्छा की परन्तु उनके श्वशुर विश्वकर्म्मा ने न्यायपूर्व्वक अर्घ इत्यादि से पूजन करके उनका क्रोध शान्त किया ३५ ॥

विश्वकर्म्मोवाच ॥

मू० तवातितेजसा व्याप्तमिदं रूपं सुदुस्सहम्।
असहन्ती ततस्संज्ञा वने चरति वै तपः ३६ ॥

टी०। और विश्वकर्मा ने कहा कि हे दिवाकर! आपका यह रूप अत्यन्त तेज से भराहुआ है जो सहा नहीं जाता इस तेजस्वी रूप की ज्योति संज्ञा से न सही गई इससे वह वन में तपस्या करती है ३६ ॥

मू० द्रक्ष्यते तां भवानद्य स्वभार्य्यां शुभचारिणीम्।
रूपार्थं भवतोऽरण्ये चरन्तीं सुमहत्तपः ३७ ॥

टी०। आप उस वन में जाकर आज उत्तम आचरणवाली अपनी भार्य्या को देखियेगा आपका रूप शान्त और सहने योग्य होनेके वास्ते वह बड़ी तपस्या करती है ३७ ॥

मू० स्मृतं मे ब्रह्मणो वाक्यं यदि ते देव रोचते।
रूपं निर्वर्त्तयाम्येतत्तव कान्तं दिवस्पते ३८॥

टी०। हे सूर्य्य! मुझ को ब्रह्मा जीका कहाहुआ यादहै यदि हे देव! आप को अच्छा समझ पड़े तो इसदुस्सह व तेजसे युक्त रूपको निवृत्तकरदेऊं ३८

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० यतोहि भास्वतो रूपं प्रागासीत्परिमण्डलम्।
ततस्तथेतितंप्राह त्वष्टारम्भगवान् रविः ३९॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि! जिससे पहले सूर्यनारायण का रूप सब ओर मण्डलाकार था उसी लिये यह सब बात सुनकर सूर्य्य भगवान् विश्वकर्म्मा से बोले कि जो आप कहते हैं वही होगा अर्थात् इस दुःसह रूपको आप निवृत्त कीजिये ३९॥

मू० विश्वकर्म्मा त्वनुज्ञातः शाकद्वीपे विवस्वतः।
भ्रमिमारोप्य तत्तेजः शातनायोपचक्रमे ४०॥

टी०। फिर विश्वकर्म्मा ने विवस्वान् भगवान् की आज्ञा पाकर शाकद्वीप में जाकर सूर्य को चक्रपैधरकर तेज समूह को अलग अलग करने का प्रारम्भ किया ४०॥

मू० भ्रमताऽशेषजगतां नाभिभूतेन भास्वता।
समुद्राद्रिवनोपेता सा रुरोह महीनभः ४१॥

टी०। व चक्रमें सूर्य्य को रखकर घुमाने लगे तो पहिये की नाह की तरह सूर्य्य के घूमने से सम्पूर्ण जगत् समुद्र और पर्व्वत और वन के साथ घूमती हुई पृथ्वी आकाश में चली गई ४१॥

मू० गगनं चाखिलं ब्रह्मन् स चन्द्रग्रहतारकम्।
अधोगतं महाभाग बभूवाक्षिप्तमाकुलम् ४२॥

टी०। और हे ब्रह्मन्! समस्त आकाश चन्द्रमा और ग्रह और तारों समेत नीचे जाकर व्याकुल हो रहे थे ४२॥

मू० विक्षिप्तसलिलाः सर्व्वे बभूवुश्च तथाब्धयः।
व्यभिद्यन्त महाशैलाः शीर्णसानुनिबन्धनाः ४३॥

टी०। व सब समुद्रों के जल खलभलाने लगे और बड़े बड़े पर्व्वत सब फट गये व उन के कंगूरा टूट गये ४३॥

मू० ध्रुवाधाराण्यशेषाणि धिष्ण्यानि मुनिसत्तम।
त्रुट्यद्रश्मिनि बन्धानि अधोजग्मुःसहस्रशः ४४॥

टी०। हे मुनि सत्तम! जिन स्थानों के ध्रुव आधार हैं वे सब हजारों स्थान रस्सियों के बन्धन के टूट जाने से नीचे चले गये ४४॥

मू० वेगभ्रमणसंजातवायुक्षिप्ताः समन्ततः।
व्यशीर्य्यन्त महामेघा घोररावविचारिणः ४५॥

टी०। और वेग से घूमने के सबब से हवा के जोर से फेंके हुए सब ओर बादल छिटक छिटक कर भयानक शब्द से गर्जने लगे ४५॥

मू० भास्वद्भ्रमण विभ्रान्तं भूम्याकाशरसातलम्।
जगदाकुलमत्यर्थं तदासीन्मुनिसत्तम ४६॥

टी०। हे मुनि श्रेष्ठ! सूर्य भगवान् के घूमने से पृथ्वी और आकाश और पाताल इत्यादि सब घूमने लगे इससे संसार बहुत विकल हुआ ४६॥

मू० त्रैलोक्ये सकले विप्र भ्रममाणेसुरर्षयः।
देवाश्च ब्रह्मणा सार्द्धं भास्वन्तमभितुष्टुवुः ४७॥

टी०। हे ब्राह्मण! उस समय तीनोंलोक को घूमते हुए देखकर ब्रह्मा जी समेत सब देवर्षि व देवता सूर्य्य भगवान् की स्तुति करने लगे ४७॥

मू० आदिदेवोऽसि देवानां ज्ञातमेतत्स्वरूपतः।
सर्गस्थित्यन्तकालेषु त्रिधाभेदेन तिष्ठसि ४८॥

टी०। कि इस आपके स्वरूप से ज्ञात होता है कि आप देवताओं के मध्यमें आदि देव हैं व सृष्टि और स्थिति और अन्तकाल में तीन प्रकार से आप विराजमान रहते हैं ४८॥

मू० स्वस्तितेऽस्तु जगन्नाथ घर्म्मवर्षाहिमाकर।
जुषस्व शान्तिं लोकानां देवदेव दिवाकर ४९॥

टी०। हे जगन्नाथ! और हे दिवाकर! और हे उष्णवर्षा हिमाकर! हे देवदेव! अब आप इन सबलोकों की शान्ति कीजिये आपका कल्याण होवै ४९॥

मू० इन्द्रश्चागत्य तं देवं लिख्यमानं यथाऽस्तुवत्।
जय देव जगद्व्यापिन्नयाशेषजगत्पते ५० ॥

टी०। फिर उस समय इन्द्र भी आकर सब देवताओं के साथ चक्रपै आरोपित मार्त्तण्ड देवकी इसतरह स्तुति करनेलगे कि हे देव! आपकी जयहो व हे जगत्व्यापी, जगत् के स्वामी! आपकी जयहो ५० ॥

मू० ऋषयश्च ततः सप्तवशिष्ठात्रिपुरोगमाः।
तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैः स्वस्तिस्वस्तीतिवादिनः ५१ ॥

टी०। फिर सप्तर्षिलोग और वशिष्ठ और अत्रि इत्यादि मुनिलोग तरह तरह के स्तोत्रों से स्वस्ति स्वस्ति ऐसा कहकहकर स्तुति करनेलगे ५१ ॥

मू० वेदोक्ताभिरथाग्र्याभिर्बालिखिल्याश्चतुष्टुवुः।
ऋग्भिराद्याभिभास्वन्तं लिख्यमानं मुदायुताः ५२ ॥

टी०। इसी तरह बालिखिल्यालोग भी वेदकी कहीहुई उत्तम व आदिवाली ऋचाओं से चक्रपै स्थापित सूर्य्य भगवान् की मूर्त्तिको हर्षयुक्त स्तुति करनेलगे ५२ ॥

मू० त्वं नाथ मोक्षिणां मोक्षो ध्येयस्त्वं ध्यानिनां परः।
त्वं गतिः सर्व्वभूतानां कर्म्मकाण्डेऽपि वर्त्तताम् ५३ ॥

टी०। कि हे नाथ! आप मोक्षकी इच्छा करनेवालों को मोक्ष देनेवाले और ध्यान करनेवाले योगियों के उत्तमध्यान करनेयोग्यहैं और कर्मकाण्ड करनेवाले सबलोगों के भी आपगति हैं ५३ ॥

मू० शं प्रजाभ्योऽस्तु देवेश शन्नोऽस्तु जगताम्पते।
शन्नोऽस्तु द्विपदे नित्यं शन्नश्चास्तु चतुष्पदे ५४ ॥

टी०। हे देवताओं के ईश! हे जगत्पते! प्रजाओं का और हम लोगों का और हमलोगों के नौकर चाकर और वाहन इत्यादि चौपायों का कल्याणकीजियें ५४ ॥

मू० ततो विद्याधरगणा यक्ष राक्षसपन्नगाः।
कृताञ्जलिपुटाः सर्व्वे शिरोभिःप्रणता रविम् ५५ ॥

टी०। तत्पश्चात् विद्याधर और यक्ष गण और राक्षस गण और

सब पन्नगगणोंने आकर हाथ जोड़े हुए शिर झुका झुका कर सूर्य्य भगवान् को प्रणाम किया ५५॥

मू० ऊचुरेवं विधा वाचो मनःश्रोत्रसुखावहाः।
सह्यं भवतु ते तेजो भूतानां भूतभावन ५६॥

टी०। और मन और श्रवणको सुखदेनेवाले ऐसेशब्दसे बोले कि हे भूतभावन! आप का यह दुःसह तेज सब किसी के सहने योग्य होजाय ५६॥

मू० ततो हाहाहूहूश्चैव नारदस्तुम्बुरुस्तथा।
उपगायितुमारब्धा गान्धर्व्वकुशलारविम् ५७॥

टी०। तत्पश्चात् हाहा हूहू नाम गन्धर्व्व और नारद और तुम्बुरु आए ये सबलोग गान विद्या में निपुणथे इस वास्ते ये सब सूर्य्य भगवान् के चरित्र गाने लगे ५७॥

मू० षड्जमध्यमगान्धारग्रामत्रयविशारदाः॥
मूर्च्छनाभिश्च तालैश्च सम्प्रयोगैः सुखप्रदम् ५८॥

टी०। षड्ज और मध्यम और गान्धार और तीन ग्रामोंमें चतुर वे लोग मूर्च्छना इत्यादि के साथ और सम्पूर्ण प्रयोग और सब तालों के साथ सुखदायक गान करने लगे ५८॥

मू० विश्वाची च घृताची च उर्व्वस्यथतिलोत्तमा।
मेनका सहजन्या च रम्भाश्चाप्सरसाम्बराः ५९॥

टी०। और उस स्थान में विश्वाची और घृताची और उरवशी और तिलोत्तमा और मेनका और सहजन्या और रम्भा यह सब उत्तम अप्सरा गण ५९॥

मू० नन्तुर्जगतामीशे लिख्यमाने विभावसौ।
हावभावविलासाढ्यान् कुर्व्वन्त्योऽभिनयान् बहून् ६०॥

टी०। चक्रपैथापित सूर्य्य की मूर्त्ति के पास हाव भाव के साथ नाना-प्रकार के विलास करके बहुत अभिनय (कटाक्षादि) करती हुई नृत्य करने लगीं ६०॥

मू० प्रावाद्यन्त ततस्तत्र बेणुबीणादिझर्झराः।
पणवाः पुष्कराश्चैव मृदङ्गाः पटहानकाः ६१॥

टी० । और उसके बाद वहां पर बीणा और बेणु व झर्झर और पणव और मृदंग इत्यादि बाजा बजाने वाले लोग बाजा बजाने लगे ६१ ॥

मू० देवदुन्दुभयः शङ्खाः शतशोऽथ सहस्रशः ।
गायद्भिश्चैव गन्धर्व्वैर्नृत्यद्भिश्चाप्सरोगणैः ६२ ॥

टी० । और देवतालोग दुंदुभी और सैकड़ों व हजारों शंख बजाने लगे और गन्धर्व्व लोग गाने लगे और अप्सरायें नृत्य करने लगीं ६२ ॥

मू० तूर्य्यवादित्रघोषैश्च सर्व्वं कोलाहलीकृतम् ।
ततः कृताञ्जलिपुटा भक्तिनम्रात्ममूर्त्तयः ६३ ॥

टी० । तुरुही इत्यादि बाजाओं के शब्दों से सम्पूर्ण जगत् में शोर मच गया तब हाथ जोड़कर और साष्टांग दण्डवत् करके भक्ति पूर्व्वक ६३ ॥

मू० लिख्यमानं सहस्रांशुं प्रणेमुः सर्व्वदेवताः ।
ततः कोलाहले तस्मिन् सर्व्वदेवसमागमे ।
तेजसः शातनं चक्रे विश्वकर्म्मा शनैः शनैः ६४ ॥

टी० । चक्रपैथापे हुए सूर्य्य की मूर्त्तिको सबदेवतालोगोंने प्रणाम किया सब देवों की उसी धूमधाम और भीड़भाड़ में विश्वकर्म्मा ने सूर्य्य के महा-तेज को धीरे धीरे शमन कर लिया ॥ ६४ ॥

मू० इति हिमजलघर्मकालहेतो
र्हरकमलासनविष्णुसंस्तुतस्य ।
तनुपरिलिखनन्निशम्यभानो
र्व्रजति दिवाकरलोकमायुषोऽन्ते ६५ ॥

टी० । जाड़ा और जल और उष्णता के कारण जो सूर्य्य हैं और जिन का ब्रह्मा और विष्णु और महेश इत्यादि देवताओं ने स्तुति किया है उन की मूर्त्ति का तेज कम करना इस कथा को जो मनुष्य सुनते हैं वे आयुर्बल के अन्तकाल में सूर्य्यलोक में प्राप्त होते हैं ६५ ॥

इति श्री मार्कण्डेय पुराणे भानु तनु लिखने नाम षडधिक
शततमो ऽध्यायः ॥ १०६ ॥

अथ एकसौ सातका अध्याय ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० लिख्यमाने ततो भानौ विश्वकर्म्मा प्रजापतिः।
उद्भूतपुलकः स्तोत्रमिदञ्चक्रे विवस्वतः १ ॥

टी०। इतना कहकर मार्कण्डेयजी बोले कि प्रजापति विश्वकर्म्मा ने सूर्य्य भगवान् के तेज को शमन करके उनकी बनी हुई मूर्त्ति की रोमांच-युक्त इस तरह स्तुति करने लगे १ ॥

मू० विवस्वते प्रणतहितानुकम्पिने महात्मनेसमजवसप्तसप्तये।
सुतेजसे कमलकुलावबोधिनेनमस्तमःपटलपटावपाटिने२॥

टी०। कि कमल वन के प्रकाशक व तेजवान् व सप्ताश्व और प्रणत-पाल सब लोगों के हितकारी व अन्धकार नाशक विवस्वान् महात्मा के लिये मैं प्रणाम करता हूँ २ ॥

मू० पावनातिशयपुण्यकर्म्मणे नैककामविषयप्रदायिने।
भास्वरानलमयूखशायिनेसर्व्वलोकहितकारिणेनमः ३ ॥

टी०। और अनेक कामके विषय देनेवाले और पावन व पुण्य कर्म्मों के प्रकाशक व प्रकाशमान अग्नि किरण धारी व सब लोक के हितकारी मार्त्तण्ड को मैं प्रणाम करता हूँ ३ ॥

मू० अजाय लोकत्रयकारणायभूतात्मने गोपतये वृषाय।
नमो महाकारुणिकोत्तमायसूर्य्याय चक्षुःप्रभवालयाय ४ ॥

टी०। और महा कृपालुवों में उत्तम व त्रैलोक्य कारण और कामों के वर्षने वाले व अज भूतात्मा व किरणों के स्वामी व सब की आंखों में निवास करने वाले व उसके उत्पन्न कारक सूर्य्य भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ ४ ॥

मू० विवस्वते ज्ञानभृतेन्तरात्मने जगत्प्रतिष्ठाय जगद्धितैषिणे।
स्वयम्भुवे लोकसमस्तचक्षुषेसुरोत्तमायामिततेजसेनमः५॥

टी०। और जगत् हितकारी और सब किसी के नेत्र और स्वयम्भुव

और उत्तम देवता व अमित तेजवान् व ज्ञानात्मा व अन्तरात्मा विवस्वान को मैं प्रणाम करता हूँ ५ ॥

मू० क्षणमुदयाचलमौलिमणिःसुरगण गीतगरिष्ठः ।
त्वमुरुमयूखसहस्रवपुर्जगति विभासि तमांसि नुदन् ६ ॥

टी० । हे मार्त्तण्ड ! आप क्षणभर उदयाचल पर्व्वतपर मस्तक पै मणि की तरह उदय होकर देवगणों से गाये जातेहो व संसार के अन्धकार को अपनी हज़ारों किरणों से दूर करते हुए जगत् में प्रकाशमान होतेहैं ६ ॥

मू० भवतिमिरासवपानमदाद् भवतिविलोहितविग्रहता ।
मिहरविभासितया सुरांतत्रिभुवनभावन भानि करैः ७ ॥

टी० । और हे त्रिभुवन भावन ! संसार के अन्धकार रूपी मदिरा के पान करने से आपका शरीर लाल है और हे सूर्य ! आप उस अरुणाईके सबब से छविसमूहों करके शोभित होते हैं ७ ॥

मू० रथमधिरुह्य समावयवं चारुविकम्पितमुरुरुचिरम् ।
सततमखिलहयैर्भगवन् चरसिजगद्धिताय विततम् ८ ॥

टी० । और हे भगवन् ! आप अपने बहुत उत्तम रथमें सब घोड़ों को जोतकर और सुन्दरता पूर्वक हिलतेहुए उस रथपर सवार होकर जगत् की भलाई के वास्ते सब दिन घूमते हैं ८ ॥

मू० अमृतसुधांशुरसेन समं विबुधपितॄनपितर्पयसे ।
अरिगणसूदन तेन तवप्रणतिमुपेत्यलिखामि वपुः ९ ॥

टी० । हे शत्रुओंके नाश करने वाले मार्त्तण्ड ! आप चन्द्रमाके अमृत युक्त रससे देवता और पितरों को भी साथही तृप्त करते हैं उसी लिये आपको प्रणाम करके आपही के प्रसाद से जगत्की भलाई के वास्ते आपके शरीर को लिखाहै याने चक्रपै धरकर तेज शान्त किया ९ ॥

मू० शुकसमवर्णहयप्रथितं तव पदपांशुपवित्रतमम् ।
नतजनवत्सल मां प्रणतं त्रिभुवनपावन पाहि रवे १० ॥

टी० । जो आप का रूप सुवाके समान रंग वाले घोड़ों से प्रसिद्धहै हे प्रणत जन प्रिय ! आपके चरणों की धूर से हम पवित्र हैं व हम आप के चरणों को प्रणाम करते हैं हे रवे ! हमारी रक्षा कीजिये १० ॥

मू० इतिसकलजगत्प्रसूतिभूतं
त्रिभुवनपावनधामहेतुमेकम्।
रविमखिलजगत्प्रदीपभूतं
त्रिदशवरप्रणतोऽस्मिसर्वदात्वाम् ११॥

टी०। और हे त्रिभुवन पावन ! आप सब संसार की उत्पत्तिकरनेवाले हो व तेजोंके एकही हेतु हो और सब जगत् के अन्धकार दूर करने के वास्ते दीपकहैं हे त्रिदशोत्तम ! आपको मैं सदैव प्रणाम करताहूँ ११॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेसूर्य्यस्तवनंनामसप्ताधिकशततमोऽध्यायः॥ १०७॥

एकसौ आठका अध्याय॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० एवं सूर्यस्तवं कुर्व्वन् विश्वकर्मा दिवस्पतेः।
तेजसः षोडशं भागं मण्डलस्थमधारयत् १॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुके ! इसप्रकार विश्वकर्मा ने सूर्य्यदेव की स्तुति करतेहुये उनके तेज के सोलहवें हिस्से को मण्डल में रहने दिया १॥

मू० शातितैस्तेजसोभागैर्द्दशभिः पञ्चभिस्तथा।
अतीवकान्तिमच्चारु भानोरासीत्तदा वपुः २॥

टी०। और पन्द्रह हिस्सा तेज उनका निकालकर अलग २ कर दिया तब सूर्य्य भगवान् का शरीर बहुतही सुन्दर कान्तिमान् होगया २॥

मू० शातितञ्चास्ययत्तेजस्तेन चक्रं विनिर्मितम्।
विष्णोः शूलञ्च शर्व्वस्य शिबिका धनदस्य च ३॥

टी०। पन्द्रह हिस्सा तेज जो सूर्य्य भगवान् का निकालागया उस से विष्णु का सुदर्शन चक्र और महादेवजी का त्रिशूल और कुबेर की पालकी ३॥

मू० दण्डः प्रेतपतेः शक्तिर्देव सेनापतेस्तथा।
अन्येषाञ्चैव देवानामायुधानि स विश्वकृत् ४॥

टी०। और यमराज का दण्ड व स्वामिकार्त्तिकेयकी शक्ति और दूसरे दूसरे देवताओं के हथियार भी ४॥

मू० चकार तेजसा भानोर्भासुराण्यरिशान्तये।
इति शातिततेजाः सशुशुभे नातितेजसा ५॥

टी०। जो कि सूर्य्य के तेज से प्रकाशमान हैं असुरों के मारने के वास्ते विश्वकर्मा ने बनाया जब इसतरह सूर्य्य भगवान् का तेज पन्द्रह हिस्सा निकल गया तब सोलहवें भाग के कम तेजसे बहुत सुन्दर होगये ५॥

मू० वपुर्दधार मार्त्तण्डः सर्वावयवशोभनम्।
सददर्श समाधिस्थः स्वां भार्य्यां वडवाकृतिम् ६॥

टी०। और सूर्य्यनारायण ने सब अंगों से उत्तम शरीरको धारणकिया तत्पश्चात् सूर्य्य भगवान् ने ध्यानकरके अपनी स्त्री को घोड़ी के रूप में देखा ६॥

मू० अधृष्यां सर्व्वभूतानां तपसा नियमेन च।
उत्तरांश्च कुरून् गत्वा भूत्वाऽश्वोभानुरागमत् ७॥

टी०। जो कि उत्तर दिशामें कुरुदेश में बहुत नियम व तपस्या से सब प्राणियों के सहनेयोग्य है तब वहां से सूर्य्य भगवान् भी घोड़े का रूप धारणकरके वहां पहुँचे ७॥

मू० सा च दृष्ट्वा तमायान्तं परपुंसोविशङ्कया।
जगाम सम्मुखे तस्य पृष्ठरक्षणतत्परा ८॥

टी०। उस समय वह घोड़ीरूप संज्ञा सूर्य्य भगवान् को घोड़ारूप देखकर और परपुरुष समझकर रति के डर से पिछले धड़ की रक्षा के हेतु घूमकर सम्मुख हो गई ८॥

मू० ततश्च नासिकायोगं तयोस्तत्र समेतयोः।
वडवायाञ्च तत्तेजोनासिकाभ्यां विवस्वतः ९॥

टी०। तब उस घोड़ी और घोड़ा की नाक से नाक मिलजाने से सूर्य्य भगवान् का तेज दोनों नाक की राह से घोड़ीरूपी संज्ञा के शरीर में प्रवेश करगया ९॥

मू० देवौ तत्र समुत्पन्नावश्विनौ भिषजां वरौ।
नासत्यदस्रौ तनयावश्विवक्त्राद्विनिर्गतौ १० ॥

टी०। उसी तेज से उस घोड़ीरूप संज्ञा के गर्भ रहगया फिर उस गर्भ से दो पुत्र उत्पन्न हुये जो देवताओं के उत्तम वैद्य अश्विनीकुमार नाम हुये जिनका नाम नासत्य और दस्र विख्यात हुआ क्योंकि ये दोनों अश्विनी के मुख से उत्पन्न हुये १० ॥

मू० मार्त्तण्डस्य सुतावेतावश्वरूपधरस्य हि।
रेतसोऽन्ते च रेवन्तःखड्गी धन्वी तनुत्रधृक् ११ ॥

टी०। अश्वरूपधारी मार्त्तण्ड भगवान् के ये दोनों पुत्र उत्पन्न होने के पश्चात् जो वीर्य्य उनका पतनहुआ उससे ढाल तलवार और धनुष हाथ में लिये व बक्तर पहने ११ ॥

मू० अश्वारूढोसमुद्भूतोबाणतूणसमन्वितः।
ततः स्वरूपममलं दर्शयामास भानुमान् १२ ॥

टी०। और तीर तर्कश लिये घोड़े पर सवार रेवन्तनाम पैदाहुये तत्पश्चात् सूर्य्य भगवान् ने निर्मलरूप दिखलाया १२॥

मू० तस्य शान्तं समालोक्य सा रूपं मुदमाददे।
स्वरूपधारिणीञ्चेमां सनिनाय निजालयम् १३ ॥

टी०। तब संज्ञा सूर्य्य भगवान् का शान्तरूप देखकर बहुत हर्षित हुई फिर सूर्य्य भगवान् रूपधारिणी संज्ञा को अपने घर ले आये १३॥

मू० संज्ञां भार्य्यां प्रीतिमतीं भास्करोवारितस्करः।
ततः पूर्वसुतोयोऽस्याः सोऽभूद्वैवस्वतोमनुः १४ ॥

टी०। उससमयसे संज्ञाको जलचोरावनेवाले सूर्य्यभगवान्केसाथ बहुत प्रीति रहनेलगी और इस संज्ञाके जो बड़े पुत्रथे वे वैवस्वतमनुहुये १४॥

मू० द्वितीयश्च यमः शापाद्धर्म्मदृष्टिरनुग्रहात्।
यमस्तु तेन शापेन भृशं पीडितमानसः १५ ॥

टी०। और दूसरेपुत्र उनकेयम यद्यपि छायाके उसशापसे बहुत पीडितचित्तवाले थे परन्तु सूर्य्य भगवान् के अनुग्रहसे धर्म्मदृष्टिहुये १५ ॥

मू० धर्म्मोऽभिरोचते यस्माद्धर्म्मराजस्ततः स्मृतः ।
कृमयोमांसमादाय पादतस्ते महीतलम् १६ ॥

टी० । जो कि धर्म्म में उनकी रुचि बहुत थी इस कारण धर्म्मराज नाम से विख्यातहुये जब छाया ने उनको शाप दियाथा कि तुम्हारा पांव गिरजायगा तब उनके पिताने उनसे कहा था कि तुम्हारे चरण का मांस कीड़े सब लेजायँगे १६ ॥

मू० पतिष्यन्तीति शापान्तं तस्य चक्रे पिता स्वयम् ।
धर्म्मदृष्टिर्यतश्चासौ समोमित्रे तथाऽहिते १७ ॥

टी० । और तुम धर्म्मात्मा होगे यह कहकर उनके शाप को निवृत्त किया उस दिन से जिस लिये धर्मदृष्टिवाले यम शत्रु और मित्र पर समान दृष्टि रखनेलगे १७ ॥

मू० ततोनियोगे तं याम्ये चकार तिमिरापहः ।
तस्मै ददौ पिता विप्र भगवाँल्लोकपालताम् १८ ॥

टी० । उसीसे मार्त्तण्ड भगवान् ने यम को यमराज के स्थान में नियोग किया व हे विप्रजी ! उनके लिये पिता भगवान् सूर्यनारायणजी ने लोकपालता दिया १८ ॥

मू० पितॄणामाधिपत्यञ्च परितुष्टोदिवाकरः ।
यमुनाञ्च नदीञ्चक्रे कलिन्दान्तरवाहिनी १९ ॥

टी० । और प्रसन्न होकर सूर्य ने उनको पितरों का मालिक बनाया और यमुनानाम अपनी कन्या को कलिन्दपर्व्वत में यमुनानदी होकर बहने की आज्ञा दी १९ ॥

मू० अश्विनौ देवभिषजौ कृतौ पित्रा महात्मना ।
गुह्यकाधिपतित्वे च रेवन्तोविनियोजितः २० ॥

टी० । और नासत्य और दस्रको जो वड़वारूप धारणके समय उत्पन्न हुये थे देवताओं का वैद्य बनाया और वीर्य्यपतन होने से जो रेवन्त उत्पन्नहुये थे उनको मार्त्तण्ड भगवान् ने गुह्यकगणोंका पति बनाया २० ॥

मू० रेवन्तमप्याह ततोभगवाँल्लोकभावितः ।
त्वमप्यशेषलोकस्य पूज्योवत्स भविष्यसि २१ ॥

टी०। और उसके बाद लोकभावन भगवान् सूर्यनारायणजी ने यह भी उनको वरदान दिया कि हेवत्स! तुमभी सब लोकके पूज्यहोगे २१॥

मू० अरण्यादिमहादाववैरिदस्युभयेषु च।
त्वां स्मरिष्यन्ति ये मर्त्यामोक्ष्यन्ते ते महापदः २२॥

टी०। और उस वन में जहां आपसे आप अग्नि उत्पन्नहोती है और जहां शत्रुओं का भय हो या चोर का डर हो उस जगह जो लोग तुमको याद करैंगे वे बड़ीविपत्ति से छूटजावैंगे २२॥

मू० क्षेमं बुद्धिं सुखं राज्यमारोग्यं कीर्त्तिमुन्नतिम्।
नराणां परितुष्टस्त्वं पूजितः सम्प्रदास्यसि २३॥

टी०। और जो लोग तुम्हारी पूजा करैंगे उनका तुम कल्याणकरोगे और मनुष्योंके ऊपर प्रसन्नहोकर तुम बुद्धि और सुख और राज्य व महत्त्व दोगे और उसको आरोग्य रक्खोगे और कीर्त्तिमान् करोगे २३॥

मू० छायासंज्ञासुतश्चापि सावर्णिः सुमहायशाः।
भाव्यः सोऽनागते काले मनुः सावर्णिकोष्टमः २४॥

टी०। और छायारूपी संज्ञा के पुत्र सावर्णिक जो बड़ेयशस्वी हुये थे भविष्यकाल में अष्टम सावर्णि मनु होंगे २४॥

मू० मेरुपृष्ठे तपोघोरमद्यापि चरते प्रभुः।
भ्राताशनैश्चरस्तस्य ग्रहोऽभूच्छासनाद्रवेः २५॥

टी०। वे प्रभु इस समय भी मेरुपर्व्वत पर विकरालतपस्या करते हैं और उन के भाई शनैश्चर सूर्य्य भगवान् की आज्ञा से ग्रह हुये २५॥

मू० यवीयसी तु या कन्याऽऽदित्यस्याभूद्द्विजोत्तम।
अभवत्सा सरिच्छ्रेष्ठा यमुना लोकपावनी २६॥

टी०। हे द्विजोत्तम! आदित्य भगवान् की छोटी कन्या जो यमुना नदी हुई वह सब नदियों में श्रेष्ठ व संसार को पवित्रकरनेवाली है २६॥

मू० यस्तु ज्येष्ठोमहाभागः सर्गोयस्येह साम्प्रतम्।
विस्तरं तस्य वक्ष्यामि मनोर्वैवस्वतस्य ह २७॥

टी०। और सब से बड़े लड़के उनके जो महाभाग वैवस्वत मनु हुये

व जिनकी सृष्टि इस समयहै उनका चरित्रभी विस्तारपूर्वक कहूँगा २७॥

मू० इदं योजन्म देवानां शृणुयाद्वा पठेच्च वा।
विवस्वतस्तनूजानां रवेर्माहात्म्यमेव च २८॥

टी०। यह विवस्वान् भगवान् के देवपुत्रों का जन्म और सूर्य्य का माहात्म्य जो लोग सुनते हैं और पढ़ते हैं २८॥

मू० आपदं प्राप्य मुच्येत प्राप्नुयाच्च महायशः।
अहोरात्रकृतं पापमेतच्छमयते श्रुतम्॥
माहात्म्यमादिदेवस्य मार्त्तण्डस्य महात्मनः २९॥

टी०। वे लोग सब दुःख से छूटकर बड़ायश पाते हैं और यह आदि-देव मार्त्तण्ड महात्माका माहात्म्य सुनने से दिनरात का कियाहुआ पाप नाश होजाता है २९॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेरवेर्म्माहात्म्यंनामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः १०८॥

एकसौनौका अध्याय॥

क्रौष्टुकिरुवाच॥

मू० भगवन् कथितः सम्यग्भानोः सन्ततिसम्भवः।
माहात्म्यमादिदेवस्य स्वरूपं चातिविस्तरात् १॥

टी०। इतनी कथा सुनकर क्रौष्टुकिजी बोले कि हे भगवन्! आदि-देव सूर्य्य भगवान् की संततिकी उत्पत्तिका वृत्तान्त और माहात्म्य और स्वरूप उनका आपने विस्तारपूर्वक अच्छीतरह कह सुनाया १॥

मू० भूयोऽपि भास्वतः सम्यङ्माहात्म्यं मुनिसत्तम।
श्रोतुमिच्छाम्यहं तन्मे प्रसन्नोवक्तुमर्हसि २॥

टी०। परन्तु हे मुनिश्रेष्ठ! फिरभी विस्तारपूर्वक उनका माहात्म्य सुनाचाहता हूँ प्रसन्नहोकर उस को मुझसे कह सुनाइये २॥

मार्कण्डेयउवाच॥

मू० श्रूयतामादिदेवस्य माहात्म्यं कथयामि ते।

विवस्वतोयश्चकार पूर्व्वमाराधितोजनैः ३ ॥

टी० । यह सुनकर मार्कण्डेय मुनि बोले कि सूर्य्य भगवान् ने पूर्व्व-काल में लोगों के आराधनाकरने से जो जो चरित्र किये हैं उन आदि-देव का माहात्म्य आपसे कहताहूँ सुनिये ३ ॥

मू० दमस्य पुत्रोविख्यातोराजाऽभूद्राज्यवर्द्धनः ।
स सम्यक्पालनञ्चक्रे पृथिव्याः पृथिवीपतिः ४ ॥

टी० । कि पूर्व्व काल में दमनाम एक विख्यात राजा होगया है जिस का पुत्र राज्यवर्द्धन नामसे विख्यातथा उस भूपतिने हरतरह से इस पृथ्वी का पालनकिया ४ ॥

मू० धर्म्मतः पाल्यमानन्तु तेन राष्ट्रं महात्मना ।
ववृधेऽनुदिनं विप्र जनेन च धनेन च ५ ॥

टी० । हे विप्रजी ! उसके धर्म्मपूर्व्वक राज्यपालन करने से उस रा-ज्य में प्रतिदिन धन और प्रजा की वृद्धि होनेलगी ५ ॥

मू० हृष्टपुष्टमतीवासीत्तस्मिन्राजन्यशेषतः ।
राजकं सकलञ्चोर्व्यां पौरजानपदोजनः ६ ॥

टी० । और उस राजा के समय में सबलोग पृथ्वीपर नगर और देश के रहनेवाले बहुतहर्षित और पुष्ट थे ६ ॥

मू० नोपसर्गोन च व्याधिर्न च व्यालोद्भवं भयम् ।
नचावृष्टिभयं तत्र दमपुत्रे महीपतौ ७ ॥

टी० । और जब दमपुत्र राजा थे तब उसकी राज्यमें उपसर्ग (उपद्रव) और व्याधि और सांपों का भय और अवषर्ण का डर कभी न हुआ ७ ॥

मू० सईजे च महायज्ञैर्ददौ दानानि चार्थिनाम् ।
स्वधर्म्मस्याविरोधेन बुभुजे विषयानपि ८ ॥

टी० । और उस राजाने बड़ी यज्ञोंसे पूजन किया और याचकों को मुँहमांगा दानदिया और धर्म्मपूर्व्वक न्यायसे नानाप्रकारके विषयभी भोग किया ८ ॥

मू० तस्यैव कुर्व्वतोराज्यं सम्यक्पालयतः प्रजाः ।

सप्तवर्षसहस्राणि जग्मुरेकमहोयथा ६ ॥

टी० । इस तरह सम्यक्प्रकार से प्रजापालन करतेहुये उस राजा के साथ सातहजार वर्ष एक दिनके समान व्यतीत होगये ६ ॥

मू० विदूरथस्य तनया दाक्षिणात्यस्य भूभृतः।
तस्य पत्नी बभूवाथ मानिनीनाममानिनी १० ॥

टी० । और दक्षिण देशके राजा विदूरथकी सुंदरीकन्या मानिनीनाम थी जिस मानवती से राजा राज्यवर्द्धन का विवाह हुआथा १० ॥

मू० कदाचित्तस्य सा सुभ्रूः शिरसोऽभ्यञ्जनादृता।
पश्यतोराजलोकस्य मुमोचाश्रूणि मानिनी ११ ॥

टी० । वह सुन्दरी एक दिन राज्यवर्द्धन का शिर आदर से मलरही थी उस समय राजमनुजोंके देखतेहुये राजाके शिर का एक बाल श्वेत पकाहुआ देखकर रोने लगी ११ ॥

मू० तदश्रुबिन्दवोगात्रे यदा तस्य महीपतेः।
तदा वीक्ष्याश्रुवदनां तामपृच्छत्तु मानिनीम् १२ ॥

टी० । जब उसके आँसू के बूँद महाराज के शरीर पर गिरे तब वह चौंककर उठबैठे और उस मानवती की आंखों से आंसू गिरतेहुये देखकर पूछनेलगे १२ ॥

मू० निःशब्दमश्रुमोक्षेण रुदन्तीं तां विलोक्य वै।
किमेतदिति पप्रच्छ मानिनीं राज्यवर्द्धनः १३ ॥

टी० । चुपचाप, आंसू गिराके रोतीहुई उस मानिनी को देखकर राज्यवर्धनने पूंछा कि इसतरह आंसू क्यों बहाती हो १३ ॥

मू० पृष्टा सा तु ततस्तेन भर्त्रा प्राह मनस्विनी।
न किञ्चिदिति तां भूयः पप्रच्छ समहीपतिः १४ ॥

टी० उसके बाद उस पति से पूंछीहुई मानिनी ने कहा कि इसका कारण कुछनहीं है विना कारण ही मेरी आंखों से आंसू गिरते हैं महाराजने फिर पूंछा कि सच बताओ विनाकारण इसतरह आंसू नहीं गिरताहै १४ ॥

मू० बहुशः पृच्छतस्तस्य भूभृतः सा सुमध्यमा।

दर्शयामास पलितं केशभारान्तरोद्भवम् १५ ॥

टी०। जब महाराज ने बहुत हठकरके पूंछा तब उस सुमध्यमा मानिनी ने उनके केशों में उत्पन्न पकाहुआ बाल दिखाया १५ ॥

मू० एतत्पश्येति भूपाल किमिदं मन्युकारणम् ।
ममातिमन्दभाग्यायाजहासाथ नृपस्ततः १६ ॥

टी०। और कहनेलगी कि हे महाराज ! मैं बड़ी अभागिनी हूं इसको देखिये आपके केश में यह क्या है इसी से मैं बेमन होकर रोती हूं तत्पश्चात् राजा उस केश को देखकर हँसे १६ ॥

मू० सविहस्याह तां पत्नीं शृण्वतां सर्व्वभूभृताम् ।
पौराणाञ्च महीपालाये तत्रासन् समागताः १७ ॥

टी० और जितने राजालोग व पुरवासी वहां आयेथे उन सब के सुनतेहुये उस मानिनी से हँसकर कहनेलगे १७ ॥

मू० शोकेनालं विशालाक्षि रोदितव्यं न ते शुभे ।
जन्मर्द्धिपरिणामाद्या विकाराः सर्व्वजन्तुषु १८ ॥

टी०। कि हे विशाललोचनि, शुभे ! वृथा शोचकरके तुझको रोना न चाहिये जन्मलेने पर सब प्राणियों में जन्म वृद्धि व अन्तादिक विकार होते हैं परन्तु तुम इसका कुछ शोच मत करो १८ ॥

मू० अधीताः सकलावेदाइष्टायज्ञाः सहस्रशः ।
दत्तं द्विजानां पुत्राश्च समुत्पन्नावरानने १९ ॥

टी०। क्योंकि हे सुन्दरानने ! मैंने सम्पूर्ण वेद पढ़ा और हजारों यज्ञ किया और ब्राह्मणों को बहुत सा दान दिया है और पुत्रभी बहुत उत्पन्न होचुके हैं १९ ॥

मू० भुक्ताभोगास्त्वया सार्द्धं ये मर्त्यैरतिदुर्लभाः ।
सम्यक् च पालिता पृथ्वी साधु युद्धेष्वनुष्ठितम् २० ॥

टी०। और तुम्हारे साथ भोग भी बहुत किया जो भोग मनुष्यों को बहुतदुर्लभ हैं और अच्छीतरह पृथ्वी का पालन भी किया और लड़ाइयों में धर्म्मपूर्व्वक शूरता भी किया २० ॥

मू० मित्रैःसहेष्टैर्हसितं विहृतञ्च वनान्तरे ।
किमन्यन्न कृतं भद्रे पलितेभ्योविभेषि यत् २१ ॥

टी० । और इष्ट मित्रों के साथ बहुत हँसा खेला भी और वनान्तर में जाकर बहुततरह के विहार भी किया हे कल्याणि ! अब हम को कुछ करना बाकी नहीं है तुम केश पकने से क्यों डरती हो २१ ॥

मू० भवन्तु केशाः पलिताबलयः सन्तु मे शुभे ।
शैथिल्यमेतु मे कायः कृतकृत्योऽस्मि मानिनि २२ ॥

टी० । हे उत्तमे, मानिनि ! यदि मेरे सब केश पकजायँ व सिमटे पड़जावें और देह भी शिथिल होजाय तो भी मुझ कुछ शोच नहीं है क्योंकि मैं कृतकृत्य हूँ अर्थात् जन्मलेने का सब फल पाचुका हूँ २२ ॥

मू० मूर्ध्नि यद्दर्शितं भद्रे भवत्या पलितं मम ।
चिकित्सामेषतस्याहं करोमि वनसंश्रयात् २३ ॥

टी० । हे कल्याणि ! अब जो तुम ने मेरे शिर में बाल पकाहुआ दिखलाया है इसकी औषधि यहीहै कि अब मैं वन में जाकर तपस्या करूं २३ ॥

मू० बाल्ये बालक्रिया पूर्व्वं तद्वत्कौमारके च या ।
यौवने चापि या योग्या वार्द्धके वनसंश्रया २४ ॥

टी० । पहले मनुष्योंको बालअवस्था में बालक्रिया और कुमारअवस्था में कुमारक्रिया और युवाअवस्था में युवाक्रिया भी करनाचाहिये और वृद्ध अवस्था में वनवासकरके तपस्या करनाचाहिये २४ ॥

मू० एवं मत्पूर्व्वकैर्भद्रे कृतन्त्वत्पूर्व्वकैश्च यत् ।
अतोन तेऽश्रुपातस्य किञ्चित्पश्यामि कारणम् २५ ॥

टी० । हे कल्याणि ! इसीतरह अवस्था का जो कर्म्म है उसको मेरे व तुम्हारे पूर्ववाले पितालोगों ने किया है इसलिये तुम्हारे आंसू गिरने का कुछ कारण मैं नहीं देखता हूँ २५ ॥

मू० अलन्ते मन्युना भद्रे नन्वभ्युदयकारि मे ।
दर्शनं पलितस्यास्य मा रोदीर्निष्प्रयोजनम् २६ ॥

टी० । हे कल्याणि ! अब तुम्हारा शोचकरना और विना प्रयोजन

रोना वृथा है और इस पलितकेशको दिखलाने से तूने मेरा उदयकिया २६॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० ततः प्रणम्य तं भूपाः पौराश्चैव समीपगाः।
साम्ना प्रोचुर्महीपालामहर्षे राज्यवर्द्धनम् २७॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे महर्षे! इतनी बातें राजा राज्यवर्द्धन की सुनकर उसके बाद राजालोग और पुरवासीलोग जो पास बैठे थे राजा को प्रणामकरके प्रियवचन बोले २७॥

मू० न रोदितव्यमनया तव पत्न्या नराधिप।
रोदितव्यमिहास्माभिरथवा सर्व्वजन्तुभिः २८॥

टी०। कि हे महाराज! तुम्हारी इस रानी को न रोनाचाहिये किन्तु इसबात में हम को व सब प्राणियों को रोनाचाहिये २८॥

मू० त्वं ब्रवीषि यथा नाथ वनवासाश्रितं वचः।
पतन्ति तेन नः प्राणालालितानां त्वया नृप २९॥

टी०। हे नाथ, राजन्! "वन में जायँगे" आपका यह वचन सुनकर आप के पालन कियेहुये हमलोगों का प्राण चलाजाता है २९॥

मू० सर्व्वे यास्यामहे भूप यदि याति भवान्वनम्।
ततोऽशेषक्रियाहानिः सर्व्वपृथ्वीनिवासिनाम् ३०॥

टी०। हे महाराज! यदि आप वन में जाइयेगा तो आपके साथ हमलोग भी जायँगे तब पृथ्वी में रहनेवाले सबलोगों की क्रिया सब नष्ट होजायगी ३०॥

मू० भविष्यति न सन्देहस्त्वयि नाथ वनाश्रये।
साच धर्म्मोपघाताय यदि तत्प्रविमुच्यताम् ३१॥

टी०। इस में कुछ सन्देह नहीं है और हे नाथ! तुम को वन में आश्रित होनेपर वह कर्मकी हानि धर्म के नाश के लिये होगी इससे वन जाने की इच्छा छोड़दो ३१॥

मू० सप्तवर्षसहस्राणि त्वयेयं पालिता मही।
तत्समुत्थं महापुण्यमालोकय नराधिप ३२॥

टी० । हे महाराज ! सातहजार वर्षतक इस पृथ्वीपालन करनेसे उपजाहुआ जो पुण्य आप को प्राप्तहुआ है उसको देखिये ३२ ॥

मू० वने वसन्महाराज त्वं करिष्यसि यत्तपः ।
तन्महीपालनस्यास्य कलां नार्हति षोडशीम् ३३ ॥

टी० । और हे महाराज ! आप वन में बसकर जो तप कीजियेगा वह धर्म इस पृथ्वीपालन के सोलहवें हिस्से के बराबर भी न होगा ३३ ॥

राजोवाच ॥

मू० सप्तवर्षसहस्राणि मयेयं पालिता मही ।
इदानीं वनवासस्य मम कालोऽयमागतः ३४ ॥

टी० । इतना सुनकर महाराज राज्यवर्द्धन बोले कि सातहजार वर्ष मैं इस पृथ्वी का पालन करचुका परन्तु अब मेरा वनवास करने का यह समय पहुँचगया ३४ ॥

मू० ममापत्यानि जातानि दृष्टा मेऽपत्यसन्ततीः ।
स्वल्पैरेव ममाहोभिरन्तकोन सहिष्यति ३५ ॥

टी० । और मेरे पुत्र भी बहुत उत्पन्न होचुके और उन पुत्रों के भी पुत्र उत्पन्न होचुके यह देखकर थोड़ेही दिनों में यमराज इस लोक में मेरा रहना न सहिसकैंगे ३५ ॥

मू० यदेतत्पलितं मूर्ध्नि तद्विजानीत नागराः ।
दूतभूतमनार्य्यस्य मृत्योरत्युग्रकर्म्मणः ३६ ॥

टी० । और मेरे शिर में जो यह पकाहुआ केश है हे प्रवीण लोगो ! उसको तुमलोग यही समझो कि यह अतिउग्र कर्मवाले दुष्ट मृत्यु का दूत है ३६ ॥

मू० सोहं राज्ये सुतं कृत्वा भोगांस्त्यक्त्वा वनाश्रयः ।
तपस्तप्स्ये समायान्ति न यावद्यमसैनिकाः ३७ ॥

टी० । इसवास्ते पुत्र को राजगद्दी देकर विषयभोग को छोड़कर जब तक यमकी सेना न आवे तब तक वन में जाकर तप करूँ ३७ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० ततोधियासुः सवनं दैवज्ञाननतीपतिः ।

पुत्रराज्याभिषेकाय दिनलग्नान्यपृच्छत ३८॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुके! इतना कहकर महाराज राज्यवर्द्धन ने वनवास की इच्छा से पुत्र को राज्य देने के लिये दिन लग्न ज्योतिषियों को बुलवाकर पूंछा॥ ३८॥

मू० श्रुत्वा च ते तु नृपतेर्व्वचोव्याकुलचेतसः।
दिनंलग्नञ्च होराश्च न विदुः शास्त्रदृष्टयः ३९॥

टी०। वे शास्त्रदृष्टिवाले ज्योतिषीलोग राजा के वचन सुनकर ऐसे व्याकुलचित्त होगये कि दिन और लग्न और मुहूर्त्त सब उन को भूल गया ३९॥

मू० ऊचुश्च तं महीपालं दैवज्ञाबाष्पगद्गदम्।
ज्ञानानि नः प्रणष्टानि श्रुत्वैतत्ते वचोनृप ४०॥

टी०। और वे ज्योतिषीलोग महाराज राज्यवर्द्धन से गद्गदवाणी संयुक्त बोले कि हे महाराज! आपका यह वचन सुनकर हमलोगों का सब ज्ञान नष्ट होगया ४०॥

मू० ततोऽन्यनगरेभ्यश्च भृत्यैराष्ट्रेभ्यएव च।
आहूताः स्वस्वनगरात् प्राचुर्य्येणाभ्युपागमन् ४१॥

टी०। तब महाराज राज्यवर्द्धन ने दूसरे नगर और राज्य से ज्योतिषियों को नौकरों से बुलवाया तब वह लोग भी बहुत अपने २ नगरसे आये ४१॥

मू० समुपेत्य महीपालं तं यियासुं मुने वनम्।
प्रकम्पितशिरसोभूत्वा प्रोचुर्ब्राह्मणसत्तमाः ४२॥

टी०। हे मुने! वनको जाने की इच्छावाले उस राजा के पास आकर वे द्विजोत्तम शिर कँपाकर कहनेलगे ४२॥

मू० प्रसीद पाहि नोराजन् पालिताः स्म यथापुरा।
सीदिष्यत्यखिलोलोकस्त्वयि भूप वनाश्रये ४३॥

टी०। कि हे राजन्! आप प्रसन्नहूजिये और हमलोगों को जिसप्रकार से पहले पालनकिया है उसी प्रकार फिर पालनकीजिये क्योंकि हे भूप! आपके वन में जाने से सब किसी मनुष्य को कष्ट होगा ४३॥

मू० त्वंकुरुष्व तथा राजन् यथा नो सीदते जगत्।
यावज्जीवामहे वीर स्वल्पकालमिमे वयम्॥
नेच्छामश्च भवच्छून्यं द्रष्टुं सिंहासनं विभो ४४॥

टी०। हे महाराज! जिसतरह जगत् को पीडा न हो वैसाही कीजिये अब हे विभो, वीर! जबतक ये हमलोग थोड़े समय तक जीवैं तबतक इस गद्दीको शून्य अर्थात् आपके विना हम नहीं देखनाचाहते हैं ४४॥

मार्कण्डेयउवाच॥

मू० इत्येवं तैस्तथान्यैश्च द्विजैः पौरपुरःसरैः।
भूपैर्भृत्यैरमात्यैश्च राजा प्रोक्तः पुनः पुनः ४५॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुके! इस प्रकार उन ब्राह्मणों और अन्य पुरवासियोंसमेत भूप और भृत्य और मंत्रीलोगों ने महाराज राज्यवर्द्धन से बार २ प्रार्थना किया ४५॥

मू० वनवासविनिर्बन्धं नोपसंहरते यदा।
क्षमिष्यत्यन्तकोनेति ददाति च तथोत्तरम् ४६॥

टी०। परन्तु जब महाराज वनगमन के हठ से निवृत्त न हुये और सब को यही उत्तरदिया कि यद्यपि तुमलोग ऐसा कहतेहो परन्तु यमराज हमारा रहना नहीं सहसकैंगे ४६॥

मू० ततोऽमात्याश्च भृत्याश्च पौरवृद्धास्तथा द्विजाः।
समेत्य मन्त्रयामासुः किमत्र क्रियतामिति ४७॥

टी०। तत्पश्चात् मंत्री और भृत्य और पुरवासी और वृद्ध और ब्राह्मणलोगों ने मिलकर आपुस में यह विचारकिया कि अब इसमें क्या करनाचाहिये ४७॥

मू० तेषां मन्त्रयतां विप्र निश्चयोऽयमजायत।
अनुरागवतान्तत्र महीपालेऽतिधार्म्मिके ४८॥

टी०। हे विप्रजी! उन ब्राह्मणों को उस अत्यन्तधर्म्मात्मा राजा से बहुत अनुराग था इस वास्ते उनलोगोंने आपसमें विचारकरके यही बात सिद्धान्त किया ४८॥

मू० सम्यग्ध्यानपराभूत्वा प्रार्थयामः समाहिताः।

तपसाराध्य भास्वन्तमायुरस्य महीपतेः ४९ ॥

टी०। कि हमलोग एकचित्त होकर सम्यक्प्रकार से ध्यानकरके तपस्याकर सूर्य्य भगवान् को प्रसन्नकर इस राजा की आयुर्बल की आधिक्यता मांगें ४६ ॥

मू० तत्रैकनिश्चयाः कार्य्ये केचिद्गेहे च भास्करम्।
सम्यगर्घ्योपचाराद्यैरुपहारैरपूजयन् ५० ॥

टी०। वहां इस प्रकार से कार्य यही बात निश्चयकरके कोई तो घर में सम्यक्प्रकार से अर्घोपचारआदि उपहारों से सूर्य्य भगवान् की पूजा करनेलगे ५० ॥

मू० अपरे मौनिनोभूत्वा ऋग्जापेन तथाऽपरे।
यजुषामथ साम्नाञ्च तोषयाञ्चक्रिरे रविम् ५१ ॥

टी०। और कोई मौनहोकर और कोई ऋग्वेद व यजुर्वेद और सामवेद के मंत्र पाठकरके सूर्य्य भगवान् को तुष्ट करनेलगे ५१ ॥

मू० अपरे च निराहारानदीपुलिनशायिनः।
तपसा चक्रुरायस्ताभास्कराराधनं द्विजाः ५२ ॥

टी०। और कितने ब्राह्मणलोग निराहार होकर और नदी के किनारे पर शयन करके सूर्य्य भगवान् की आराधना के वास्ते बहुतश्रम से युक्त होते हुये तपस्या करनेलगे ५२ ॥

मू० अग्निहोत्रपराश्चान्ये रविसूक्तान्यहर्निशम्।
जेपुस्तत्रापरे तस्थुर्भास्करे न्यस्तदृष्टयः ५३ ॥

टी०। और कितने अग्निहोत्री ब्राह्मणलोग दिनरात सूर्य्य भगवान् का सूक्त जपनेलगे और कितने लोग सूर्य्य के सामने दृष्टि लगाकर खड़े हुये ५३ ॥

मू० इत्येवमतिनिर्बन्धं भास्कराराधनं प्रति।
बहुप्रकारञ्चक्रुस्ते तं तं विधिमुपाश्रिताः ५४ ॥

टी०। इस प्रकार उनलोगों ने बड़े हठ से सूर्य्य भगवान् की आराधना के वास्ते जिस उपासना में जो विधान था वह सब बहुतप्रकार से किया ५४ ॥

मू० तथा तु यततां तेषां भास्कराराधनं प्रति।
सुदामानामगन्धर्व्वउपगम्येदमब्रवीत् ५५॥

टी०। इस प्रकार वे लोग सूर्य्य भगवान् की आराधनाके वास्ते यत्न कररहे थे उसी समय सुदामानाम गन्धर्व्व उन लोगों के निकट आकर बोला ५५॥

मू० यद्याराधनमिष्टं वोभास्करस्य द्विजातयः।
तदेतत् क्रियतां येन भानुः प्रीतिमुपैष्यति ५६॥

टी०। और कि हे ब्राह्मण लोगो! जो तुमलोगों को सूर्य्य भगवान् की आराधना करने की इच्छा है तो तुमलोग यह बात करो जिसके करने से सूर्य्य भगवान् शीघ्र प्रसन्न होंगे ५६॥

मू० तस्माद् गुरुविशालाख्यं वनं सिद्धनिषेवितम्।
कामरूपे महाशैले गम्यतान्तत्र वै लघु ५७॥

टी०। कि उस लिये कामरूप जो पर्व्वत है जिसपर गुरुविशालनाम वन सिद्धों से सेवित है वहीं तुमलोग जल्द जावो ५७॥

मू० तस्मिन्नाराधनं भानोः क्रियतां सुसमाहितैः।
सिद्धक्षेत्रं हितं तत्र सर्व्वकामानवाप्स्यथ ५८॥

टी०। और वहां जाकर एकचित्त होकर सूर्य्य भगवान् की आराधना करो वह सिद्धक्षेत्रहै वहां तुमलोगों के सब मनोरथ सिद्ध होजायँगे ५८॥

मार्कण्डेयउवाच॥

मू० इति ते तद्वचश्श्रुत्वा गत्वा तत्काननं द्विजाः।
ददृशुर्भास्वतस्तत्र पुण्यमायतनं शुभम् ५९॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहतेहैं कि इस प्रकार सुदामा के वचन सुनकर वे ब्राह्मणलोग शीघ्रही उस वन में गये और वहां जाकर बड़ा पुण्यवान् एक सूर्य्य भगवान् का उत्तम मन्दिर देखा ५९॥

मू० तत्र ते नियताहारावर्णाविप्रादयोद्विज।
धूपपुष्पोपहाराद्यां पूजां चक्रुरतन्द्रिताः ६०॥

टी०। हे द्विज! वहां नियम से आहारकरनेवाले ब्राह्मणलोग इत्या-

दि सब वर्ण निरालसी होकर धूप और पुष्प इत्यादि उपहारों से सूर्य्य भगवान् की पूजा करनेलगे ६० ॥

मू० पुष्पानुलेपनाद्यैश्च धूपगन्धादिकैस्तथा।
जपहोमान्नदीपाद्यैःपूजनन्ते समाहिताः ॥
कुर्व्वन्तस्तुष्टुवुर्ब्रह्मन् विवस्वन्तं द्विजातयः ६१ ॥

टी०। और पुष्प और चन्दन और धूप और गन्ध इत्यादि से पूजनकर एकचित्त हो जप होम दीप इत्यादि करके हे ब्रह्मन् ! फिर इसप्रकार से सूर्य की स्तुति करनेलगे ६१ ॥

ब्राह्मणाऊचुः ॥

मू० देवदानवयक्षाणां ग्रहाणां ज्योतिषामपि।
तेजसाभ्यधिकं देवं व्रजामश्शरणं रविम् ६२ ॥

टी०। ब्राह्मणलोग बोले कि देव और दानव और यक्ष और ग्रह और नक्षत्र इन सब से तेज में अधिक जो सूर्य्य भगवान् हैं उन सूर्य की शरण में हमलोग प्राप्तहैं ६२ ॥

मू० दिविस्थितञ्च देवेशं द्योतयन्तं समन्ततः।
वसुधामन्तरिक्षञ्च व्याप्नुवन्तं मरीचिभिः ६३ ॥

टी०। जो देवों के स्वामी सूर्य आकाश में रहकर चारों तरफ़ प्रकाश करते हैं और जो पृथ्वी और अन्तरिक्षमें अपनी किरणों से व्याप्त होरहे हैं उन सूर्य्य देवता की शरण में हमलोग प्राप्त हैं ६३ ॥

मू० आदित्यं भास्करं भानुं सवितारं दिवाकरम्।
पूषाणमर्य्यमाणञ्च स्वर्भानुं दीप्तदीधितिम् ६४ ॥

टी०। और आदित्य और भास्कर और भानु और सविता व दिवाकर और पूषा और अर्य्यमा और स्वर्भानु व दीप्तदीधिति जो सूर्य्य भगवान् हैं उन की शरण में हमलोग प्राप्त हैं ६४ ॥

मू० चतुर्युगान्तकालाग्निं दुष्प्रेक्ष्यं प्रलयान्तगम्।
योगीश्वरमनन्तञ्च रक्तं पीतं सितासितम् ६५ ॥

टी०। और चतुर्युग के अन्त होनेपर कालाग्नि और दुर्दर्श और प्रल-

यान्तग और योगीश्वर और अनन्त और रक्त और पीत और सि-
तासित ६५ ॥

मू० ऋषीणामग्निहोत्रेषु यज्ञदेवेष्ववस्थितम्।
अक्षरं परमं गुह्यं मोक्षद्वारमनुत्तमम् ६६ ॥

टी०। और जो ऋषियों के अग्निहोत्रों और यज्ञदेवों में विराजमान रहते हैं और जो अक्षर और परम गुह्य व अतिउत्तम मोक्षद्वार हैं ६६ ॥

मू० छन्दोभिरश्वरूपैश्च सकृद्युक्तैर्विहङ्गमैः।
उदयास्तमने युक्तं सदा मेरोः प्रदक्षिणे ६७ ॥

टी०। और जो अश्वरूपी छन्दरूप विहंगमों से एकबार युक्तहोकर उदय और अस्तहोनेमें और मेरुके प्रदक्षिणकरने में सदा प्रवृत्तरहतेहैं ६७॥

मू० अनृतञ्च ऋतं चैव पुण्यतीर्थं पृथग्विधम्।
विश्वस्थितमचिन्त्यंच प्रपन्नाः स्मःप्रभाकरम् ६८ ॥

टी०। और जो मिथ्या और सत्य और पुण्यतीर्थ पृथक् पृथक् होकर विश्व में स्थित हैं उन अचिन्त्य प्रभाकर सूर्य्य भगवान् की शरणमें हम-लोग प्राप्त हैं ६८ ॥

मू० योब्रह्मा योमहादेवोयोविष्णुर्यः प्रजापतिः।
वायुराकाशमापश्च पृथिवीगिरिसागराः ६९ ॥

टी०। और जो ब्रह्मा और विष्णु और महादेव और प्रजापति और वायु और आकाश और जल और पृथ्वी और पर्व्वत और सागर ६९ ॥

मू० ग्रहनक्षत्रचन्द्राद्यावानस्पत्यद्रुमौषधम्।
व्यक्ताव्यक्तेषु भूतेषु धर्म्माधर्म्मप्रवर्त्तकः ७० ॥

टी०। और ग्रह और नक्षत्र और चन्द्रमा इत्यादि और वनस्पति व वृक्ष और औषधि इत्यादि व सब व्यक्ताव्यक्तप्राणियों में धर्म्माधर्म्म के जो प्रवर्त्तक हैं ७० ॥

मू० ब्राह्मी माहेश्वरी चैव वैष्णवी चैव ते तनुः।
त्रिधा यस्य स्वरूपन्तु भानोर्भास्वान् प्रसीदतु ७१ ॥

टी०। और ब्राह्मी और माहेश्वरी और वैष्णवी भी आपका शरीर हैं

व जिन सूर्य का तीन प्रकार का स्वरूप है ऐसे सूर्य्य भगवान् हमपर प्रसन्न होवें ७१ ॥

मू० यस्य सर्व्वमजस्येदमङ्गभूतं जगत्प्रभोः।
सनःप्रसीदत्तां भास्वाञ्जगतां यश्च जीवनम् ७२ ॥

टी०। और जिन अज जगत्पति सूर्य्य भगवान् का यह सम्पूर्ण संसार अंग है और जो सब संसार के जीवन हैं वह सूर्य्य भगवान् हमसबों के ऊपर प्रसन्न हों ७२ ॥

मू० यस्यैकभास्वरं रूपं प्रभामण्डलदुर्द्दशम्।
द्वितीयमैन्दवं सौम्यं सनोभास्वान् प्रसीदतु ७३ ॥

टी०। और जिनका प्रकाशमान एक रूप प्रभामण्डल में दुर्द्दश है और दूसरा चन्द्रमारूप शान्त है वह सूर्य्य भगवान् हमसबों के ऊपर प्रसन्न हों ७३ ॥

मू० ताभ्याञ्च यस्य रूपाभ्यामिदं विश्वं विनिर्मितम्।
अग्नीषोममयं भास्वान् सनोदेवः प्रसीदतु ७४ ॥

टी०। और जिनके उन दोनों रूपों से यह विश्व बनाहै और जिनका रूप अग्निमय और चन्द्रमयहै वह सूर्य्य देवता हमलोगों पर कृपा करें७४॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० इत्थं स्तुत्या तदा भक्त्या सम्यक् पूजयतान्तथा।
तुतोष भगवान् भास्वांस्त्रिभिर्मासैर्द्विजोत्तम ७५ ॥

टी०। इतनी कथा कहकर मार्कण्डेयजी कहनेलगे कि हे द्विजोत्तम! इस प्रकार उस काल में भक्तिपूर्व्वक स्तुतिकरने से पूजनकरनेवाले द्विजोत्तमों के ऊपर तीन महीने पर सूर्य्य भगवान् प्रसन्नहुये ७५ ॥

मू० ततः समण्डलादुद्यन्निजबिम्बसमप्रभः।
अवतीर्य्य ददौ तेभ्योदुर्द्दशोदर्शनं रविः ७६ ॥

टी०। और उस के बाद अपने मण्डल से बाहर निकलकर अपने उदयकालवाले बिम्बके समान प्रकाशमान व दुर्द्दश सूर्य्य भगवान्ने प्रत्यक्ष होकर उनलोगों को दर्शन दिया ७६ ॥

मू० ततस्ते स्पष्टरूपं तं सवितारमजं जनाः।
पुलकोत्कम्पिनोविप्राभक्तिनम्राः प्रणेमिरे ७७॥

टी०। तब उन ब्राह्मणों ने उन स्पष्टरूपवाले अज भगवान् सूर्य्य को देख रोमांच से कांपतेहुये भक्तिपूर्वक नम्र होकर प्रणाम किया ७७॥

मू० नमोनमस्तेऽस्तु सहस्रश्मे
सर्वस्य हेतुस्त्वमशेषकेतुः।
पातात्वमीड्योऽखिलयज्ञधाम
ध्येयस्तथायोगविदाम्प्रसीद ७८॥

टी०। और कहनेलगे कि हे सहस्रकिरण। आप सब जगत् के हेतु और जगत् के पताका और सकल जगत् के रक्षक हैं और सब के स्तुति करनेयोग्य और सकल यज्ञों के धाम हैं और योगियों के ध्यान करनेयोग्य हैं हमलोग वारंवार प्रणाम करते हैं प्रसन्नहूजिये ७८॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेभानुस्तवोनामनवाधिक
शततमोऽध्यायः १०९॥

अथ एकसौदशका अध्याय॥

मार्कण्डेयउवाच॥

मू० ततः प्रसन्नोभगवान् भानुराहाखिलं जनम्।
व्रियतां यदभिप्रेतं मत्तः प्राप्तुं द्विजादयः १॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुके! इस प्रकार स्तुतिकरने के बाद उन सबों पर सूर्य्य भगवान् प्रसन्नहोकर बोले कि हे ब्राह्मणादिको! जो वरदान मुझसे तुम चाहतेहो वह मांगो १॥

ब्राह्मणउवाच॥

मू० ततस्ते प्रणिपत्योचुर्विप्र विप्रादयोजनाः।
ससाध्वसमशीतांशुमवलोक्य पुरःस्थितम् २॥

टी०। उसके बाद उष्णकिरणोंवाले सूर्य्य भगवान् को अपने अपने

आगे खड़े देखकर हे द्विज ! वे ब्राह्मणादिक जन भयसमेत प्रणामकरके बोले २ ॥

प्रजाऊचुः ॥

मू० भगवन् यदि नोभक्त्या प्रसन्नस्तिमिरापह ३ ॥

टी०। कि हे अन्धकारनाशक, भगवन् ! यदि हम सबों की भक्ति से आप प्रसन्नहुये हैं ३ ॥

मू० दशवर्षसहस्राणि ततोनोजीवतांनृपः।
निरामयोजितारातिः सुकेशः स्थिरयौवनः ॥
दशवर्षसहस्राणि जीवतां राज्यवर्द्धनः ४ ॥

टी०। तो हम सब यही वरदान मांगते हैं कि हमारे राजा राज्यवर्द्धन निरामय (आरोग्य) और सुकेश और जिरशत्रु और स्थिरयौवन होकर दशहजार वर्ष और जियें ४ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० तथेत्युक्त्वा जनान् भास्वानदृश्योऽभून्महामुने।
तेऽपि लब्धवराहृष्टाः समाजग्मुर्जनेश्वरम् ५ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे महामुने ! यह बात ब्राह्मणों से सुनकर सूर्य्य भगवान् बोले कि बहुत अच्छा राजा राज्यवर्द्धन दश हजार वर्षतक और जीते रहैंगे यह सबजनों से कहकर आप अन्तर्द्धान होगये और वे लोग भी वरदान पाकर खुशी २ राजा के पास आये ५ ॥

मू० यथावृत्तञ्च ते तस्मै नरेन्द्राय न्यवेदयन्।
वरं लब्ध्वा सहस्रांशोः सकाशादखिलं द्विज ६ ॥

टी०। और ऐ द्विज ! सूर्य्य के सकाश से वरदान पाकर उन सबों ने सब हाल जिसतरह का था वैसा उस राजा राज्यवर्द्धन से कहा ६ ॥

मू० तच्छ्रुत्वा जहर्षे तस्य सा पत्नी मानिनी द्विज।
सच राजा चिरं दध्यौ नाह किञ्चिच्च तं जनम् ७ ॥

टी०। इस वृत्तान्त को सुनकर राजा की वह मानिनी भार्य्या बहुत

प्रसन्न हुई और वे राजा भी सुनकर देरतक ध्यान में रहे और कुछ उन मनुष्यों से न कहा ७॥

मू० ततः सा मानिनी भूपं हर्षात्पूरितमानसा।
दिष्ट्याऽऽयुषा महीपाल वर्द्धस्वेत्याह तं पतिम् ८॥

टी०। उस के बाद वह मानिनी अपने राजा से प्रसन्नहोकर बोली कि हे महाराज! बड़े आनन्द की बात है कि आयुर्बल मिला है इस आयुर्बल से आप बढ़िये ८॥

मू० तथा तया मुदा भर्त्ता मानिन्याथ सभाजितः।
नाह किञ्चिन्महीपालश्चिन्ताजडमनाद्विज ९॥

टी०। उस मानिनी की प्रसन्नता से यह बात सुनकर ऐ द्विज! वे सभाजित् राजा और भी चिन्ता से जडचित्त होगये और कुछ न बोले ९॥

मू० सा पुनः प्राह भर्त्तारं चिन्तयानमधोमुखम्।
कस्मान्नहर्षमभ्येति परमाभ्युदये नृप १०॥

टी०। तब वह मानिनी शिर झुकेहुये अपने स्वामी महाराजको चिन्ता में देखकर फिर कहनेलगी कि हे महाराज! आप बड़े ऐश्वर्य में याने अपने आयुर्बल की आधिक्यता पाकर क्यों नहीं प्रसन्न होते हैं १०॥

मू० दशवर्षसहस्राणि निरुजः स्थिरयौवनः।
भावीत्वमद्यप्रभृति किं तथापि न हृष्यसे ११॥

टी०। इस समय से दश हजार वर्षतक निरुज और स्थिरयौवन होकर आप रहैंगे तो भी आप क्यों नहीं प्रसन्न होते हैं ११॥

मू० किन्तु तत्कारणं ब्रूहि यच्चिन्ताकृष्टमानसः।
परमाभ्युदयेपि त्वं संप्राप्ते पृथिवीपते १२॥

टी०। हे महाराज! ऐसे ऐश्वर्य के प्राप्त होने में भी आपको चिन्तायुक्त देखतीहूँ इसका क्या कारण है वर्णन कीजिये १२॥

राजोवाच॥

मू० कथमभ्युदयोभद्रे किं सभाजयसे च माम्।
प्राप्तौ दुःखसहस्राणां किं सभाजनमिष्यते १३॥

टी० । राजा ने कहा कि हे भद्रे ! किस तरह मेरे आयुर्बलकी आधिक्यता हुई और क्या मुझको हर्षित करती हो यदि मैं दश हजार वर्ष तक जीता भी रहा तो इस जीने से मुझको क्या फल मिलैगा १३ ॥

मू० दशवर्षसहस्राणि जीविष्याम्यहमेककः ।
न त्वं तत्र विपत्तौ मे किन्न दुःखं भविष्यति १४ ॥

टी० । अकेले मैं तो दशहजार वर्ष सूर्य्य के वरदान से जिऊंगा पर तुमतो न जिओगी तो फिर तुम्हारा मरना देखकर क्या मुझको दुःख न होगा १४ ॥

मू० पुत्रान् पौत्रान् प्रपौत्रांश्च तथान्यानिष्टबान्धवान् ।
पश्यतोमे मृतान् दुःखं किमल्पं हि भविष्यति १५ ॥

टी० । और मेरे जीते जी मेरे बेटे और पोते और परपोते और इष्ट मित्र और बान्धवलोग सब मरजायँगे और मैं देखता रहूँगा शोचो तो इन बातों से क्या मुझको थोड़ा दुःख होगा १५ ॥

मू० भृत्येषु चातिभक्तेषु मित्रवर्गे तथामृते ।
भद्रे दुःखमपारं मे भविष्यति तु सन्ततम् १६ ॥

टी० । किन्तु जब अत्यन्तभक्तिमान् दासवर्ग और मित्रवर्ग हमारे सामने मरजायँगे तब हे कल्याणि ! उन लोगों का मरना देखकर मुझको सदैव बहुतकष्ट होगा १६ ॥

मू० यैर्मदर्थं तपस्तप्तं कृशैर्धर्म्मनिसन्ततैः ।
तेमरिष्यन्त्यहं भोगी जीविष्यामीति धिक्करम् १७ ॥

टी० । सिमटों से संयुत व दुबलेहोकर जिनलोगों ने मेरे लिये कष्ट उठाकर तपस्या किया है वे लोग मेरे सामने मरजायँगे तो ऐसे जीने और भोग करने से मेरे को धिक्कार है १७ ॥

मू० सेयमापद्वरारोहे प्राप्ता नाभ्युदयोमम ।
कथं वा मन्यसे न त्वं यत्सभाजयसेऽद्य माम् १८ ॥

टी० । हे सुन्दरकटिवाली ! यह ऐश्वर्य नहीं है किन्तु मुझे विपत्ति प्राप्तहुईहै तुम क्यों नहीं मानतीहो जो आज मुझको हर्षित करती हो १८ ।

मानिन्युवाच ॥

मू० महाराज यथात्थ त्वं तथैतन्नात्र संशयः ।
मया पौरैश्च दोषोऽयं प्रीत्या नालोकितस्तव १९ ॥

टी०। मानिनी ने कहा कि हे महाराज ! जो आप कहते हैं यह सब ऐसाही है इस में कुछ सन्देह नहीं यह सब दोष मैं और नगर के रहनेवालों ने तुम्हारे स्नेह से नहीं देखा १६ ॥

मू० एवं गतेऽत्र किं कार्य्यं नरनाथ विचिन्त्यताम् ।
नान्यथाभावि यत्प्राह प्रसन्नोभगवान्रविः २० ॥

टी०। परन्तु यह बात तो होचुकी अब यहांपर क्या करनाचाहिये हे नरनाथ ! सो विचार कीजिये व प्रसन्नहोकर जो सूर्य्य भगवान् का कहाहुआ है सो मिथ्या नहीं होसक्ता २० ॥

राजोवाच ॥

मू० उपकारः कृतः पौरैः प्रीत्या भृत्यैश्च यो मम ।
कथं भोक्ष्याम्यहं भोगान् गत्वा तेषामनिष्कृतिम् २१ ॥

टी०। यह सुनकर राजा राज्यवर्द्धन ने कहा कि हमारे नौकर चाकर और नगर के रहनेवालों ने हमारे उपकार के वास्ते यह बात किया परन्तु उनका बदला न देकर हम किसतरह सुखों को भोगकरैंगे २१ ॥

मू० सोऽहमद्यप्रभृत्याद्रिं गत्वा नियतमानसः ।
तपस्तप्स्ये निराहारोभानोराराधनोद्यतः २२ ॥

टी०। इसवास्ते मैं अभी से पर्व्वतपर जाकर निराहार हो और चित्तको रोंककर सूर्य्य भगवान् की आराधना के वास्ते तपस्या करूंगा २२॥

मू० दशवर्षसहस्राणि यथाहं स्थिरयौवनः ।
तस्य प्रसादाद्देवस्य जीविष्यामि निरामयः २३ ॥

टी०। और सूर्य्य भगवान् से कहूँगा कि जिसतरह आपके प्रसाद से स्थिरयौवन और निरामयहोकर दशहजार वर्ष तक मैं जीता रहूँगा २३ ॥

मू० तथा यदि प्रजाः सर्वाः भृत्यास्त्वञ्च सुताश्च मे ।
पुत्राः पौत्राः प्रपौत्राश्च सुहृदश्च वरानने २४ ॥

टी०। उसी तरह ऐ सुन्दरानने! मेरी सब प्रजा और नौकर चाकर व तुम (स्त्री) और बेटे पोते और परपोते व मित्रलोग भी २४॥

मू० जीवन्त्येतं प्रसादं नः करोति भगवान्रविः।
ततोऽहं भविता राज्ये भोक्ष्ये भोगांस्तथा मुदा २५॥

टी०। जीते रहैं ऐसा वरदान जो सूर्य्य भगवान् मुझको देंगे तो अलबत्ता हर्ष के साथ राज्य करूंगा व भोगों को भोगकरूंगा २५॥

मू० न चेदेवं करोत्यर्कस्तदद्रौ तत्र मानिनि।
तपस्तप्स्ये निराहारोयावज्जीवितसंक्षयः २६॥

टी०। हे मानिनि! यदि सूर्य्य भगवान् इस बात का वरदान मुझे न देंगे तो मैं उसी पर्व्वत पर निराहार होकर जिन्दगीभर तप करूंगा २६॥

मार्कण्डेयउवाच॥

मू० इत्युक्ता सा तदा तेन तथेत्याह नराधिपम्।
जगाम तेन च समं साऽपि तं धरणीधरम् २७॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुके! जब राजा राज्यवर्द्धनने यह बात कहा तब मानिनीने भी राजाको तप करनेको आज्ञादिया तब तो राजा तप करने को पर्व्वत पर गया और मानिनी भी उसके साथ गई २७॥

मू० सतदायतनं गत्वा भार्य्यया सह पार्थिवः।
भानोराराधनञ्चक्रे शुश्रूषानिरतोद्विज २८॥

टी०। हे द्विज! सूर्य्य की सेवा में परायण राजा राज्यवर्द्धन ने मानिनी के साथ सूर्य्य भगवान् के मन्दिर में जाकर उनका बहुत आराधन किया २८॥

मू० निराहारकृशा सा च यथासौ पृथिवीपतिः।
तेपे तपस्तथैवोग्रं शीतवातातपक्षमा २९॥

टी०। जिसप्रकार राजा वहांपर निराहार होकर तप करता था उसी प्रकार मानिनी भी निराहार से दुबली होकर भयंकर तप करनेलगी और सरदी व हवा और गरमी का कष्ट सहनेलगी २९॥

मू० तस्य पूजयतोभानुंतप्यतश्च तपोमहत्।

साग्रे सम्वत्सरे याते ततः प्रीतोदिवाकरः ३० ॥

टी० । जब उसको इस प्रकार तप करते व सूर्य्य को पूजतेहुये वर्ष दिन से कुछ अधिक बीतगया तब सूर्य्य भगवान् प्रसन्न हुये ३० ॥

मू० समस्तभृत्यपौरादिपुत्राणां च कृते द्विज ।
ददौयथाभिलषितं वरं द्विजवरोत्तम ३१ ॥

टी० । और हे द्विजवरोत्तम ! राजा राजवर्द्धन की इच्छानुसार उनके बेटे और पोते और सब नौकर चाकर और नगर के रहनेवालों के लिये वरदान दिया ३१ ॥

मू० लब्ध्वा वरं स नृपतिः समभ्येत्यात्मनः पुरम् ।
चकार मुदितो राज्यं प्रजा धर्म्मेण पालयन् ३२ ॥

टी० । फिर तो सूर्य्य भगवान् से अपनी इच्छानुसार बरदान पाकर वह राजा राजवर्द्धन प्रसन्न होकर अपने नगर को आकर धर्म्मपूर्व्वक प्रजा-पालन संयुक्त राज्य करने लगा ३२ ॥

मू० ईजे यज्ञान् स च बहून् ददौ दानान्यहर्निशम् ।
मानिन्या सहितो भोगान् बुभुजे च स धर्म्मवित् ३३ ॥

टी० । और धर्म के जाननेवाले राजा ने बहुत यज्ञोंको किया और ब्राह्मणों को दान दिया और दिनरात मानिनी के साथ भोग विलास किया ३३ ॥

मू० दशवर्षसहस्राणि पुत्रपौत्रादिभिः सह ।
भृत्यैः पौत्रैः समुदितः सोऽभवत् स्थिर यौवनः ३४ ॥

टी० । और पुत्र और पौत्र इत्यादि के साथ दश हजार वर्ष तक नौ-करों व पोतों इत्यादिकों से उदय को प्राप्त वहराजा स्थिरयौवन अर्थात् तरुण रहा ३४ ॥

मू० तस्येतिचरितं दृष्ट्वा प्रमतिर्नाम भार्गवः ।
विस्मयाकृष्टहृदयो गाथामेतामगायत ३५ ॥

टी० । उस राजा का यह हाल देखकर भृगुवंशी प्रमति नाम ब्राह्मण ने विस्मत चित्त होकर यह गीत गाया ३५ ॥

मू० भानुभक्तेरहोशक्तिर्यद्राजा राजवर्द्धनः ।

आयुषोवर्द्धने जातःस्वजनस्य तथात्मनः ३६ ॥

टी० । कि सूर्य्य महाराजकी भक्ति का माहात्म्य बड़े आश्चर्य का है कि जिस से राजा राजवर्द्धन ने सहित अपने लड़केबालों नौकर चाकर इत्यादि के दशहजार वर्ष की आयुर्बल पाई ३६ ॥

मू० इति ते कथितं विप्र यत्पृष्टोऽहन्त्वया विभो ।
आदिदेवस्य माहात्म्यमादित्यस्य विवस्वतः ३७ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे विप्रजी ! आदिदेव सूर्य्य भगवान् का माहात्म्य जो आपने पूंछा वह मैंने तुमसे वर्णन किया ३७ ॥

मू० विप्रैस्तदखिलं श्रुत्वा भानोर्म्माहात्म्यमुत्तमम् ।
पठंश्च मुच्यते पापैः सप्तरात्रकृतं नरः ३८ ॥

टी० । सूर्य्य के इस उत्तम माहात्म्य को जो लोग ब्राह्मण के मुख से सुनैंगे या पढ़ैंगे तो सात रात में किये हुए पाप से छूट जायँगे ३८ ॥

मू० अरोगी धनवानाढ्यः कुले महति धीमताम् ।
जायते च महाप्राज्ञो यश्चैतद्धारयेद्बुधः ३९ ॥

टी० । और जो ज्ञानी मनुष्य इस माहात्म्य को सदा धारण करैगा वह आरोग्य और धनवान् होगा और मरने उपरान्त ज्ञानी के वंश में जन्म पावैगा व बड़ा बुद्धिमान् होगा ३९ ॥

मू० मन्त्राश्च येऽत्राभिहिता भास्वतो मुनिसत्तम ।
जापः प्रत्येकमेतेषां त्रिसन्ध्यं पातकापहः ४० ॥

टी० । और हे मुनि सत्तम ! इस माहात्म्य में सूर्य्य भगवान् के जो मन्त्र सब मैंने कहे हैं उन मन्त्रों में से एक एक मन्त्र को तीनों काल में जपने से पापों का नाश होजाता है ४० ॥

मू० समस्तमेतन्माहात्म्यं यत्र चायतने रवेः ।
पठ्यते तत्र भगवान् सान्निध्यं न विमुञ्चति ४१ ॥

टी० । और जिस घरमें सूर्य्य भगवान् का यह सब माहात्म्य पढ़ाजाता है उस घरमें सदा सूर्य्य भगवान् समीपता करते हैं ४१ ॥

मू० तस्मादेतत् त्वया ब्रह्मन् भानोर्माहात्म्यमुत्तमम् ।

धार्य्यं मनसि जाप्यञ्च महत्पुण्यमभीप्सिता ४२ ॥

टी० । हे ब्रह्मन् ! इसलिये बड़ी पुण्य को चाहते हुए आप सूर्य्य भगवान् के इस उत्तम माहात्म्य को मनसे धारण कीजिये व जपिये ४२ ॥

मू० सुवर्णशृङ्गीमतिशोभनाङ्गीं
पयस्विनीं गां प्रददाति यो हि ।
शृणोति चैतत् त्र्यहमात्मवान्नरः
समन्तयोः पुण्यफलं द्विजाग्र्य ४३ ॥

टी० । हे द्विजोत्तम ! अति उत्तम अंगोंवाली दुधारी गऊके सोनेसे सींग मढ़ाकर गोदान करने से जो फल होताहै वही फल आत्मज्ञानी मनुष्यको इस माहात्म्यके तीन दिन सुनने से प्राप्त होताहै ४३ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेभानोर्म्माहात्म्यंसमाप्तंनामदशाधिक
शततमोऽध्यायः ११० ॥

अथ एकसौ ग्यारहवां अध्याय ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० एवंप्रभावो भगवाननादिनिधनो रविः ।
यस्य त्वं क्रौष्टुके भक्त्यामा हात्म्यं परिपृच्छसि १ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि ! ऐसे प्रभाव वाले अनादिनिधन याने बिन जन्म व बिन मृत्यु वाले सूर्य्य भगवान् हैं जिन का माहात्म्य तुमने भक्ति पूर्व्वक मुझ से पूँछा १ ॥

मू० परमात्मा स योगानां युञ्जतां चेतसां लयम् ।
क्षेत्रज्ञः सर्वसत्त्वानां यज्ञेशो यज्विनामपि २ ॥

टी० । वह परमात्मा हैं और योग करनेवाले योगियों के चित्तके लय स्थान और सब प्राणियोंके क्षेत्रज्ञहैं और यज्ञ करनेवालोंके यज्ञेश्वरहैं २ ॥

मू० सूर्य्याधिकारं वहतो विष्णोरीशस्य वेधसः ।
मनुस्तस्याभवत्पुत्रश्छिन्नसर्व्वार्थसंशयः ३ ॥

टी०। और विष्णु और महादेव और ब्रह्मा इन सब के रूप वाले व सूर्य के अधिकार को करतेहुए उन्हीं विवस्वान् के पुत्र सावर्णि नाम मनु हुए जिन्हों ने सब संशय त्यागकरके ज्ञान प्राप्त किया ३ ॥

मू० मन्वन्तराधिपो विप्र यस्य सप्तममन्तरम्।
इक्ष्वाकुर्नाभगोरिष्टो महाबलपराक्रमाः ४ ॥

टी०। और वे मन्वन्तर के स्वामी हुए हे विप्र ! जिनका सातवां मन्वन्तर है बड़े बली व पराक्रमी प्रथम महाराज इक्ष्वाकु दूसरे नाभाग तीसरे रिष्ट ४ ॥

मू० नरिष्यन्तोऽथ नाभागः पृषध्रो धृष्ट एव च।
एते पुत्रा मनोस्तस्य पृथग्राज्यस्य पालकाः ५ ॥

टी०। और चौथे नरिष्यन्त और पांचवें नाभाग और छठवें पृषध्र और सातवें धृष्ट ये उन मनु के पुत्र राजा लोग पृथक् पृथक् राज्यपालक हुये ५ ॥

मू० विख्यातकीर्त्तयः सर्व्वे सर्व्वे शस्त्रास्त्रपारगाः।
विशिष्टतरमन्विच्छन् मनुः पुत्रं तथा पुनः ६ ॥

टी०। और ये सब राजालोग विख्यातकीर्त्ति और सब शस्त्रविद्या और अस्त्र विद्या में अत्यन्त निपुण थे जब मनु को इससे अधिक पुत्र होने की इच्छा करते हुए फिर मनु ने ६ ॥

मू० मित्रावरुणयोरिष्टिं चकार कृतिनां वरः।
यत्र चापह्नुते होतुरपचारान्महामुने ७ ॥

टी०। जो कि पुण्यवानों में श्रेष्ठ थे उन्होंने मित्रावरुण का यज्ञ किया हे महामुने ! जिस यज्ञ में होताके दोषसे विपरीत होम करने पर ७ ॥

मू० इलानाम समुत्पन्ना मनोः कन्या सुमध्यमा।
तां दृष्ट्वा कन्यकां तत्र समुत्पन्नां ततो मनुः ८ ॥

टी०। उनमनुके इलानाम सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई उसके बाद उस कन्या को वहां उत्पन्न हुई मनु देखकर ८ ॥

मू० तुष्टाव मित्रावरुणौ वाक्यञ्चेदमुवाच ह।
भवत्प्रसादात्तनयो विशिष्टो मे भवेदिति ९ ॥

टी०। मित्रावरुणकी स्तुति किया और यह वचन कहा कि आपलोगों के प्रसाद से मेरे श्रेष्ठ पुत्रहो ९॥

मू० कृते मखे समुत्पन्ना तनया मम धीमतः।
यदि प्रसन्नौ वरदौ तदियन्तनया मम १०॥

टी०। यदि आपलोग मुझपर प्रसन्नहो तो यह यज्ञ करनेपर मेरे जो यह कन्या उत्पन्न हुई है १०॥

मू० प्रसादाद्भवतोः पुत्रो भवत्वतिगुणान्वितः।
तथेति चाभ्यामुक्ते तु देवाभ्यां सैव कन्यका ११॥

टी०। वही कन्या आपलोगोंकी प्रसन्नतासे अतिगुणी पुत्र होजाय यह सुनकर मित्र और वरुण दोनों देवतोंने कहा कि बहुत अच्छा यही कन्या पुत्र होजायगी तब वही कन्या ११॥

मू० इला समभवत्सद्यः सुद्युम्न इति विश्रुतः।
पुनश्चेश्वरकोपेन मृगव्यामटता वने १२॥

टी०। इला उसीसमय पुत्र होगई जिसका नाम सुद्युम्न विख्यात हुआ फिर वही सुद्युम्न एक वनमें शिकार खेलनेके समय ईश्वर महादेव के कोपसे १२॥

मू० स्त्रीत्वमासादितन्तेन मनुपुत्रेण धीमता।
पुरूरवसन्नामानं चक्रवर्त्तिनमूर्ज्जितम् १३॥

टी०। स्त्री होगया उन बुद्धिमान् मनुके पुत्र (इला) से पुरूरवानाम चक्रवर्त्ती महाबली १३॥

मू० जनयामास तनयं यत्र सोमसुतो बुधः।
जाते स ते पुनः कृत्वा सोऽश्वमेधं महाक्रतुम् १४॥

टी०। पुत्रको चन्द्रमाके बेटे बुधने उत्पन्न किया जब पुरूरवा उत्पन्न होचुके तब फिर स्त्रीरूप सुद्युम्न महाराजने अश्वमेध यज्ञकरके १४॥

मू० पुरुषत्वमनुप्राप्तः सुद्युम्नः पार्थिवोऽभवत्।
सुद्युम्नस्य त्रयः पुत्रा उत्कलो विनयो गयः १५॥

टी०। अपनेको फिर परुष बनालिया तब वे सुद्युम्न राजाहुये तत्प-

श्चात् सुद्युम्न महाराजके पुरुष होनेपर उत्कल और विनय और गय तीन पुत्र उत्पन्नहुये १५ ॥

मू० पुरुषत्वे महावीर्य्या यज्विनः पृथुलौजसः ।
पुरुषत्वे तु ये जातास्तस्य राज्ञस्त्रयः सुताः १६ ॥

टी०। यह तीनोंपुत्र उनके महापराक्रमी और यज्ञ करनेवाले और बड़े बलीहुये उन राजाके पुरुषत्वमें जो तीनपुत्र पैदाहुये १६ ॥

मू० बुभुजुस्ते महीमेतां धर्म्मे नियतचेतसः ।
स्त्रीभूतस्य तु यो जातस्तस्य राज्ञः पुरूरवाः १७ ॥

टी०। और वे तीनों धर्ममें चित्तकरके इस पृथ्वीका राज्य करनेलगे और राजा सुद्युम्नसे जो पुत्र स्त्री होनेके समयमें पुरूरवानाम उत्पन्न हुआथा १७ ॥

मू० न स लेभे महीभागं यतो बुधसुतो हि सः ।
ततोवशिष्ठवचनात् प्रतिष्ठानं पुरोत्तमम् ॥
तस्मैदत्तं स राजाभूत्तत्रातीवमनोहरे १८ ॥

टी०। उसको राज्यमेंसे कुछ हिस्सा न मिला क्योंकि वह बुधका पुत्र था परन्तु गुरु वशिष्ठ मुनिके कहनेसे महाराज सुद्युम्नने उसको प्रतिष्ठान नाम एक उत्तमनगरदेदिया उसी अति मनोहर नगरमें वह राजाहुआ १८॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेवंशानुक्रमोनामैकादशाधिक
शततमोऽध्यायः १११ ॥

अथ एकसौ बारहवां अध्याय ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० पृषध्राख्यो मनोः पुत्रो मृगयामगमद्वनम् ।
तत्र चङ्क्रममाणोऽसौ विपिने निर्जने वनें १ ।

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि ! पृषध्रनाम जो सावर्णिनाम मनुके पुत्रथे वह एकसमय शिकार खेलने के वास्ते एक निर्जन वनमेंगये और बहुत देरतक घूमतेरहे १ ॥

मू० नाससाद मृगं कश्चिद्भानुदीधितितापितः ।
क्षुत्तृट्तापपरीताङ्ग इतश्चेतश्च चङ्क्रमन् २ ॥

टी० । परन्तु उनको एक मृगभी न मिला व इधर उधर घूमतेहुये वे सूर्य्यकी किरणोंसे और भूख और प्याससे बहुत व्याकुलहुये २ ॥

मू० स ददर्श तदा तत्र होमधेनुं मनोहराम् ।
लतान्तर्देहछन्नार्धां ब्राह्मणस्याग्निहोत्रिणः ३ ॥

टी० । कि एकाएक उसवक्त वहां एक मनोहर धेनु देखपड़ी और लताकेबीचमें आधीदेह छिपायेहुये वहधेनु एकअग्निहोत्री ब्राह्मणकीथी ३॥

मू० स मन्यमानो गवयमिषुणा तामताडयत् ।
पपात सापि तद्बाणविभिन्नहृदया भुवि ४ ॥

टी० । उसहोम धेनुको पृषध्रने लीलगाह समझकर बाणमारा कि जिसके लगनेसे उसधेनुकाभी कलेजा फटगया और वहपृथ्वीपर गिरपड़ी ४ ॥

मू० ततोऽग्निहोत्रिणः पुत्रो ब्रह्मचारी तपोरतिः ।
शप्तवान् स पितुर्दृष्ट्वा होमधेनुं निपातिताम् ५ ॥

टी० । उसकेबाद उस अग्निहोत्रीके पुत्र तपमें परायण ब्रह्मचारीने अपने पिताकी होमधेनुको पृथ्वीपर गिरीहुई देखकर शापदिया ५ ॥

मू० गोपालः प्रेषितः पुत्रो बाभ्रव्यो नाम नामतः ।
कोपामर्षपराधीनचित्तवृत्तिस्ततो मुने ६ ॥

टी० । हे मुने ! उस ब्रह्मचारीका नाम बाभ्रव्यथा उसको उसके पिता अग्निहोत्रीने उस धेनुके चरानेके वास्ते उस वनमें भेजाथा जब होमधेनु को पृषध्रने अनजान होकर तीरसे मारा तब यह देखकर बाभ्रव्य कोपसे विवशचित्त होगये ६ ॥

मू० चुकोप विगलत्स्वेदजललोलाविलेक्षणः ।
तं क्रुद्धं प्रेक्ष्य स नृपः पृषध्रो मुनिदारकम् ७ ॥

टी० । और उस कोपसे उनके सब शरीरमें पसीना आगया और नेत्र आंसुवोंसे युक्त व चंचल होगये इसप्रकार कोपसंयुक्त मुनिके पुत्र बाभ्रव्य ब्रह्मचारीको देखकर महाराज पृषध्र उस मुनिकुमारसे ७ ॥

मू० प्रसीदेति जगौ कस्माच्छूद्रवत् कुरुषे रुषम्।
नक्षत्रियो न वा वैश्य एवं क्रोधमुपैतिवै।
यथा त्वं शूद्रवज्जातो विशिष्टे ब्रह्मणः कुले ८॥

टी०। यह बोले कि हे मुनिकुमार! प्रसन्न हूजिये शूद्र के समान क्यों कोप करते हो क्षत्री और वैश्य भी होकर ऐसे क्रोधको नहीं प्राप्त होता है जैसा कोप आपने ब्रह्मके उत्तम कुल में किया है ८॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० इति निर्भर्त्सितस्तेन स राज्ञा मौलिनः सुतः।
शशाप तं दुरात्मानं शूद्र एव भविष्यति ९॥

टी०। मार्कण्डेय मुनि कहतेहैं कि हे क्रौष्टुकि! इस प्रकार उन पृषध्र महाराज ने मौलिनाम अग्निहोत्री के पुत्र को जब धमकाया तब अग्निहोत्री कुमार ने दुरात्मा पृषध्र को शाप दिया कि तू मुझको शूद्र कहताहै इस वास्ते मैं शाप देता हूँ कि तूही शूद्र होगा ९॥

मू० प्रयास्यति क्षयं ब्रह्म यत्तेधीतं गुरोर्मुखात्।
होमधेनुर्मम गुरोर्यदियं हिंसिता त्वया १०॥

टी०। और जोकि तुमने मेरे पिता की इस होमधेनु को मारा है इस लिये मैं कहता हूँ कि तुमने जो गुरुसे वेद पढ़ाहै वह सब नष्ट होजायगा १०॥

मू० एवं शप्तोनृपः क्रुद्धस्तच्छापपरिपीडितः।
प्रतिशापपरोविप्र तोयं जग्राह पाणिना ११॥

टी०। इस तरह की शाप मुनिकुमार की सुनकर महाराज पृषध्र ने उस की शाप से पीडित होकर हे विप्र जी! मुनिकुमार को शाप देने के वास्ते हाथ में जल उठाया ११॥

मू० सोऽपि राज्ञोविनाशाय कोपञ्चक्रे द्विजोत्तमः।
तमभ्येत्य त्वरायुक्तोवारयामास वै पिता १२॥

टी०। तब फिर द्विजोत्तम अग्निहोत्रीकुमार ने भी राजा को नाश करने के वास्ते कोप किया उसी समय उसके पिता अर्थात् अग्निहोत्री वहाँ पर पहुँच गये और अपने पुत्र को मनाकिया १२॥

मू० वत्सालमलमत्यर्थं कोपेनाप्रतिवैरिणा।
ऐहिकामुष्मिकहितः शमएव द्विजन्मनाम् १३॥

टी०। और कहा कि हे पुत्र! जिसके बराबर दूसरा वैरी नहीं है ऐसे बड़ेक्रोध से कुछ प्रयोजन नहीं है इस लोक और परलोक में शान्त रहना यही ब्राह्मण का मित्र है १३॥

मू० कोपस्तपोनाशयति क्रुद्धोऽस्यत्यथायुषः।
क्रुद्धस्य गलते ज्ञानं क्रुद्धश्चार्थैःप्र हीयते १४॥

टी०। कोप से तप का नाश होता है और क्रोधसे आयुर्बल की हानि होती है और क्रोधी का ज्ञान भ्रष्ट होता है और यहां क्रोधी के धन का नाश होता है १४॥

मू० न धर्म्मः क्रोधशीलस्य नार्थं चाप्नोति रोषिणः।
नालं सुखाय कामाप्तिः कोपेनात्रिष्टचेतसाम् १५॥

टी०। क्रोधी का धर्म्म नहीं रहता और क्रोधी को धन भी प्राप्त नहीं होता कामना मिलनेपर भी क्रोधियों को अच्छीतरह सुख नहीं होता १५॥

मू० यदि राज्ञा हता धेनुरियं विज्ञानिना सता।
युक्तमत्र दयां कर्तुमात्मनोहितबोधिना १६॥

टी०। यदि विज्ञान होकर महाराज पृष्ध्र ने अज्ञानता से इस धेनु को मार दिया तो ऐसे समय में आत्मा को हित जाननेवाले को उनके ऊपर दया करनाचाहिये १६॥

मू० अथवाऽजानता धेनुरियं व्यापादिता मम।
तत्कथं शापयोग्योऽयं दुष्टं नास्य मनोयतः १७॥

टी०। अथवा इन्होंने जानबूझकर शत्रुता की राह से हमारी इस होम-धेनु को नहीं मारा है तो फिर किस वास्ते महाराज पृषध्र को शाप देना उचित है क्योंकि इन का मन दुष्ट नहीं है १७॥

मू० आत्मनोहितमन्विच्छन् बाधते योऽपरं नरः।
कर्त्तव्या मूढविज्ञाने दया तत्र दयालुभिः १८॥

टी०। जो कोई अपनी भलाई के वास्ते दूसरे को दुःख देताहै उस ज्ञान-हीन पुरुष के ऊपर दयावान् जनोंको दया करना चाहिये १८॥

मू० अज्ञानतः कृते दण्डं पातयन्ति बुधायदि।
बुधेभ्यस्तमहं मन्ये वरमज्ञानिनोनराः १९॥

टी०। यदि कोई मनुष्य अज्ञानता से किसी का अपराध करै और ज्ञानी मनुष्य उसका दण्ड करैं तो ऐसे ज्ञानियों से उस अज्ञानी को मैं श्रेष्ठ समझता हूँ १६॥

मू० नायं शापस्त्वया देयः पार्थिवस्यास्य पुत्रक।
स्वकर्म्मणैव पतिता गौरेषा दुःखमृत्युना २०॥

टी०। हे वत्स! इस महाराज को तुम्हें शाप न देनाचाहिये क्योंकि यह गऊ अपने कर्म से और आयुर्बल पूरी होजाने से मरगई है इस में महाराज का कुछ दोष नहीं है २०॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० पृषध्रोऽपि मुनेः पुत्रं प्रणम्यानम्रकन्धरः।
प्रसीदेति जगादोच्चैरज्ञानाद् घातितेत्तिच २१॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुके! अग्निहोत्री की यह बात सुनकर महाराज पृषध्रने क्रोध छोड़कर कन्धा झुंकाके उस मुनि कुमार को दण्डवत् प्रणाम किया और प्रसन्नतापूर्व्वक यह कहनेलगे कि हे महाराज! आप प्रसन्न हूजिये मैंने आज्ञानता से इस धेनु को मारा है २१॥

मू० मया गवयबुद्ध्या गौरवध्या घातिता मुने।
अज्ञानाद्धोमधेनुस्ते प्रसीद त्वं च नोमुने २२॥

टी०। हे मुने! आपकी होमधेनु को लीलगाह समझकर मैंने बाण से मारा है यदि मैं गऊ जानता तो न मारता क्योंकि गऊ अवध्या है हे मुने! अब आप मुझपर प्रसन्न हूजिये २२॥

ऋषिपुत्रउवाच॥

मू० आजन्मनोमहीपाल न मया व्याहृतं मृषा।
क्रोधश्चाद्य महाभाग नान्यथा मे कदाचन २३॥

टी०। यह बात महाराज पृषध्र से सुनकर मुनिपुत्र बोला कि हे महाराज महाभाग! जन्म से आज तक मैं कभी झूंठ नहीं बोला इससे आज मेरा क्रोध अन्यथा नहीं हो सक्ता २३॥

मू० तन्नाहमेनं शक्नोमि शापं कर्तुं नृपान्यथा।
यस्ते समुद्यतः शापोद्वितीयः सनिवर्त्तितः २४ ॥

टी०। हे राजन् ! जो शाप मैंने दिया वह तो मिथ्या नहीं होसक्ता प-
रन्तु अब जो दूसरी शाप देने को मैं चाहता हूँ वह न दूँगा २४ ॥

मू० इत्युक्तवन्तं तं बालमादाय सपिता ततः।
जगाम स्वाश्रमं सो ऽपि पृषध्रः शूद्रतामगात् २५ ॥

टी०। जो उसका पिता था वह अग्निहोत्री ब्राह्मण ऐसा कहतेहुये
अपने पुत्रको अपने साथ लेकर वहां से अपने आश्रम को चलागया और
महाराज पृषध्र उस मुनिकुमार के शाप से शूद्र होगये २५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेपृषध्रोपाख्यानेनामद्वादशाधिक
शततमोऽध्यायः ११२ ॥

अथ एकसौ तेरहका अध्याय ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० कारूषाः क्षत्रियाः शूराः करूषस्याभवन् सुताः।
ते तु सप्तशतावीरास्तेभ्यश्चान्ये सहस्रशः १ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुके ! करूष के पुत्र सातसौ
कारूष क्षत्री (शूर याने सिपाही) उत्पन्नहुये और इन सबों की सन्तान
से और हजारों क्षत्री उत्पन्नहुये १ ॥

मू० दिष्टपुत्रस्तु नाभागः स्थितः प्रथमयौवने।
ददर्श वैश्यतनयामतीव सुमनोहराम् २ ॥

टी०। और उनमें से महाराज दिष्ट के पुत्र नाभागनाम थे प्रथम यौ-
वन में टिकेहुये जिन्हों ने एक बहुतसुन्दरी वैश्य की कन्याको देखा २ ॥

मू० तस्यां सदृष्टमात्रायां मदनाक्षिप्तमानसः।
बभूव भूपतनयोनिःश्वासाक्षेपतत्परः ३ ॥

टी०। उसको देखते ही वे राजपुत्र कामासक्त होगये व उसकी प्रीति
में श्वास भरनेलगे ३ ॥

मू० तस्याः सगत्वा जनकं वव्रे तां वैश्यकन्यकाम् ।
ततोऽनङ्गपराधीनमनोवृत्तिं नृपात्मजम् ४ ॥

टी० । फिर उन नाभाग ने उस कन्या के पिता के पास जाकर उस कन्या को मांगा उस के बाद वैश्य ने राजपुत्र को कामासक्तचित्त देखकर ४ ॥

मू० तञ्चाह सपिता तस्याराजपुत्रं कृताञ्जलिः ।
बिभ्यत्तस्य पितुर्विप्र प्रश्रयावनतं वचः ५ ॥

टी० । हेविप्र ! नाभाग के पिताके डरसे उस वैश्यकन्या का वह पिता हाथ जोड़कर उस राजपुत्र अर्थात् नाभागसे स्नेहसे नम्रवचन कहा ५ ॥

मू० भवन्तोभूभुजोभृत्यावयं वः करदायकाः ।
कथं सम्बन्धमस्माभिरस्माभिरभिवाञ्छसि ६ ॥

टी० । कि हे राजपुत्र ! आप राजाहैं और हम सब आपके सेवक और महसूलदेनेवाले हैं आप हम ऐसे नीचकुलवालों से किसप्रकार सम्बंध कियाचाहते हैं क्योंकि विवाह का सम्बन्ध बराबरवाले के साथ करना- चाहिये ६ ॥

राजपुत्रउवाच ॥

मू० साम्यं मानुषदेहस्य काममोहादिभिः कृतम् ।
तथापि काले तैरेव योज्यते मानुषं वपुः ७ ॥

टी० । यह सुनकर राजपुत्रने कहा कि हे वैश्य ! मनुष्य का शरीर काम और मोहादिकों से समता में कियागया है तिसपर भी वे कामा- दिक समय पाकर मनुष्य के शरीर में प्रबल होजाते हैं ७ ॥

मू० तथैव चोपकाराय जायन्ते तस्य तान्यपि ।
अन्यानि चान्यजातानि भिन्नजातिमतां सताम् ८ ॥

टी० । उसी प्रकार काल पाकर वे काम इत्यादि मनुष्यों के शरीर का उपकार करते हैं और अलग अलग जातिवाले सज्जनोंके एक शरीर का काम दूसरे शरीर से प्राप्त होता है ८ ॥

मू० तथान्यान्यप्ययोग्यानि योग्यतां यान्ति कालतः ।
योग्यान्ययोग्यतां यान्ति कालवश्याहि योग्यता ९ ॥

टी० । वैसेही अन्य अयोग्य भी काल पाकर योग्य होजाते हैं और योग्य मनुष्य काल पाकर अयोग्य हो जाते हैं क्योंकि योग्यता काल के वश्य है ६ ॥

मू० आप्याय्यते यच्छरीरमाहारादिभिरीप्सितैः ।
कालं ज्ञात्वा तथाभूतं तदेव परिशिष्यते १० ॥

टी० । इच्छानुसार भोजन इत्यादि पाने से जो शरीर तृप्त कियाजाता है वही शरीर समय जानकर तथाभूत याने पहले की तरह शेष रहजाता है १० ॥

मू० इत्थं ममैषाभिमता तनया दीयतां त्वया ।
अन्यथा मच्छरीरस्य विपत्तिरुपलक्ष्यते ११ ॥

टी० । इसीतरह से समय का हाल लक्षितहै इस वास्ते तुम्हारी इस कन्या को मैं चाहता हूँ यदि तुम मुझको देदो तो अच्छा है नहीं तो मेरे शरीर को विपत्ति देखपड़ती है याने मैं मरजाऊँगा ११ ॥

वैश्यउवाच ॥

मू० परतन्त्रावयं त्वञ्च परतन्त्रोमहीभुजः ।
पित्रा तेनाभ्यनुज्ञातस्त्वं गृहाण ददाम्यहम् १२ ॥

टी० । इतनी बातें राजपुत्र की सुनकर वैश्य फिर बोला कि हमलोग आपके पिता महाराज दिष्ट के वश्य में हैं और आप भी उन्हीं के वश्य में हैं यदि वह अर्थात् महाराज दिष्ट आज्ञा देवैं तो मैं निस्सन्देह आप को अपनी कन्या दे दूँ और आप ग्रहणकीजिये १२ ॥

राजपुत्रउवाच ॥

मू० प्रष्टव्याः सर्व्वकार्य्येषु गुरवोगुरुवर्त्तिभिः ।
नत्वीदृशेष्वकार्य्येषु गुरूणां वाक्यगोचरः १३ ॥

टी० । इतनी बात सुनकर राजपुत्र फिर बोला कि गुरुवों के अनुकूल-मनुष्यों को सब कामों में गुरुजन से अवश्य पूछनाचाहिये परन्तु ऐसे ऐसे न करनेयोग्य कामोंमें पूछना कुछ अवश्य नहीं है १३ ॥

मू० क मन्मथकथालापोगुरूणां श्रवणं क च ।

विरुद्धमेतदन्यत्र प्रष्टव्यागुरुवोनृभिः १४॥

टी०। कहां तो काम की कथावार्त्ता करना और कहां गुरुजनों की वाक्य और विचार सुनना यह दोनों बातें परस्पर विरुद्ध हैं मनुष्यों को अन्य अन्य कामों में गुरुजनों से पूछनाचाहिये १४॥

वैश्यउवाच॥

मू० एवमेतत् स्मरालापस्तवायं पृच्छ मा गुरुम्।
अहं पृच्छामि नालापोमम कामकथाश्रयः १५॥

टी०। वैश्य ने कहा कि हे राजपुत्र! आप जो कहते हैं सो सत्यहै आप को काम की वार्त्ता करना है गुरु से मत पूछिये परन्तु मुझको तो काम की कथा नहीं अलापना है मैं पूछूंगा १५॥

मार्कण्डेयउवाच॥

मू० इत्युक्तः सोऽभवन्मौनी राजपुत्रः सचापि तत्।
तत्पित्रे सर्व्वमाचष्ट राजपुत्रस्य यन्मतम् १६॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुके यह बात वैश्य की सुनकर वह राजपुत्र मौन होगया और उस वैश्य ने इनके पिता महाराज दिष्ट के पास जाकर राजपुत्रका जो मतथा वह समस्त वर्णन किया १६॥

मू० ततस्तस्य पिता विप्रानृचीकादीन् द्विजोत्तमान्।
प्रवेश्य राजपुत्रञ्च यथाख्यातं न्यवेदयत् १७॥

टी०। इसके उपरान्त उसके पिता महाराज दिष्ट ने यह कथा सुनकर ऋचीक इत्यादि उत्तम ब्राह्मणों को और राजकुमार को बुलवाकर बैठाला और जो वृत्तान्त वैश्य के मुख से सुनाथा वह सब वर्णन किया १७॥

मू० निवेद्य च ततः प्राह मुनीनेवं व्यवस्थिते।
यत्कर्त्तव्यं तदादेष्टुमर्हन्ति द्विजसत्तमाः १८॥

टी०। महाराज दिष्ट ने ब्राह्मणों से सब वृत्तान्त कहकर सलाह पूछा कि हे द्विजोत्तमो! इस विषय में जो करनाचाहिये उसे आपलोग आज्ञादेने योग्यहैं १८॥

ऋषयऊचुः॥

मू० राजपुत्रानुरागस्ते यद्यस्यां वैश्यसन्ततौ।

तदस्तु धर्म्मएवैषकिन्तु न्यायक्रमेण सः १९ ॥

टी०। तब ऋषिलोग सब वृत्तान्त सुनकर और राजपुत्र की ओर देख कर बोले कि हेराजपुत्र जो इस वैश्य की कन्या पर आपको प्रीति हुई तो कुछ चिन्ता नहीं परन्तु न्यायकर्म्म के साथ विवाह कीजिये तो यह धर्म ही है १९ ॥

मू० मूर्द्धाभिषिक्ततनयापाणिग्राहोभवान्पुरा ।
भवत्वनन्तरञ्चेयं तव भार्य्या भविष्यति २० ॥

टी०। पहिले आप क्षत्री की कन्याके साथ विवाह करलीजिये तिसके उपरान्त इस वैश्य की कन्या के साथ विधिपूर्व्वक विवाह कीजिये २० ॥

मू० एवं न दोषोभवति तथेमामुपभुञ्जतः ।
अन्यथाऽभ्येति ते जातिरुत्कृष्टाबालिकां हरन् २१ ॥

टी०। इस प्रकार वैश्यकी कन्या के साथ भोगकरने से आपको दोष नहीं होगा व न्याय के विपरीत कन्याको हरतेहुये तुमको दोष होगा क्योंकि आप उत्तमजातिवाले क्षत्री हैं २१ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० इत्युक्तस्तदपास्यैव वचस्तेषां महात्मनाम् ।
विनिष्क्रम्य गृहीत्वा तामुद्यतासिरथाब्रवीत् २२ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टु के इस प्रकार ऋषिलोगों के कहने के पश्चात् वह राजपुत्र अर्थात् नाभाग उन महात्माओं की बातों का आदर न करके वहां से निकल खड़ाहुआ और उस वैश्य की कन्या को जाकर पकड़लिया और हाथ में खड्गलेकर बोला २२ ॥

मू० राक्षसेन विवाहेन मया वैश्यसुता हृता ।
यस्य सामर्थ्यमत्रास्ति सएतां मोचयत्विति २३ ॥

टी० । किं राक्षसविवाह करके मैं ने इस वैश्यकन्या को हरणकरलिया अब यहां जिसको सामर्थ्य हो वह मुझसे यह कन्या छीनले २३ ॥

मू० ततः सवैश्यस्तां दृष्ट्वा गृहीतां तनयां द्रुतम् ।
त्राहीति पितरं तस्य प्रययौ शरणं द्विज २४ ॥

टी०। हे द्विज ! तत्पश्चात् वह वैश्य अपनी उस कन्या को पकड़ीहुई देखकर शीघ्रता से उसके पिता महाराज दिष्ट की शरण में गये २४॥

मू० ततस्तस्य पिता क्रुद्धश्चादिदेश बलं महत्।
हन्यतां हन्यतां दुष्टोनाभागोधर्म्मदूषकः २५॥

टी०। तब उसके पिता महाराज ने क्रोधित होकर अपनी बड़ी सेना को आज्ञा दिया कि इस अधर्म्मी दुष्ट नाभाग को अभी मार डालो २५॥

मू० ततस्तद्युयुधे सैन्यं तेन भूभृत्सुतेन वै।
कृतास्त्रेण तदास्त्रेण तत्प्राचुर्य्येण पातितम् २६॥

टी०। महाराज की आज्ञा पाकर वह सेना राजपुत्रको मारनेके वास्ते उस स्थान पर पहुँचगई और अस्त्रों में उस राजपुत्र से युद्ध होनेलगा अन्त को उस युद्ध में अनेकप्रकार के अस्त्र शस्त्र से राजकुमारने सब सेना को काटडाला २६॥

मू० सश्रुत्वा निहतं सैन्यं राजपुत्रेण भूपतिः।
स्वयमेव ययौ योद्धुं स्वसैन्यपरिवारितः २७॥

टी०। वेराजा उस सेना को कटीहुई सुनकर दूसरी अपनी सेना साथ लेकर महाराज आप राजपुत्र से युद्धकरने के वास्ते वहां पहुँचे २७॥

मू० ततोयुद्धमभूत्तस्य भूभुजः स्वसुतेन यत्।
राजपुत्रेण शस्त्रास्त्रैस्तत्रातिशयितः पिता २८॥

टी०। और उसके बाद वे राजा अपने पुत्रके साथ जो युद्ध करनेलगे उस युद्ध में भी राजपुत्र ने अपने अस्त्र और शस्त्रसे अपने पिता महाराज को बहुत दुःखी किया २८॥

मू० ततोऽन्तरिक्षादागत्य परिव्राट् सहसा मुनिः।
प्रत्युवाच महीपालं विरमस्वेति संयुगात् २९॥

टी०। इसी अन्तर में आकाश के मार्ग से भिक्षुक मुनि उस स्थान पर अचानक पहुँचकर महाराजसे बोले कि आप युद्ध न कीजिये २९॥

मू० त्वत्पुत्रस्य महाभाग विधर्म्मोऽयं महात्मनः।
तवापि वैश्येन सह न युद्धं धर्म्मवन्नृप ३०॥

टी० । हे महाभाग ! आपके महात्मा पुत्र का धर्म्म नष्ट होगया अर्थात् अब वह वैश्य होगया हेराजन् ! वैश्य के साथ आप क्षत्री को युद्ध करना उचित नहीं ३० ॥

मू० ब्राह्मणोब्राह्मणी पूर्वं कुर्व्वन्दारपरिग्रहम् ।
ब्राह्मण्यात्सर्व्ववर्णेषु न हानिमुपगच्छति ३१ ॥

टी० । ब्राह्मण पहले ब्राह्मणी से विवाह करले तत्पश्चात् अन्य अन्य जाति से लड़कियों में विवाह करै तो ब्राह्मणता से हानि को नहीं प्राप्त होताहै ३१ ॥

मू० तथैव क्षत्रियसुतां क्षत्रियः पूर्व्वमुद्वहन् ।
इतरे च ततोराजंश्च्यवन्ते न स्वधर्म्मतः ३२ ॥

टी० । इसी प्रकार क्षत्री भी पहले क्षत्री की कन्या से विवाह करले तब फिर वैश्य और शूद्र की कन्या के साथ विवाह करै तो हे राजन् ! अपने धर्म से भिन्न नहीं होता है ३२ ॥

मू० पूर्व्वं वैश्यस्तथा वैश्यां पश्चाच्छूद्रकुलोद्भवाम् ।
न हीयते वैश्यकुलादयं न्यायः क्रमोदितः ३३ ॥

टी० । इसी तरह वैश्य भी पहले अपनी जाति की कन्या के साथ विवाह करले तत्पश्चात् शूद्र की कन्या के साथ विवाहकरै तो वैश्यवंश से हीन नहीं होताहै यही न्याय का क्रम है जो मैंने कहा ३३ ॥

मू० ब्राह्मणाः क्षत्रियावैश्याःसवर्णापाणिसंग्रहम् ।
अकृत्वाऽन्यभवापाणेः पतन्ति नृप संग्रहात् ३४ ॥

टी० । हे महाराज ! जो ब्राह्मण और क्षत्री और वैश्य पहले अपनी जाति की कन्या से विवाह किये विना दूसरी जाति की कन्या के साथ विवाह करता है वह पतित (धर्म से भ्रष्ट) होजाता है ३४ ॥

मू० यस्यायस्याहि हीनायाः कुरुते पाणिसंग्रहम् ।
अकृत्वा वर्णसंयोगं सोऽपि तद्वर्णभाग्भवेत् ३५ ॥

टी० । जो पुरुष अपनी जाति को छोड़कर पहले जिस २ छोटी जाति की कन्या से विवाह करता है वह वही जाति होजाताहै ३५ ॥

मू० सोऽयं वैश्यत्वमापन्नस्तव पुत्रः समन्दधीः ।

नास्याधिकारोयुद्धाय क्षत्रियेण त्वया सह ३६ ॥

टी० । हे महाराज ! सो आपका यह मन्दबुद्धिवाला पुत्र वैश्य होगया और आप क्षत्री हैं इससे आप को उस वैश्य के साथ युद्धकरना उचित नहीं है ३६ ॥

मू० वयमेवात्र जानीमः कारणं नृपनन्दन ।
यथा भविष्यतीदं च निवर्त्तरणकर्म्मतः ३७ ॥

टी० । और हे नृपनन्दन ! हमलोग इसका कारण जानतेहैं कि जिस प्रकार यह कारण होगा परन्तु हम आपको मनाकरते है कि आप युद्धके कर्म से निवृत्त हूजिये ३७ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेनाभागचरित्रेनामत्रयोदशाधिकशततमोध्यायः ११३ ॥

अथ एकसौचौदहका अध्याय ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० निवृत्तोऽसौ ततोभूपःसंग्रामात् स्वसुतेन वै ।
उपयेमे च तां वैश्यतनयां सोऽपि तत्सुतः १ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुके ! परिव्राट् मुनि के मनाकरने से दिष्ट महाराज ने अपने पुत्रसे युद्धकरना त्यागकिया और उन के उस बेटे ने भी वैश्य की उस कन्या से विवाह करलिया १ ॥

मू० ततः सवैश्यतां प्राप्तः समुपेत्याह पार्थिवम् ।
भूपाल यन्मया कार्य्यं तत्समादिश्यतां मम २ ॥

टी० । तदनन्तर वह वैश्य होगया तत्पश्चात् महाराज के पास जाकर कहने लगा कि हे राजन् ! अब आप जिस कर्म्मके करने की मुझे आज्ञा दीजिये वह मैं करूँ २ ॥

राजोवाच ॥

मू० धर्म्माधिकरणे युक्ता बाभ्रव्याद्यास्तपस्विनः ।
यदस्य कर्म्म धर्म्माय तद्वदन्तु तथाचर ३ ॥

टी० । महाराज ने कहा कि बाभ्रव्य इत्यादि तपस्वीलोग जो धर्म्म

के बतानेवाले हैं उन लोगों के पास जाकर पूँछो जो वे लोग कहैं उसके अनुसार काम करो ३ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० ततस्ते मुनयस्तस्य पाशुपाल्यं तथा कृषिम् ।
वाणिज्यञ्च परं धर्म्ममाचचक्षुः सभासदः ४ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुके ! तब उस राजकुमार अर्थात् नाभाग ने उन तपस्वीलोगों से जाकर पूँछा कि अब हम किस वर्ण का कर्म्म करैं तब सभाके बैठनेवाले तपस्वीलोगोंने पशुपालन और खेती और वाणिज्य यही तीनों कर्म्म परम धर्म्म उसको बतलादिया ४ ॥

मू० तथा च चक्रे ससुतस्तस्य राज्ञोयथोदितम् ।
तैर्धर्म्मवादिभिर्धर्म्मे च्युतस्य निजधर्म्मतः ५ ॥

टी० । तब वह राजकुमार अपना क्षत्रियधर्म्म छूटजानेपर उनलोगों के उपदेश के अनुसार काम करनेलगा ५ ॥

मू० तस्य पुत्रस्ततोजातोनाम्नाख्यातोभनन्दनः ।
समात्रा प्रहितोऽगच्छद्गोपालोभव पुत्रक ६ ॥

टी० । तत्पश्चात् उसके पुत्र उत्पन्नहुआ जिसका नाम भनन्दन विख्यातहुआ उस पुत्र से उसकी माताने कहा कि हे बेटा ! तुम गोपाल होउ अर्थात् वैश्य का कर्म्म अङ्गीकार करो ६ ॥

मू० मात्रा तथा नियुक्तोऽथ प्रणिपत्य स्वमातरम् ।
राजर्षिमगमन्नीपं हिमवत् पर्व्वताश्रयम् ७ ॥

टी० । इस प्रकार माता की आज्ञा पाकर वह भनन्दन अपनी माता को प्रणामकरके हिमालय पर्व्वत पर नीपनाम राजर्षिके पास गया ७ ॥

मू० तं समेत्य सजग्राह तस्य पादौ यथाविधि ।
प्रणिपत्याह चैवैनं राजर्षिं सभनन्दनः ८ ॥

टी० । वह उनके पास जाकर और उनके चरण पकड़कर विधिपूर्व्वक प्रणामकरके हाथ जोड़कर वह भनन्दन इन राजर्षिसे बोला ८ ॥

मू० आदिष्टोभगवन्मात्रा गोपालस्त्वं भवेति वै ।
मया च पालनीया ... ।

टी०। कि हे भगवन्! मुझको मेरी माताने गऊ पालने की आज्ञा दीहै और मुझको तो पृथ्वीपालन करनाचाहिये सो उस पृथ्वी का अंगीकार किस तरह होवै ९॥

मू० मया हि गौः पालनीया सा यदा स्वीकृता भवेत्।
आक्रान्ता बलवद्भिः सा दायादैः पृथिवी मम १०॥

टी०। मुझको दोनों गऊ पालन करना चाहिये और जब मैं गऊ का पालनकरना स्वीकार करूंगा तो बलिष्ठ हिस्सेदारों ने जो उस पृथ्वी को ले लिया है १०॥

मू० तां यथा प्राप्नुयां पृथ्वीं त्वत्प्रसादादहं विभो।
तथादिश करिष्यामि तवाज्ञां प्रणतोऽस्मि ते ११॥

टी०। हे प्रभु! मुझको कोई ऐसा यत्न बतलाइये कि जिसमें आप के प्रसाद से वह पृथ्वी मुझको मिलै मैं आपकी आज्ञा करूँगा मैं आप को प्रणाम करताहूँ ११॥

मार्कण्डेयउवाच॥

मू० ततः सनीपोराजर्षिस्तस्मै निरवशेषतः।
भनन्दाय ददौ ब्रह्मन्नस्त्रग्रामं महात्मने १२॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे ब्रह्मन्! भनन्दनको इनबातों के कहने के पश्चात् उस नीप राजऋषि ने उस भनन्दन महात्मा को सम्पूर्ण अस्त्रविद्या सिखला दिया १२॥

मू० प्राप्तास्त्रविद्यःसययौ पितृव्यं तनयान् द्विज।
वसुरातादिकान् पुत्रानादिष्टः समहात्मना १३॥

टी०। तब वह भनन्दन अस्त्रविद्या सीखकर और महात्मा राजर्षि की आज्ञा लेकर ऐ ब्राह्मण! वसुरात इत्यादि अपने चचेरे भाइयों के पास गया १३॥

मू० अयाचत सराज्यार्द्धं पितृपैतामहोचितम्।
ते चोचुर्वैश्यपुत्रस्त्वं कथं भोक्ष्यसि मेदिनीम् १४॥

टी०। और उन लोगों से पिता और पितामह के उचित जो राज्य थ

उसमें से आधा हिस्सा अपना माँगा तब उन्होंने कहाकि तुम वैश्यपुत्र हो किसतरह पृथ्वी का भोग करोगे १४ ॥

मू० ततस्तैर्युद्धमभवद्भनन्दस्यात्मवंशजैः।
वसुरातादिभिः क्रुद्धैः कृतास्त्रस्यास्त्रवर्षिभिः १५॥

टी०। अन्तको अस्त्र सिखेहुये भनन्दन का वसुरात इत्यादि अपने वंशमें उत्पन्न व क्रोधित तथा अस्त्रों की वर्षाकरनेवाले उन भाइयों से युद्ध हुआ १५॥

मू० सजित्वा तानशेषांस्तु शस्त्रविक्षतसैनिकान्।
जहार पृथिवीं तेषां धर्म्मयुद्धेन धर्म्मवित् १६॥

टी०। व धर्मका जाननेवाला वह भनन्दन धर्म्मयुद्धकरके अपने अस्त्र और शस्त्रों से उनलोगों की सब सेना मारकर और सब भाई बन्धुओं को जीतकर उन लोगों से भनन्दन ने पृथ्वीको लेलिया १६॥

मू० सनिर्जितारिः सकलां पृथ्वीं राज्यं तथा पितुः।
निवेदयामास ततस्तत्पिता जगृहे न च॥
प्रत्युवाच चतं पुत्रं भार्य्यायाः पुरतस्तदा १७॥

टी०। शत्रुओं का जीतनेवाला वह भनन्दन सम्पूर्ण पृथ्वी व राज्य अपने पिताको देनेलगा परन्तु भनन्दन के पिता ने उससे राज्य का लेना अङ्गीकार न किया किन्तु उस समय अपनी स्त्री के सामने उस भनन्दन से कहनेलगे १७॥

नाभागउवाच॥

मू० भनन्द राज्यमेतत्ते क्रियतां पूर्व्वजैः कृतम् १८॥

टी०। नाभाग बोले कि हे भनन्दन! पिता और पितामहसे कियाहुआ यह राज्य अब तुम भोग करो १८॥

राजोवाच॥

मू० अहं न कृतवान् राज्यं नासामर्थ्ययुतः पुरा।
वैश्यतान्तु पुरस्कृत्य तथैवाज्ञाकरः पितुः १९॥

टी०। और राजा ने यह भी कहा कि बहुत सामर्थ्य से युक्त मैंने

पहिले भी राज्य नहीं किया है क्योंकि मैं वैश्य होगयाथा व मेरे पिता ने आज्ञा दी है उसीके अनुसार करता हूँ १९॥

मू० कृत्वाऽप्रीतिं पितुरहं वैश्यकन्यापरिग्रहात्।
न पुण्यलोकभाग्राजा यावदाभूत संप्लवम् २०॥

टी०। मैं वैश्यकी कन्या ग्रहणकरके अपने पिता से विरुद्ध होगया और उनके क्रोध से कल्पपर्य्यन्त मैं राजाहोकर पुण्यलोक का भागी न हूँगा २०॥

मार्कण्डेयउवाच॥

मू० उल्लङ्घ्याज्ञां पुनस्तस्य पालयामि महीं यदि।
नास्ति मोक्षस्ततोनूनं मम कल्पशतैरपि २१॥

टी०। हे पुत्र अब जो मैं फिर उस पिता की आज्ञा कोउल्लंघनकरके पृथ्वी का पालनकरूँ तो सौकल्प तक भी मेरी मुक्ति न होगी २१॥

मू० न चापि युक्तं त्वद्बाहुनिर्जितं मम मानिनः।
राज्यं भोक्तुमनीहस्य दुर्बलस्येव कस्यचित् २२॥

टी०। और तुम्हारे बाहुबल का जीताहुआ राज्य मुझ मानीको किसी दुर्बलकी नाईं भोगकरना भी न चाहिये क्योंकि मेरे कांक्षा नहीं है व २२॥

मू० राज्यं कुरु स्वयं पुत्र दायादेभ्यो विमुञ्च वा।
ममाज्ञापालनं शस्तं पितुर्नक्षितिपालनम् २३॥

टी०। तुम अपना राज्य चाहौ आप करो चाहौ अपने भाई बन्धु को देदो मुझको पिताकी आज्ञापालन करना श्रेष्ठ है और पृथ्वी का पालन करना नहीं श्रेष्ठहै २३॥

मार्कण्डेयउवाच॥

मू० ततः प्रहस्य तद्भार्य्या सुप्रभानाम भामिनी।
प्रत्युवाच पतिं भूप गृह्यतां राज्यमूर्ज्जितम् २४॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि इसके उपरान्त सुप्रभानाम उनकी स्त्री हंसकर अपने पतिसे बोली कि हे महाराज! आप बढ़ाहुआ राज्य ग्रहण कीजिये २४॥

मू० न त्वं वैश्योन चैवाहं जाता वैश्यकुले नृप।
क्षत्रियस्त्वं तथैवाहं क्षत्रियाणां कुलोद्भवा २५॥

टी०। हे नृप! आप वैश्य नहीं हैं और मैं भी वैश्यकुल में उत्पन्न नहीं हूँ आप क्षत्री हैं वैसे ही मैं क्षत्रियों के कुलमें उत्पन्न हूँ २५॥

मू० पूर्व्वमासीन्महीपालः सुदेव इतिविश्रुतः।
तस्याभूच्च सखा राज्ञोधूम्राश्वस्य सुतोनलः २६॥

टी०। पूर्व्वकालमें महाराज सुदेव ऐसे विख्यात राजाथे और राजाधूम्राश्व के बेटे नलनाम उनराजाके मित्रथे २६॥

मू० सतेन सख्या सहितोजगामाम्रवनं वनम्।
पत्नीभिः ससमं रन्तुं माधवे मासि पार्थिव २७॥

टी०। हेराजन्! एकदिन वे महाराज सुदेव उस नलनाम अपने मित्र के साथ वैशाख महीनेमें स्त्रियोंके साथ क्रीडा करनेके लिये आमके बागवाले वनमें गये २७॥

मू० ततः पानान्यनेकानि भक्ष्याणि बुभुजे तथा।
भार्य्याभिः सहितस्ताभिस्तेन सख्या समन्वितः २८॥

टी०। इसके उपरान्त उस बाग में पहुँचकर अपने उस मित्र और उन स्त्रियों के साथ पहले तरहतरहके अनेक भोजन और पान किया २८॥

मू० ततः पुष्करिणीतीरे ददर्शातिमनोरमाम्।
पत्नीं च्यवनपुत्रस्य प्रमतेः पार्थिवात्मजाम् २९॥

टी०। तत्पश्चात् पुष्करिणी (कमलवाले छोटे तालाब) के किनारे एक राजा की कन्या को जो च्यवन के पुत्र प्रमति की स्त्री और अत्यन्त सुन्दरी थी उसे देखा २९॥

मू० सखा तस्य नलोमत्तोजगृहे ताञ्च दुर्मतिः।
पश्यतस्तस्य राज्ञश्च त्रातत्रातेति वादिनीम् ३०॥

टी०। उस समय उनके मित्र नल दुर्मति ने मदान्ध होकर उस सुन्दरी को पकड़लिया जो कि राजाके देखतेही रक्षाकीजियेऐसा२कहरहीथी३०॥

मू० आक्रन्दितं निशम्यैव सतस्याः प्रमतिः पतिः।

आजगाम त्वरायुक्तः किमेतदिति वै वदन् ३१ ॥

टी०। उसके रोनेका शब्द सुनकर उसका पति वह प्रमति यह क्याहै ऐसा कहताहुआ शीघ्रता से वहां आपहुँचा ३१ ॥

मू० ततो ददर्श राजानं सुदेवं तत्र संस्थितम्।
गृहीताञ्च तथा पत्नीं नलेन सुदुरात्मना ३२ ॥

टी०। उसकेउपरान्त उस जगह बैठेहुये महाराज सुदेव को देखा और अपनी स्त्री को दुष्ट नलके हाथ में पकड़ीहुई देखा ३२ ॥

मू० ततः सुदेवं प्रमतिः प्राहायं शास्यतामिति।
त्वञ्च शास्ताभवद्राज्ये दुष्टश्चायं नलोनृप ३३ ॥

टी०। उसके बाद प्रमति महाराज सुदेव से बोले कि हे महाराज! यह नल आपके राज्यमें दुष्ट है और आप दुष्टों को दण्डदेनेवाले वर्त्तमान हैं आप इसको दण्ड दीजिये ३३ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० तस्यार्त्तस्य वचः श्रुत्वा सुदेवोनलगौरवात्।
प्राह वैश्योऽस्मि गच्छान्यं क्षत्रियंत्राणकारणात् ३४ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि उसदुःखित प्रमति के ऐसेवचन सुनकर महाराज सुदेव नल का पक्षपात करके बोले कि मैं वैश्य हूं आप रक्षाके लिये दूसरे क्षत्री के पास जाइये ३४ ॥

मू० ततः सप्रमतिः क्रुद्धस्तेजसा निर्दहन्निव।
प्रत्युवाचाथ राजानं वैश्योऽस्मीत्यभिभाषिणम् ३५ ॥

टी०। तब वे प्रमति क्रोध युक्तहोकर तेज से जलातेहुये सुदेव राजा से बोले जोकि वैश्य हूं ऐसा कहरहे थे ॥ ३५ ॥

प्रमतिरुवाच ॥

मू० एवमस्तु भवान् वैश्यः क्षत्रियाः क्षतरक्षणात्।
क्षत्रियैर्धार्य्यते शस्त्रं नार्त्तशब्दोभवेदिति ॥
सत्वं न क्षत्रियोभावी वैश्यएव कुलाधमः ३६ ॥

टी०। प्रमति बोले तुम जो कहतेहो ऐसाही होवै आप वैश्यही हैं क्यों-

जो किसी की विपत्ति में रक्षा करता है वही क्षत्रिय है क्षत्रियलोग इसी वास्ते शस्त्रधारण करते हैं कि दुःखका शब्द न हो सो तुम क्षत्रिय नहीं होनेवाले हो निस्सन्देह तुम कुलाधम वैश्य हो ३६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेनाभागचरित्रेनामचतुर्दशाधिक
शततमोऽध्यायः ११४ ॥

अथ एकसौ पन्द्रहका अध्याय ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० तस्मै दत्त्वा ततः शापं नलं क्रुद्धोऽब्रवीद्द्विज ।
प्रमतिर्भार्गवःकोपात् त्रैलोक्यं निर्दहन्निव १ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे द्विज! महाराजसुदेवको क्रोधितहो भृगुवंशी प्रमति ने शाप देकर और अपने कोप की अग्नि से तीनों लोक को दग्ध करते हुये से नल से कहने लगे १ ॥

मू० मदोन्मत्तो यदा भार्य्यां भवानत्र ममाश्रमे ।
बलाद्गृहणासि भस्मत्वं तस्माद्व्रजतु मान्दिरम् २ ॥

टी०। कि जो तुमने मदसे उन्मत्त होकर यहां मेरे आश्रम में बलसे मेरी स्त्री को पकड़ लिया इससे तुम अभी भस्म होजावो किञ्चित् विलम्ब न हो २ ॥

मू० तेनोदाहृतमात्रे च वाक्ये तस्मिन् तदानलः ।
देहजेनाग्निना सद्यो भस्मपुञ्जस्तदाऽभवत् ३ ॥

टी०। यह वचन प्रमति के मुख से निकलतेही उसवक्त नलके शरीर से अग्नि उत्पन्न हुई और उसी अग्नि में उसी समय शीघ्रही जलकर नल भस्म होगया ३ ॥

मू० दृष्ट्वा प्रभावं तत्तस्य सुदेवो विमदस्ततः ।
प्रणामनम्रःप्राहेदं क्षम्यतां क्षम्यतामिति ४ ॥

टी०। यह प्रभाव उन प्रमति का देखकर महाराजसुदेव मद्यपान करना छोड़कर प्रमति को प्रणाम करके नम्रहोकर वारंवार यही कहने लगे कि मेरा अपराध क्षमा कीजिये ४ ॥

मू० यदुक्तवांस्त्वां भगवन् सुरापानमदाकुलम् ।
तत्क्षम्यतां प्रसीद त्वं शापोयं विनिवर्त्यताम् ५ ॥

टी०। हे भगवन् ! मैंने मदिराके नशेमें जो तुम को कहा हो कि जिस कारण से आपने मुझको शाप दिया अब प्रसन्न होकर क्षमा कीजिये और जिसमें यह शाप मुझपर न पड़े सो उपाय कीजिये ५ ॥

मू० एवंप्रसादितस्तेन प्रमतिः प्राह भार्गवः ।
गतकोपोनले दग्धे तदा प्रीतेन चेतसा ६ ॥

टी०। महाराज सुदेव के इस प्रकार कहने और नलके भस्म होजाने से प्रमति अपना कोप छोड़कर और उस वक्त प्रसन्नचित्त होकर महाराज सुदेव से कहने लगे ६ ॥

मू० नान्यथाभावि तद्वाक्यं यन्मया समुदीरितम् ।
तथापि ते करिष्यामि प्रसन्नोऽनुग्रहं परम् ७ ॥

टी०। कि जो बात मेरे मुख से निकल गई वह तो मिथ्या नहीं हो सक्की पर तौ भी तुम्हारे ऊपर मैं प्रसन्न होता हुवा परम दया करूंगा ७ ॥

मू० भविता वैश्यजातीयो भवान्नास्त्यत्र संशयः ।
भविता क्षत्रियो वैश्यस्तस्मिन्नेवाशु जन्मनि ८ ॥

टी०। कि तुम वैश्य तो अवश्य होगे इसमें कुछ सन्देह नहीं है परन्तु फिर उसी जन्म में तुम शीघ्रही वैश्य से क्षत्रिय होजावगे ८ ॥

मू० ग्रहीष्यति बलात्कन्यां यदा ते क्षत्रसम्भवः ।
तदा त्वं क्षत्रियो वैश्यसुग्रहीतो भविष्यसि ९ ॥

टी०। और जब तुम्हारी कन्याको जबरदस्ती से क्षत्रिय लेजायगा तब अच्छी तरह ग्रहण किये हुये तुम वैश्य से क्षत्रिय होजावगे ९ ॥

मू० एवं स वैश्यो भूपाल सुदेवोऽस्मत्पिताऽभवत् ।
अहं च या महाभाग तत्सर्व्वं श्रूयतां त्वया १० ॥

टी०। हे महाराज! वही सुदेव महाराज मेरे पिता प्रमति के शाप से वैश्य होगये थे और हे महाभाग! मैं जो हूं वह सब हाल तुम सुनो १० ॥

मू० सुरथो नाम राजर्षिः प्रागासीद्गन्धमादने।
तपस्वी नियताहारस्त्यक्तसङ्गो वनाश्रयः ११ ॥

टी०। कि पूर्वकाल में सुरथ नाम राजर्षि हुये हैं उन तपस्वी ने लोगों का साथ छोड़कर और निराहार होकर गन्धमादन नाम पर्वत पर रहना अङ्गीकार किया ११ ॥

मू० ततः श्येनमुखभ्रष्टां दृष्ट्वैकां दारिकां भुवि।
कृपाऽभूज्जनितामूर्च्छा तया तस्य महात्मनः १२ ॥

टी०। वहांपर एकदिन एक कन्या को बाज के चंगुल से छूटकर पृथ्वी पर गिरतीहुई देखकर महाराज सुदेव के कृपाहुई उसीसे उन महात्मा के मूर्च्छा उत्पन्नहुई १२ ॥

मू० ततो मूर्च्छावसानेऽहं स्थिताभ्यर्से शरीरिणी।
स मां दृष्ट्वा च जग्राह स्निह्यमानेन चेतसा १३ ॥

टी०। उसके उपरान्त मूर्च्छाके अन्तमें जो उनके समीप शरीरधारिणी मैं स्थित हुई तब महाराज सुरथने मुझे देखकर स्नेहवाले चित्त करके ग्रहणकिया १३ ॥

मू० यस्मात्कृपाभिभूतस्य मम जातेयमात्मजा।
तस्मात्कृपावतीनाम्ना भविष्यत्याह स प्रभो १४ ॥

टी०। हे प्रभो! और ये मुनि कहने लगे कि जिससे मेरे कृपायुक्त होने से यह कन्या उत्पन्नहुई इसवास्ते यह कृपावती नामसे विख्यातहोगी १४॥

मू० ततोऽहमाश्रमे तस्य वर्द्धमाना दिवानिशम्।
सखीभिः सह तुल्याभिर्विचरामि वनानि च १५ ॥

टी०। फिरतो मैं महाराज सुरथ के आश्रम में रहकर रात दिन बढ़ने लगी और अपनी हमजोलीकी सखियों के साथ वनमें विहार किया करतीथी १५ ॥

मू० ततो मुनेरगस्त्यस्य भ्रातागस्त्य इति श्रुतः।

सञ्चिन्वन्कानने वन्यं सखीभिः कोपितोऽशपत् १६ ॥

टी०। फिर एकदिन अगस्त्य मुनिके भाई जिनकानाम अगस्त्य विख्यात था उस वन में वनके फलादिकों को ढूँढ़ते हुये पहुँचे और मेरी सखियों से क्रोधित होकर हम सब को शापदिया १६ ॥

मू० नापराधं कृतवती तवाहं द्विजसत्तम।
अन्यासामपराधेन किमर्थं शप्तवानसि १७ ॥

टी०। तब मैंने उनसे कहा कि हे द्विजसत्तम! मैंने आपका कुछ अपराध नहीं कियाहै दूसरी सखियों के अपराधपर मुझको क्यों तुमने शाप दिया है १७ ॥

ऋषिरुवाच ॥

मू० दुष्टतां दुष्टसंसर्गाददुष्टमपि गच्छति।
सुराबिन्दुनिपातेन पञ्चगव्यघटो यथा १८ ॥

टी०। यह बात मेरी सुनकर अगस्त्य ऋषि बोले कि दुष्ट की संगति से अदुष्ट भी दुष्ट होजाताहै जैसे एक बूँद मदिराके मिलानेसे घड़ा भर पञ्चगव्य अशुद्ध होजाता है याने इसी विचार से तुम्हारी सखियों के साथ तुमको भी मैंने शाप दिया १८ ॥

मू० प्रणिपत्य न दुष्टासि यत्त्वयाहं प्रसादितः।
तस्मादनुग्रहं बाले शृणु यत्ते करोम्यहम् १९ ॥

टी०। परन्तु अब जो तुमने मेरा प्रणाम करके मुझे प्रसन्न किया व अपनी क्षमा चाहती हो हे बाले! इसवास्ते तुम्हारे ऊपर मैं जो अनुग्रह करता हूँ उसे सुनो १९ ॥

मू० वैश्ययोनौ यदा जाता त्वं पुत्रं बोधयिष्यसि।
राज्याय जातिस्मरतां तदा त्वं समवाप्स्यसि २० ॥

टी०। कि जब तुम वैश्ययोनि में पैदा होकर अपने पुत्र को राज्य करने के लिये समझावोगी तब उस समय तुमको अपनी जातिका स्मरण होगा २० ॥

मू० ततो भूयः क्षत्रजातिं प्राप्ता त्वं पतिना सह।
दिव्यानवाप्स्यसे भोगान् गच्छ भीतिरपैतु ते २१ ॥

टी०। और जब फिर तुम क्षत्रियजातिमें प्राप्त होकर अपने पतिके साथ अच्छेअच्छे भोगोंको भोगकरोगी और तुमजाओ तुमको कुछभयन होगा २१॥

मू० एवं शप्तास्मि राजेन्द्र तेन पूर्व्वं महर्षिणा।
पिता च मे पूर्व्वमेवं शप्तःप्रमतिनाऽभवत् २२॥

टी०। हे राजेन्द्र! उन अगस्त्य महाऋषि ने मुझको पूर्वही इसप्रकार शाप दियाथा और मेरे पिता को प्रमति ने पूर्वही इसतरह शाप दिया था कि जिसकारण से हम लोग वैश्य कहलाये २२॥

मू० एवं वैश्यो न राजंस्त्वं न च वैश्यः पिता मम।
न त्वं हि मय्यदुष्टायामदुष्टो दुष्यसे कथम् २३॥

टी०। हे राजन्! इसप्रकार से न तुम वैश्य हो न मेरे पिता वैश्य हैं और न मेरे साथ विवाह करने से तुमको कुछ दोष हुआ क्योंकि मेरे पिता वास्तव में क्षत्रिय हैं जिनकी मैं कन्या हूँ और आप भी क्षत्रिय हैं २३॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेसुदेवचरित्रेनामपञ्चादशाधिक
शततमोऽध्यायः ११५॥

अथ एकसौ सोलहका अध्याय॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० इति तस्या वचः श्रुत्वा पुत्रस्य स च पार्थिवः।
पुनः प्रोवाच धर्म्मज्ञस्तां पत्नीं तनयन्तथा १॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि! यह सब बातें वह महाराज उस अपनी स्त्री कृपावती और पुत्र से सुनकर फिर धर्म्म के जाननेवाले राजा उस अपनी स्त्री और अपने पुत्रसे बोले १॥

मू० यन्मया पितुरादेशात् त्यक्तं राज्यं न तत्पुनः।
ग्रहीष्यामि वृथोक्तेन किमात्माऽऽकृष्यते त्वया २॥

टी०। कि पिता की आज्ञा से जो राज्य मैं ने छोड़ दिया है उसको

फिर किसतरह ग्रहण करूं तुम लोग झूंठ कहकर मेरी आत्मा को खैंच कर राज्य करने में क्यों प्रवृत्त कराते हो २ ॥

मू० अहन्ते सम्प्रदास्यामि करं वैश्यव्रते स्थितः।
भुङ्क्ष्व राज्यमशेषं त्वमिच्छया वा परित्यज ३ ॥

टी०। मैं वैश्यधर्म्म में रहकर तुमको करदिया करूंगा तुम अपना समस्त राज्य भोग करो या अपनी इच्छा से छोड़ दो ३ ॥

मू० इत्युक्तः स तदा पित्रा राजपुत्रो भनन्दन।
चकार राज्यं धर्म्मेण तद्वद्दारपरिग्रहम् ४ ॥

टी०। उस समय यह बात अपने पिता नाभाग से सुनकर वह राजपुत्र भनन्दन धर्म्मपूर्व्वक विवाह करके राज्य करने लगे ४ ॥

मू० अव्याहतं तस्य चक्रं पृथिव्यामभवद्विज।
नचाधर्म्मे मनो भूयास्तस्य सर्व्वेऽभवन् वशे ५ ॥

टी०। हे द्विज! वे महाराज भनन्दन पृथ्वी के चक्रवर्त्ती राजा हुये और उनका चित्त अधर्म्म की ओर कभी न जाता था और सब लोग उनके वश में हुये ५ ॥

मू० तेनेष्टो विधिवद्यज्ञः सम्यक् शास्ति वसुन्धराम्।
स एवैकोऽभवद्भर्त्ता पृथिव्यां व्याप्तशासनः ६ ॥

टी०। और उन महाराज भनन्दन ने विधिपूर्व्वक यज्ञ किया और हर तरह से पृथ्वी का पालन किया और सम्पूर्ण पृथ्वी में वही एक स्वाधिकारी राजा न्याय के साथ दण्ड करनेवाले हुये ६ ॥

मू० अजायत सुतस्तस्य वत्सप्रीर्नाम नामतः।
पितातिशयितो येन गुणौघेन महात्मना ७ ॥

टी०। उस राजा के वत्सप्री नाम पुत्र हुआ जिसका गुणगण पिता से भी बढ़ा हुआ था ७ ॥

मू० तस्यापि भार्य्या सौनन्दा विदूरथसुताऽभवत्।
पतिव्रता महाभागा सम्प्राप्ता तेन वीर्य्यतः ॥
हत्वापुरन्दररिपुं कुजृम्भं दितिजेश्वरम् ८ ॥

टी०। विदूरथ की कन्या सौनन्दा नाम उनकी भी भार्य्या थी उस पतिव्रता सुन्दरी को वह राजकुमार वत्सप्री अपने पराक्रम से इन्द्र के शत्रु कुजृम्भ नाम असुरेश्वर को मारकर ले आया था ८॥

कौष्टुकिरुवाच॥

मू० भगवंस्तेन संप्राप्ता कुजृम्भनिधनात्कथम्।
एतदाख्यानमाख्याहि प्रसन्नेनान्तरात्मना ९॥

टी०। इतनी कथा मार्कण्डेयजीसे सुनकर क्रौष्टुकि बोले कि हे मुनि-राजकुमार! वे वत्सप्री कुजृम्भको मार कर किस प्रकार सौनन्दाको लाये यह कथा प्रसन्नचित्तसे मुझको कह सुनाइये ६॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० विदूरथो नाम नृपःख्यातकीर्त्तिरभूद्भुवि।
तस्य पुत्रद्वयं जातं सुनीतिः सुमतिस्तथा १०॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहने लगे कि विदूरथ नाम एक राजा पृथ्वी में बहुत विख्यात कीर्त्तिवाला होगया है उसके दो पुत्र थे एक का नाम सुनीति दूसरे का नाम सुमति था १०॥

मू० एकदा तु वनं यातो मृगयां स विदूरथः।
ददर्श गर्त्तं सुमहद् भूमेर्मुखमिवोद्गतम् ११॥

टी०। एक दिन वे राजा विदूरथ वन में शिकार खेलने के वास्ते गये उस वन में एक बड़ा गड़हा जैसे पृथ्वी का मुख हो देख पड़ा ११॥

मू० तं दृष्ट्वा चिन्तयामास किमेतादिति भैरवम्।
पातालविवरं मन्ये नैतद् भूमेश्चिरंतनम् १२॥

टी०। उस भयानक गढ़े को देखकर चिन्ता करने लगे कि यह क्या है यदि इसे पाताल का छिद्र कहूँ तौ भी नहीं है क्यों कि यह तो पृथ्वी के भीतर बहुत दूर तक और बहुत दिनों का जान पड़ता है १२॥

मू० चिन्तयन्निति तत्रासौ ददर्श विजने वने।
ब्राह्मणं सुव्रतं नाम तपस्विनमुपागतम् १३॥

टी० । वहांपर इसी चिन्ता में राजा विदूरथ थे कि निर्जन वनमें सुव्रत नाम तपस्वी ब्राह्मण को अपने पास आये हुये देखा १३ ॥

मू० स तं पप्रच्छ च नृपः किमेतदिति विस्मितः ।
अतिगम्भीरमवनेर्दर्शितान्तर्गतोदरम् १४ ॥

टी० । उनसे विस्मित होकर उस राजाने पूँछा कि हे ब्राह्मण ! पृथ्वीके भीतर यह बड़ा गहरा गड्हा भयानक कैसा है १४ ॥

ऋषिरुवाच ॥

मू० किन्न वेत्सि महीपाल चाराक्षस्त्वं हि मे मतः ।
ज्ञेयं सर्व्वं नरेन्द्रेण वर्त्तते यन्महीतले १५ ॥

टी० । तब सुव्रत ब्राह्मण ने कहा कि हे महीपाल ! आप हमारे मत में चाराक्ष (राजा) हैं क्या आप नहीं जानते हैं पृथ्वी में जितनी वस्तु है वह सब महाराजों को जानना चाहिये १५ ॥

मू० दानवः सुमहावीर्य्यो वसत्युग्रो रसातले ।
स जृम्भयति यत्पृथ्वीं कुजृम्भः प्रोच्यते ततः १६ ॥

टी० । इतना कहकर फिर सुव्रत ब्राह्मण कहने लगे कि महापराक्रमी व कराल दानव पाताल में रहताहै और जिस लिये वह पृथ्वी को जृंभित करताहै इस कारण से उसका नाम कुजृम्भ है १६ ॥

मू० ह्रियते तेन यत्किञ्चिद्रत्नभूतं महीतले ।
त्रिदिवे वा नरपते तं कथं वेत्ति नो भवान् १७ ॥

टी० । और हे राजन् ! वह पृथ्वी पर और स्वर्गमें जो कुछ रत्नभूत वस्तु हरता है उसको आप क्यों नहीं जानते हो १७ ॥

मू० सुनन्दं नाम मुशलं त्वष्ट्रा यन्निर्म्मितं पुरा ।
तज्जहार स दुष्टात्मा तेन हन्ति रणे रिपून् १८ ॥

टी० । वृत्तान्त यहहै कि पूर्व्वकालमें विश्वकर्म्मा ने जो सुनन्द नाम एक मूशल बनाया था उसी मूशलको उस दुष्टात्मा कुजृम्भने चुरा लिया सो अब उसी मूशलसे वह दैत्य लड़ाइयोंमें अपने शत्रुओंको मारताहै १८ ॥

मू० पातालान्तर्गतस्तेन भिनत्ति वसुधामिमाम् ।

ततोऽसुराणां सर्व्वेषां द्वाराणि कुरुतेऽसुरः १९ ॥

टी०। और पाताल के बीच में जाकर उसी मुशल से इस पृथ्वी को फाड़ता है अर्थात् उसीसे पाताल में समस्त असुरों के आने और जाने के वास्ते उसी मुशल से दरवाज़े बनाता है १६ ॥

मू० तेन भिन्नात्र वसुधा सुनन्दमुशलेन तु ।
भोक्ष्यते वसुधामेतां तमजित्वा कथं भवान् २० ॥

टी०। यहां भी उसी सुनन्द मुशल से उसने पृथ्वी को फाड़ा है कि जो इस तरह का भयानक गड़हा देख पड़ता है उस दैत्य को मारे विना आप किस तरह इस पृथ्वी का राज्य भोग कीजियेगा २० ॥

मू० यज्ञान् विध्वंसयत्युग्रोदेवानामुपरोधकः ।
आप्याययति दैतेयान् सबली मुशलायुधः २१ ॥

टी०। वह भयानक दानव यज्ञों को नष्ट करताहै और देवताओं को घेरकर दुःख देताहै और वह बलिष्ठ दैत्य उसी मुशलके द्वारा दैत्यों का पालन करताहै २१ ॥

मू० यद्यरिं घातयस्येनं पातालान्तरगोचरम् ।
ततः समस्तवसुधापतिस्त्वं परमेश्वरः २२ ॥

टी०। यदि आप पाताल में रहनेवाले इसशत्रु को वधकीजियेगा तो अलबत्ता सब पृथ्वी के पति परमेश्वर आपही होंगे २२ ॥

मू० मुशलन्तस्य बलिनः सौनन्दं प्रोच्यते जनैः ।
तथा बलाबलञ्चैव तं वदन्ति विचक्षणाः २३ ॥

टी०। उसबली कुजृम्भ के मुशलको सबलोग सौनन्द कहते हैं और चतुरजन उसी मुशलको बलाबल भी कहते हैं २३ ॥

मू० तत्तु निर्वीर्य्यतां याति संस्पृष्टं योषिता नृप ।
तस्मिन् दिने द्वितीयेऽह्नि वीर्य्यवत्तदुदीर्य्यते २४ ॥

टी०। हे महाराज ! जिसदिन वह मुशल स्त्री के हाथसे छूजाता है उसदिन वह निर्बल होजाता है फिर दूसरे दिन वैसा का वैसाही बली होजाता है २४ ॥

मू० न सवेत्ति दुराचारः प्रभावं मुशलस्य तम्।
योषित्कराग्रसंस्पर्शे दोषं वीर्य्यविशातनम् २५॥

टी०। और वह प्रभाव उस मुशलका वह दुष्टआचरणवाला कुजृम्भ नहीं जानता है व स्त्री के हाथ लगने से मुशल का प्रभाव जातारहता इस दोषको भी नहीं जानता है २५॥

मू० एवं तस्य बलं भूप दानवस्य दुरात्मनः।
मुशलस्य च ते प्रोक्तं यद्युक्तं तत्समाचर २६॥

टी०। यह कहकर ब्राह्मण ने फिर भी कहा कि हे महाराज! इस प्रकार उस दुरात्मा दानव का बल और उस मुशल का प्रभाव मैंने आप से कहदिया अब जो योग्यहो वही कीजिये २६॥

मू० आसन्नमेतद्भवतः पुरस्य पृथिवीपते।
कृतं तेन महीरन्ध्रं निश्चिन्तः किं भवान्वृथा २७॥

टी०। हे महाराज! आपके नगरके पासही उसने उस मुशलसे पृथ्वी में छिद्रकिया है आपको उससे निश्चिन्त रहना न चाहिये २७॥

मू० इत्युक्त्वा तु गते तस्मिन् पुरं गत्वा महीपतिः।
मन्त्रयामास मन्त्रज्ञैः पुरमध्ये तु मन्त्रिभिः २८॥

टी०। यह सब वृत्तान्त कहकर सुव्रत ब्राह्मणके वहांसे चलेजानेपर महाराजभी अपने नगरको चलेआये और नगरके मध्यमें बुद्धिमान् मंत्रियोंको सलाहके वास्ते बुलवाकर सलाहकिया २८॥

मू० यथा श्रुतमशेषं तत् कथयामास मन्त्रिणाम्।
मुशलस्य प्रभावञ्च वीर्य्यशातनमेव च २९॥

टी०। जो जो वृत्तान्त और मुशलका प्रभाव व बलनाशक दोष सुव्रत ब्राह्मणके मुखसे सुनाथा वह सब अपने मंत्रियों से कहदिया २९॥

मू० तं मन्त्रं क्रियमाणन्तु मन्त्रिभिस्तेन भूभृता।
तत्पार्श्ववर्त्तिनी कन्या शुश्रावाथ मुदावती ३०॥

टी०। जिससमय वे महाराज अपने मंत्रियोंसे वह सम्मति कररहे थे उससमय उनकेपास मुदावतीनाम उनकी कन्या बैठीहुई सब हाल सुनरही थी ३०॥

मू० ततः कतिपयाहे तु तां कन्यां वयसान्विताम् ।
जहारोपवनाद्दैत्यः कुजृम्भः ससखीन्विताम् ३१ ॥

टी० । कुछ दिनोंकेबाद एक दिन अवस्थासे संयुक्त वही मुदावती कन्या अपनी सखियोंकेसाथ फुलवारीमें गई कि वही कुजृम्भ दैत्य वहांसे उसको हरणकरके लेगया ३१ ॥

मू० ततः श्रुत्वा महीपालः क्रोधपर्य्याकुलेक्षणः ।
पुत्रावुवाच त्वरितं गच्छतं वनकोविदौ ३२ ॥

टी० । उसके बाद उस कन्या का हरण सुनकर महाराज विदूरथने क्रोधसे व्याकुलनेत्र होकर अपने दोनों लड़के सुनीति और सुमति से जो वन में शिकारखेलने में बड़े प्रवीण थे कहा कि तुमलोग जल्द जाओ ३२ ॥

मू० निर्विन्ध्यायास्तटे गर्त्तस्तेन गत्वा रसातलम् ।
सहन्यतां योऽपहर्त्ता मुदावत्याः सदुर्मतिः ३३ ॥

टी० । निर्विन्धा नदी के किनारेपर एक बड़ाभारी गढ़ा है उसी के अन्दर से रसातल का रास्ता है उसीरास्तेसे तुमलोग रसातल में जाकर कुजृम्भदैत्य जो मुदावतीको लेगयाहै उसदुष्टको मारो ३३ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० ततस्तौ तत्सुतौ प्राप्य तं गर्त्तं तत्पदानुगौ ।
युयुधाते कुजृम्भेण स्वसैन्येनातिकोपितौ ३४ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी कहतेहैं कि हे क्रौष्टुके ! जब महाराज विदूरथ ने अपने दोनों लड़कों को यह आज्ञादिया तब वे दोनों लड़के सेना साथ लेकर क्रोध में भरेहुये उस गढ़े पर पहुँचकर उसी रास्ते से रसातल में जाकर कुजृम्भ से युद्ध करनेलगे ३४ ॥

मू० ततः परिघनिस्त्रिंशशक्तिशूलपरश्वधैः ।
बाणैश्चाविरतं युद्धं तेषामासीत् सुदारुणम् ३५ ॥

टी० । और बहुत दिनों तक परिघ और तलवार और शक्ति और शूल और परश्वध और बाण इत्यादि हथियारोंसे उस दैत्यके साथ उनका बड़ा दारुण युद्ध निरन्तर होताहै ३५ ॥

मू० ततो मायाबलवता तेन दैत्येन तावुभौ।
राजपुत्रौ रणे बद्धौ निहताशेषसैनिकौ ३६॥

टी०। फिर मायासे बली उस कुजृम्भ दैत्यने उन राजकुमारोंकी सब सेनाको मारकर उन दोनों को युद्ध में कैद करलिया ३६॥

मू० तच्छ्रुत्वा समहीपालः प्राहेदं सर्व्वसैनिकान्।
बद्धपुत्रः परामार्त्तिमुपेतोमुनिसत्तम ३७॥

टी०। हे मुनिसत्तम! उन महाराज विदूरथ अपने लड़कों की हार सुन बहुत दुःखी होकर अपनी सेनाके समस्त सिपाहियों से यह कहनेलगे ३७॥

मू० यस्तं निहत्य दैतेयं मोचयिष्यति मे सुताम्।
तस्याहं सम्प्रदास्यामि तामेवायतलोचनाम् ३८॥

टी०। कि जो कोई उस कुजृम्भ दैत्यको मारकर मेरी कन्याको छुड़ा-लावैगा उसको बड़ेनेत्रोंवाली वही कन्या मैं दूँगा ३८॥

मू० इत्येवं घोषयाञ्चक्रे सराजा स्वपुरे तदा।
निराशः पुत्रतनयाबन्धमोक्षाय वै मुने ३९॥

टी०। हे मुने! इस प्रकार उन महाराजने उस काल में कन्या और पुत्रोंके छूटने से निराश होकर अपने नगर में ढिंढोरा पिटवादिया ३९॥

मू० ततः शुश्राव वत्सप्रीर्भनन्दनसुतोहि तत्।
आघोष्यमाणं बलवान् कृतास्त्रः शौर्य्यसंयुतः ४०॥

टी०। उसके बाद यह खबर भनन्दन के बेटे वत्सप्री ने सुना और वत्सप्री अस्त्रविद्या में बड़ेनिपुण और बड़ेबलवान् और शूर थे ४०॥

मू० सचागम्याभिवाद्यैनं प्राहपार्थिवसत्तमम्।
विनयावनतोभूत्वा पितुर्मित्रमनुत्तमम् ४१॥

टी०। और वत्सप्री महाराज विदूरथ के नगर में आकर अपने पिता के बड़े मित्र विदूरथको प्रणामकरके विनययुक्त झुककर कहनेलगे ४१॥

मू० आज्ञापयाशु मामेव तनयौ मोचयामि ते।
तवैव तेजसा हत्वा तं दैत्यं तनयाञ्च ते ४२॥

टी०। कि मुझको शीघ्र आज्ञादीजिये मैं जाकर आपही के प्रताप से उस दैत्य को मारकर और राजकुमारों को और आप की कन्या को कैद से छुड़ालाऊँ ४२ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० स तं मुदा परिष्वज्य प्रियसख्युरथात्मजम् ।
गम्यतामिति संसिद्ध्यै वत्सेत्याह सपार्थिवः ४३ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि यह बात सुनकर वे महराज विदूरथ अपने प्रिय मित्रके पुत्र वत्सप्री को खुशी से गले लगाकर बोले हे वत्स! सिद्धि के लिये शीघ्र जाउ ४३ ॥

मू० स्थाने स्थास्यति मे वत्सो यद्येवं कुरुते विधिम् ।
वत्सैतत् क्रियतामाशु यद्युत्साहि मनस्तव ४४ ॥

टी०। हे राजकुमार! जो तुम्हारा मन उत्साही हो तो यह जल्दी करो व जो प्रिय ऐसीविधि करैगा वह मेरे स्थानपर बैठेगा ४४ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० ततः सखड्गः सधनुर्बद्धगोधाङ्गुलित्रवान् ।
जगाम वीरः पातालं तेन गर्त्तेन सत्वरः ४५ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि यह आज्ञा महाराज विदूरथ से पाकर वत्सप्री वीर खड्ग और धन्वाबाण लेकर और दस्ताने गोह की खाल बांधेहुये उस गढ़े पर जाकर उसी राह से शीघ्रही पातालमें गये ४५ ॥

मू० ततो ज्यास्वनमत्युग्रं स चक्रे पार्थिवात्मजः ।
येन पातालमखिलमासीदापूरितान्तरम् ४६ ॥

टी०। और वहां जाकर उस राजकुमार ने अपने धनुष को खींचा उस धनुष के खींचनेका ऐसा भयानक शब्द हुआ कि जिससे सम्पूर्ण पाताल गूँज उठा ४६ ॥

मू० ततोऽज्यास्वनमाकर्ण्य कुजृम्भो दानवेश्वरः ।
आजगामातिकोपेन स्वसैन्यपरिवारितः ४७ ॥

टी०। उसके उपरान्त उस धनुष खींचने का शब्द सुनकर दानवों का मालिक कुजृम्भ दैत्य अपनी सेना से घिराहुआ बड़े कोप से राजकुमार वत्सप्री से लड़ने को आया ४७॥

मू० ततोयुद्धमभूत्तस्य तेन पार्थिवसूनुना।
ससैन्यस्य ससैन्येन बलिनोबलशालिना ४८॥

टी०। फिर तो सेनासहित व बलसे शोभित उस राजकुमारसे सेनासहित तथा बली कुजृम्भ दैत्य का युद्ध होनेलगा ४८॥

मू० दिनानि त्रीणि सयदायोधितस्तेन दानवः।
ततः कोपपरीतात्मा मुशलायाभ्यधावत ४९॥

टी०। जब उस वत्सप्रीसे युद्ध होते होते तीन दिन बराबर बीत गये तब कोपसें भरा वह दैत्य मुशल लानेके वास्ते दौड़ाहुआ आया ४६॥

मू० गन्धैर्माल्यैस्तथाधूपैः पूज्यमानः सतिष्ठति।
अन्तःपुरे महाभाग प्रजापतिविनिर्मितः ५०॥

टी०। ऐ महाभाग! वह मुशल विश्वकर्मा का बनायाहुआ गन्ध, माला, धूप व दीप इत्यादि से पूजित होकर उसके रनिवास में रक्खा हुआ था ५०॥

मू० ततोविज्ञातमुशलप्रभावा सा मुदावती।
पस्पर्श मुशलश्रेष्ठमतिनम्रशिरोऽधरा ५१॥

टी०। उसके उपरान्त उस मुशल का प्रभाव वह मुदावती कन्या यथोचित जानती थी जिस समय वह दैत्य मुशल लेने के वास्ते आया उसी समय मुदावती ने बहुत शिर झुकाकर उस उत्तम मुशल को हाथ से छू दिया ५१॥

मू० पुनर्यावत् सग्गृह्णाति मुशलं तं महासुरः।
तावत् सा वन्दनव्याजात् पस्पर्शानेकशः शुभा ५२॥

टी०। फिर जबतक वह महादैत्य उस मुशल को उठानेलगा तब तक उत्तम मुदावती ने प्रणामके बहाने से कई बार अपना हाथ उस मुशल से लगा दिया ५२॥

मू० ततः सगत्वा युयुधे मुशलेनासुरेश्वरः।
व्यर्थामुशलपातास्ते संजग्मुस्तेषु शत्रुषु ५३॥

टी०। उसके बाद वह असुरराज मूशल लेकर उस रणमें युद्धकरने के वास्ते आया और अपने शत्रुपर उस मुशल का वार किया परन्तु उस मुशल का प्रभाव घटजाने से उन शत्रुओं में उसका वार सब निष्फल होगया ५३॥

मू० परमास्त्रे तु निर्व्वीर्य्ये सौनन्दे मुशले मुने।
अस्त्रैःशस्त्रैश्च दैतेयः सोऽयुध्यत रणेरिणा ५४॥

टी०। हे मुनि! जब सौनन्द मुशल परम अस्त्र में कुछ प्रभाव उस दैत्य ने न देखा तब वह दैत्य और अस्त्र तथा शस्त्रों से संग्राम में राजकुमार से युद्ध करने लगा ५४॥

मू० शस्त्रास्त्रैर्न समस्तस्य राजपुत्रस्य सोऽसुरः।
मुशलेन बलन्तस्य तच्च तन्व्या निराकृतम् ५५॥

टी०। वह दैत्य शस्त्र व अस्त्रों से उस राजपुत्र के बराबर न था उस का बल तो मुशल से था उसको मुदावती कन्याने नाश करदियाथा ५५॥

मू० ततः पराजित्य स भूपसूनु-
रस्त्राणि शस्त्राणि च दानवस्य।
चकार सद्यो विरथं ततश्च
सचर्म्मखड्गः पुनरप्यधावत् ५६॥

टी०। तब तो उस राजकुमार ने दानव के सब हथियारों को और उसके रथको अपने हथियारों से शीघ्रही काट डाला तब वह पांवपियादे हो ढाल तलवार हाथमें लेकर राजकुमारपर दौड़ा ५६॥

मू० तमापतन्तं रभसाऽभ्युदीर्णं
विस्पष्टकोपं त्रिदशेन्द्रशत्रुम्।
शस्त्रेण वह्लेर्भुवि राजपुत्रो
जघान कालानलसप्रभेन ५७॥

टी०। और क्रोध में भराहुआ वह देवराज का शत्रु वेगसे जब राज-

कुमार के पास पहुँचा तब राजकुमारने कालरूपी अग्नि के तुल्य प्रकाश वाले अग्नि देवता के शस्त्र से उसको भूमि में मारा ५७ ॥

मू० स पावकास्त्रेण हृदि क्षतो भृशं
तत्याज देहं त्रिदशारिरात्मनः।
बभूव सद्यश्च महोरगाणां
रसातलान्तेषु महानथोत्सवः ५८ ॥

टी०। सो वह आग्नेयास्त्र उसके हृदयमें बहुत ज़ोरसे लगा और वह देवताओं का शत्रु अपनी देह को छोड़ दिया उसके मरनेसे उसीक्षण सर्प लोग रसातल में बहुत आनन्दित हुये ५८ ॥

मू० ततोऽपतत्पुष्पवृष्टिर्महीपालसुतोपरि।
जगुर्गन्धर्व्वपतयो देववाद्यानिसस्वनुः ५९ ॥

टी०। तदनन्तर राजपुत्र के ऊपर आकाश से पुष्पों की वर्षा हुई और गन्धर्व लोग गानेलगे और देवताओं के बाजा बजने लगे ५९ ॥

मू० स चापि राजपुत्रस्तं हत्वा तौ नृपतेः सुतौ।
मोचयामास तन्वङ्गीं ताञ्च कन्यां मुदावतीम् ६० ॥

टी०। और उस राजकुमार ने भी उस कुजृम्भ दैत्य को मारकर राजा विदूरथके दोनोंलड़कोंको और उस मुदावतीकन्याको क़ैद से छुड़ालिया ६०

मू० तञ्चापि मुशलं तस्मिन् कुजृम्भे विनिपातिते।
जग्राह नागाधिपतिरनन्तः शेषसंज्ञितः ६१ ॥

टी०। और कुजृम्भ दैत्य के मारेजानेपर उस मुशल को नागों के राजा अनन्त शेषजी ने ग्रहण करलिया ६१ ॥

मू० तस्याश्च परितुष्टोऽसौ शेषः सर्व्वोरगेश्वरः।
मुदावत्या मुदाध्यातमनोवृत्तिस्तपोधनः ६२ ॥

टी०। और समस्त नागों के मालिक शेषजी मुदावती कन्यापर बहुत प्रसन्न हुये जो कि आनन्द से मनकी वृत्ति को ध्यान करनेवाले व तपस्या रूपी धनवाले थे ६२ ॥

मू० सुनन्दमुशलस्पर्शं यच्चकार पुनः पुनः।

योषित् करतलस्पर्शप्रभावज्ञातिशोभना ६३ ॥

टी० । इसवास्ते कि अतिसुन्दरी उसने स्त्री के हाथ के स्पर्श से मूशल के प्रभाव को जानबूझकर अपने हाथके बारबार स्पर्श से उसका बल घटादिया ६३ ॥

मू० मुदावत्यास्ततो नाम नागराजस्तदाकरोत् ।
सुनन्दामिति सानन्दं सौनन्दगुणजं द्विज ६४ ॥

टी० । इसलिये नागराज ने प्रसन्न होकर उस वक्त मुदावती कन्या का नाम सौनन्दा रखदिया ऐ द्विज ! वह नाम सुनन्दा के गुणों से उत्पन्न था ६४ ॥

मू० स चापि राजपुत्रस्तां भ्रातृभ्यां सहितां पितुः ।
समीपमानिनायाशु प्रणिपत्याह चैव तम् ६५ ॥

टी० । और वह राजकुमार वत्सप्री भी मुदावती कन्या और दोनों राजकुमारों (अर्थात् सुनीति और सुमति) को शीघ्रही महाराज विदूरथ के पास ले आये और प्रणाम करके उनसे बोले ६५ ॥

मू० आनीतौ तनयौ तात तथैवेयं मुदावती ।
तवाज्ञया मयान्यद्यत्कर्त्तव्यं तत्समादिश ६६ ॥

टी० । कि हे तात!आपकी आज्ञासेआपके लड़कों कोऔर इस मुदावती को तो मैं ले आया अब सिवाय इसके और जो कुछ काम मेरे करने का हो उसकी आज्ञा दीजिये ६६ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० ततः प्रहर्षसम्पूर्णहृदयःस महीपतिः ।
साधुसाध्वित्यथाहोच्चैर्वत्सवत्सेति शोभनम् ६७ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि ! यह बात वत्सप्री की सुनकर महाराज विदूरथ जी प्रसन्नचित्त होकर ऊंचेस्वर से यह बोले कि हे वत्स ! तुमने बहुत अच्छा काम किया ६७ ॥

मू० सभाजितोऽस्मि त्रिदशैर्वत्साहं कारणैस्त्रिभिः ।
त्वं जामाता च यत्प्राप्तो यच्चारिर्विनिपातितः ६८ ॥

टी०। हे वत्स! मैं देवताओं में भी तीन कारण करके वन्दित हुआ प्रथम तो यह कि तुम मेरे जामाता याने दामाद हुये दूसरे कुजृम्भ दैत्य मेराशत्रु मारागया ६८॥

मू० आगतान्यक्षतान्यत्र यच्चापत्यानि मे पुनः।
तद् गृहाणाद्य शस्तेऽह्नि पाणिमस्या मयोदितम् ६९॥

टी०। तीसरे जे यहां मेरे लड़के लोग कुजृम्भ के हाथ से बचकर जीते हुये फिर आये इससे अब तुम आज अच्छी लग्न और अच्छे दिन में मेरी प्रतिज्ञानुसार मेरी कन्या मुदावती का पाणिग्रहण करलो ६९॥

मू० त्वं राजपुत्र चार्व्वङ्ग्याः कन्याया दुहितुर्मम।
मुदावत्या मुदायुक्तः सत्यवाक्यं कुरुष्व माम् ७०॥

टी०। हे राजपुत्र! तुम आनन्दयुक्त होकर इस सुन्दर अंगवाली तथा कुमारी मेरी कन्या मुदावती से विवाहकरलो जिसमें मेरी भी प्रतिज्ञा पूरी होजाय ७०॥

राजपुत्र उवाच॥

मू० तातस्याज्ञा मया कार्य्या यद् ब्रवीषि करोमि तत्।
त्वमेव तात जानीषे नैवात्राधिकृता वयम् ७१॥

टी०। यह बात वत्सप्री राजा विदूरथ से सुनकर बोले कि आप की आज्ञा मुझको मानना अवश्य है जो कुछ आप कहिये वह मैं करूं हे तात! तुम्हीं जानते हो कि इस कार्य में मैं अधिकारी नहीं हूँ ७१॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० ततस्तयोः स राजेन्द्रश्चक्रे वैवाहिकं क्रमम्।
मुदावत्याश्च दुहितुर्भनन्दनसुतस्य वै ७२॥

टी०। मार्कण्डेय मुनि कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि! उसकेबाद वत्सप्री के इसतरह कहनेपर उन महाराज विदूरथ ने मुदावती कन्या के विवाह का जो क्रम है वह भनन्दन के पुत्र वत्सप्री के साथ किया ७२॥

मू० ततः सह तयारेमे वत्सप्रीर्नवयौवनः।
रमणीयेषु देशेषु प्रासादशिखरेषु च ७३॥

टी०। तब नव यौवन याने नई युवावस्थावाला वत्सप्री मुदावती से विवाह करके उसके साथ अच्छे २ देश और मकानों व पर्वत की चोटियों में रहकर विहार करनेलगा ७३॥

मू० कालेन गच्छता वृद्धः पिता तस्य भनन्दनः।
वनं जगाम वत्सप्रीः स बभूव महीपतिः ७४॥

टी०। कुछ दिन बीते पर जब वत्सप्री के पिता भनन्दन वृद्धहोकर तप करने के वास्ते वनमें चले गये तब वे वत्सप्री राजा हुये ७४॥

मू० इयाज यज्ञैः सततं प्रजा धर्म्मेण पालयन्।
पुत्रवत् पाल्यमानास्तु प्रजास्तेन महात्मना ७५॥

टी०। अपने राज्य के समय धर्म से प्रजाओं को पालताहुवा वत्सप्री ने निरन्तर बहुत बहुत यज्ञ किये और उस महात्मा ने धर्म्मपूर्व्वक प्रजाओं को पुत्र समान पालनकिया ७५॥

मू० ववृधुर्विषये तस्य नचाभूद्वर्णसङ्करः।
न दस्युव्यालदुर्वृत्तभयमासीच्च कस्यचित्॥
नोपसर्गभयञ्चैव तस्मिञ्छासति भूपतौ ७६॥

टी०। और और जब वे वत्सप्री राजा राज्य करते थे तब उनके राज्य में प्रजालोग बाढ़ते थे और कभी किसी के वर्णसंकर पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ और चोर और सांप और दुष्टजन इत्यादि से सब लोग निर्भय रहे और किसी को उपसर्ग याने उत्पात का भय नहीं हुआ ७६॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेभनन्दनवत्सप्रीचरित्रंनाम
षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ११६॥

अथ एकसौसत्रहवां अध्याय॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० तस्य तस्यां सुनन्दायां पुत्रा द्वादश जज्ञिरे।
प्रांशुः प्रवीरः सूरश्च सुचक्रोविक्रमः क्रमः १॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुके ! वत्सप्री महाराज के

त्रिरथ की लड़की सुनन्दा से बारह पुत्र उत्पन्न हुये प्रथम प्रांशु दूसरे प्रवीर तीसरे सूर चौथे सुचक्र पांचवें विक्रम छठें क्रम १ ॥

मू० बली बलाकश्चण्डश्च प्रचण्डश्च सुविक्रमः ।
स्वरूपश्च महाभागाः सर्व्वे संग्रामजित्तमाः २ ॥

टी० । सातवें बली आठवें बलाक नवें चण्ड दशवें प्रचण्ड ग्यारहवें सुविक्रम बारहवें स्वरूप ये सब लोग महाभाग और संग्राम के जीतनेवालों में उत्तम हुये २ ॥

मू० तेषां ज्येष्ठोमहावीर्यः प्रांशुरासीन्नराधिपः ।
इतरे भृत्यवत्तस्य बभूवुर्व्वशवर्त्तिनः ३ ॥

टी० । सबसे बड़े प्रांशु महाराज हुये जो महापराक्रमी थे और ग्यारहो भाई सेवकों की तरह इनके वश में रहतेथे ३ ॥

मू० तस्य यज्ञे द्विजत्यक्तैरनेकैर्द्रव्यराशिभिः ।
न्यूनवर्णविसृष्टैश्च सत्यनामा वसुन्धरा ४ ॥

टी० । इनकी यज्ञ में ब्राह्मणों की छोड़ीहुई बहुतसी द्रव्यकी राशियां जोकि नीचजातिवाले उनके नौकर चाकरों से छोड़ीगई थीं उन द्रव्यों से सम्पूर्ण पृथ्वी भरगई जिस से इस पृथ्वी का नाम वसुन्धरा सत्यही विख्यात हुआ ४ ॥

मू० सम्यक् पालयतस्तस्य प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ।
योऽभूद्धनचयः कोशे तेन निष्पादितास्तु ये ५ ॥

टी० । प्रजाओं को अपने औरस पुत्रों की तरह पालनकिया करतेथे और द्रव्य का समूह जो खजाने में जमाहुआ था उस से ५ ॥

मू० क्रतवः शतसाहस्रास्तेषां संख्या न विद्यते ।
अयुताद्येनकोटीभिर्न च पद्मादिभिर्मुने ६ ॥

टी० । हे मुने ! इतने यज्ञ किये कि सैकड़ों हजारों करोड़ों तथा पद्मादिकों से भी जिन की कुछ गिनती नहीं होसक्ती ६ ॥

मू० प्रजातिस्तस्य पुत्रोऽभूद्यस्य यज्ञे शतक्रतुः ।
अवाप्य तृप्तिमतुलां यज्ञभागैः सुरैः सह ७ ॥

टी०। फिर महाराज प्रांशु के पुत्र प्रजाति हुये जिनके यज्ञमें इन्द्र ने सब देवताओं के साथ आनन्दयुक्त यज्ञभागों करके अतुल तृप्ति को प्राप्त होकर ७॥

मू० दानवानां सुवीर्य्याणां जघान नवतीर्नव।
बलञ्च बलिनां श्रेष्ठोजम्भञ्चसुरसत्तमम् ८॥

टी०। बलिष्ठों में श्रेष्ठ इन्द्र आठसौदश महापराक्रमी दानव और उनकी सेना को मारा और दैत्योत्तम जम्भ को वध किया ८॥

मू० अन्यांश्च सुमहावीर्य्यानाजघानामरद्विषः।
प्रजातेस्तनयाः पञ्च खनित्रप्रमुखामुने ९॥

टी०। और अन्य अन्य महापराक्रमी असुरों को भी मारा हे मुने! प्रजाति के खनित्रइत्यादिक पाँच पुत्र हुये ९॥

मू० तेषां खनित्रोराजाऽभूत्प्रख्यातोनिजविक्रमैः।
सशान्तः सत्यवाक्छूरःसर्व्वप्राणिहिते रतः १०॥

टी०। उनमें बड़े खनित्र राजा हुये जिन्हों ने अपने पराक्रमसे बड़ा नाम पैदाकिया और वे खनित्र शान्त और सत्यवादी व सिपाही थे और सब प्राणियों के हितमें तत्पर थे १०॥

मू० स्वधर्म्माभिरतोनित्यं वृद्धसेवी बहुश्रुतः।
वाग्मी विनयसंपन्नः कृतास्त्रोऽप्यविकत्थनः ११॥

टी०। और अपने धर्म्ममें तत्पर थे व हमेशा बड़े बूढ़ों की सेवा करते थे और शास्त्र पुराण के ज्ञाता और उत्तमवक्ता और विनययुक्त और अस्त्रविद्या में पारग थे पर तौभी अपने मुखसे अपनी बड़ाई न करते ११॥

मू० सर्व्वलोकप्रियोनित्यमुवाचैतदहर्निशम्।
नन्दन्तु सर्व्वभूतानि स्निह्यन्तु विजनेष्वपि १२॥

टी०। और सब लोक के प्रिय सदैव राजा दिन रात्रि यही कहते थे कि सब प्राणी प्रसन्न होवैं व एकान्त स्थानों में स्नेह करैं १२॥

मू० स्वस्त्यस्तु सर्व्वभूतेषु निरातङ्कानि सन्तु च।
मा व्याधिरस्तु भूतानामाधयो न भवन्तु च १३॥

टी०। और कहते थे कि सब लोगों का कल्याण हो और सब कोई नीरोग व निर्भय रहें और किसी प्राणी के व्याधि याने रोग न हो और आधि याने मानसी व्यथा भी न हो १३॥

मू० मैत्रीमशेषभूतानि पुष्णन्तु सकले जने।
शिवमस्तु द्विजातीनां प्रीतिरस्तु परस्परम् १४॥

टी०। और सम्पूर्ण प्राणी समस्त जनों में मित्रता को पुष्ट करें और समस्त ब्राह्मणों का कल्याण और उन की परस्पर में प्रीति रहै १४॥

मू० समृद्धिः सर्व्ववर्णानां सिद्धिरस्तु च कर्म्मणाम्।
भोलोकाः सर्व्वभूतेषु शिवा वोस्तु सदा मतिः १५॥

टी०। और चारों वर्णों की वृद्धि हो और कर्म्मों की सिद्धि हो और हे मनुष्यो! तुम लोगों की अच्छी मति सब काल समस्त प्राणीमें हो १५॥

मू० यथात्मनि तथा पुत्रे हितमिच्छथ सर्व्वदा।
तथा समस्तभूतेषु वर्त्तध्वं हितबुद्धयः १६॥

टी०। और आप सब लोग जिसप्रकार अपनी आत्मा से और पुत्रसे प्रीति रखते हो उसी प्रकार समस्त प्राणियों में हित बुद्धिवाले हूजिये १६॥

मू० एतद्वोहितमत्यन्तं को वा कस्यापराध्यते।
यत्करोत्यहितं किञ्चित् कस्यचिन्मूढमानसः १७॥

टी०। यह आपलोगों का अत्यन्त हित है किसी को किसी का अपराध न करनाचाहिये जो कोई मूढमनवाला कुछ भी किसी का अपराध करता है १७॥

मू० तं समभ्येति तन्नूनं कर्तृगामि फलं यतः।
इति मत्वा समस्तेषु भो लोकाः कृतबुद्धयः १८॥

टी०। उस मूढ को निश्चय कर वह अपराध दुःखदेता है जिस वास्ते कि करने का फल करनेवालों को प्राप्त होता है यह मानकर ऐ लोगो! सब प्राणियों को सब लोगों में कृतबुद्धि होना चाहिये १८॥

मू० अस्तु मा लौकिकं पापं लोकान् प्राप्स्यथ वै बुधाः।
योमेऽद्य स्निह्यते तस्य शिवमस्तु सदा भुवि १९॥

टी०। और ऐ ज्ञानियो! लौकिक पापमत करो निश्चय लोकोंको प्राप्त होगे व इस समय जो कोई मेरे साथ प्रीति रखता है उसका पृथ्वी में सदैव कल्याण हो १६॥

मू० यश्च मां द्वेष्टि लोकेऽस्मिन् सोऽपि भद्राणि पश्यतु।
एवं स्वरूपः पुत्रोऽभूत् खनित्रस्तस्य भूपतेः २०॥

टी०। और जो इस लोक में मेरे साथ द्वेष रखताहै उसका भी कल्याण हो हे क्रौष्टु के! उस प्रजाति महाराज के ऐसे महात्मा खनित्र पुत्र हुये जिनका वर्णन ऊपर कर आया हूं २०॥

मू० समस्तगुणसम्पन्नः श्रीमानब्जदलेक्षणः।
तेन ते भ्रातरः प्रीत्या पृथग्राज्येषु योजिताः २१॥

टी०। वह खनित्र सब गुणों से परिपूर्ण और लक्ष्मीवान् व कमलेक्षण हुये फिर खनित्र महाराज ने उन अपने भाइयों को प्रीति से अलग अलग राज्य देकर स्थापित करदिया २१॥

मू० स्वयञ्च पृथिवीमेतां बुभुजे सागराम्बराम्।
प्राच्यां तेन कृतः शौरिर्दक्षिणायामुदा वसुः २२॥

टी०। और आप समुद्रवसनवाली इस पृथ्वी का राज्य भोगकिया व उन्होंने पूर्व दिशा का राज्य शौरि को दिया और दक्षिणदिशा का राज्य उदावसु को दिया २२॥

मू० दिशि प्रतीच्यां सुनयउत्तरस्यां महारथः।
तेषां तस्य च भूपस्य पृथग्गोत्राः पुरोहिताः २३॥

टी०। और पश्चिमदिशा का राज्य सुनय को दिया और उत्तरदिशा का राज्य महारथ को दिया उन महाराज खनित्र और उनके भाइयों के अलग अलग गोत्र के अलग अलग पुरोहित हुये २३॥

मू० बभूवुमन्त्रिणश्चैव न हि वंशक्रमागताः।
शौरेरत्रिकुलोद्भूतः सुहोत्रोनाम वै द्विजः २४॥

टी०। और वंश में क्रम से आयेहुये मन्त्री भी नहीं हुये व शौरिके पुरोहित अत्रिकुल में उत्पन्न सुहोत्रनाम ब्राह्मण हुये २४॥

मू० उदावसोः कुशावर्त्तोगौतमान्वयजोऽभवत्।

काश्यपः प्रमतिर्नाम सुनयस्य पुरोहितः २५ ॥

टी०। और उदावसु के पुरोहित गौतमवंश में उत्पन्न कुशावर्त्तनाम ब्राह्मण हुये और सुनय के पुरोहित कश्यपवंश में उत्पन्न प्रमातिनाम ब्राह्मण हुये २५ ॥

मू० महारथस्य वाशिष्ठः पुरोधाऽभून्महीभृतः ।
बुभुजुस्ते स्वराज्यानि चत्वारोऽपि नराधिपाः २६ ॥

टी०। और महारथ राजा के पुरोहित वाशिष्ठ मुनि हुये जिनकी उत्पत्ति वशिष्ठ कुल में थी वे चारों भाई भी अपना अपना राज्य अलग अलग भोग करते भये २६ ॥

मू० खनित्रश्चाधिपस्तेषामशेषवसुधाधिपः ।
तेषु भ्रातृष्वशेषेषु खनित्रः सन्महीपतिः २७ ॥

टी०। परन्तु उन सब के अधिपति सम्पूर्ण पृथ्वी के महाराज खनित्र ही थे और वे खनित्र भूपति उन सब भाइयों में २७ ॥

मू० प्रजासु च समस्तासु पुत्रेष्विव सदाहितः ।
एकदा मन्त्रिणा शौरिः सम्प्रोक्तोविश्ववेदिना २८ ॥

टी०। सब प्रजाओं में अपने पुत्र के समान सदैव स्नेह मानते थे एक समय विश्ववेदिनाम मन्त्री ने शौरि से कहा २८ ॥

मू० विविक्ते पृथिवीपाल किञ्चिद्वक्तव्यमस्ति नः ।
यस्येयं पृथिवी कृत्स्ना यस्य भूपावशानुगाः २९ ॥

टी०। कि हे पृथ्वीपाल ! इस समय एकान्त में मैं आप से कुछ कहाचाहता हूँ कि जिस के अधिकारमें यह सब पृथ्वी है और जिसके वश में सब राजा लोग हैं २९ ॥

मू० सराजा तस्य पुत्रश्च तत्पौत्राश्चान्वयस्ततः ।
इतरे भ्रातरस्तस्य प्रागल्पविषयाधिपाः ३० ॥

टी०। वही राजा है और उसी के बेटे और पोते और इस के बाद उसी के वंश का राज्य रहैगा पहले जो उनके भाईलोग थोड़ी थोड़ी राज्य के राजा हुये हैं ३० ॥

मू० तत्पुत्रश्चाल्पकस्तस्मात् तत्पौत्राश्चाल्पकल्पकाः।
कालेन ह्रासमासाद्य पुरुषात्पुरुषान्तरम् ३१॥

टी०। उनके बेटे और पोते और भी थोड़ी थोड़ी राज्य के राजा होंगे तत्पश्चात् उनके कुल के लोग उनसे भी थोड़े थोड़े राज्य के मालिक होंगे अर्थात् जितना ही काल व्यतीत होगा उतना ही परम पराक्रम से उनके वंश को थोड़ा राज्य होताजायगा ३१॥

मू० कृष्योपजीविनो भूप भवन्तीति तदन्वयाः।
नोद्धारं कुरुते भ्राता भ्रातुःस्नेहबलार्पिणः ३२॥

टी०। हे राजन्! अन्तको उनकी सन्तान खेतीकरके जीवैंगी इस वास्ते मैं कहता हूँ कि भाई स्नेहरूप बलके अर्पणकरनेवाले भाई के साथ भलाई नहीं करता है ३२॥

मू० स्नेहःकः पृथिवीपाल परयोर्भ्रातृपुत्रयोः।
तत्पुत्रयोः परतरा मतिर्भवति पार्थिव ३३॥

टी०। हे राजन्! जिसतरह भाई भाईका स्नेह रखता है वैसी प्रीति चचेरे भाइयों की नहीं होती है ३३॥

मू० तत्पुत्रः केन कार्य्येण प्रीतियुक्तो भविष्यति।
अथवा येन तेनैव सन्तोषं कुरुते नृपः ३४॥

टी०। तो फिर चचेरे भाई के पुत्र पर किस तरह वैसी प्रीति कोई रक्खैगा या जितना हो उसी से यदि राजा सन्तोषकरै ३४॥

मू० क्रियते तत् किमर्थन्तु भूपैर्मन्त्रिपरिग्रहः।
भुज्यते सकलं राज्यं मया ते मन्त्रिणासता ३५॥

टी०। तो मैं आप से यह कहता हूँ कि राजा लोग किस वास्ते मन्त्रियों को सलाह लेने के वास्ते रखते हैं मैं आपका उत्तम मन्त्री हूँ मेरी यही सलाह है कि आपको सब राज्य भोग करने को मिलै ३५॥

मू० तत्किं मुधा धारयसे सन्तोषं कुरुषे यदि।
कार्य्यनिष्पादकं राज्यं करणं कर्त्तुरिष्यते ३६॥

टी०। जो आप राज्य से संतोष करते हो तो वृथा मन्त्रियों को क्यों

रखते हो सब कामों को सिद्ध करनेवाला तो राज्य है परन्तु वह राज्य भी विना कर्त्ता के उपाय करने से प्राप्त नहीं होसक्ता ३६॥

मू० राज्यलाभश्च ते कार्य्यस्त्वं कर्त्ता करणं वयम्।
सोऽस्माभिः करणै राज्यं पितृपैतामहं कुरु॥
फलप्रदा भविष्यामः परलोके न ते वयम् ३७॥

टी०। राज्य का मिलना आपका कार्य्य है व आप उसके कर्त्ता हो मैं उसका साधक हूँ आप को पिता और पितामह का प्राप्त किया हुआ राज्य मैं दिला दूँगा आप राज्य कीजिये हम लोग मंत्री इसी दिन के वास्ते हैं व हम लोग परलोक के वास्ते तुम्हारे फलके देनेवाले नहीं हैं ३७॥

राजोवाच॥

मू० ज्येष्ठो राजा महीपालो वयन्तस्यानुजा यतः।
ततः स भुङ्क्ते पृथिवीं वयं चाल्पवसुन्धराम् ३८॥

टी०। यह बात विश्ववेदी मंत्री की सुनकर राजा शौरि बोले कि हमारे बड़े भाई महाराज हैं जिस लिये हमलोग छोटे हैं और उनके आज्ञावर्त्ती हैं इसवास्ते वे सब पृथ्वी को भोग करते हैं और हम सब थोड़ी पृथ्वी को भोग करते हैं ३८॥

मू० वयन्तु भ्रातरः पञ्च पृथ्वी चैका महामते।
अतोऽस्याः पृथगैश्वर्य्यं कथं कृत्स्नं भविष्यति ३९॥

टी०। हे महामति! हम सब पांच भाई हैं और पृथ्वी एक है इसवास्ते जो हम सब भाई इस पृथ्वी का भोग किया चाहैं तो यह एक पृथ्वी का सब ऐश्वर्य अलग २ किसतरह होसक्ता है ३९॥

विश्ववेद्युवाच॥

मू० एवमेतद्भवत्वत्र यद्येका वसुधा नृप।
तां त्वमेवाभिपद्यस्व ज्येष्ठश्चास्तु यथा भवान् ४०॥

टी०। विश्ववेदी मंत्री ने कहा कि हे नृप! जो आप कहते हैं सो ऐसाही हो जो पृथ्वी एक ही है तो इस पृथ्वी को आपही अपने स्वाधीन रखिये आपके जो बड़े भाई खनित्र हैं वे जैसे आप हैं वैसे रहैं ४०॥

मू० सर्व्वाधिपत्यः सर्व्वेभ्यो भव त्वमखिलेश्वरः।
यतन्ते च यथाऽहन्ते तेषामाहितमन्त्रिणः ४१॥

टी०। सब राज्य और खजाने के मालिक आप रहिये जिस तरह मैं आप को उपाय बतलाता हूँ उसी तरह आपके भाइयों के मंत्री भी उनके राज्य प्राप्त होने के उपाय में रहते हैं ४१॥

राजोवाच॥

मू० ज्येष्ठो राजा यथा प्रीत्या भजतेस्मान्सुतानिव।
कथन्तस्य करिष्यामि ममत्वं जगतीगतम् ४२॥

टी०। यह बात मंत्री से सुनकर राजा शौरि बोले कि हमारे बड़े भाई राजा हमलोगोंको पुत्रके समान मानते हैं हम उनके राज्यपर कैसे चित्तचलावें ४२॥

विश्ववेद्युवाच॥

मू० राज्यस्थितः पूजयेथा ज्येष्ठं भूपार्हणैर्वरैः।
कनिष्ठज्येष्ठता केयं राज्यं प्रार्थयतां नृणाम् ४३॥

टी०। बिश्ववेदीने कहा कि हे महाराज! जब आप समस्त राज्य को अपने वश में करके राजगद्दी पर बैठेंगे तब राजाओं के योग्य वस्त्र और श्रेष्ठ आभूषण इत्यादि से अपने बड़े भाई का पूजन कीजियेगा जिनलोगों को राज्य की इच्छा होती है उनको बड़े छोटे का विचार नहीं होता ४३॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० तथेति च प्रतिज्ञा ते भूभुजा तेन सत्तम।
विश्ववेदी ततो मन्त्री तद्भ्रातॄननयद्वशम् ४४॥

टी०। मार्कण्डेय जी कहते हैं कि हे मुनिसत्तम! जब बिश्ववेदी मंत्री का मंत्र राजा शौरि के चित्त में स्थित होगया और यह कहा कि बहुत अच्छा तब विश्ववेदी मंत्रीने उनके भाइयोंको अपने वशमें करलिया ४४॥

मू० तेषां पुरोहिताश्चैव आत्मनःशान्तिकादिषु।
नियोजयामास ततः खनित्रस्याभिचारिके ४५॥

टी०। और उन लोगों के पुरोहितों को भी अपनी शान्ति इत्यादि क-

रने में तत्पर किया तत्पश्चात् महाराज खनित्र के ऊपर आभिचारिक कर्म (प्रयोग) करने के वास्ते नियोजित किया ४५॥

मू० बिभेद तस्य निभृतान् सामदानादिभिस्तथा।
चक्रे च परमोद्योगं निजदण्डप्रभावने ४६॥

टी०। उनके विनीत पुरोहितों को साम व दान दिखलाकर और उनका चित्त बिगाड़ कर प्रवृत्त किया और अपने दण्ड से कष्ट देने का बहुत उपाय किया ४६॥

मू० आभिचारिकमत्युग्रमहन्यहनि कुर्व्वताम्।
पुरोधसां चतुर्णां च जज्ञे कृत्याचतुष्टयम् ४७॥

टी०। तत्पश्चात् चारों पुरोहित प्रतिदिन महाराज खनित्र के नाश होनेके वास्ते अतिभयानक आभिचारिक कर्म करने लगे उससे चार पुरोहितों के चार कृत्या उत्पन्नहुईं ४७॥

मू० विकरालं महावक्त्रमतिभीषणदर्शनम्।
समुद्यतमहाशूलं प्रभूतमतिदारुणम् ४८॥

टी०। वे चारों कृत्या इकट्ठा होकर भयानक बड़ाभारी मुख और भयानक नेत्र करके महाशूल उठाकर अत्यन्त भयंकर रूप से खड़ीहुईं ४८॥

मू० ततस्तदागतंतत्र खनित्रो यत्र पार्थिवः।
निरस्तं चाप्यदुष्टस्यतस्य पुण्यं च येन तत् ४९॥

टी०। और उसके उपरान्त उसी समय जहां महाराज खनित्र थे वहां चारों पुरुष गये परन्तु उस सज्जन महाराज खनित्र के पुण्यसमूह से विमुख होकर ४९॥

मू० कृत्याचतुष्टयन्तेषु निपपात दुरात्मसु।
पुरोहितेषु भूपानां तथा वै विश्ववेदिनि ५०॥

टी०। राजाओं के उन चारों दुरात्मा पुरोहितों और विश्ववेदी मंत्री पर वे चारों कृत्या मारने के लिये आकर गिरपड़ीं ५०॥

मू० ततो निहन्तुं निर्दग्धाः कृत्याभिस्ते पुरोहिताः।
विश्ववेदी तथा मन्त्री सशौरैर्दुष्टमन्त्रदः ५१॥

टी० । उसके बाद उन चारों कृत्याओं के गिरने से वे चारों पुरोहित और वह विश्ववेदी मंत्री जो कि शौरि राजाको दुष्ट मंत्र याने सलाह देने वाला था भस्म होगये ५१ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेखनित्रचरित्रेनामसप्तदशाधिक
शततमोऽध्यायः ११७ ॥

अथ एकसौअठारहका अध्याय ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० ततः समस्तलोकस्य विस्मयः सोऽभवन्महान् ।
यदेककालं नेशुस्ते पृथक्पुरनिवासिनः १ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि ! उन पुरोहितों और विश्ववेदी मन्त्रीके भस्म होकर मरजाने पर सब लोगों को वह बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि वे लोग यद्यपि अलग अलग गांवों में बसते थे परन्तु एकही काल में मरगये थे १ ॥

मू० ततः शुश्राव निधनं यातान् भ्रातृपुरोहितान् ।
मन्त्रिणञ्च तथा भ्रातुर्दग्धं तं विश्ववेदिनम् २ ॥

टी० । तदनन्तर भाइयों के पुरोहितों और भाई के उस विश्ववेदी मन्त्री का भस्म होकर मर जाना खनित्र ने सुना २ ॥

मू० किमेतदिति सोऽतीवविस्मितो मुनिसत्तम ।
खनित्रोभून्महाराजो नाजानात् तच्च कारणम् ३ ॥

टी० । हे मुनिसत्तम ! उन महाराज खनित्रको बहुत आश्चर्य हुआ और कहने लगे कि यह क्या हुआ क्योंकि उनलोगों के भस्म होकर मर जाने का कारण महाराज खनित्र को मालूम न था ३ ॥

मू० ततो वशिष्ठं पप्रच्छ स राजा गृहमागतम् ।
यत्कारणं विनेशुस्ते भ्रातृमन्त्रिपुरोहिताः ४ ॥

टी० । तदनन्तर उन्हीं दिनों महाराज के पास वशिष्ठ मुनि आये थे

उनसे महाराज खनित्रने अपने भाइयों के पुरोहितों और विश्ववेदी मंत्री के मरने का कारण पूछा कि किस कारण से ये लोग एकही काल में भस्म होकर मर गये ४ ॥

मू० तेन पृष्टस्तदा प्राह यथा वृत्तं महामुनिः।
यच्छौरिमन्त्रिणाप्रोक्तं यच्च शौरिरुवाच तम् ५ ॥

टी० । जब वशिष्ठ मुनि से खनित्र राजा ने पूंछा तब वशिष्ठ महामुनिने विश्ववेदी मन्त्रीकी क्रूरता और उसकी बातचीत का वृत्तान्त और जो कुछ राजा शौरि ने उत्तर दियाथा वह सब वृत्तान्त महाराज खनित्र को कह सुनाया ५ ॥

मू० यथा चानुष्ठितन्तेन भ्रातॄणां भेदकारि वै।
मन्त्रिणा तेन दुष्टेन यच्चक्रुश्च पुरोहिताः ६ ॥

टी०। और उस दुष्ट मन्त्रीने भाइयों में शत्रुता डालने के वास्ते जिस तरह बुराई की थी और जो कुछ पुरोहितों ने किया था ६ ॥

मू० यन्निमित्तं विनेशुस्ते अपापस्यापकारिणः।
पुरोहितास्तस्य राज्ञः शत्रावपि दयावतः ७ ॥

टी० । और जिस कारण पापरहित उन महाराज खनित्र के साथ बुराई करने से वे पुरोहित लोग नष्ट होगये जो कि वे खनित्र शत्रुपै भी दयावान् थे वह सब वृत्तान्त विस्तारपूर्वक कह सुनाया ७ ॥

मू० स तच्छ्रुत्वा ततो राजा हा हतोऽस्मीति वै वदन्।
निनिन्दात्मानमत्यर्थं वशिष्ठस्याग्रतो द्विज ८ ॥

टी०। हे द्विज! इसके उपरान्त वे राजा यह वृत्तान्त सुनकर वशिष्ठ के अगाड़ी बोले कि हाय मैं मर गया और फिर अपने को बहुत धिक्कार किया ८ ॥

राजोवाच ॥

मू० धिङ्मामपुण्यसंस्थानमल्पभाग्यमशोभनम्।
दैवदोषकृतं पापं सर्वलोकविगर्हितम् ९ ॥

टी०। और राजा बोले कि मैं पापी और अभाग्यवान् हूँ मुझको धि-

कारहै यह दैव के दोषसे किया हुआ पाप मुझको हुआ जिससे सब लोक में मेरी निन्दा होगी ९ ॥

मू० मन्निमित्तं विनष्टं यत्तद्ब्राह्मणचतुष्टयम्।
मत्तःकोऽन्यः पापतरो भविष्यति पुमान् भुवि १० ॥

टी०। क्योंकि वे चार ब्राह्मण मेरे ही कारण से नाश होगये मुझसे बढ़कर पापी इस पृथ्वी में दूसरा कौन पुरुष होगा १० ॥

मू० नाभविष्यं यदि पुमानहमत्र महीतले।
ततस्तेन विनश्येयुर्मम भ्रातृपुरोहिताः ११ ॥

टी०। और जो मैं पापी पुरुष इस पृथ्वी में न होता तो मेरे भाइयों के वे पुरोहित लोग किस तरह भस्म होकर मर जाते ११ ॥

मू० धिग्राज्यं धिक् च मे जन्म भूभुजां महतां कुले।
कारणत्वगतो योऽहं विनाशस्य द्विजन्मनाम् १२ ॥

टी०। मेरे राज्य करने और बड़े क्षत्रियों के कुलमें जन्म लेने पर धिक्कार है जो मैं उस कुल में जन्म लेकर ब्राह्मणों के नाश होने का कारण हुआ १२ ॥

मू० कुर्वन्तः स्वामिनां तेऽर्थं भ्रातॄणां मम याजकाः।
नाशं ययुर्न दुष्टास्ते दुष्टोऽहं नाशकारणे १३ ॥

टी०। उन याजक पुरोहितों ने तो अपने स्वामी के कामके वास्ते वह कर्म्म किया था और उनके स्वामी लोग मेरे भाई हैं वे सब जो मर गये दुष्ट नहीं हैं किन्तु मैं ही नाश के कारण में दुष्ट हुआ १३ ॥

मू० किं करोमि क्व गच्छामि नान्यो मत्तो हि पापकृत्।
पृथिव्यामस्ति हेतुत्वं द्विजनाशस्य योगतः १४ ॥

टी०। अब मैं क्या करूँ कहां जाऊँ मुझसा पापी दूसरा पृथ्वी में नहीं है कि मेरे कारण से ब्राह्मणों का नाश हुआ १४ ॥

मू० इत्थमुद्विग्नहृदयः खनित्रः पृथिवीपतिः।
वनं यियासुः पुत्रस्य कृतवानभिषेचनम् १५ ॥

टी०। इन बातों के शोच में महाराज खनित्र व्याकुलचित्त होकर

वनमें जाने की इच्छा करके अपने पुत्र को गद्दी पर बैठाल दिया १५ ॥

मू० अभिषिच्य सुतं राज्ये क्षुपसंज्ञं महीपतिः।
भार्य्याभिस्तिसृभिः सार्द्धं तपसे स वनं ययौ १६ ॥

टी०। उनके जिस लड़के का क्षुप नाम था राजाने उसको राजगद्दी पर बैठालकर आप अपनी तीन स्त्रियों को साथ लेकर तप करने के वास्ते वनमें चले गये १६ ॥

मू० तत्र गत्वा तपस्तेपे वानप्रस्थविधानवित्।
शतानि त्रीणि वर्षाणां सार्द्धानि नृपसत्तमः १७ ॥

टी०। और उस वनमें जाकर वानप्रस्थके विधानको जाननेवाले उत्तम राजा साढ़े तीन सौ वर्ष तक तपस्याकिया १७ ॥

मू० तपसा क्षीणदेहस्तु राजवर्य्यो द्विजोत्तम।
निगृह्य सर्व्वस्रोतांसि तत्याजासून् वनेचरः १८ ॥

टी०। हे द्विजोत्तम! तपस्या करने से वनमें रहनेवाले महाराज बहुत दुर्बल होगये फिर सब स्रोत याने देह के दरवाजों को रोंककर उसी वनमें अपना प्राण त्याग दिया १८ ॥

मू० ततः पुण्यान् ययौ लोकान् सर्व्वकामदुहोऽक्षयान्।
अश्वमेधादिभिर्यज्ञैरवाप्या ये नराधिपैः १९ ॥

टी०। महाराज प्राणत्याग देने पर पुण्य के प्रभाव से अक्षय व सब कामों के देनेवाले लोकों में प्राप्त हुये जो लोक अश्वमेध इत्यादि यज्ञ करने से महाराजों को प्राप्त होते हैं १९ ॥

मू० भार्य्याश्च तस्य तास्तिस्रः समन्तेनैव तत्यजुः।
प्राणानवापुः सालोक्यं तेनैव सुमहात्मना २० ॥

टी०। और उनकी वे तीनों स्त्रियां भी उन्हीं के साथ अपने अपने प्राणों को त्याग करदिया और उन्हीं महात्मा के साथ उसी पुण्यलोक में प्राप्त हुईं २० ॥

मू० एतत् खनित्रचरितं श्रुतं कल्मषनाशनम्।
पठताञ्च महाभाग क्षुपस्यातो निशामय २१ ॥

टी०। हे महाभाग! महाराज खनित्र के इस चरित्र को पढ़ने और सुनने से पापों का नाश होताहै अब उनके पुत्र क्षुप के चरित्र को कहता हूं सुनो २१॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेखनित्रचरितंनामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ११८॥

अथ एकसौउन्नीसवां अध्याय॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० क्षुपः खनित्रपुत्रस्तुप्राप्य राज्यं यथा पिता।
तथैव पालयामास प्रजा धर्म्मेण रञ्जयन् १॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि! महाराज खनित्र के पुत्र क्षुप राजगद्दी पर बैठकर अपने पिताकी तरह प्रजाओं को प्रसन्न रख कर धर्म से उनका पालन किया १॥

मू० स दानशीलो यष्टा च यज्ञानामवनीपतिः।
समः शत्रौ च मित्रे च व्यवहारादिकर्म्मनि २॥

टी०। और वे राजा बड़े दानी और यज्ञों के करने वाले हुये और व्यवहारादिक मार्ग में शत्रु और मित्रपर समान दृष्टि रखते थे २॥

मू० एकदा स महीपालो निजस्थानगतो मुने।
सूतैरुक्तो यथापूर्व्वं क्षुपो राजा तथाभवान् ३॥

टी०। हे मुने! एक समय वे महाराज क्षुप अपनी गद्दी पर बैठेहुयेथे कि उससमय सूतलोग कहनेलगे कि हे महाराज! जिस प्रकार पूर्व्वकाल में महाराज क्षुप होगये हैं वैसाही आपको भी होना चाहिये ३॥

मू० ब्रह्मणस्तनयः पूर्व्वंक्षुपोऽभूत्पृथिवीपतिः।
यादृक् चरितमस्यासीत्तादृक् तेसुविचेष्टितम् ४॥

टी०। कि पूर्व्वकाल में ब्रह्माजी के पुत्र महाराज क्षुपराजा हुये जैसे जैसे चरित्र उन्होंने किये हैं वैसेहीचरित्र आपको भी करनाचाहिये ४॥

राजोवाच ॥

मू० श्रोतुमिच्छामि चरितं क्षुपस्य सुमहात्मनः।
यदि तादृश्मया शक्यंचेष्टितुं तत्करोम्यहम् ५॥

टी०। यह बात उन सूतों से सुनकर महाराज क्षुप बोले कि मैं उन महात्मा महाराज क्षुप के चरित्र सुना चाहता हूं आप लोग वर्णन कीजिये जो वैसी सामर्थ्य अपने में पाऊँगा तो मैं भी वैसाही करूँगा ५॥

सूता ऊचुः ॥

मू० स चकाराकरान् भूप राजागोब्राह्मणान् पुरा।
षष्ठांशेन कृता चोर्व्यामिष्टिस्तेन महात्मना ६॥

टी०। सूतों ने कहा कि हे राजन्! उन महाराज क्षुपने पूर्व काल में गऊ और ब्राह्मणों से कर नहीं लिया और उन महात्मा ने प्रजाओं से छठा भाग लेकर बहुत बहुत यज्ञ किया ६॥

राजोवाच ॥

मू० तेषां महात्मनां राज्ञांकोऽनु यास्यतिमद्विधः।
तथाप्युत्कृष्टचेष्टानांचेष्टासूद्यमवान् भवेत् ७॥

टी०। इतनी बातें सूतों की सुनकर महाराज बोले कि वैसे वैसे महात्मा महाराजों का किया हुआ चरित्र मुझ ऐसा राजा कहां तक कर सकैगा परन्तु तो भी उत्तम कर्म वालों के चरित्र करने का उपाय करना चाहिये ७॥

मू० तच्छ्रूयतां प्रतिज्ञा या साम्प्रतं क्रियते मया।
क्षुपस्यानुकरिष्यामि महाराजस्य चेष्टितम् ८॥

टी०। इस समय जो प्रतिज्ञा मैं करता हूं उसको आपलोग सुनते जाइये कि महाराज क्षुप के समान आचरण यज्ञादिक मैं करूंगा ८॥

मू० त्रींस्त्रीन् यज्ञान् करिष्यामि सस्यापाते गतागते।
पृथिव्यां चतुरन्तायां प्रतिज्ञेयं कृता मया ९॥

टी०। और सस्यापात अर्थात् अन्न की प्राप्ति में अन्न होने या न होने पर भी मैं चार समुद्रोंके बीच वाली इस पृथ्वी में तीन तीन यज्ञ करूंगा यह प्रतिज्ञा मैंने किया है ९॥

मू० यञ्चगो ब्राह्मणाः पूर्व्वं मददन् भूभृते करम्।
तमेव प्रतिदास्यामि ब्राह्मणानां तथागवाम् १० ॥

टी०। और जो पूर्व काल में गऊ ब्राह्मण ने सब राजाओं को कर दिया है वही मैं उन ब्राह्मणों को और गौवोंको वापसकर दूंगा १० ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० इति प्रतिज्ञाय वचः क्षुपस्तत्कृतवांस्तथा।
सस्यापाते सयज्ञांस्त्रीनयजद्यजतां वरः ११ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे कौष्टुकि! यह प्रतिज्ञाकरके जब जब अन्न की प्राप्ति हुई तब तब यज्ञ करने वालों में श्रेष्ठ उन महाराज क्षुप ने अपनी प्रतिज्ञानुसार तीन यज्ञ किया ११ ॥

मू० गोब्राह्मणः पुराराज्ञामददद्यञ्च वै करम्।
तावत्संख्यमदा द्वित्तमन्यद्गोब्राह्मणाय सः. १२ ॥

टी०। और जितना कर गौ ब्राह्मणों ने पूर्व्व काल में राजाओं को दिया था उतनाही धन उन महाराजने दूसरे गो ब्राह्मणों को देदिया १२ ॥

मू० तस्य पुत्रोऽभवद्वीरः प्रमथायामनिन्दितः।
तस्य प्रताप शौर्य्याभ्यां कृता वश्या महीभृतः १३ ॥

टी०। फिर उन महाराज क्षुप के प्रमथा नाम भार्य्या से बीर नाम पुत्र प्रशंसनीय उत्पन्न हुआ जिसने अपने प्रताप और बीरता से बड़े बड़े राजाओं को अपने वश करालिया १३ ॥

मू० तस्यापि नन्दिनी नाम वैदर्भी दयिताऽभवत्।
विविंशं तनयं तस्यां जनयामास स प्रभुः १४ ॥

टी०। और नन्दनी नाम कन्या राजा वैदर्भ की उन महाराज बीर की भी भार्य्या हुई उसी से महाराजबीर के विविंशनाम पुत्र उत्पन्न हुआ १४ ॥

मू० विविंशे शासति मह्नीं महीपाले महौजसि।
महीतलमभूद्व्याप्तं निरन्तर तया नरैः १५ ॥

टी०। जब पराक्रमी राजा विविंश पृथ्वीका राज्य करनेलगे तो उनके राज्यमें सम्पूर्ण पृथ्वी मनुष्योंसे ऐसी व्याप्तहोगई कि अन्तर न रहा१५॥

मू० ववर्ष काले पर्जन्यो मही सस्यवती तथा।
सुफलानि च सस्यानि रसवन्ति फलानि च १६ ॥

टी०। और समय पर जल बर्षता था और पृथ्वी में अन्न व औषधी उत्पन्नहोतीथी और वृक्षों में फललगतेथे और फल सब रसयुक्त होतेथे १६॥

मू० रसाः पुष्टिकराश्चासन् पुष्टिर्नोन्मादकारिणी।
नवित्त निचया नृणां प्रभूता मदहेतवः १७ ॥

टी०। और वे रस पुष्टि कारक होते थे और वह पुष्टता उन्माद कारिणी नहीं होतीथी और मनुष्यों को बहुतधन होनेपर भी कभी अहंकार न होताथा १७ ॥

मू० तत्प्रतापेन रिपवो भयमापुर्महामुने।
स्वास्थ्यं जनः सुहृद्वर्गो मुदमिच्छन्ति पौरिकाः १८ ॥

टी०। व महाराज विविंश के प्रतापसे शत्रुलोग सब सर्व्वकाल भयभीत रहते थे व हे महामुनि! उनके मित्रलोग स्वस्तचित्त होकर रहते थे और पुरवासीलोग हर्षित रहते थे १८ ॥

मू० इष्ट्वा स यज्ञान् सुबहून् सम्यक् सम्पाल्य मेदिनीम्।
संग्रामे निधनं प्राप्य स्वर्गलोकमितो गतः १९ ॥

टी०। और वे महाराज विविंश बहुत बहुत यज्ञ करके और पृथ्वी की भलीभांति पालना करके संग्राम में सन्मुख मरण पाकर यहांसे स्वर्गलोक को चलेगये १९ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेविविंशचरित्रनामैकोनविंशाधिक शततमोऽध्यायः ११९ ॥

अथ एकसौबीसवां अध्याय ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० तस्य पुत्रः खनीनेत्रोमहाबलपराक्रमः।
यस्य यज्ञष्वगायन्त गन्धर्व्वा विस्मयान्विताः १ ॥

टी०। मार्कण्डेय मुनि कहते हैं कि हे कौष्टुकि! महाराज विविंश के पुत्र खनीनेत्र नाम बड़े बलवान् और पराक्रमी हुये जिन की यज्ञों में गन्धर्व्वलोगों ने विस्मित चित्त होकर यह गान किया १॥

मू० खनीनेत्रसमो नान्यो भुवि यज्वा भविष्यति।
तेन यज्ञायुते पूर्णे दत्ता पृथ्वी स सागरा २॥

टी०। कि महाराज खनीनेत्र के समान दूसरा यज्ञ करनेवाला पृथ्वी में न होगा उन ने दशहजार यज्ञ समाप्त होनेपर समुद्र सहित पृथ्वी को ब्राह्मणों को दे दिया २॥

मू० दत्त्वा च सकलां पृथ्वीं ब्राह्मणानां महात्मनाम्।
तपसा द्रव्यमासाद्यमोचयत् साधिकेन यः ३॥

टी०। महात्मा ब्राह्मणों को सम्पूर्ण पृथ्वी देकर फिर तपस्या करके द्रव्य प्राप्त करके वही द्रव्य ब्राह्मणों को देकर मैखज़ाना के पृथ्वी को फिर छुड़ा लिया ३॥

मू० यतश्च प्राप्य वित्तर्द्धिमतुलां दातृमत्तमात्।
जगृहुर्ब्राह्मणा विप्र नान्यराज्ञः प्रतिग्रहम् ४॥

टी०। दानियों में उत्तम जिन महाराज खनीनेत्र से अतुल द्रव्य और पदार्थ पाकर हे विप्र! ब्राह्मणलोगोंने दूसरे राजाका दान नहीं लिया ४॥

मू० सप्तषष्टिसहस्राणि सप्तषष्टिशतानि च।
सप्तषष्टिं च यो यज्ञानयजद्भूरिदक्षिणान् ५॥

टी०। जिन महाराज खनीनेत्र ने तिहत्तर हजार सातसौ सरसठ यज्ञ किया और उन यज्ञों में ब्राह्मणों को बहुत दक्षिणा दिया ५॥

मू० अपुत्रः स महीपालो मृगयामुपचक्रमे।
पुत्रार्थंपितृयज्ञाय मांसकामो महामुने ६॥

टी०। हे महामुने! फिर उन पुत्र रहित राजाने पुत्र उत्पन्न होने के वास्ते पितृयज्ञ करने के लिये मांस के लिये शिकार खेलने की इच्छा की ६॥

मू० अश्वारूढो विना सैन्य मेक एव महावने।
बद्धगोधांगुलित्राणो बाणखड्गधनुर्धरः ७॥

टी०। घोड़े पर सवार होकर और धनुषबाण खड्ग लेकर और पंच की चोट बचाने के वास्ते हाथ में गोह की खाल के दस्ताने बांधकर विना सेना के अकेले आपही महाबन में गये ७॥

मू० तं वाहयन्तं तुरगमन्यतो गहनाद्वनात्।
बिनिष्क्रम्य मृगः प्राह मां हत्वाभिमतं कुरु ८॥

टी०। उस बन में शिकार के वास्ते चारों तरफ़ घोड़ा दौड़ा रहे थे कि एक दूसरे सघन बन से एक मृग निकल कर महाराज से बोला कि मुझको शिकार करके अपना कार्य्य सिद्ध कीजिये ८॥

राजोवाच॥

मू० अन्ये मृगाः पलायन्ते महाभीत्या विलोक्य माम्।
कथमात्मप्रदानं त्वं मृत्युवे कर्त्तुमिच्छसि ९॥

टी०। महाराज ने कहा कि सब मृग तो मुझको देखकर बड़े डरसे भागते हैं और तू किस वास्ते मृत्यु के लिये प्राण देनेपर उपस्थित है ९॥

मृग उवाच॥

मू० अपुत्रोऽहं महाराज वृथाजन्मप्रयोजनम्।
विचारयन्नपश्यामि प्राणानामिह धारणम् १०॥

टी०। मृग ने कहा कि हे महाराज! मैं अपुत्र हूं मेरा जन्म वृथा है मैंने विचार करकेदेखा इससंसारमें मेरेजीने की कुछ आवश्यक्तानहींहै१०॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० अथाभ्येत्यमृगः प्राहतमन्यो वसुधाधिपम्।
मृगस्य तस्य प्रत्यक्ष मलमेतेन पार्थिव ११॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि यह बात चीत मृग और राजा से हो रही थी कि इतनेमें एकदूसरामृग आकर उस मृगा के सामनेही उन राजा से बोला कि हे महाराज! आप इस मृग को न मारिये क्योंकि इससे आपका कार्य्य सिद्ध न होगा ११॥

मू० घातयस्वेति मां मांसैर्मम कर्म्म समाचर।
यथा कृतार्थता ये स्यान्मम चाप्युपकारि तत् १२॥

टी०। मुझको मारिये और मेरे मांस से कर्म्म कीजिये कि जिससे आपका कार्य्य सिद्ध हो और मेरा भी वह मांस उपकार कारक हो १२॥

मू० पुत्रार्थं त्वं महाराज स्वपितॄन् यष्टुमिच्छसि।
अपुत्रस्यास्य मांसेन लप्स्यसे वाञ्छितं कथम् १३॥

टी०। हे महाराज! पुत्र के वास्ते आप अपने पितरों को पूजना चाहते हैं तो इस अपुत्र मृग का मांस पितरों को देने से किस तरह आप मनोर्थ पाइयेगा १३॥

मू० यादृक् कर्म्म विनिष्पाद्यं तादृग् द्रव्यमुपाहरेत्।
दुर्गन्धेन सुगन्धानां गन्धज्ञान विनिर्णयः १४॥

टी०। जैसा कर्म्म सिद्ध करता होता है वैसीही वस्तु लावे क्योंकि दुर्गन्ध से सुगन्ध की गन्धका ज्ञान नहीं होता है १४॥

राजोवाच॥

मू० वैराग्य कारणं प्रोक्तमनेनापुत्रता मम।
कथ्यतां प्राणसंत्यागे यत्ते वैराग्यकारणम् १५॥

टी०। यह बात सुनकर राजा खनीनेत्र बोले कि पहला मृग तो अपुत्र है इस वास्ते उसको वैराग्य उत्पन्न हुआ है पर तुम कहो कि तुमको अपने प्राण त्यागने में किस वास्ते वैराग्य उत्पन्न हुआहै १५॥

मृग उवाच॥

मू० बह्वो मे सुता भूप बह्वो दुहितरस्तथा॥
यच्चिन्तादुःखदावाग्निज्वालामध्ये वसाम्यहम् १६॥

टी०। यह बात सुनकर मृगने कहा कि हे भूप! मेरे लड़के व लड़की बहुत हैं जिस कारण से मैं सदा चिन्ता व दुःख रूपी अग्नि के ज्वाला में पड़ारहताहूं १६॥

मू० सर्व्वसाध्यानरेन्द्रेयं मृगजातिः सुकातरा।
तेष्वपत्येषु मे चाति ममत्वं तेन दुःखितः १७॥

टी०। हे महाराज! हम मृगलोगों की यह जाति बहुत कादर और निबल होती है इस वास्ते उन बाल बच्चों में मेरी बड़ी ममता है कि उन को कोई मार न डाले उससे मैं दुःखी हूं १७॥

मू० मनुष्यसिंहशार्दूलवृकादिभ्यो बिभेम्यहम् ।
विहीनात्सर्व्वसत्त्वेभ्यः श्वशृगालादपि प्रभो १८ ॥

टी० । मनुष्य और सिंह और व्याघ्र तथा वृकयाने भेड़िया इत्यादिकों से मैं डरता रहता हूं व हे प्रभो ! सब जीवों से नीच कुत्ता व सियार से भी डरता हूं क्योंकि मेरे बाल बच्चे कुत्ते से भी निर्बल हैं १८ ॥

मू० सोऽहं निमित्तं बन्धूनामिमां शून्यां बसुन्धराम् ।
नृसिंहादिभयात् सर्व्वामिच्छामि सुनृशंसकृत् १९ ॥

टी० । इस वास्ते क्रूरकर्म करने वाला मैं मनुष्य व सिंहादि कों की भयसे अपने बालबच्चों की रक्षा के वास्ते हरसमय यही चाहता रहता हूं कि यह सम्पूर्ण पृथ्वी शून्य हो जावे १९ ॥

मू० तृणान्यन्येऽपि खादन्ति गोऽजावितुरगादिकाः ।
तांस्तेषां पोषणायाहमिच्छामि निधनं गतान् २० ॥

टी० । अन्य गऊ बकरी भेड़ी घोड़ा इत्यादि भी घास पात खाते हैं उन बच्चों के पालन के लिये मैं उनको मराहुआ चाहता हूं २० ॥

मू० निष्क्रान्तेषु ततस्तेषु ममापत्येषु वै पृथक् ।
भवन्ति चिन्ताः शतशो ममत्वावृत्तचेतसः २१ ॥

टी० । जब मेरे वे सब बालबच्चे अकेले चरने को अलग् निकलते हैं उस समय मुझको सैकड़ों चिन्ता उत्पन्न होती हैं क्योंकि मारे प्रीति के उनलोगों में मेरा मन लगा रहता है २१ ॥

मू० किं कूटपाशं किं वज्रं वागुरां किं सुतो मम ।
प्राप्तश्चरन् वने किं वा नृसिंहादिवशं गतः २२ ॥

टी० । कि वन में चरते हुये कहीं मेरे सब बच्चे कूट पाश या वज्र या वागुरा याने फसाने वाली जालमें न फँस जाँय या किसी ऐसे बनमें जहां मनुष्य व सिंह इत्यादि रहते हों उनके वशमें न पड़ जाँय २२ ॥

मू० प्राप्तोऽयमेकः संप्राप्तास्तेऽवस्थां कीदृशीं मम ।
साम्प्रतं विचरन्तो वै ये गताः सुमहावनम् २३ ॥

टी० । इस बनमें एक मैं प्राप्त हुआ हूं तिसकी तो यह दशा है और

जिस महावन में जो मेरे सब बच्चे चरने को जातेहैं वहांके समाचार नहीं मालूम कि वे लोग किस दशा में हैं २३ ॥

मू० दृष्ट्वा प्राप्तन्ममाभ्याशमहन्तानात्मजान्नृप।
ईषदुच्छ्वसितः क्षेममिच्छामि रजनीं पुनः २४ ॥

टी०। और हे नृप ! सायंकाल में जब मेरे सब बच्चे चरकर वहां से पलट आते हैं तब मैं उन लोगों के देखने परभी सोने के समय थोड़ीसी श्वास लेकर रातभर फिर उन सबों की कुशल चाहतारहता हूँ २४ ॥

मू० प्रभाते दिवसं क्षेममस्तगेर्के निशामपि।
वाञ्छाम्यहं कदा क्षेममर्व्वकालं भविष्यति २५ ॥

टी०। और मैं प्रभातकाल में दिवस का क्षेम व संध्या होने पर रात्रि को भी क्षेम चाहता हूँ और चिन्ता में रहता हूँ कि किस समय सब काल कल्याण होगा २५ ॥

मू० एतत्ते कथितं भूप ममोद्वेगस्य कारणम्।
अतःप्रसादं कुरु मे बाणोऽयं पात्यतां मयि २६ ॥

टी०। हे महाराज ! अपना सब वृत्तान्त याने अपने ऊबनेका कारण, मैंने आपको कहसुनाया इस वास्ते मुझपर अब प्रसन्नहोकर मुझको अपने इस बाण से मारिये २६ ॥

मू० इति दुःखशताविष्टः प्राणानपि त्यजामि यत्।
तत् कारणं निबोध त्वं ब्रुवतोमम पार्थिव २७ ॥

टी०। हे राजन ! इसतरह सैकड़ों दुःखों से भराहुआ मैं जिस वास्ते प्राणभी त्याग करताहूँ उसका कारण कहतेहुये मुझसे सुनिये २७ ॥

मू० असूर्य्यानाम ते लोकायान्गच्छन्त्यात्मघातकाः।
यज्ञोपयुक्ताः पशवः संव्रयान्त्युच्छ्रितीः प्रभो २८ ॥

टी०। कि असूर्य्यानाम के वे लोकहैं जिनमें आत्मघाती जीव जाते हैं हे राजन् ! और यज्ञमें मारेगये जो पशु वे उत्तम गतिको पहुँचतेहैं २८ ॥

मू० अग्निः पशुरभूत् पूर्व्वं पशुरासीज्जलाधिपः।
भास्वानथोच्छ्रितीः प्राप्तोयज्ञे निष्ठामुपागतः २९ ॥

टी०। इसीवास्ते पूर्व्वकालमें अग्नि और वरुण और सूर्य्य भगवान् पशु हुये हैं और फिर यज्ञ में वध होकर ऊंची गति को पहुँचे २६॥

मू० तन्ममैतां कृपां कृत्वा नय मामुच्छ्रितं नृप।
आत्मनश्चेप्सितं कामं पुत्रलाभादवाप्स्यसि ३०॥

टी०। इसवास्ते मैं चाहता हूँ कि हे महाराज! आप मुझपर यह कृपा करके वध कीजिये कि जिसमें मैं उत्तम गति को प्राप्त होऊं और पुत्रलाभ से आपभी अपने वांछित काम को पाइयेगा ३०॥

पूर्व्वमृगउवाच॥

मू० राजेन्द्र नैषहन्तव्योधन्योऽयं सुकृती मृगः।
बहवस्तनयायस्य हन्तव्योऽहमसन्ततिः ३१॥

टी०। इसी अन्तर में पहला मृग बोला कि कि हे राजेन्द्र! इस मृग को न मारिये यह मृग सुकृती वधन्य है कि जिस के बहुत पुत्र हैं मुझको मारिये कि मैं अपुत्र हूँ ३१॥

उत्तरमृगउवाच॥

मू० एकदेहभवं यस्य दुःखं धन्यः सवै भवान्।
बहूनि यस्य देहानि तस्य दुःखान्यनेकधा ३२॥

टी०। यह सुनकर दूसरा मृग बोला कि तुम धन्य हो जो एकही शरीर में तुम्हारे एक ही दुःख है और मैं तो बहुत शरीरसहित हूँ इस वास्ते मेरे दुःख भी बहुत हैं ३२॥

मू० एकोयदाहमासन्तु प्राक् तदा देहजं मम।
दुःखमासीन्ममत्वे तु भार्य्यायास्तदभूद्द्विधा ३३॥

टी०। पहले जब मैं अकेला था तब मेरे शरीर में उपजाहुआ एकही दुःख था जब स्त्री में मेरा मन लगा तब मुझको दो दुःख हुये ३३॥

मू० यदा जातान्यपत्यानि तदा यावन्ति तानि वै।
तावच्छरीरभूमीनि मम दुःखान्यथाभवन् ३४॥

टी०। जब उस स्त्री से मेरे सन्तानहुई तो जितनी सन्तान हुई उतनें ही मेरे शरीर में दुःख बढ़ गये ३४॥

मू० सकृतार्थोभवान् यस्य नातिदुःखाय सम्भवः।
इह दुःखाय मत्सूतिः परत्र च विरोधिना ३५॥

टी०। इसवास्ते तुम्हीं अच्छे हो क्योंकि तुमको इस संसार में जन्म लेने से बहुत दुःख नहीं है और मेरे जन्म लेने से मुझको इस लोक में दुःख है और परलोक में भी दुःख होगा ३५॥

मू० यतोरक्षणपोषार्थमपत्यानां करोमि तत्।
चिन्तयामि च सम्भूतिस्तेन मे नरके ध्रुवा ३६॥

टी०। जोकि मैं सदा अपने लड़कों की रक्षा और पालना करने के शोच में रहता हूँ इस से मुझको नरक में अवश्य जाना पड़ेगा ३६॥

राजोवाच॥

मू० न वेद्मि किं सन्ततिमान् धन्योऽपुत्रोऽत्र किं मृग।
पुत्रार्थश्चायमारम्भोमम दोलायते मनः ३७॥

टी०। यह बात दूसरे मृग से सुनकर महाराज खनीनेत्र बोले कि हे मृग! मुझको यह बात नहीं मालूम कि इस संसार में पुत्रवाला धन्य है या अपुत्रवाला अब पुत्रहोनेकेवास्ते पितृयज्ञ करनेमें मेरा चित्त स्थिर नहींहै३७॥

मू० दुःखाय सन्ततिः सत्यमैहिकामुष्मिकाय तत्।
तथाप्यतनया यान्ति ऋणानीति श्रुतं मया ३८॥

टी०। यद्यपि यह तुम्हारा कहना सत्य है कि सन्तानवाले को इसलोक और परलोक दोनों में दुःख होता है परन्तु तौभी यह भी सुना है कि विना सन्तान के मनुष्य ऋणी होता है ३८॥

मू० सोऽहं यतिष्ये पुत्रार्थमृते प्राणिवधं मृग।
तपसैव प्रचण्डेन यथापूर्व्वं महीपतिः ३९॥

टी०। इस वास्ते पुत्र होने के वास्ते जीव का वध करना छोड़कर वही यत्न करनाचाहता हूँ कि जिसमें केवल तपस्या करने से पुत्र हो जैसा पूर्व्वकाल में महाराजलोग किया करते थे ३९॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेखनीनेत्रचरित्रेनामविंशाधिकशततमोऽध्यायः १२०॥

अथ एकसौइक्कीसवां अध्याय ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० ततः सन्नृपतिर्गत्वा गोमतीं पापनाशिनीम् ।
तत्र तुष्टाव नियतोभूत्वा देवं पुरन्दरम् १ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी कहते हैं कि इसके पश्चात् वे खनीनेत्र पापनाशिनी गोमती नदी के किनारे जाकर वहां एकाग्रचित्त हो इन्द्र की स्तुति करनेलगे १ ॥

मू० तप्यमानस्तपश्चोग्रं यतवाक्कायमानसः ।
तुष्टाव प्रयतः शक्रमपत्यार्थं महीपतिः २ ॥

टी० । अर्थात् वहांपर महाराज खनीनेत्रने उग्रतपस्यामें अपने प्राण और शरीर व मन को रोंककरके पुत्रके लिये इन्द्र महाराज की बहुत २ स्तुति की २ ॥

मू० तस्य स्तोत्रेण तपसा भक्त्या चापि सुरेश्वरः ।
तुतोष भगवानिन्द्रः प्राह चैनं महामुने ३ ॥

टी० । हे महामुने उनके स्तुति और भक्तिपूर्व्वक तपस्या करने से देवों के मालिक इन्द्र भगवान् प्रसन्नहुये और उन खनीनेत्रसे बोले ३ ॥

मू० अनेन तपसा भक्त्या स्तोत्रेणोच्चारितेन च ।
परितुष्टोऽस्मि ते भूप व्रियतां भवता वरः ४ ॥

टी० । कि हे खनीनेत्र भूप ! तुम्हारे भक्तिपूर्व्वक इस तप और स्तुति करनेसे मैं तुमसे प्रसन्न हुआ जो वरदान मांगना चाहते हो उसको मांगो ४ ॥

राजोवाच ॥

मू० अपुत्रस्य सुतोमेऽस्तु सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
सदा चाव्याहतैश्वर्य्योधर्म्मकृद्धर्म्मवित् कृती ५ ॥

टी० । महाराज खनीनेत्र ने कहा कि मैं अपुत्र हूँ मेरे पुत्र उत्पन्न हो और वह पुत्र समस्त शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ और सदा ऐश्वर्य्यवान् और धर्म्मकारी और धर्म्मज्ञानी और पुण्यात्माहो ५ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० तथेति चोक्तः शक्रेण राजा प्राप्तमनोरथः।
प्रजाःपालयितुं भूपश्चाजगाम निजं पुरम् ६ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुके! इसप्रकार महाराज खनीनेत्र के वरदान मांगनेपर इन्द्र भगवान् ने प्रसन्न होकर वरदान दिया तब महाराज अपनी कामना को पाकर प्रजापालन के लिये अपने नगरमें आये ६ ॥

मू० तत्रास्य कुर्वतोयज्ञं सम्यक् पालयतः प्रजाः।
अजायत सुतोविप्र तदा शक्रप्रसादतः ७ ॥

टी०। वहांपर उन्हों ने यज्ञ किया और भलीभांति प्रजाओं का पालन किया व हेविप्रजी! फिर उससमय इन्द्रभगवान् के प्रसाद से महाराज खनीनेत्र के पुत्र उत्पन्न हुआ ७ ॥

मू० तस्य नाम पिता चक्रे बलाश्वइति भूपतिः।
अस्त्रग्राममशेषञ्च ग्राहयामास तं सुतम् ८ ॥

टी०। और खनीनेत्र ने उसका नाम बलाश्व ऐसा रक्खा और उस पुत्र को सम्पूर्ण अस्त्रसमूह पढ़ादिया ८ ॥

मू० पितर्य्युपरते विप्र सोऽधिराज्ये स्थितोनृपः।
सबलाश्वो वशंनिन्ये भुवि सर्व्वमहीक्षितः ९ ॥

टी०। फिर हे विप्र! महाराज खनीनेत्र के मरने पर वे बलाश्व महाराज राज्यपर स्थितहुये और पृथ्वी के सब राजाओं को अपने वश्य करलिया ९ ॥

मू० करञ्च दापयामास सारग्रहणपूर्व्वकम्।
समर्व्वभूमिपान् राजा पालयामास च प्रजाः १० ॥

टी०। और महाराज बलाश्व ने उन सब राजाओं से अच्छी अच्छी वस्तु कर (महसूल) लिया व उनका पालनकिया और प्रजाओं का पालनकिया १० ॥

मू० अथाखिलनरेन्द्रास्ते दायादास्तस्य दुर्मदाः।
न चाभ्युत्थाय सततन्ते चास्मै प्रददुः करान् ११ ॥

टी०। परन्तु थोड़ेही दिनोंके बाद वे सब राजा और दायाद(भाई)लोग जो कर(अर्थात् महसूल)देतेथे उन्होंने मदसे अंधहोकर बन्दकरदिया ११॥

मू० व्युत्थिताः स्वेषु राष्ट्रेषु न सन्तोषपरास्ततः।
भुवं तस्य नरेन्द्रस्य जगृहुस्ते नराधिपाः १२॥

टी०। और अपने अपने राज्य पर सन्तोष न करके सबके सब उन राजाओं ने एकचित्त होकर उन महाराज का राज्य छीन लिया १२॥

मू० सगृहीत्वा स्वकं राज्यं पृथिवीशोबलान्मुने।
तस्थौ स्वनगरे भूपैर्विरोधोबहुभिःकृतः १३॥

टी०। परन्तु फिर हे मुने! उन महाराज बलाश्व ने श्रद्धा और वीरता करके अपना राज्य उनसे फिर लेलिया और बहुत राजाओंसे विरोधकरके अपने नगर में रहनेलगे १३॥

मू० समेत्य सुमहावीर्य्याः ससाधनधनास्ततः।
रुरुधुस्तं महीपालं पुरे तत्र नरेश्वराः १४॥

टी०। फिर उन्हीं विरोधी महापराक्रमी राजाओंने सेना व धन साथ लेकर महाराजके उस नगर पर चढ़ाईकरके उनको घेर लिया १४॥

मू० पुररोधेन तेनाथ कुपितः समहीपतिः।
स्वल्पकोशोऽल्पदण्डश्च वैक्लव्यं परमं गतः १५॥

टी०। वे महाराज बलाश्व उस नगरके घिरजाने से बहुत कोपित हुये और उनका खजाना भी थोड़ा होगया व दण्ड कमहोगया और यह सब तरहसे बहुतविकल होगये १५॥

मू० अपश्यमानः शरणं सबलोद्विजसत्तम।
करौ मुखाग्रतः कृत्वा निश्श्वासार्त्तमानसः १६॥

टी०। हे द्विजसत्तम! जब महाराज और उनकी सेना को कोई रक्षक न देखपड़ा तब महाराज बलाश्व दुःखित होकर दोनों हाथ अपने मुखपर रख शोचसे लम्बी लम्बी श्वास लेने लगे १६॥

मू० ततोऽस्य हस्तविवरान्मुखानिलसमाहताः।
निर्जग्मुः शतशोयोधारथनागतुरङ्गमाः १७॥

टी०। उसके बाद उस महाराजके मुखकी श्वाससे हाथकी अँगुलियों के गाथोंसे होकर बड़े बड़े सैकड़ों योधा और रथ और हाथी और घोड़े सब निकलकर प्रकट होगये १७॥

मू० ततः क्षणेन तत्सर्वं नगरं तस्य भूपतेः।
व्याप्तमासीद्बलौघेन सारेणातिबलान्मुने १८॥

टी०। फिर तो हे मुने! क्षणमात्र में उन महाराज का वह सम्पूर्ण नगर बड़े बड़े पराक्रमी सेनागणों से भरगया १८॥

मू० अथ सोऽतिबलौघेन महता तेन संवृतः।
निर्गम्य नगरात्तस्मात्तान् विजिग्ये नराधिपः १९॥

टी०। तब उन महाराज बलाश्व ने उस सब सेनासेघिरेहुये आप ने उसनगर से बाहर निकलकर उन राजाओं से युद्धकरके उन सब को जीतलिया १९॥

मू० जित्वा च वशमानीय चकार करदान् पुनः।
यथापूर्व्वं महाभाग महाभाग्योनरेश्वरः २०॥

टी०। और हे महाभाग! महाभाग्यवान् महाराज बलाश्व ने उन सब राजाओं को जीतकर फिर अपने वशकरके और जिसप्रकार पहले उन लोगों से करलेते थे उसी प्रकार फिर लेनेलगे २०॥

मू० धुतयोः करयोर्जज्ञे यतस्तस्यारिदाहदम्।
बलं करन्धमस्तस्मात् सबलाश्वोऽभिधीयते २१॥

टी०। जो कि उन महाराज के कांपतेहुये हाथों के गाथों से शत्रुओं को दाहदेनेवाली वीरसेना निकली थी इस कारण वे महाराज बलाश्व करन्धमनाम से विख्यात हुये २१॥

मू० सधर्म्मात्मा महात्मा च समैत्रः सर्व्वजन्तुषु।
करन्धमोऽभवद्भूपस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः २२॥

टी०। वे महाराज करन्धम बड़े धर्मात्मा और महात्मा और सब जन्तुवों के प्यारे हुये और तीनों लोक में विख्यात हुये २२॥

मू० सम्प्राप्तम्परमामार्त्तिं ददावरिविनाशनम्।
बलन्धर्म्मेण चाक्षिप्तमभ्युपेत्य स्वयं नृपम् २३॥

टी०। बड़े क्लेश को प्राप्त उन राजा के पास आपही धर्म से पठाई हुई उस सेना ने आकर शत्रुओं का नाश करदिया २३ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेकरन्धमचरित्रेनामैकविंशाधिकशततमोऽध्यायः १२१ ॥

अथ एकसौबाईसवां अध्याय ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० वीर्य्यचन्द्रसुता सुभ्रूर्वीरानाम शुभव्रता ।
स्वयंवरे सा जगृहे महाराजं करन्धमम् १ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुके ! महाराज वीर्य्यचन्द्र की कन्या वीरानाम जो सुन्दर भौंहोंवाली व उत्तम आचरणोंवाली थी उसने अपने स्वयंवर में महाराज करन्धम को पसन्दकरके अपना पति बनाया १ ॥

मू० तस्यां पुत्रं सराजेन्द्रो जनयामास वीर्य्यवान् ।
अवैक्षतामिति ख्यातिमुपेतं जगतीतले २ ॥

टी०। तब वे पराक्रमी महाराज करन्धमने उस वीरा स्त्री में एक पुत्र उत्पन्न किया जिसका नाम अवैक्षत ऐसा पृथ्वी में प्रसिद्ध हुआ २ ॥

मू० जाते तस्मिन् सुते राजा सदैवज्ञानपृच्छत ।
कच्चित् प्रशस्तनक्षत्रे शस्तलग्ने सुतोमम ३ ॥

टी०। अवैक्षतनाम होनेका कारण यह है कि उनके जन्म होनेपर उन महाराज करन्धम ने ज्योतिषियों को बुलाकर पूछा कि क्या मेरे पुत्र का जन्म प्रशस्त लग्न और प्रशस्त नक्षत्र में हुआ है ३ ॥

मू० कच्चिच्चालोकितं जन्म मम पुत्रस्य शोभनैः ।
ग्रहैः कच्चिन्न दुष्टानां ग्रहाणां दृक्पथं गतम् ४ ॥

टी०। और मेरे पुत्रका जन्म शुभ ग्रहों से दृष्ट है कि दुष्टग्रहों से दृष्ट है इसका वृत्तान्त आपलोग वर्णन कीजिये ४ ॥

मू० इत्युक्तास्तेन दैवज्ञास्तमूचुर्नृपतिं ततः।
शस्ते मुहूर्त्ते नक्षत्रे लग्ने चैव सुतस्तव ५॥

टी०। इसप्रकार उस राजा से पूछेहुये उन ज्योतिषियों ने कहा कि हे महाराज! आपका पुत्र प्रशस्त मुहूर्त्त और प्रशस्त नक्षत्र और प्रशस्त लग्न में ५॥

मू० समुत्पन्नोमहावीर्य्योमहाभागोमहाबलः।
भविष्यति महाराज महाराजस्तवात्मजः ६॥

टी०। उत्पन्न हुआ है हे महाराज! यह पुत्र आपका महापराक्रमी और महाभाग्यवान् और महाबली और महाराज होगा ६॥

मू० अवैक्षतेमं देवानां गुरुः शुक्रश्च सप्तमः।
सोमश्चतुर्थस्तनयं तवैनं समवैक्षत ७॥

टी०। इस पुत्र के सप्तम बृहस्पति और शुक्र देखते हैं और चतुर्थ चन्द्रमा हर प्रकार से तुम्हारे इस पुत्र को देखताहै ७॥

मू० उपान्तसंस्थितश्चैव सोमपुत्रोऽप्यवैक्षत।
नावैक्षतेमं सविता न भौमो न शनैश्चरः ८॥

टी०। और समीप में रहकर बुध भी उसको देखते हैं पापग्रह सूर्य्य और मंगल और शनैश्चर इसके जन्मस्थान को नहीं देखते हैं ८॥

मू० भूमौनूनं महाराज धन्योऽयं तनयस्तव।
सर्व्वकल्याणसम्पत्तिसमवेतो भविष्यति ९॥

टी०। हे महाराज! निश्चयकर पृथ्वीमें आपका यह पुत्र धन्य है व सकल कल्याण और सम्पत्ति से युक्त होगा ९॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० इति दैवज्ञवचनं निशम्य वसुधाधिपः।
हर्षपूर्णमनाः प्राह निजस्थानगतस्तदा १०॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि! यह सब बातें ज्योतिषियों से सुनकर उस समय हर्ष से भरेहुये मनवाले तथा अपने स्थान में प्राप्त महाराज करन्धम बोले १०॥

मू० अवैक्षतेमं देवानां गुरुः सोमसुतो बुधः।
नावैक्षतेनमादित्यो नार्कसूनुर्न भूमिजः ११॥

टी०। कि जोकि इस पुत्र के जन्म में बृहस्पति और शुक्र और बुध की दृष्टि है और सूर्य्य और शनैश्चर और मंगल की अदृष्टि है ११॥

मू० अवैक्षतेति यत्प्रोक्तं भवद्भिर्बहुशो वचः।
अवैक्षितेति तेनास्य ख्यातं नाम भविष्यति १२॥

टी०। आपलोग ज्योतिषियों ने अवैक्षत ऐसा वचन कईबार कहा है इसवास्ते इस पुत्र का नाम अवैक्षित ऐसा प्रसिद्ध होगा १२॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० अवैक्षितः सुतस्तस्य वेदवेदाङ्गपारगः।
अस्त्रग्राममशेषं स कण्वपुत्रादथाग्रहीत् १३॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहतेहैं कि उन महाराज करन्धमके पुत्र अवैक्षित वेद व वेदांगों में बहुत पारङ्गत हुये और उन्हों ने कण्व मुनि के पुत्र से सम्पूर्ण अस्त्रविद्या सीख लिया १३॥

मू० सरूपेणातिभिषजौ देवानां पार्थिवात्मजः।
बुद्ध्या वाचस्पतिं कान्त्या शशाङ्कं तेजसा रविम् १४॥

टी०। और वे राजपुत्र अवैक्षित अश्विनीकुमार के समान सुन्दर और बृहस्पति के सदृश बुद्धिमान् और चन्द्रमा के अनुसार कान्तिमान् और सूर्य्य की तरह तेजस्वी १४॥

मू० धैर्य्यणाब्धिं तथोर्व्वीञ्च सहिष्णुत्वेन वीर्य्यवान्।
शौर्य्येण न समस्तस्य कश्चिदासीन्महात्मनः १५॥

टी०। और समुद्र के समान धीर्य्यवान् और वे पराक्रमी राजा पृथ्वी की तरह क्षमावान् हुये और फिर उन महात्मा के समान शूरवीर इस पृथ्वी में दूसरा कोई न हुआ १५॥

मू० स्वयंवरे तं जगृहे हेमधर्म्मात्मजावरा।
सुदेवतनया गौरी सुभद्रा बलिनःसुता १६॥

टी०। उनको स्वयंवर में हेमधर्म की कन्या वरा नाम और सु० की कन्या गौरी और बलि की कन्या सुभद्रा ने ग्रहण किया १६॥

मू० लीलावती वीरसुता वीरभद्रसुता निभा।
भीमात्मजा मान्यवती दम्भपुत्री कुमुद्वती १७॥

टी०। और वीर की कन्य लीलावती और वीरभद्रकी कन्या निभा और भीम की कन्या मान्यवती और दम्भ की कन्या कुमुद्वती १७॥

मू० याश्चैनन्नाभिनन्दन्ति स्वयंवरकृतक्षणाः।
ताश्चापि सबलाद्वीरो जग्राह नृपतेः सुतः १८

टी०। इन सब कन्याओं ने स्वयंवर में अवैक्षित को ग्रहण किया और स्वयंवर में उत्साह करती हुई जिन राजकन्याओं ने इन अवैक्षित को नहीं पसन्द किया वीर राजपुत्रने उनको भी बलसे ग्रहण किया १८॥

मू० निराकृत्य नृपान् सर्व्वांस्तासां पितृकुलानि च।
स्वकं हि वीर्य्यमाश्रित्य बलवान् सबलोद्धतः १९॥

टी०। और बलवान् बलसे व बढ़े हुये वे अवैक्षित सब राजाओं को और उन कन्याओंके पिताके परिवारको जीतकर अपनेही बलके आश्रय से उन कन्याओं को ले आये १६॥

मू० एकदा तु विशालस्य वैदिशाधिपतेः सुताम्।
वैशालिनीं स सुदतीं स्वयंवरकृतक्षणाम् २०॥

टी०। एक समय वैदिश देशके पति राजा विशाल की कन्या सुन्दर दाँतोंवाली विशालिनी को उन अवैक्षित ने स्वयंवर में देखा २०॥

मू० परिभूयाखिलान् भूपान् स्वेच्छया न वृतस्तया।
बलाज्जग्राह विप्रर्षे यथान्या बलगर्वितः २१॥

टी०। और स्वयंवर में बहुत राजालोग आये थे उन राजाओं में से जो राजा सुन्दर था उसको उस कन्याने पसन्द किया और अवैक्षित की तरफ न देखा तब बलसे गर्वित अवैक्षितने समस्त राजाओंको तिरस्कार करके और स्त्रियों की तरह जबरदस्ती उस कन्याको पकड़ लिया २१॥

मू० ततस्ते भूभृतः सर्व्वे बहुशस्तेन मानिना।
निराकृताः सुनिर्व्विण्णाः प्रोचुरन्योन्यमाकुलाः २२॥

टी०। तदनन्तर उन मानी अवैक्षित करके बहुत तिरस्कार किये हुये वे सब राजालोग पराजित और पीड़ित होकर आपस में कहने लगे २२॥

मू० क्षमतां ललनामेतामेकस्माद्बलशालिनाम्।
बहूनामेकवर्णानां जन्मधिग्वो महीभृताम् २३॥

टी०। कि बल से शोभित तथा एकवर्ण व बहुत हम सब राजालोग इस स्वयंवर में आये हैं और एक राजकुमार हम सबके देखते हुये इस कन्या को जबरदस्ती लिये जाताहै ऐसी दशामें जो राजा क्षत्रिय होकर इस अन्याय को क्षमा करजायँ उसको धिक्कार है २३॥

मू० क्षत्रियो यः क्षतत्राणं घध्यमानस्य दुर्मदैः।
करोति.तस्य तन्नामा वृथैवान्ये हि बिभ्रति २४॥

टी०। क्षत्रिय उसीको कहते हैं कि जो कोई दुष्ट किसी निर्बलको अन्याय से दुःख दे तो वह उस दुःखी की रक्षा करै यदि वह ऐसा न करै तो वृथा क्षत्रिय का नाम धारण किये है २४॥

मू० आत्मनोऽपि क्षतत्राणं दुष्टादस्मादकुर्व्वताम्।
भवतां क्षत्रियकुले जातानां कीदृशी मतिः २५॥

टी०। और जो हम लोगोंने इस अवैक्षित दुष्ट से अपनी भी रक्षा न की तो हमलोगों के क्षत्रिय कुलमें जन्म लेने पर धिक्कारहै व क्षत्रिय वंश में पैदा हुये तुम लोगों की मति कैसी नष्ट होगई है २५॥

मू० उच्चार्य्यते स्तुतिर्य्या च सूतमागधवन्दिभिः।
सा सत्या मा वृथा वीरा भवत्वरिविनाशनात् २६॥

टी०। हम लोगों की जो प्रशंसा और स्तुति सब सूत मागध वन्दी जन करते हैं तो अब वह सब प्रशंसा हम सबों की सत्य होवै किन्तु हे वीर लोगो! इस अवैक्षित के न मारने से वृथा मत हो २६॥

मू० चरतां मा वृथैवैष भूपशब्दो दिगन्तरे।
पौरुषाश्रयिणः सर्व्वे विशिष्टकुलसम्भवाः २७॥

टी० । और दिशाओं के अन्तर में जो भूपशब्द कहलाता है वह मत वृथा होवै व उत्तमकुलमें पैदाहुये सब लोग पौरुषका आश्रय करते हैं २७ ॥

मू० बिभेति को न मरणात् को युद्धेन बिनाऽमरः ।
विचिन्त्यैतन्न हातव्यं पौरुषं शस्त्रवृत्तिभिः २८ ॥

टी० । इस संसार में मौतसे कौन नहीं डरता है और युद्ध न करनेवाला कौन ऐसा है कि जो अमर है इनबातों को बिचार करके क्षत्रियों को शूरता न छोड़ना चाहिये २८ ॥

मू० एतन्निशम्य ते भूपा विस्पष्टामर्षपूरिताः ।
ऊचुःपरस्परं सर्वे समुत्तस्थुश्च सायुधाः २९ ॥

टी० । यह सब बातें सुनकर वे सब राजालोग अमर्ष याने क्रोधसे पूरित होकर परस्परमें बोले और अस्त्र और शस्त्र लेलेकर खड़े होगये २९ ॥

मू० केचिद्रथानारुरुहुः केचिन्नागांस्तथा हयान् ।
अन्येऽमर्षपराधीनास्तमुपेताः पदातयः ३० ॥

टी० । फिरतो उस समय कोई राजालोग रथपर सवार होलिये और कितने हाथियोंपर और कितने घोड़ोंपर और कितने अमर्ष के वश होकर पैदल ही उन राजकुमार अवैक्षित के पास पहुँचे ३० ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽवैक्षितचरित्रेनामद्वाविंशाधिक
शततमोऽध्यायः १२२ ॥

अथ एकसौतेईसवां अध्याय ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० इति संग्रामसज्जास्ते भूपा भूपसुतास्तथा ।
निराकृताः सुबहुशस्तत्कालेऽप्यवैक्षितः १ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि ! पराजित वे सब राजा और राजकुमार लोग इसतरह समर के लिये तैयार होकर राजकुमार अवैक्षित से संग्राम करने को सम्मुख हुये और अवैक्षित भी उसी समय तैयार हुये १ ॥

मू० ततो बभूव संग्रामस्तस्य तैः सह दारुणः।
एकस्य बहुभिर्भूपैर्भूपपुत्रवरैर्मुने २॥

टी०। हे मुने! फिरतो एक राजकुमार अवैक्षित और उन बहुत राजाओं और उत्तम राजकुमारों से बड़ा विकराल युद्ध हुआ २॥

मू० तेऽसिशक्तिगदाबाणपाणयस्तं सुदुर्मदाः।
अभिघ्नन्तो युयुधिरे तैः समस्तैरसावपि ३॥

टी०। वे सब दुष्ट मदवाले राजालोग तलवार व शक्ति और गदा और बाण इत्यादि हथियार हाथमें लियेहुये उन राजकुमार अवैक्षित पर चलाते थे और ये राजकुमार अवैक्षित भी उन सबलोगों से युद्ध करते थे ३॥

मू० स तांश्छरशतैरुग्रैर्बिभेद नृपनन्दनः।
कृतास्त्रो बलवान् बाणैस्ते च तं बिभिदुः शितैः ४॥

टी०। और वे राजकुमार अवैक्षित अपने सैकड़ों उग्रशरों से उन राजाओं को मारा कि वे अस्त्र में कुशल व बलवान् थे और उन राजाओं ने भी अपने पैनें बाणों से अवैक्षित को मारा ४॥

मू० कस्यचिच्चिच्छिदे बाहुमन्यस्य च शिरोधराम्।
हृदि विव्याध चैवान्यमन्यं वक्षस्यताडयत् ५॥

टी०। यहांतक कि राजकुमार अवैक्षित ने किसी की बाहु और किसी की घींच काट डाला और किसी का हृदय और किसी का वक्षःस्थल छेद डाला ५॥

मू० करं चिच्छेद करिणस्तुरगस्य तथा शिरः।
तथान्येषान्तथैवाश्वान् रथस्यान्यस्य सारथिम् ६॥

टी०। और किसी के हाथी की सूंड़ काटडाला और किसी के घोड़े का शिर काटडाला इसी प्रकार कितने राजाओं के रथ के घोड़ों को और किसी के सारथि को काटकर गिरा दिया ६॥

मू० बाणानापततश्चक्रे द्विधाबाणैस्तथा द्विषाम्।
चिच्छेदान्यस्य खड्गञ्च धनुरन्यस्य लाघवात् ७॥

टी०। और उन शत्रुओं के आये हुये बाणोंको अपने बाणोंसे दोदो टुकड़े

करदिया और किसी की खड्ग और किसीका धनुष शीघ्रतासे काटडाला ७॥

मू० तनुत्रेऽपहृते तेन ननाशान्यो नृपात्मजः।
अवेक्षिताहतश्चान्यः पदातिः प्रजहौ रणम् ८॥

टी०। शत्रुओं की तरफ के कितने राजकुमार लोग अवेक्षित के बाणों से कवच के कटने से मरगये और कितने पैदल रणभूमि से भाग गये ८॥

मू० इत्याकुलीकृते तस्मिन् समग्रे राजमण्डले।
तस्थुः सप्तशता वीरा मरणे कृतनिश्चयाः ९॥

टी०। जब अवेक्षितने इसतरह समस्त राजमंडल को विकल कर दिया तब मरने पर उपस्थित होकर सातसौ राजा लोग इकट्ठा होकर उस रणभूमि में आकर खड़े होगये ९॥

मू० अभिजात्यवयःशौर्य्यवीर्य्यलज्जासमन्विताः।
निर्जिते सकले सैन्ये पलायनपरायणे १०॥

टी०। जब राजकुमार अवेक्षित ने शत्रुओं की सब सेना को मार कर हटादिया तब ये सातसौ वीर जोकि अपनी अवस्था व पराक्रम तथा वीरता और कुलीनता लज्जा से युक्त थे उस रण में धीर होकर युद्ध करने लगे १०॥

मू० तैः समेत्य महीपालैः स तु पुत्रो महीभृतः।
युयुधे धर्म्मयुद्धेन तेन तेनातिकोपितः ११॥

टी०। वह राजकुमार अवेक्षित एक एक राजपुत्र करके क्रोधित किया जाताथा तिसपरभी उन राजाओं के साथ धर्म्मपूर्व्वक युद्ध करताथा ११॥

मू० विच्छिन्नपत्रकवचान् स तानपि महाबलः।
कर्त्तुंव्यवस्थितस्ते च ततः क्रुद्धा महामुने १२॥

टी०। हे महामुने! जब वे महाबली राजकुमार अवेक्षित उनलोगोंके वाहन व कवचों को काटनेका इरादा किया वे लोग क्रोधितहुये १२॥

मू० धर्म्ममुत्सृज्य युयुधुर्युध्यमानेन धर्म्मतः।
नरेन्द्रपुत्राः प्रस्वेदजलक्लिन्नाननाः समम् १३॥

टी०। व धर्म से युद्ध करते हुये अवेक्षित से धर्म्म छोड़कर राजपुत्र

युद्ध करने लगे उस युद्ध के परिश्रम से उन सबों का मुख पसीने से भर गया १३ ॥

मू० विव्याध कश्चिद्बाणौघैः कश्चिच्चिच्छेद कार्मुकम् ।
ध्वजमस्यापरो बाणैश्छित्त्वा भूमावपातयत् १४

टी०। किसी ने तो अवैक्षित को बहुत बाणों से मारा और किसी ने उन के हाथ का धनुष काटडाला और किसी ने इनके रथकी ध्वजा काटकर पृथ्वी में गिरा दिया १४ ॥

मू० जघ्नुरन्ये तथैवाश्वान् बभञ्जुश्चापरे रथम् ।
गदापातेनाथवान्ये बाणैः पृष्ठमताडयन् १५ ॥

टी०। और वैसेही कितनों ने उनके घोड़े को मारडाला और कितनों ने उनके रथको भंग करदिया और किसी ने गदा और किसी ने बाण उनकी पीठमें मारा १५ ॥

मू० छिन्ने धनुषि सक्रोधः स तदा नृपतेः सुतः ।
जग्राहासिं तथा चर्म्म तदप्यन्येन पातितम् १६ ॥

टी०। जब धन्वा कटगया तब उस समय उस राजकुमार अवैक्षित ने क्रोधित होकर ढाल और तलवारलिया उसको भी दूसरेने काटडाला १६

मू० छिन्नासिचर्म्मा जग्राह सगदां गदिनांवरः ।
तामप्यन्यः क्षुरप्रेण चिच्छेद कृतहस्तवित् १७ ॥

टी०। जब उसकी ढाल तलवार कटगई तब गदा चलानेवालों में श्रेष्ठ उस अवैक्षितने गदा उठालिया उस गदाको भी किसीने काटडाला १७ ॥

मू० अन्ये शरसहस्रेण शतेनान्ये नराधिपाः ।
बिभिदुः कोष्ठकीकृत्य धर्म्मयुद्धपराङ्मुखाः १८ ॥

टी०। तब उन सबराजा लोगों ने धर्म्मयुद्ध को छोड़ कर किसी ने हजार बाणों से व कितने राजाओं ने सौ बाणों से चारों तरफ घेर कर एकही साथ राजकुमार अवैक्षित पर मारा १८ ॥

मू० स विह्वलः पपातोर्व्यामेको बहुभिरर्दितः ।
राजपुत्रा महाभागा बबन्धुस्ते च तं ततः १९ ॥

टी० । तब वह अकेला राजकुमार अवेक्षित बहुत अधर्म्मी राजाओं के मारने से अचेत होकर पृथ्वी पर गिरपड़ा तब उन्होंने पहुँचकर शीघ्रता से उनको बाँधलिया १६ ॥

मू० तमधर्म्मेण ते सर्व्वे गृहीत्वा नृपतेः सुतम् ।
विशालेन समं राज्ञा वैदिशं विविशुः पुरम् २० ॥

टी० । वे सब राजालोग अधर्म से उस राजकुमार को पकड़ के राजा विशाल के सहित वैदिश नगर में लेआये २० ॥

मू० हृष्टाः प्रमुदिताबद्धन्तमादाय नृपात्मजम् ।
स्वयंवरा च सा कन्या न्यस्ता तेन ततः पुरः २१ ॥

टी० । व बँधेहुये उस राजपुत्र को लेकर सब सन्तुष्ट और हर्षित हुये इसके उपरान्त उस स्वयंवरा विशालिनी कन्या को उसने आगे बिठाला २१ ॥

मू० पुनः पुनश्च पित्रोक्ता तथापि च पुरोधसा ।
आलम्ब्यतामिति वरोयस्ते राजसु रोचते २२ ॥

टी० । तब विशालिनी के पिता अर्थात् राजा विशाल ने और राजा विशाल के पुरोहितों ने बारंबार उस कन्या अर्थात् विशालिनी से कहा कि इन राजाओं में से जिसको तुम चाहो उसको ग्रहण करो २२ ॥

मू० यदा सा मानिनी कञ्चिन्न जग्राह वरं मुने ।
तदा पप्रच्छ दैवज्ञं विवाहार्थं नरेश्वरः २३ ॥

टी० । हे मुने ! जब विशालिनी ने उन राजाओं में से किसी वर को ग्रहण न किया तब राजा विशाल ने उसके विवाह के वास्ते ज्योतिषी से पूछा २३ ॥

मू० विशिष्टतरमेतस्या विवाहाय दिनं वद ।
अद्यैतदीदृक् संजातं युद्धं विघ्नोपपादकम् २४ ॥

टी० । कि आप इस कन्या के विवाह के लिये कोई बहुत अच्छा दिन बतलाइये कि जिस में कोई विघ्न न हो क्योंकि इस समय यह ऐसा युद्ध विघ्नकारक होगया २४ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० इति पृष्टोनरेन्द्रेण सदैवज्ञोविमृश्य तत्।
दुर्मनाः प्राह विज्ञातपरमार्थोमहीपतिम् २५ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुके! महाराज विशाल के पूछने पर परमार्थ के जाननेवाले ज्योतिषी ने उसको विचारकरके बहुत उदास हो राजा विशाल से कहा २५ ॥

मू० भविष्यन्त्यपराणीह दिनानि पृथिवीपते।
प्रशस्तलग्नयुक्तानि शोभनान्यचिरेण च २६ ॥

टी०। कि हे पृथ्वीपाल! प्रशस्त लग्न से युक्त और सुन्दर दिन थोड़े ही समय में आवैंगे २६ ॥

मू० करिष्यसि विवाहार्थं तेषु प्राप्तेषु मानद।
अलमेतेन यत्रार्थ महाविघ्नउपस्थितः २७ ॥

टी०। हे मानदायक! उनादिनों के प्राप्त होनेपर आप विवाहरूप प्रयोजन को कीजियेगा इस समय का करना अच्छा नहीं है हे आर्य्य! जिसमें महाविघ्न उत्पन्न है २७ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेवैदितचरित्रेनामत्रयोविंशाधिकशततमोऽध्यायः १२३ ॥

अथ एकसौचौबीसवां अध्याय ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० ततः शुश्राव तं बद्धं तनयं सकरन्धमः।
तस्य पत्नी तथा वीरा अन्ये चापि महीभृतः १ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि उसके बाद राजकुमार अवैक्षित के कैद होजाने का हाल जब राजा करन्धम और उनकी वीरा स्त्री और दूसरे राजाओं ने सुना १ ॥

मू० तमधर्म्मेण तनयं बद्धं श्रुत्वा महीपतिः।
समस्तैः पृथिवीपालैश्चिरन्दध्यौ महामुने २ ॥

टी०। हे महामुने! सब राजाओं करके अधर्म से बांधेहुये पुत्र को सुनकर महाराज करन्धम बहुत देरतक चिन्ता करते रहे २॥

मू० केचिदूचुर्महीपाला वध्याः सर्व्वे महीभृतः।
यैरेकः संयुगे बद्धः समस्तैस्तैरधर्म्मतः ३॥

टी०। और कोई राजालोग महाराज करन्धम के पास आकर कहने लगे कि उन सब राजाओं को कैद करनाचाहिये जिन सबों ने अधर्म की राह से युद्ध में लड़कर एक अवैक्षित को कैद करलिया है ३॥

मू० युज्यतां वाहिनी शीघ्रमूचुरन्यैः किमास्यते।
विशालोवध्यतां दुष्टस्तत्र येऽन्ये समागताः ४॥

टी०। आप बहुत जल्द सेना को तैयार कीजिये क्या निश्चिन्त बैठे हैं चलकर उस दुष्ट विशाल को और उसके सहायक राजाओं को जो वहां आये हों पकड़कर बांधलीजिये ४॥

मू० अन्ये तथोचुर्धर्म्मोऽत्र त्यक्तः पूर्व्वमवैक्षिता।
अन्यायेन बलाद्येन गृहीता तमवाञ्छती ५॥

टी०। वैसेही अन्य राजाओंनेकहा कि पहले अवैक्षितने धर्मको छोड़दिया क्योंकि स्वयंवर में विशालिनी कन्या ने अवैक्षित को अङ्गीकार नहीं किया था और अवैक्षित ने बरजोरीसे उस विशालिनी को पकड़लिया था ५॥

मू० स्वयंवरेष्वशेषेषु तेन राजसुतास्तदा।
खलीकृतास्ततः सर्व्वैः समेत्य सवशीकृतः ६॥

टी०। और सब स्वयंवरों में भी राजकुमार अवैक्षित ने राजकन्याओं को अन्यायपूर्व्वक हरणकिया है इस वास्ते अब सब राजाओं ने इकट्ठा होकर अवैक्षित को बाँधकर अपने वश करलिया है ६॥

मू० तेषामेतद्वचः श्रुत्वा वीरा वीरप्रजावती।
वीरगोत्रसमुद्भूता वीरपत्नी प्रहर्षिता ७॥

टी०। उन राजाओं से यह बात सुनकर वीरा महारानी हर्षित हुई क्यों कि वीरपुत्र पैदाकरनेवाली व वीरों के वंश में उत्पन्न व वीर की स्त्री थी ७॥

मू० उवाच भर्त्तुःप्रत्यक्षमन्येषाञ्च महीक्षिताम्।
भद्रं कृतं भद्रभुजा मम पुत्रेण पार्थिवाः ८॥

टी० । अपने स्वामी और दूसरे राजाओंके सामनेही कहनेलगी कि हे राजालोगो ! कल्याण के भोगी मेरे पुत्र ने बहुत अच्छी बात की है ८ ॥

मू० गृहीता यद्बलात्कन्या जित्वा सर्व्वमहीक्षितः ।
तदर्थं युद्धमानोयद्बद्धएकोन धर्म्मतः ९ ॥

टी० । जिससे राजाओंको जीतकर अपने बलसे कन्याको ग्रहण किया है और उस के लिये उन राजाओं से युद्ध भी किया और अधर्मपूर्व्वक जो एकही बांधागया है ६ ॥

मू० तदप्यसमत्सुतस्याजौ मन्ये नापचयप्रदम् ।
एतदेव हि पौरुष्यं यदमर्षवशान्नरः १० ॥

टी० । यह बातभी मेरे पुत्र की उस संग्राम में अयोग्य नहीं है क्योंकि वीरता इसी में है कि क्रोध के वशसे मनुष्य १० ॥

मू० नीतिं न गणयत्येवं जिघांसुरिव केशरी ।
स्वयंवराय विन्यस्तामम पुत्रेण कन्यकाः ११ ॥

टी० । सिंह के समान मारने के समय में नीति को नहीं गिनता है स्वयम्बर में आई हुई बहुतसी कन्याओं को मेरे पुत्रने ११ ॥

मू० बह्वयोगृहीता भूपानां पश्यतामतिमानिनाम् ।
क्व क्षत्रियकुले जन्म क्व याच्ञाहीनसेविता १२ ॥

टी० । बड़े अभिमानी राजाओं के सामने बहुतसी कन्याओं को ग्रहण किया है कहां तो क्षत्री के कुल में जन्म कहां हीनवृत्ति याच्ञा १२ ॥

मू० बलादेव समादत्ते क्षत्रियोबलिनां पुरः ।
लोहश्रृङ्खलबद्धास्तु न वशं यान्ति कातराः १३ ॥

टी० । जो क्षत्री होते हैं वे बली राजाओं के सामने बलही से कन्या- को ग्रहण करलेते हैं और क्षत्री लोहे की जंजीरों में बांधे जाने से भी डर- कर किसी के वश्य नहीं होते हैं १३ ॥

मू० प्रसह्यकारिणोयान्ति राजानोधर्म्मशालिनः ।
तदलं दौर्मनस्येन श्लाघ्यमेवास्य बन्धनम् १४ ॥

टी० । धर्म्मात्मा राजालोग भी हठ से कार्यकरनेवाले के वश में हो

जाते हैं इस वास्ते इस बात की कुछ चिन्ता न करनाचाहिये अवैधित का कैद होजाना प्रशंसनीय है १४ ॥

मू० युष्माकमप्यायुधानामरिमूर्द्धसु पातनम्।
कृत्वैवपृथिवीशानां पृथ्वीपुत्रादिकं वसु १५ ॥

टी०। और तुमलोग राजाओं के भी भूमि व पुत्रादिक धन शत्रुओं के मस्तकपै अस्त्र मारनेही से होता है १५ ॥

मू० भार्य्याचार्य्यनिमित्तानि ततोयातानि गौरवम्।
तत्त्वर्य्यतां रणायाशु स्यन्दनान्यधिरोहत १६ ॥

टी०। और स्त्री भी इसीतरह से मिलती है और उसके बाद उत्तम हेतु-वाली वस्तुयें गुरुता को प्राप्त होती हैं इस वास्ते आपलोग रणमें जाने के लिये जल्द रथपर सवार हूजिये १६ ॥

मू० सज्जीकुरुत नागाश्वमचिरेण ससारथिम्।
मन्यध्वं किं महीपालैर्बहुभिःसह विग्रहम् १७ ॥

टी०। और शीघ्रही हाथी घोड़ा और उनके महावत और साईसों को तैयार होने का हुक्म दीजिये आपलोग क्या समझे हैं बहुत राजाओं के साथ आप को युद्ध करनापड़ैगा १७ ॥

मू० प्रभूताएव तोषाय शूरस्याल्पबले क्रियाः।
कस्य नाल्पेषु सामर्थ्यं नरेन्द्रारिषु जायते १८ ॥

टी०। हे नरेन्द्र! थोड़ा बल होनेपर शूरके बहुतही कर्म प्रसन्नताके लिये होतेहैं और थोड़ी राजाकी सेनाओं में किसको सामर्थ्य नहीं होती है १८ ॥

मू० येभ्योन विद्यते भीतिर्हन्तुं पुत्राहितान्मुने।
व्याप्य लोकान् समस्तान् योह्यभिभूयाहितान्नरः ॥
व्यरोचत च शूरः सतमांसीव दिवाकरः १९ ॥

टी०। हे मुने! जो क्षत्री पुत्रके शत्रुओं के मारने के लिये डर नहीं मानते हैं और जो सब लोकों में व्याप्तहोकर शत्रुओं को हीनकरके प्रकाशमान रहते हैं जैसे सूर्य्य अन्धकार को नाशकरके प्रकाशमान रहते हैं १९ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० इत्थमुद्धर्षितोराजाऽनया पत्न्या करन्धमः।
चकार सबलोद्योगं हन्तुं पुत्राहितान्मुने २० ॥

टी०। मार्कण्डेय मुनि कहते हैं कि हे मुनि! जब वीरा ने महाराज करन्धम से इस प्रकार ललकारकर कहा तब महाराज करन्धम ने पुत्रके शत्रुओं को मारने के वास्ते अपनी सेना को तय्यार किया २० ॥

मू० ततस्तस्य समं भूपैर्विशालेन च सङ्गरः।
बभूव बद्धपुत्रस्य तैरशेषैर्महामुने २१ ॥

टी०। उसके बाद हे महामुने! जब राजा विशाल के नगर में पहुँचे तब बँधेहुयेपुत्रवाले उनसे और जो राजालोग राजकुमार अवैक्षित को कैदकियेहुये थे उन सबों से युद्ध होनेलगा २१ ॥

मू० दिनत्रयमभूद्युद्धं तेन राज्ञा समन्तदा।
करन्धमेन भूपानां विशालस्यानुकुर्व्वताम् २२ ॥

टी०। और उस वक्त उस राजा करन्धम के साथ राजा विशाल के अनुकारी राजाओं का युद्ध तीन दिन तक बराबर होता रहा २२ ॥

मू० यदा पराजयं प्राप्तं तत्सर्व्वं भूपमण्डलम्।
तदाविशालोऽर्घ्यकरः करन्धममुपस्थितः २३ ॥

टी०। जब सब राजाओं को महाराज करन्धमने जीतलिया तब राजा विशाल हाथ में अर्घ्य लेकर महाराज करन्धम के पास आये २३ ॥

मू० करन्धमोऽपि संप्रीत्या तेन राज्ञाभिपूजितः।
विमुक्ते तनये तत्र निशां तां सुखमावसत २४ ॥

टी०। और उस विशाल राजाने प्रीतिपूर्व्वक महाराज करन्धम का पूजनकिया महाराज करन्धम भी अपने पुत्र को कैद से छुड़ाकर उसी नगर में उस रात को सुख से रहे २४ ॥

मू० ताञ्च कन्यामुपादाय विशाले समुपस्थिते।
अवैक्षित् प्राह बिप्रर्षे विवाहार्थं पितुः पुरः २५ ॥

टी०। फिर राजा विशाल उस कन्या का विवाह करानेके लिये महा-

राज करन्धम के पास लेआये उस समय हे विप्रर्षे अवैक्षित अपने पिता के सामने राजा विशाल से बोले २५ ॥

मू० नाहमेतां ग्रहीष्यामि न चान्यां योषितं नृप ।
परैर्यस्यां निरीक्षन्त्यां संग्रामेऽहं पराजितः २६ ॥

टी० । कि हे महाराज ! अब मैं इस कन्या को अथवा किसी दूसरी स्त्री को ग्रहण न करूंगा क्योंकि इस स्त्री के देखतेहुये राजाओं ने इस संग्राम में मुझको जीतलिया है २६ ॥

मू० अन्यस्मै सम्प्रयच्छेमामियञ्चान्यं वृणोतु तम् ।
अखण्डितयशोवीर्य्योयः परैर्नापमानितः २७ ॥

टी० । इस वास्ते मैं कहताहूँ कि इस कन्या का विवाह किसी दूसरे के साथकरदीजिये व यह कन्या भी उसी पतिको ग्रहण करै कि जिसका अखण्डित यश और पराक्रम हो और जिसका शत्रुवों ने अपमान न किया हो २७ ॥

मू० परैःपराजितोऽहं यत् कातरेयं यथाऽबला ।
किमत्र मानुषत्वं मे न तस्याममचान्तरम् २८ ॥

टी० । क्योंकि मैं राजाओं से हारगया हूँ जैसे कि यह कन्या डरभूत है वैसेही मैं होगया और इस में मेरी क्या पुरुषता है व इसमें और मुझ में अन्तर (भेद) नहीं रहाहै २८ ॥

मू० स्वतन्त्रता मनुष्याणां परतन्त्रा सदाऽबला ।
नरोऽपि परतन्त्रोयस्तस्य कीदृङ्मनुष्यता २९ ॥

टी० । पुरुषलोग स्वतन्त्र हैं और अबला सदा परवश है और जो पुरुष भी परवश होजाय तो उनकी गिनती पुरुषमें नहीं होसक्ती २९ ॥

मू० सोऽहमस्यामुखं भूयोदृष्टं दर्शयिता कथम् ।
योहमस्याःपरोभूमौ परैर्भूपैः खलीकृतः ३० ॥

टी० । मैं इस कन्या का मुख किस तरह देखूँगा और किस तरह इस को देखाहुआ अपना मुख फिर देखाऊँगा कि जिसके सामने मुझको राजाओं ने मारकर पृथ्वी में गिरादिया ३० ॥

मू० इत्युक्ते तेन तनयामुवाच जगतीपतिः।
श्रुतं ते वचनं वत्से वदतोऽस्य महात्मनः ३१॥

टी०। इस प्रकार अवेक्षित के कहने पर राजा विशाल अपनी कन्या से बोले कि हे कन्ये! जो कुछ अवेक्षित महात्मा ने कहा वह तुमने सुना ३१॥

मू० वरयान्यं पतिं यत्र मनस्ते रमते शुभे।
वयं वासं प्रयच्छामोयस्मिंस्ते ह्यादृतं मनः ३२॥

टी०। ऐ शुभे! अब तुम्हारा मन जिस पुरुष को चाहै उसको ग्रहण करो अथवा जिस में तुम्हारा मन आदरपूर्वक लगाहो उसके साथ हम तुम्हारा विवाह करदेवैं ३२॥

कन्योवाच॥

मू० पराजितोऽयं बहुभिर्न सम्यक् सम्यगाचरन्।
संग्रामे तद्यशोवीर्य्यहानिकारि न पार्थिव ३३॥

टी०। यह बात राजा विशालसे सुनकर विशालिनी कन्या बोली कि हे महाराज! बहुत राजालोगों ने मिलकर अधर्म से राजकुमार अवेक्षित को युद्धमें जीता है इसलिये हे राजन्! संग्राम में इनके यश और पराक्रम की हानि नहीं होसक्की क्योंकि बहुतों ने मिलकर इनसे युद्ध किया है ३३॥

मू० एकोबहूनां युद्धाय गतानामिव केशरी।
यत्संस्थितः परं शौर्य्यं तेनास्य प्रकटीकृतम् ३४॥

टी०। यह अवेक्षित उस समय जिस लिये अकेले बहुत वीरों के बीच में सिंह के समान युद्धकरने के लिये रण में खड़े होगये थे इससे इन की उत्तम वीरता उस समर में प्रकट होगई है ३४॥

मू० न केवलमयं तस्थौ युद्धे तेऽप्यखिलाजिताः।
बहुशोऽनेन यत्तेन विक्रमोऽपि प्रकाशितः ३५॥

टी०। केवल ये खड़े नहीं रहे किन्तु इन्होंने उन सब राजाओं को भी कई बार जीताहै इस वास्ते इन्होंने पराक्रमको प्रकाश करदियाहै ३५॥

मू० शौर्य्यविक्रमसंयुक्तमिमं सर्व्वे महीक्षितः।
धर्म्मयुद्धमधर्म्मेण जितवन्तोत्र का त्रपा ३६॥

टी०। यदि धर्म से युद्ध करनेवाले इस शूर व पराक्रमी को बहुत राजाओं ने मिलकर अधर्म की राह से जीत भी लिया तो इस में इन को कौन लज्जा है ३६॥

मू० न चापि रूपमात्रेऽहं लोभमस्य गता पितः।
शौर्य्यविक्रमधैर्य्याणि हरन्त्यस्य मनोमम ३७॥

टी०। हे पिता! मैं इनके केवल रूपमें नहीं लुभानीहूँ किन्तु समरमें इन अवैक्षितकी शूरता और पराक्रम और धीर्य्यता मेरामन हरलेती है ३७॥

मू० तत्किमुक्तेन बहुना याच्यतां मत्कृते नृप।
त्वया महानुभावोऽयं नान्योमे भविता पतिः ३८॥

टी०। हे नृप! इससे मैं बहुत कहांतक कहूँ अब आप मेरे लिये बड़े प्रभाववाले इन अवैक्षित से यही मांगिये कि जिसमें वह मेरे पति हों दूसरा कोई मेरा पति नहीं होसक्ता है ३८॥

विशालउवाच॥

मू० राजपुत्र सुता प्राह ममैतच्छोभनं वचः।
एवं चैव त्वया तुल्यः कुमारो न महीतले ३६॥

टी०। यह बात अपनी कन्यासे सुनकर राजा विशाल अवैक्षितसे बोले कि हे राजपुत्र! मेरी कन्या यह उत्तम वचन कहती है और ऐसाहीहै कि आपके समान शूरवीर और पराक्रमी दूसरा कोई इस पृथ्वीमें नहींहै३६॥

मू० अविसंवादिते शौर्य्यमतीव च पराक्रमः।
पावयास्मत्कुलं वीर दुहितुर्मे परिग्रहात् ४०॥

टी०। हेवीर! आपकी वीरता और पराक्रम का वर्णन कोई नहीं करसक्ता है अब आप इस कन्या को ग्रहणकरके मेरे कुल को पवित्र कीजिये ४०॥

राजपुत्रउवाच॥

मू० नाहमेतां गृहीष्यामि न चान्यां योषितं नृप।

आत्मन्येव हि मे बुद्धिः स्त्रीमयी मनुजेश्वर ४१ ॥

टी०। यह बात राजा विशालसे सुनकर अवैक्षित बोले कि हे राजन्! मैं इस कन्या को अथवा किसी दूसरी स्त्री को ग्रहण न करूँगा क्योंकि हे मनुजेश्वर! इस समय अपनेही में मेरी स्त्रीमयी बुद्धिहै ४१ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० ततः करन्धमः प्राह पुत्रेयं गृह्यतां त्वया।
विशालतनया सुभ्रूस्त्वयि हार्दवती दृढम् ४२ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुके तत्पश्चात् महाराज करन्धम भी अवैक्षितसे बोले कि हे पुत्र! इस विशालिनी सुन्दर भौंहोंवाली कन्याको तुम ग्रहण करो क्योंकि तुम में यह बड़ा दृढ स्नेह किये है ४२॥

राजपुत्रउवाच ॥

मू० नाज्ञाभङ्गः कदाचित्ते कृतपूर्वोमया प्रभो।
आज्ञापय च मां तात यथाज्ञां करवाणि ते ४३ ॥

टी०। यह आज्ञा महाराज करन्धम की सुनकर अवैक्षित बोले कि हे पिता! अबतक पहले कोई आज्ञा आप की मैंने भंग नहीं की है तो हे तात! अब भी आप मुझको वही आज्ञादीजिये कि जिसप्रकार मैं तुम्हारी आज्ञा करूं ४३॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० अत्यन्तनिश्चितमतौ तस्मिन् राजसुते सुताम्।
तामुवाच विशालोऽपि व्याकुलीकृतमानसः ४४ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुके! जब अवैक्षित ने उस कन्या का ग्रहण करना किसीतरह न माना तब राजा विशाल भी व्याकुलचित्त होकर अपनी कन्या से कहनेलगे ४४॥

मू० निवर्त्तितां मनः पुत्रि एतस्माच्च प्रयोजनात्।
अन्यं वरय भर्त्तारं सन्त्यनेके नृपात्मजाः ४५ ॥

टी०। कि हे पुत्रि! अब तू अपना मन इस प्रयोजन से हटाले दूसरे किसी को पति स्वीकार करले इस जगत् में बहुत राजकुमार हैं ४५ ॥

कन्योवाच ॥

मू० वरं वृणोम्यहं तात मामेषयदि नेच्छति ।
तपसोऽन्योन मे भर्त्ता जन्मन्यस्मिन् भविष्यति ४६ ॥

टी० । कन्या बोली कि हे तात ! मैं इन्हीं को अपना पति बनाना चाहती हूँ यदि ये मुझको नहीं चाहते हैं तो तप के सिवाय दूसरा कोई मेरा पति इस जन्म में नहीं होगा ४६ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० ततः करन्धमोराजा विशालेन समं मुदा ।
स्थित्वा दिनत्रयं तत्र निजमभ्याययौ पुरम् ४७ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुके ! इसके उपरान्त महाराज करन्धम राजा विशाल के साथ प्रीतिपूर्वक तीन दिन वहां रहकर अपने नगर को चले आये ४७ ॥

मू० अवैक्षितोऽपि तेनैव पित्राऽन्यैश्च नराधिपैः ।
निदर्शनैः पुरा वृत्तैः सान्त्वितोऽभ्यागमत्पुरम् ४८ ॥

टी० । और अवेक्षित को भी अन्य राजाओं ने व उन्हीं पिता करन्धम ने पहले के चरित्रों से उदाहरण देकरके समझा बुझाकर अपने साथ नगर को लेतआये ४८ ॥

मू० सापि कन्या वनं गत्वा निसृष्टा निजबान्धवैः ।
तपस्तेपे निराहारा वैराग्यं परमास्थिता ४९ ॥

टी० । और वह कन्या भी अपना परिवार छोड़कर वन में जाकर निराहार होतीहुई वैराग्य में प्रवृत्त होकर तपस्या करनेलगी ४६ ॥

मू० निराहारा यदा सा तु मासत्रयमवस्थिता ।
सम्प्राप परमामार्त्तिं कृशाधमनि सन्तता ५० ॥

टी० । जब वह कन्या तीन महीने तक कष्ट उठाकर निराहार तपस्या करती रहगई तब उसका मांस सूखकर उस के शरीर में केवल हड्डी नसैं बाकी रहगई ५० ॥

मू० मन्दोत्साहातितन्वङ्गी मुमूर्षुरपि बालिका ।

देहत्यागाय सा चक्रे तदा बुद्धिं नृपात्मजा ५१ ॥

टी०। फिर तो उसके शरीर का सब उत्साह जातारहा और अत्यन्त दुर्बल होगई तब मरनेकी इच्छावालीभी उस कन्या ने अपने शरीर के त्याग करने के लिये मन किया ५१ ॥

मू० आत्मत्यागाय तां ज्ञात्वा कृतबुद्धिं सुरास्ततः।
समेत्य प्रेषयामासुर्देवदूतन्तदन्तिके ५२ ॥

टी०। शरीरत्यागने के लिये कियेहुई बुद्धिवाली उस कन्याको जानकर सब देवताओं ने इकट्ठा होकर उस कन्याके पास देवदूत भेजा ५२ ॥

मू० समुपेत्य सुतां प्राह दूतोऽहं पार्थिवात्मजे।
प्रेषितस्त्रिदशैस्तुभ्यं यत्कार्य्यं तन्निशामय ५३ ॥

टी०। तब वह दूत उसके पास आकर बोला कि हे राजकन्ये! देवताओं ने मुझको तुम्हारे पास भेजा है जो कार्यहो उसको कहिये ५३॥

मू० न भवत्या परित्याज्यं शरीरमतिदुर्लभम्।
त्वं भविष्यसि कल्याणि जननी चक्रवर्त्तिनः ५४ ॥

टी०। और तुम इस बड़ेदुर्लभ शरीर को त्याग न करो क्योंकि हे कल्याणि! तुम चक्रवर्ती महाराज की माता होगी ५४॥

मू० त्वत्पुत्रेण महाभागे भोक्तव्या निहतारिणा।
अव्याहताज्ञेन चिरं सप्तद्वीपवती मही ५५ ॥

टी०। हे भागवति! तुम्हारे पुत्र शत्रुओं को मारकर बहुतदिनों तक सातोंद्वीप की पृथ्वी में अपना अखण्ड हुक्म चलावैंगे ५५ ॥

मू० हन्तव्यस्तेन तरुजिद्देवानां पुरतोरिपुः।
अयःशंकुस्तथाक्रूरोधर्म्मे स्थाप्यास्ततः प्रजाः ५६ ॥

टी०। फिर तुम्हारा पुत्र देवताओं के सामने तरुजित्शत्रुको और अय व दुष्ट शंकु को मारैगा उसके उपरान्त प्रजाओंको धर्म्म पर स्थित करैगा ५६ ॥

मू० परिपालनीयमखिलं चातुर्व्वर्ण्यं स्वधर्म्मतः।
हन्तव्यादस्यवोम्लेच्छाये चान्ये दुष्टचेष्टिताः ५७ ॥

टी०। और सब चारों वर्णों को अपने अपने धर्म्म में रखकर पालन करैगा और चोर और म्लेच्छादि अन्य दुष्टों को मारैगा ५७ ॥

मू० यष्टव्यं विविधैर्यज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः।
वाजिमेधादिभिर्भद्रे षट्सहस्रैश्च संख्यया ५८ ॥

टी०। और अनेक प्रकार की यज्ञ करैगा और उत्तम दक्षिणा देदेकर उन यज्ञों को समाप्त करैगा व हे कल्याणि! वह पुत्र तुम्हारा अश्वमेध इत्यादि छः हजार संख्यक यज्ञ करैगा ५८ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० तं दृष्ट्वा साऽन्तरिक्षस्थं दिव्यस्रगनुलेपनम्।
देवदूतमुवाचेदं राजपुत्री ततोमृदु ५९ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुके! आकाश में खड़ेहुये उस दूत को सुन्दर चन्दन और माला से शोभित देखकर उसके उपरान्त वह राजकन्या विशालिनी यह मृदु वचन बोली ५९ ॥

मू० सत्यं त्वमागतः स्वर्गाद्देवदूतोन संशयः।
किन्तु भर्त्ता विना पुत्रः सकथं मे भविष्यति ६० ॥

टी०। कि स्वर्ग से आयेहुये देवदूत तुम सचमुच हो इस में सन्देह नहीं परन्तु विना पति के मेरे वह पुत्र किसतरह उत्पन्न होगा ६० ॥

मू० अवैक्षितमृते भर्त्ता मम नान्योऽत्र जन्मनि।
भवितेति प्रतिज्ञातं मयैतत्सन्निधौ पितुः ६१ ॥

टी०। मैंने अपने पिता के सामने यह प्रतिज्ञा की है कि मैं इस जन्म में सिवाय राजकुमार अवैक्षित के दूसरे को अपना पति न बनाऊँगी ६१ ॥

मू० सच नेच्छति मां प्रोक्तोमत्पित्रा जनकेन च।
करन्धमेनाथ सम्यग्याचितश्च मया तथा ६२ ॥

टी०। और राजकुमार अवैक्षित मुझको नहीं चाहते हैं यद्यपि मैंने और मेरे पिताने और उनके भी पिताकरन्धमनें मेरे पति होने के वास्ते बहुत कहा परन्तु उन्हों ने एक न माना ६२ ॥

देवदूतउवाच ॥

मू० किमनेन महाभागे बहुनोक्तेन ते सुतः।
समुत्पत्स्यति मा त्याक्षीस्त्वमात्मानमधर्म्मतः ६३ ॥

टी०। यह बात राजकन्या से सुनकर दूत बोला कि हे महाभाग्यवति! इस बहुत कहनेसे क्या होगा तुम्हारे पुत्र अवश्य उत्पन्न होगा तुम अधर्म्म से अपना शरीर मत त्यागकरो ६३ ॥

मू० अत्रैव कानने तिष्ठ तनुं क्षीणाञ्च पोषय।
तपः प्रभावादेतत्ते सर्व्वं साधु भविष्यति ६४ ॥

टी०। तुम इसी वनमें रहो और अपने दुर्बल शरीर को पुष्ट करो तपस्या के प्रभाव से तुम्हारा यह सब अच्छा होगा ६४ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० इत्युक्त्वा देवदूतोसौ यथागतमगच्छत।
चकारानुदिनं सुभ्रूः साप्यात्मतनुपोषणम् ६५॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुके! वह दूत यह सब बातें विशालिनी कन्या से कहकर जहां से आया था वहां को चलागया और वह सुन्दरी राजकन्याभी उसी वनमें रह कर प्रतिदिन अपना शरीर पोषण करनेलगी ६५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेवैक्षितचरित्रेनामचतुर्विंशाधिक
शततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

अथ एकसौपचीसवां अध्याय ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० अथसावैक्षितोमाता वीरा वीरप्रजावती।
पुण्येऽहनि समाहूय प्राह पुत्रमवैक्षितम् १ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुके! इसके उपरान्त वीरपुत्रवाली अवैक्षित की माता वीरा महारानी ने अच्छे दिन में राजकुमार अवैक्षित को सामने बुलाकर कहा १ ॥

मू० पुत्राहमभ्यनुज्ञाता तव पित्रा महात्मना।
उपवासं करिष्यामि दुष्करोऽयं किमिच्छकः २॥

टी०। कि हे पुत्र ! मुझको तुम्हारे पिता महात्मा ने एक व्रत करने की आज्ञा दी है और वह व्रत बहुत कठिन है नाम उस व्रत का किमिच्छक याने याचकजन की इच्छा पूर्णकरना इसी नियम का है उस उपवास को मैं करूँगी २॥

मू० सचायत्तस्तत्र पितुस्त्वया साध्योमयापि च।
प्रतिज्ञाते त्वया पुत्र ततस्तत्र यताम्यहम् ३॥

टी०। वह व्रत तुम्हारे पिता के आधीन है जिसमें वह व्रत सिद्ध हो वह तुमको व हमको भी करनाचाहिये हे पुत्र ! जब तुम प्रतिज्ञा करोगे तब मैं उस व्रत में यत्न करूँगी ३॥

मू० द्रव्यसार्द्धं महाकोशात् तव दास्याम्यहं पितुः।
धनन्ते पितुरायत्तमनुज्ञाताऽस्मि तेन च ४॥

टी०। आधी दौलत मैं तुम्हारे पिता के खजाने से दूँगी तुम्हारे पिता ने इस बात की मुझको आज्ञादी है व धन तुम्हारे पिताके आधीनहै ४॥

मू० क्लेशसाध्योमदायत्तः सहि श्रेयान् भविष्यति।
साध्योभवेद्वा यदि ते कश्चिद्बलपराक्रमैः ५॥

टी०। वह व्रत कठिनता से सिद्ध होगा व मेरे आधीन है और वह बहुत उत्तम होगा जो तुम्हारे बल व पराक्रमसे वह व्रत सिद्धहो तो करो ५॥

मू० सतेऽसाध्योह्यन्यथा वा दुःखसाध्योभविष्यति।
तत्त्वं प्रतिज्ञां कुरुषे यदि पुत्रात्र चैव ते।
तदेतदहमारप्स्ये कथ्यतां यन्मतं तव ६॥

टी०। वह व्रत तुमसे असाध्य हो अथवा क्लेशसे असाध्य होवे परन्तु जो तुम कहो कि हम इस व्रत को सिद्ध करादेंगे तो मैं उसको प्रारम्भ करूँ अथवा इसमें और जो कुछ तुम्हारी सलाह हो वह कहो ६॥

अवैदिदुवाच॥

मू० वित्तं मे पितुरायत्तं ममेशि त्वं न तत्रवै।

यन्मच्छरीरनिष्पाद्यं तत्करिष्ये त्वयोदितम् ७ ॥

टी० । अवैक्षित बोले कि मेरे पिता का संचय कियाहुआ जो धन है उसमें मेरी स्वामिता नहीं है मेरे शरीर से जो होने योग्य हो तुमसे कहे-हुये उस वचनको मैं करूँगा ७ ॥

मू० किमिच्छकं व्रतं मातर्निश्चिन्ता भव निर्व्यथा ।
राज्ञा पित्राऽभ्यनुज्ञातं यदि वित्तेश्वरेण मे ८ ॥

टी० । हे माता! धनके स्वामी मेरे पिता ने जो किमिच्छक व्रत करने को आज्ञा दी है तो निश्चिन्त व सुखी होतीहुई तुमउसको अवश्य करो ८ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० ततः सा राजमहिषी तद्व्रतं समुपोषिता ।
यथोक्तां साऽकरोत् पूजां राजराजस्य संयता ९ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी कहते हैं कि इतनी बात अवैक्षित के कहने पर संयम करतीहुई महारानी ने महाराज करन्धम की आज्ञानुसार व्रत के दिन उपवास करके कुबेर महाराज का यथोक्त पूजनकिया ९ ॥

मू० निधीनामप्यशेषाणां निधिपालगणस्य च ।
लक्ष्म्याश्च परया भक्त्या यतवाक्कायमानसा १० ॥

टी० । और सम्पूर्ण निधियों का और निधिपालक गणों का व लक्ष्मी जीका मन वचन कर्म को रोंकेहुई महारानी ने उत्तम भक्तिपूर्वक पूजनकिया १० ॥

मू० विविक्ते तु गृहस्थोऽयमथ राजा करन्धमः ।
आसीनउक्तः सचिवैर्नीतिशास्त्रविशारदैः ११ ॥

टी० । फिर जब ये गृहस्थ महाराज करन्धम राजसिंहासन पर बैठे हुये थे उस समय नीतिशास्त्र के जाननेवाले मन्त्रीलोग उनसे बोले ११ ॥

सचिवाऊचुः ॥

मू० राजन् वयःपरिणतन्तं चैतच्छासतोमहीम् ।
एकस्ते तनयोऽवैक्षित्त्यक्तदारपरिग्रहः १२ ॥

टी० । मंत्रीलोग बोले कि हे राजन् ! पृथ्वी का राज्य करतेहुये आप

की यह वय (यानी उमर) व्यतीत होगई और एक पुत्र अवेक्षित आप के हैं सो उसने भी स्त्रीग्रहण करना छोड़दिया १२ ॥

मू० अपुत्रः स च ते निष्ठां यदा भूप गमिष्यति ।
तदारिपक्षं पृथिवी निश्चितं तव यास्यति १३ ॥

टी०। हे राजन्! जब वे अपुत्र अवेक्षित नाशको प्राप्त होंगे उस समय शत्रुपक्षमें निश्चयकर तुम्हारी पृथ्वी जायगी १३ ॥

मू० वंशक्षयस्ते भविता पितृपिण्डोदकक्षयः ।
एतन्महत्ते विवरं क्रियाहान्या भविष्यति १४ ॥

टी०। और आपका वंश क्षय होजायगा और पितरों को पिण्ड और जलदेनेवाला कोई न रहैगा और इन क्रियाओं के हानि होने से तुम्हारे यह बड़ाभारी छिद्र होगा १४ ॥

मू० तस्मात् कुरु तथा भूप यथा ते तनयः पुनः ।
करोति सततं बुद्धिं पितॄणामुपकारिणीम् १५ ॥

टी०। इस वास्ते हे महाराज! आप को वही यत्न करना चाहिये कि जिस प्रकार आप के पुत्र सदैव पितरों के उपकारवाली बुद्धि करैं १५ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० एतस्मिन्नन्तरे शब्दं शुश्राव जगतीपतिः ।
पुरोहितस्य वीराया गदतो ह्यर्थिनं प्रति १६ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि उसी समय में महाराज करन्धम ने अपनी वीरा स्त्री के पुरोहित की आवाज सुनी जो याचकों से बोल रहे थे १६ ॥

मू० कः किमिच्छति दुस्साध्यं कस्य किं साध्यतामिति ।
करन्धमस्य महिषी किमिच्छकमुपोषिता १७ ॥

टी०। कि करन्धम की महारानी वीरा किमिच्छक व्रत करती हैं कौन किस दुःसाध्य (कठिन) वस्तु की इच्छा करता है और किस का क्या प्रयोजन सिद्ध किया जाय याने जिसको जो कुछ मांगना हो मांगै उस को वह मिलैगा १७ ॥

मू० अवेक्षितो राजपुत्रः श्रुत्वा पौरोहितं वचः।
प्रत्युवाचार्थिनः सर्व्वान् राजद्वारमुपागतान् १८॥

टी०। और उसी समय राजकुमार अवेक्षित भी पुरोहित का वचन सुनकर राजद्वार पर आये हुये याचकों से बोले १८॥

मू० मयासाध्यं शरीरेण यस्य किञ्चिद्ब्रवीतु सः।
मम माता महाभागा किमिच्छकमुपोषिता १९॥

टी०। कि मेरी माता महारानी किमिच्छक व्रत करती हैं जिस मांगनेवाले को जो कुछ मांगना हो मांगे मैं दूँगा यदि वह असाध्य भी हो तो मैं उसको शरीर से पूरा करूँगा १९॥

मू० शृण्वन्तु मेऽर्थिनः सर्व्वे प्रतिज्ञातं मया तु यत्।
किमिच्छथ ददाम्येष क्रियमाणे किमिच्छके २०॥

टी०। मैंने जो प्रतिज्ञा किया है उसको सब याचक सुनें कि इस किमिच्छक व्रत के करने के समय तुम लोग क्या चाहते हो उसको मैं अवश्य दूं २०॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० ततो राजा निशम्यैतद्वाक्यं पुत्रमुखाच्च्युतम्।
समुपेत्याब्रवीत् पुत्रमहमर्थी प्रयच्छ मे २१॥

टी०। मार्कण्डेय मुनि कहते हैं कि हे क्रौष्टुकिं! यह वचन राजकुमार अवेक्षित के मुख से कहा हुआ सुनकर महाराज करन्धम जल्दी से उनके पास आकर बोले कि हे पुत्र! पहले जो मैं याचक मांगता हूँ वह मुझे दो २१॥

अवेक्षितउवाच॥

मू० दातव्यं यन्मया तात भवते तद्ब्रवीहि माम्।
कर्त्तव्यं दुष्करं वा ते साध्यं दुस्साध्यमेव वा २२॥

टी०। अवेक्षित ने कहा कि हे तात! जो कुछ आप के लिये मुझे देना हो उस को कहिये जो बात कठिन भी होगी अपने से होसकै या न होसकैगी वह भी करदूंगा २२॥

राजोवाच ॥

मू० यदि सत्यप्रतिज्ञस्त्वं ददासि च किमिच्छकम्।
पौत्रस्य दर्शय मुखं ममोत्सङ्गगतस्य तत् २३॥

टी०। महाराज बोले कि यदि तुम सत्यप्रतिज्ञावाले हो व याचक की इच्छा जो कुछ हो तो उसको देते हो तो अपने पौत्र को गोद में बैठाकर उसका मुख देखूं यह इच्छा मेरी पूरी करो २३॥

अवैक्षिदुवाच ॥

मू० अहन्तवैकस्तनयोब्रह्मचर्य्यञ्च मे नृप।
न मे पुत्रोऽस्ति पौत्रस्य दर्शयामि कथं मुखम् २४॥

टी०। अवैक्षित ने कहा कि हे महाराज! आपका मैं ही एक पुत्र हूं और मैं ब्रह्मचर्य्य धारण कियेहुये हूँ व मेरे पुत्र नहीं है तो फिर आप को पौत्र का मुख कैसे दिखाऊँ २४॥

राजोवाच ॥

मू० पापाय ब्रह्मचर्य्यन्ते यदिदं धार्य्यते त्वया।
तस्मात्त्वं मोचयात्मानं मम पौत्रञ्च दर्शय २५॥

टी०। महाराज करन्धम ने कहा कि यह ब्रह्मचर्य्य जो तुम धारण कियेहुये हो इससे तुमको पाप होगा इसलिये तुम आत्मा को छोड़ाओ और पुत्र उत्पन्नकरके मुझको दिखाओ २५॥

अवैक्षिदुवाच ॥

मू० विरमास्मान्महाराज यदन्यत्तत् समादिश।
वैराग्येण मया त्यक्तः स्त्रीसम्भोगस्तथास्तु सः २६॥

टी०। अवैक्षित बोले कि हे महाराज! सिवाय इसके और जो कुछ आज्ञाहो वह मैं करूँ क्योंकि वैराग्य से मैंने स्त्रीसंभोग छोड़दिया है वह वैसाही होवै २६॥

राजोवाच ॥

मू० बहुभिर्युध्यमानस्य न दृष्टोवैरिणोजयः।
तत्रापि यदि वैराग्यमुपैषि तदपण्डितः २७॥

टी०। महाराज बोले कि हे पुत्र! बहुत मनुष्योंसे लड़तेहुये वैरी की जीत नहीं देखीगई है उसमें भी यदि तुमको वैराग्य उत्पन्न हुआ है तो तुम इस वैराग्य से ज्ञानी नहीं कहलाओगे किन्तु लोग तुमको मूर्ख कहेंगे २७॥

मू० किंवा नोबहुनोक्तेन ब्रह्मचर्य्यं परित्यज।
मातुस्त्वमिच्छया वक्त्रं पौत्रस्य मम दर्शय २८॥

टी०। और मैं बहुत कहांतक कहूँ अब यही कहता हूँ कि तुम ब्रह्मचर्य्य छोड़कर अपनी माताकी आज्ञानुसार अपने पुत्रका मुख मुझको दिखाओ २८॥

मार्कण्डेयउवाच॥

मू० यदा स बहुभिस्तेन प्रोक्तः पुत्रेण पार्थिवः।
नान्यत्प्रार्थयते किञ्चित् तदा पुत्रोब्रवीत्पुनः २९॥

टी०। मार्कण्डेय मुनि कहते हैं कि जब हरतरह से अवेक्षित पुत्र ने बहुत कुछ राजा से कहा कि पिता इस इच्छा को छोड़ दें परन्तु महाराज ने सिवाय पौत्रदर्शन होने के दूसरी कोई प्रार्थना नहीं की तब अवेक्षित पुत्र फिर बोले २९॥

मू० दत्त्वा किमिच्छकं तुभ्यं प्राप्तोहं तात सङ्कटम्।
तत्करिष्यामि निर्लज्जोभूयोदारपरिग्रहम् ३०॥

टी०। कि हे तात! आप के लिये किमिच्छक (मनोभिलषित वस्तु) देकर मैं बड़े संकट में पड़गया इससे अब मैं निर्लज्ज होकर स्त्रीसंग्रह फिर करूँगा ३०॥

मू० स्त्रियः समक्षं विजितः पतितोधरणीतले।
स्त्रीपतिर्भविता भूयस्तातैतदतिदुष्करम् ३१॥

टी०। जिस स्त्री के सामने रण में जीताहुआ मैं भूमिपै गिरकर मूर्छित होगयाथा अब उसी स्त्री का फिर पति होना हे पिता जी! यह अत्यन्तकठिन है ३१॥

मू० तथापि किं करोम्येषसत्यपाशवशङ्गतः।
करिष्यामि यथात्थ त्वं भुज्यतां निजशासनम् ३२॥

टी०। पर तौभी क्या करूं मैं सत्यरूपी फाँस में बँधा हूँ जो तुम कहते हो मैं वह करूंगा अब आप निश्चिन्त होकर राज्य कीजिये ३२॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेवैक्षितचरित्रेनामपञ्चविंशाधिक
शततमोऽध्यायः १२५॥

अथ एकसौछब्बीसवां अध्याय॥

मार्कण्डेयउवाच॥

मू० कदाचिद्राजपुत्रोऽसौ मृगयामचरद्वने।
मृगान्विध्यन्वराहांश्च शार्दूलादींश्च दंष्ट्रिणः १॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुके! किसी समय वही राजकुमार अवैक्षित वन में जाकर मृगा और शूकर और बाघ इत्यादि का शिकार कररहे थे १॥

मू० शुश्राव सहसा शब्दं त्राहि त्राहीति योषितः।
विक्रोशन्त्याः सुबहुशोभयगद्गदमुच्चकैः २॥

टी०। उस समय अचानक एक स्त्री के कलपने की आवाज सुनाई दी जो मारे डर के ऊँचे स्वर से बार २ त्राहि त्राहि पुकार रहीथी २॥

मू० माभैर्माभैरिति वदन् राजपुत्रः सवेगितः।
चोदयामास तुरगं यतः शब्दं समागतः ३॥

टी०। राजकुमार अवैक्षित वह आवाज सुनकर धैर्य्य देतेहुये कि मतडर मतडर ऐसा कहतेहुये उस आवाज की तरफ घोड़ा दौड़ाकर जल्दी से गये ३॥

मू० ततश्च सापि चुक्रोश कन्यका विजने वने।
गृहीता दनुपुत्रेण दृढकेशेन मानिनी ४॥

टी०। तो वहां देखा कि एक कन्या को निर्जन वन में दनु का पुत्र दृढकेशनाम असुर उसे पकड़ेहुये है और वह कन्या यह पुकार रही है ४॥

मू० करन्धमसुतस्याहं भार्य्या चाहमवैक्षितः।
हरत्यनार्य्योविपिने पृथिवीशस्य धीमतः ५॥

टी०। कि मैं महाराज करन्धम के पुत्र भूप व बुद्धिमान् राजकुमार अवैक्षित की स्त्री हूं मुझको इस वन में यह दुष्ट राक्षस हर रहाहै ५॥

मू० यस्य सर्व्वे महीपालास्तथा गन्धर्व्वगुह्यकाः।
न समर्थाः पुरः स्थातुं तस्य भार्य्या हतास्म्यहम् ६॥

टी०। जिन राजकुमार अवैक्षित के सामने इस पृथ्वी के बड़े बड़े राजालोग और गन्धर्व्व और गुह्यकगणों को खड़े होने की सामर्थ्य नहीं है उनकी मैं स्त्री हरीजाती हूँ ६॥

मू० यस्य मृत्योरिव क्रोधःशक्रस्येव पराक्रमः।
करन्धमसुतस्यैषा तस्य भार्य्या हतास्म्यहम् ७॥

टी०। जिनका क्रोध मृत्यु के समान और पराक्रम इन्द्र के सदृश है उन राजकुमार अवैक्षित की मैं स्त्री होकर इस समय हरण हुईजाती हूँ ७॥

मार्कण्डेयउवाच॥

मू० इत्याकर्ण्य महीपालतनयः सशरासनी।
चिन्तयामास किमिदं मम भार्य्यात्र का वने ८॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुके! महाराज करन्धम के पुत्र अवैक्षित जो कि हाथ में धनुष बाण लियेहुये थे यह सुनकर चिन्ता करनेलगे कि यह क्या है मेरी भार्य्या इस वन में कौन है ८॥

मू० मायेयं रक्षसां नूनं दुष्टानां काननौकसाम्।
अथवागतएवाहं सर्व्वं वेत्स्यामि कारणम् ९॥

टी०। ज्ञात होता है कि निश्चयकर यह वनवासी दुष्ट राक्षसों की माया है या मैं जाकर सब कारण भी जानलूँगा ९॥

मार्कण्डेयउवाच॥

मू० त्वरितः सततोगत्वा ददर्शातिमनोरमाम्।
कानने कन्यकामेकां सर्व्वालंकारभूषिताम् १०॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुके! अवैक्षित यह बात

अपने जी में विचारकर शीघ्रता से उस कन्या के पास पहुँचे तो एक बड़ी सुन्दरी कन्या जो सब भूषणों से भूषित थी उसको देखा १० ॥

मू० गृहीतां दनुपुत्रेण दृढकेशेन दण्डिना।
त्राहि त्राहीति करुणं विक्रोशन्तीं पुनः पुनः ११ ॥

टी०। और दनु के पुत्र दृढकेश के हाथ में ग्रसित होकर त्राहि त्राहि ऐसा बार २ कहकर खड़ी रो रही है ११ ॥

मू० माभैरिति सतामाह हतोऽसीति च तं वदन्।
शासतीमां महीं दुष्टः कोभूपेऽत्र करन्धमे १२ ॥

टी०। व अवैक्षित ने उससे यह कहा कि तुम मत डरो और दनु के पुत्र से कहा कि तुम मारे जाओगे क्योंकि महाराज करन्धम को इसपृथ्वी का राज्य करतेहुये तुम कौन दुष्टहो १२ ॥

मू० यस्य प्रतापावनताभुवि सर्व्वे महीक्षितः।
ततः समागतं दृष्ट्वा गृहीतवरकार्मुकम् १३ ॥

टी०। जिन महाराज करन्धम के प्रताप से पृथ्वी के सम्पूर्ण राजालोग नम्र होकर रहते हैं उन्हीं महाराज का मैं पुत्र हूँ उसके बाद उत्तम धनुषको लिये, आयेहुये, उन अवैक्षित को देखकर १३ ॥

मू० मां त्राहीत्याह तन्वङ्गी हतास्म्येषेति चासकृत्।
राज्ञः करन्धमस्याहं स्नुषा भार्य्याप्यवैक्षितः ॥
हतास्म्येतेन दुष्टेन सनाथानाथवद्वने १४ ॥

टी०। उस सुन्दरी ने बार बार कहा कि मेरी रक्षा कीजिये मैं महाराज करन्धम की पतोह व अवैक्षित की भार्य्या हूँ इस वन में अनाथ की नाईं मुझ सनाथिनी को यह दुष्ट हरणकरता है १४ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० ततोविममृशे वाक्यमवैक्षितस्तथोदितम्।
कथमेषा हि मे भार्य्या स्नुषा तातस्य वा कथम् १५ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुके! राजकुमार अवैक्षित इतना सुनकर उसके बाद उस कन्या की बात को अपने जी में शोचने

लगे कि किसप्रकार यह कन्या मेरी भार्य्या और महाराज करन्धम की पतोह हुई १५ ॥

मू० अथवा मोचयाम्येनां तत्त्वं वेत्स्यामि तत्पुनः।
क्षत्रियैर्धार्य्यते शस्त्रमार्त्तानां त्राणकारणात् १६ ॥

टी०। फिर यह भी शोचा कि यह सब तत्त्व पीछे समझलूँगा पहले इस कन्या को दुष्ट से छुड़ालूँ क्योंकि आर्त्तजनों की रक्षाकरने के वास्ते क्षत्रीलोग शस्त्रधारण करते हैं १६ ॥

मू० ततः क्रुद्धोऽब्रवीद्वीरोदानवं तं सुदुर्मतिम्।
जीवन् गच्छ विमुच्यैनामन्यथा न भविष्यसि १७॥

टी०। यह बात अपने जी में विचारकर उसके बाद वे वीर क्रोधित हो उस दुर्बुद्धि दानव से बोले कि तू अपने प्राण बचाकर घरजा इस कन्या को छोड़दे नहीं तो माराजायगा १७ ॥

मू० ततः सतां विहायोच्चैर्दण्डमुत्क्षिप्य दानवः।
तमप्यधावत्सोप्येनं शरवर्षैरवाकिरत् १८ ॥

टी०। यह बात अवैक्षित से सुनकर दृढकेश दानव उसको छोड़कर महादण्ड उठाकर राजकुमार की तरफ दौड़ा तब अवैक्षित भी उस दानव के ऊपर तीरों का मेह बरसाने लगे १८ ॥

मू० सवार्य्यमाणोबाणौघैर्दानवोऽतिमदान्वितः।
राजपुत्राय चिक्षेप दण्डं शंकुशतावृतम् १९ ॥

टी०। यद्यपि वह दानव तीरों की बौछाड़ में घिरगया था पर तौभी बड़े मदसे संयुक्त वह जिस दण्ड में सैकड़ों कीलैं गड़ीथीं उस दण्ड को राजकुमार पर चलाया १९ ॥

मू० तमापतन्तं चिच्छेद शरैर्भूपसुतस्ततः।
सोऽप्यासन्नं गृहीत्वोच्चैर्द्रुममाजौ व्यवस्थितः २० ॥

टी०। परन्तु राजकुमार अवैक्षित ने आतेहुये उस दण्ड को अपने बाणों से काटडाला तब वह दानव उस जगह के समीप लगेहुये एक वृक्षको उखाड़कर उस रण में खड़ा होगया २० ॥

मू० सृजतः शरवर्षाणि तं चिक्षेप ततोद्भुतम् ।
सच तं तिलशश्चक्रे भल्लैः कर्मारतेजितैः २१ ॥

टी० । और उस वृक्ष को बाणों की वृष्टि करतेहुये अवैक्षित के ऊपर फेंककर मारा उसको भी अवैक्षित ने शिल्पी से तेज किये भल्ल नामक अस्त्रों से काटकर टुकड़े टुकड़े करदिया २१ ॥

मू० ततश्चिक्षेप च शिलां राजपुत्राय दानवः ।
सापि मोघा पपातोर्व्यामुज्झिता तेन लाघवात् २२ ॥

टी० । तत्पश्चात् उस दानव ने राजकुमार के ऊपर शिला उठाकर चलाया वह शिला भी उस दानवकी शीघ्रता से चलाईहुई वृथा होकर गिरपड़ी २२ ॥

मू० राजपुत्राय कुपितो यद्यच्चिक्षेप दानवः ।
तत्तच्चिच्छेद बाणौघैर्भूभृत्सूनुः सलीलया २३ ॥

टी० । इसी प्रकार जो जो हथियार उस दानव ने कोपित होकर राजकुमार अवैक्षित पर चलाया उन सम्पूर्ण हथियारों को राजकुमार अवैक्षित ने खेल की तरह काटडाला २३ ॥

मू० ततोविच्छिन्नदण्डोऽसौ विच्छिन्नसकलायुधः ।
मुष्टिमुद्यम्य सक्रोधो राजपुत्रमधावत २४ ॥

टी० । जब दण्ड इत्यादि सब अस्त्र उसके कटगये तब वह दानव महाक्रोध करके मुष्टिका उठाकर राजकुमार की तरफ दौड़ा २४ ॥

मू० तस्यापततएवासौ करन्धमसुतः शिरः ।
छित्त्वा वेतसपत्रेण पातयामास वै भुवि २५ ॥

टी० । आतेही उस दानव का शिरको इन राजकुमार अवैक्षितने वेतसपत्र नामक अस्त्र से काटकर पृथ्वी पर गिरादिया २५ ॥

मू० तस्मिन्विनिहते देवैर्दानवे दुष्टचेष्टिते ।
करन्धमसुतः सर्वैः साधुसाध्विति भाषितः २६ ॥

टी० । जब वह दुष्टकर्मा दानव मरगया तब सब देवताओंने आकाश से अच्छा किया २ ऐसा कहकर राजकुमार की बहुत प्रशंसा की २६ ॥

मू० वरं वृणीष्वेति तदा देवैरुक्तोनृपात्मजः ।
वव्रे पुत्रं महावीर्य्यं पितुः प्रियचिकीर्षया २७ ॥

टी० । और उस समय देवताओं ने राजकुमार से कहा कि वर मांगो तब राजकुमारने महापराक्रमी पुत्र अपने पिता के प्रिय करनेकी इच्छासे मांगा २७ ॥

देवाऊचुः ॥

मू० भविष्यति हि ते पुत्रश्चक्रवर्त्ती महाबलः ।
अस्यामेव हि कन्यायां मोक्षितायां त्वयाऽनघ २८ ॥

टी० । तब देवताओं ने कहा कि हे अनघ ! जो कन्या तुमने दानव से छुड़ायीहै इसी कन्यासे तुम्हारे महापराक्रमी चक्रवर्त्तीपुत्र उत्पन्नहोगा२८॥

राजपुत्रउवाच ॥

मू० पित्राहं सत्यपाशेन बद्धइच्छाम्यहं सुतम् ।
राजभिर्निर्जितेनाजौ त्यक्तोमे दारसंग्रहः २९ ॥

टी० । यह सुनकर अवैक्षित बोले कि संग्राम में बहुत से राजाओं से पराजय होकर स्त्रीसंग्रह करना मैंने छोड़दिया था परन्तु पिता के सत्य पाश में बँधकर मैं पुत्र को चाहता हूँ २९ ॥

मू० सा च मे याचती त्यक्ता विशालनृपतेः सुता ।
तया च मत्कृते त्यक्तो मामृते नरसंगमः ३० ॥

टी० । और राजा विशाल की कन्या मुझे अपना पति बनाने के वास्ते मांगती थी परन्तु रणमें पराजित होनेसे लज्जित होकर मैंने उसे न ग्रहण किया और उस राजकन्याने भी मुझे छोड़कर दूसरा पति नहीं किया ३०॥

मू० तत्कथं तामपास्याद्य विशालतनयामहम् ।
नृशंसात्मा करिष्यामि अन्यनारीपरिग्रहम् ३१ ॥

टी० । इसलिये उस विशाल की कन्या को छोड़कर क्रूरात्मा मैं दूसरी स्त्री क्योंकर आज ग्रहण करूँगा ३१ ॥

देवाऊचुः ॥

मू० इयमेवाहि ते भार्य्या श्लाघ्यते या त्वया सदा ।

विशालस्य सुता सुभ्रूस्त्वत्कृते याश्रिता तपः ३२ ॥

टी० । देवताओं ने कहा कि यही सुन्दरी राजा विशाल की कन्या तुम्हारी भार्य्या है जो तुम्हारे ही वास्ते तप करती थी और जिसकी तुम सब दिन प्रशंसा करते थे ३२ ॥

मू० अस्यामुत्पत्स्यते वीरः सप्तद्वीपप्रसाधकः ।
यष्टा यज्ञसहस्राणां चक्रवर्त्ती सुतस्तव ३३ ॥

टी० । इसी के तुम्हारे सकाश से पुत्र उत्पन्न होगा और वह वीर पुत्र सातों द्वीप का चक्रवर्ती राजा होगा और हज़ारों यज्ञ करैगा ३३ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० इत्युच्चार्य्य ययुर्देवाः करन्धमसुतं द्विज ।
सोऽप्याह तां तदा पत्नीं कथ्यतां भीरु किन्विदम् ३४॥

टी० । मार्कण्डेय मुनि कहते हैं कि हे द्विज ! यह बातें महाराज करन्धम के पुत्र (अर्थात् अवेक्षित) से कहकर देवतालोग चलेगये तत्पश्चात् राजकुमार अवेक्षित भी उस समय उस कन्यासे बोले कि हे भीरु ! यह क्या है अपना वृत्तान्त विस्तारपूर्वक मुझे कहसुनाओ ३४ ॥

मू० सा चास्मै कथयामास त्यक्ताहं भवता यदा ।
त्यक्तबन्धुजनारण्यं निर्वेदात्समुपागता ३५ ॥

टी० । कन्या बोली कि हे राजपुत्र ! जब तुमने मुझ को उस समय में छोड़दिया था तब मैं वैराग्य से अपने सब परिवार को त्यागकर इस वन में चलीआई ३५ ॥

मू० अत्राहं तपसा वीर क्षीणप्रायं कलेवरम् ।
त्यक्तकामा समभ्येत्य देवदूतेन वारिता ३६ ॥

टी० । हे वीर ! जब इस वन में तपस्या करने से मेरा शरीर दुर्बल होगया तब मैंने इस शरीर को त्यागकरना चाहा उस समय देवदूत ने मेरे पास आकर मुझ को मनाकिया ३६ ॥

मू० भविष्यति च पुत्रस्ते चक्रवर्त्ती महाबलः ।
प्रीणयिष्यति योदेवानसुरांश्च हनिष्यति ३७ ॥

टी०। कि तुम्हारे एक बड़ाबली पुत्र उत्पन्न होगा जो सब पृथ्वी का चक्रवर्ती राजा होगा और जो पुत्र तुम्हारा असुरों को मारकर देवताओं को प्रसन्न करैगा ३७॥

मू० इति देवाज्ञया तेन देवदूतेन वारिता।
न संत्यक्तवती देहं त्वत्सङ्गमनोरथा ३८॥

टी०। इस देवज्ञा के द्वारा देवदूत ने मुझ को मनाकिया और मैं अपने शरीर त्यागने से रहित हुई और आप के मिलने की अभिलाषा मेरे मन में बनीरही ३८॥

मू० परश्वश्च महाभाग स्नातुं गङ्गाह्रदं गता।
अवतीर्णा विकृष्टास्मि वृद्धनागेन केनचित् ३९॥

टी०। फिर हे महाभाग! परसों प्रातःकाल में स्नानकरने के वास्ते गंगाकुण्ड पर गई जब उस कुण्ड में नीचे उतरकर स्नान करनेलगी तो उस समय कोई एक वृद्ध नाग ने मुझको खींचा ३९॥

मू० ततोरसातलं नीता तेन तत्र च मे पुरः।
नागास्सहस्रशस्तस्थुर्नागपत्न्यः कुमारकाः ४०॥

टी०। उसके बाद वह रसातल में लेगया जहां नागों का नगर है फिर उस नगर में हजारों नाग और नागिनियां और नागकुमार मेरे आगे खड़ेहुये ४०॥

मू० तुष्टुवुर्मां समभ्येत्य मामन्येऽपूजयंस्तथा।
ययाचिरे सविनयं नागामामङ्गनास्तथा ४१॥

टी०। व मेरे पास आकर मेरी स्तुति किया और अन्य नाग पूजन करनेलगे फिर उन नाग और नागिनियों ने विनयपूर्वक मुझ से याचना किया ४१॥

मू० प्रसादं कुरु सर्व्वेषां त्वमस्माकं सुतस्त्वया।
अपराधमुपेतानां संनिवार्य्योवधोन्मुखः ४२॥

टी०। कि आप हमसभों पर प्रसन्नहूजिये आप के जो पुत्र उत्पन्न होगा उसका अपराध नागलोग करैंगे इस वास्ते हमलोग आप की

विनय करते हैं और कहते हैं कि जब आप का पुत्र नागों के मारने के वास्ते उपस्थित हो तब आप उसको मारने से मना करदीजियेगा ४२ ॥

मू० अपराधं करिष्यन्ति त्वत्पुत्रस्यानिलाशनाः ।
तन्निमित्तं निवार्य्योऽसौ प्रसादः क्रियतामिति ४३ ॥

टी० । नागलोग तुम्हारे पुत्र का अपराध करैंगे उसके वास्ते मना-करदेना यह प्रसन्नता कीजावे ४३ ॥

मू० तथेति च मया प्रोक्ते दिव्यैः पातालभूषणैः ।
भूषिताहं तथा पुष्पैर्गन्धवासोभिरुत्तमैः ४४ ॥

टी० । नागों की यह इच्छा सुनकर मैंने कहा कि बहुत अच्छा मैं मना करदूंगी मेरे इतना कहने पर नाग और नागपत्नियों ने अच्छे अच्छे भूषणों और सुगन्धित पुष्पों और उत्तम चंदन व उत्तम चंदन व वस्त्रों से मुझको भूषित और सुशोभित करदिया ४४ ॥

मू० समानीता तथा लोकमिमन्तेनानिलाशिना ।
पुरा यथा कान्तिमती पूर्व्ववद्रूपशालिनी ४५ ॥

टी० । फिर वही नाग इस लोक में मुझ को पहुँचागया और मैं जैसे पहिले सुन्दरी और कान्तिमती थी वैसीही होगई ४५ ॥

मू० इति रूपवतीं दृष्ट्वा सर्व्वालङ्कारभूषिताम् ।
जग्राह दृढकेशोऽयं हर्त्तुकामः सदुर्मतिः ४६ ॥

टी० । उस समय मुझ को सब भूषणों से शोभित व ऐसी रूपवाली देखकर इस दुर्मति दृढकेश ने हर लेजाने के वास्ते पकड़लिया ४६ ॥

मू० युष्मद्बाहुबलेनाहं राजपुत्र विमोक्षिता ।
तत्प्रसीद महाबाहो मां प्रतीच्छ त्वया समः ॥
भूलोके राजपुत्रोऽन्योनास्ति सत्यं ब्रवीम्यहम् ४७ ॥

टी० । परन्तु हे राजपुत्र ! तुम्हारे बाहुबल से मैं छुड़ाईगई इसलिये हे महाभुज ! प्रसन्न हूजिये व मुझ को ग्रहण कर लीजिये आप के तुल्य इस पृथ्वीलोक में कोई दूसरा राजकुमार नहीं है मैं सत्य कहतीहूं ४७ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेवत्सितचरित्रेनामषड्विंशाधिकशततमोऽध्यायः १२६ ॥

अथ एकसौसत्ताईसवां अध्याय ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० इति तस्यावचः श्रुत्वा स्मृत्वा पितृवचः शुभम् ।
किमिच्छकप्रतिज्ञातेयदुक्तं तेन भूभृता १ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुके ! यह बात विशालिनी कन्या की सुनकर और किमिच्छकव्रत की प्रतिज्ञा में अपने पिता का उत्तम वचन स्मरणकरके जो कि उस राजाने कहाथा १ ॥

मू० प्रत्युवाच सतां कन्यामवैक्षिन्नृपतेः सुतः ।
सानुरागमनस्कां तां त्यक्तभोगाञ्च तत्कृते २ ॥

टी०। राजकुमार अवैक्षित अनुरागमनवाली उस विशालिनी कन्या से जो उन के वास्ते सम्पूर्ण भोगत्याग कियेहुये थी बोले २ ॥

मू० यदाहं त्यक्तवांस्तन्वि त्वामरातिपराजितः ।
विजित्य शत्रून् सम्प्राप्ता त्वं मयात्र करोमि किम् ३ ॥

टी०। कि हे सुन्दरी ! जब मैं शत्रुओं से पराजित होगया था तब तुझको त्याग किया था और अब जब शत्रुओं को जीता है तो फिर तू मुझे प्राप्तहुई इसविषयमें मैं क्या करूँ ३ ॥

कन्योवाच ॥

मू० मम पाणिं गृहाण त्वं रमणीयेऽत्र कानने ।
सकामायाः सकामेन सङ्गमोगुणवान्भवेत् ४ ॥

टी०। कन्या बोली कि इसी रमणीक वनमें आप मेरा पाणिग्रहण कीजिये क्योंकि सकामा स्त्रीको सकाम पुरुष का संगम गुणदायक होता है ४ ॥

राजपुत्रउवाच ॥

मू० एवं भवतु भद्रं ते विधिरेवाऽत्र कारणम् ।
अन्यथा कथमन्यत्र त्वामहञ्च समागतः ५ ॥

टी०। अवैक्षित ने कहा कि ऐसा ही होगा तुम्हारा कल्याण होवै मेरा तेरा मिलापहोना ब्रह्मा ही का लेख है नहीं तो मैं यहां किसप्रकार तुम्हारे समीप प्राप्त होता ५॥

मार्कण्डेयउवाच॥

मू० एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तोगन्धर्व्वस्तु नयोमुने।
वराप्सरोभिः सहितोगन्धर्व्वैरपरैर्वृतः ६॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे मुने! इसी समय में बहुतसी अप्सराओं और अन्य गन्धर्वगणोंकेसाथ नयनाम एक गन्धर्व्व वहां आया६॥

गन्धर्व्वउवाच॥

मू० राजपुत्र सुतेयम्मे भामिनी नाममानिनी।
अभिशापादगस्त्यस्य विशालतनयाऽभवत् ७॥

टी०। और गन्धर्व बोला कि हे राजपुत्र! यह भामिनीनाम करके मेरी ही सुन्दरी कन्या है परन्तु अगस्त्यजी के शाप देने से राजा विशाल की कन्या हुई है ७॥

मू० बालभावेनयागस्त्यः कोपितः क्रीडमानया।
ततस्तेन तदा शप्ता मानुषी त्वं भविष्यसि ८॥

टी०। पूर्व्वकाल में एक समय सखियों के साथ वनमें क्रीडा करने गई थी इसके लड़काई करने के ऊपर अगस्त्य मुनि ने क्रोधितहो शाप दिया था कि तू मनुष्य की कन्या होगी ८॥

मू० प्रसादितः सचास्माभिर्ब्बालेयमविवेकिनी।
तवाऽपराध्या विप्रर्षे प्रसादः क्रियतामिति ९॥

टी०। तत्पश्चात् हमलोगों ने वहां जाकर उनको प्रसन्नकराया कि हे विप्रर्षे! यह बाला है और अविचारिणी है जो आप का अपराध किया है अब आप इसका अपराध क्षमाकरके प्रसन्न हूजिये ९॥

मू० प्रसाद्यमानः सोऽस्माभिरिदमाह महामुनिः।
बालेति मत्वा शापोऽल्पोदत्तोऽस्यानान्यथैव तत् १०॥

टी०। तब अगस्त्य महामुनिने हमसभों के स्तुतिकरने से प्रसन्नहोकर

इस पर यह कहा कि बाला ही समझकर इसको मैंने थोड़ा ही शाप दिया है वह वृथा न होगा १० ॥

मू० इति शापादगस्त्यस्य विशालभवने शुभा।
जातेयं मत्सुता सुभ्रूर्भामिनीनाम नामतः ११ ॥

टी०। अगस्त्यजी के इसी शाप के कारण यह भामिनीनाम मेरी उत्तम कन्या अत्यन्तसुन्दरी राजा विशाल के घरमें उत्पन्नहुई है ११ ॥

मू० तदस्याहंकृते प्राप्तोगृहाणेमां नृपात्मज।
ममात्मजां सुतस्तेऽत्र चक्रवर्त्ती भविष्यति १२ ॥

टी०। इसीवास्ते हे राजकुमार! इसके लिये मैं यहांपर आया हूं कि आप इस मेरी कन्या को ग्रहणकीजिये इसी कन्या से आपके चक्रवर्त्ती पुत्र होगा १२ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० तथेत्युक्त्वा ततस्तस्यास्सपाणिं पार्थिवात्मजः।
जग्राह विधिवद्धोमं चक्रे तत्र च तुम्बुरुः १३ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि राजकुमार अवैक्षितने यहबात गन्धर्व्व की सुनकर पाणिग्रहण स्वीकारकरके विधिपूर्व्वक विशालिनी को विवाह लिया उस विवाहमें वहांपर विधिपूर्व्वक होमकिया व तुम्बुरु ने १३ ॥

मू० प्रजगुर्देवगन्धर्व्वानन्नृतुश्चाप्सरोगणाः।
पुष्पाणि ससृजुर्मेघादेववाद्यानि सस्वनुः १४ ॥

टी०। और देवता और गन्धर्व्वलोगों ने गीत गाया और अप्सरालोगों ने नृत्यकिया और मेघों ने पुष्पों की वृष्टि की और देवतालोगों ने बाजा बजाया १४ ॥

मू० विवाहे राजपुत्रस्य तया तत्र समेयुषः।
समस्तवसुधात्राणकर्तृकारणभूतया १५ ॥

टी०। सम्पूर्ण पृथ्वी की रक्षाकरनेवाले की कारणभूत उस राजकन्या के साथ वहां आयेहुये उस राजकुमार के विवाह में यह सब मंगल उस समय होतेभये १५ ॥

मू० ततोगन्धर्व्वलोकन्ते सह तेन महात्मना।
निःशेषेण ययुः सा च सच राजसुतोमुने १६ ॥

टी०। मार्कण्डेय मुनि कहते हैं कि हे मुने! इसके उपरान्त इसी गन्धर्व महात्मा के साथ वह कन्या और राजकुमार अवेक्षित वेसब गन्धर्व्व लोक में चले गये १६ ॥

मू० भामिन्या मुमुदे सार्द्धमवेक्षिन्नृपनन्दनः।
साच तेन समं तत्र भोगसम्पत्समन्विता १७ ॥

टी०। वहां जाकर वह राजकुमार अवेक्षित उस भामिनी के साथ विहार करनेलगा और वह कन्या भी अवेक्षित के साथ भोग सम्पत्ति से युक्त होकर हर्षित हुई १७ ॥

मू० कदाचिदतिरम्येऽसौ नगरोपवने तया।
विक्रीडति समं तन्व्या कदाचिद्वरपर्व्वते १८ ॥

टी०। और वह राजकुमार अवेक्षित कभी अत्यन्तरमणीय फुलवाड़ियों में और कभी उत्तम पर्व्वत पर जाकर उस सुन्दरी के साथ क्रीडा करते थे १८ ॥

मू० कदाचित्पुलिने नद्या हंससारसशोभिते।
कदाचिद्भवनस्यान्ते प्रासादे चातिशोभने १९ ॥

टी०। और कभी हंस व सारस पक्षियोंसे शोभित नदीके तटपर और कभी घरमें और कभी बड़ी रमणीय अटारियों के ऊपर १९ ॥

मू० विहारदेशेष्वन्येषु रमणीयेष्वहर्न्निशम्।
स रेमे सहितस्तन्व्या सा च तेन महात्मना २० ॥

टी०। और दूसरे दूसरे रमणीय विहारके स्थानों में भी जा जा कर रात दिन वे अवैक्षित राजकन्या सहित क्रीड़ा करते थे और वह भी उन महात्मा के साथ बिहार करती थी २० ॥

मू० भक्ष्यानुलेपनं वस्त्रं स्रक्पानादिकमुत्तमम्।
उपजह्रुस्तयोस्तत्र मुनिगन्धर्व्वकिन्नराः २१ ॥

टी०। और जिन जिन स्थानों में जाते थे वहां पर माला व वस्त्र और

चन्दन और भोजन, पान इत्यादि उत्तम उत्तम भोग वस्तु सब मुनि और गन्धर्व्व और किन्नर इनके वास्ते पहुँचाते थे २१ ॥

मू० तया च रमतस्तस्य भामिन्या सह दुर्लभे।
गन्धर्व्वलोके वीरस्य पुत्रं सा सुषुवे शुभा २२ ॥

टी०। तत्पश्चात् उसी भामिनी कन्या के साथ दुर्लभ गन्धर्व्व लोक में क्रीड़ा करते हुए राजकुमार अवेक्षित वीर के उसी भामिनी स्त्री के गर्भ से पुत्र उत्पन्न हुआ २२ ॥

मू० तस्मिञ्जाते महावीर्य्ये गन्धर्व्वाणां महोत्सवः।
बभूव मनुजव्याघ्रे तेन कार्य्यमवेक्षताम् २३ ॥

टी०। उस महाबली व नरेश पुत्रके उत्पन्न होने पर उस पुत्रसे कार्य्य को देखते हुये गन्धर्व्व लोगों को बड़ा आनन्द हुआ २३ ॥

मू० जगुः केचित्तथैवान्ये मृदङ्गपटहानकान्।
अवादयन्त चैवान्ये वेणुवीणादिकांस्तथा २४ ॥

टी०। उन लोगोंमें से कितनों ने गान किया और अन्य गन्धर्वोंने मृदंग व ढोल और नगारा बजाया और कोई वेणु और कोई बीणा इत्यादि बजाते थे २४ ॥

मू० ननृतुश्च तथा तत्र बहवोऽप्सरसांगणाः।
पुष्पवृष्टिमुचो मेघा जगर्ज्जुर्मृदुनिस्वनाः २५ ॥

टी०। और वैसेही वहां अप्सरा लोगों के बहुत गणों ने नृत्य किया और मेघों ने मधुरशब्द से गरजकर फूलों की वर्षा की २५ ॥

मू० तथा कोलाहले तस्मिन् वर्त्तमानेऽथ तुम्बुरुः।
प्रणयेन स्मृतो भ्येत्य जातकर्म्माकरोन्मुनिः २६ ॥

टी०। इसप्रकार उस उत्सव में कोलाहल होने पर उस गन्धर्व्व ने तुम्बुरु मुनि को स्नेह से बुलाकर उस पुत्र का जातिकर्म्म करवाया २६ ॥

मू० देवाः समाययुः सर्व्वे तथा देवर्षयोऽमलाः।
पातालात्पन्नगेन्द्राश्च शेषवासुकितक्षकाः २७ ॥

टी०। और इस महा उत्सव में सब देवता और निर्मल ऋषिलोग और पातालसे नागेन्द्र शेषजी और बासुकी और तक्षक आये २७ ॥

मू० तथा देवासुराणाञ्च ये प्रधाना द्विजोत्तम।
यक्षाणां गुह्यकानाञ्च वायवश्च तथाखिलाः २८॥

टी०। वैसेही हे द्विजोत्तम! देवता और असुर और यक्ष और गुह्यक लोगों में जो प्रधान थे वे और सब वायु भी इस महा उत्सव में वहां आये २८॥

मू० तदाऽऽगतैरशेषर्षिदेवदानवपन्नगैः।
मुनिभिश्चाकुलमभूद्गन्धर्व्वाणां महापुरम् २९॥

टी०। उस समय सब ऋषि व देवता और दानव और नाग और मुनि लोगों के आनेसे सम्पूर्ण गन्धर्व्वलोक भरगया २६॥

मू० ततः स तुम्बुरुः कृत्वा जातकर्मादिकीं क्रियाम्।
चक्रे स्वस्त्ययनन्तस्य बालस्य स्तुतिपूर्व्वकम् ३०॥

टी०। तत्पाश्चात् तुम्बुरु मुनि ने उस पुत्र का जातकर्म्म इत्यादिक करके स्तुति पूर्व्वक स्वस्त्ययन किया ३०

मू० चक्रवर्त्ती महावीर्य्यो महाबाहुर्महाबलः।
महान्तं कालमीशित्वमशेषायाः क्षितेः कुरु ३१॥

टी०। और कहा कि तुम चक्रवर्त्ती व महापराक्रमी और महा बाहु और महाबली होकर बहुत दिनों तक सम्पूर्ण पृथ्वी के राजा रहो ३१॥

मू० इमे शक्रादयः सर्व्वे लोकपालास्तथर्षयः।
स्वस्तिकुर्व्वन्तु ते वीर वीर्य्यं चारिविनाशनम् ३२॥

टी०। हे वीर! ये इन्द्र इत्यादि सब लोकपाल और सप्तऋषि लोग तुम्हारा कल्याण करें और तुम्हारा पराक्रम शत्रुओं का नाश करने वालाहो ३२॥

मू० मरुत्तवशिवायास्तु वाति पूर्वेण योरजः।
मरुतेविमलोऽक्षीणोऽवैषम्यायास्तु दक्षिणः ३३॥

टी०। और तुम्हारा कल्याण करने के वास्ते जो पूर्व्व की वायु है वह है जिसके बहने में धूल न उड़ती हो और तुम्हारे सदा हर्षित रहने के लिये निर्मल दक्षिण की वायु होवै ३३॥

मू० पश्चिमस्ते मरुद्वीर्य्यमुत्तमन्तु प्रयच्छतु।

बलंयच्छतु चोत्कृष्टं मरुत्ते च तथोत्तरः ३४॥

टी०। और पश्चिम की वायु तुमको उत्तम वीर्य्य याने प्रभाव दे और वैसेही उत्तर की वायु तुमको बल अर्थात् पराक्रम दे ३४॥

मू० इति स्वस्त्ययनस्यान्ते वागुवाचाऽशरीरिणी।
मरुत्तवेति बहुशोयदिदं गुरुरब्रवीत् ३५॥

टी०। इस प्रकार तुम्बुरु मुनि के आशीर्वाद देने के उपरान्त यह आकाशवाणी हुई कि जो इस बालक को तुम्बुरु मुनि गुरू ने मरुत्त ऐसा वचन बार २ कहा है ३५॥

मू० मरुत्त इति तेनायं भुवि ख्यातो भविष्यति।
भुविचास्य महीपाला यास्यन्त्याज्ञावशा यतः ३६॥

टी०। इसवास्ते यह बालक मरुत्त नाम से पृथ्वी में विख्यात होगा और जिसलिये पृथ्वी में सम्पूर्ण राजालोग इस बालकके आज्ञावर्त्तीहोंगे ३६॥

मू० एष सर्व्वक्षितीशानां वीरः स्थास्यति मूर्द्धनि।
चक्रवर्त्ती महावीर्य्यः सप्तद्वीपवतीं महीम् ३७॥

टी०। इससे यह बालक वीर व सब राजाओं के मस्तकपर बैठने योग्य होगा और चक्रवर्त्ती महाराजा होगा और सातों द्वीप पृथ्वी को ३७॥

मू० आक्रम्य पृथिवींपालानयं भोक्ष्यत्यवारितः।
प्रधानः पृथिवीशानां भविष्यत्येष यज्विनाम्॥
आधिक्यं शौर्य्यवीर्य्येण भविष्यत्यस्य राजसु ३८॥

टी०। राजाओं से छीनकर अकण्टक राज्य भोग करैगा और सब यज्ञ करने वाले राजाओं में प्रधान होगा और सब राजाओं से इसकी वीरता और पराक्रम बढ़कर होगा ३८॥

मार्कण्डेयउवाच॥

मू० इत्याकर्ण्य वचः सर्व्वे केनाप्युक्तं दिवौकसाम्।
तुतुषुर्विप्र गन्धर्व्वाश्चास्य माता तथा पिता ३९॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे विप्रजी! इसप्रकार आकाश के

देवताओं में से किसी देवता के वचन सुनकर सब गन्धर्व लोग और उस बालक के माता और पिता बहुत हर्षित होते भये ३६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽवैक्षितचरित्रेनामसप्तविंशाधिक
शततमोऽध्यायः १२७ ॥

अथ एकसौ अट्ठाईस का अध्याय ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० ततः स राजपुत्रस्तमादाय दयितं सुतम् ।
पत्न्या चानुगतो विप्रगन्धर्वैरायायौ पुरम् १ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे विप्रजी ! तत्पश्चात् वह राजकुमार अवैक्षित अपने प्रिय पुत्र को लिये हुए गन्धर्वों के साथ चलकर अनुगामिनी स्त्री समेत अपने नगर में आये १ ॥

मू० स पितुर्भवनं प्राप्य ववन्दे पितुरादरात् ।
चरणौ सा च तन्वंगी ह्रीमती नृपतेः सुता २ ॥

टी० । और अपने पिता के घर जाकर आदर से उनके चरणों को वन्दन किया और उस राजकन्या विशालिनी ने भी लज्जा युक्त होकर अपने श्वशुर के चरणों को बन्दन किया २ ॥

मू० अथाह राजपुत्रोऽसौ गृहीत्वा बालकं सुतम् ।
धर्म्मासनगतं भूपं राज्ञां मध्ये करन्धमम् ३ ॥

टी० । इसके बाद वे अवैक्षित उस अपने बालक पुत्रको लिये महाराज करन्धम के पास जो बहुत से राजाओं के बीच में धर्म्मासन पर बैठे हुए थे जाकर बोले ३ ॥

मू० मुखं पौत्रस्य पश्यैतदुत्सङ्गस्थस्य यन्मया ।
किमिच्छके प्रतिज्ञातं तुभ्यं मातुः कृते पुरा ४ ॥

टी० । कि पूर्व्वकाल में मेरी माता के किमिच्छक व्रत में आप से मैं ने जो प्रतिज्ञा की थी वह सिद्ध हुई अब आप अपनी गोद में बैठाल कर इस अपने पौत्र का मुख देखलीजिये ४ ॥

मू० इत्युक्त्वा पितुरुत्सङ्गे तं कृत्वा तनयं ततः।
यथावृत्तमशेषं स कथयामास तस्य तत् ५॥

टी०। इस प्रकार कहकर उस लड़के को पिता की गोद में रखकर जो जो वृत्तान्त उस कन्या का और उस पुत्रके जन्म का था वह सब उनसे कह सुनाया ५॥

मू० सपरिष्वज्य तं पौत्रमानन्दास्राविलेक्षणः।
सभाग्योऽस्मीत्यथात्मानं प्रशशंस पुनः पुनः ६॥

टी०। उस सम्पूर्ण वृत्तान्त को सुनकर महाराज करन्धम ने अपने उस पौत्र को अपने अङ्क में लगाया और उस आनन्द के जल से आकुल नेत्र होकर वारंवार अपने को सराहने लगे कि मैं सभाग्य हूँ ६॥

मू० ततः सोऽर्घ्यादिना सम्यग् गन्धर्वान्समुपागतान्।
सम्मानयामास मुदा विस्मृतान्यप्रयोजनः ७॥

टी०। तत्पश्चात् महाराज करन्धम ने अन्य कार्य को भूलकर जितने गन्धर्व लोग वहां आये थे उन सब को अच्छीतरह अर्घ्य इत्यादि से आनन्द पूर्वक पूजन करके सन्मान किया ७॥

मू० ततः पुरे महानासीदानन्दः पौरवेश्मसु।
अस्माकं सन्ततिर्जाता नाथस्येति महामुने ८॥

टी०। हे महामुने! उसके बाद उस नगर में घर घर बड़ा आनन्द हुआ और सब कहते थे कि हम सभों के बड़े भाग्य हैं कि जो हम सब के नाथ महाराज के पुत्र उत्पन्न हुआ ८॥

मू० हृष्टपुष्टे पुरे तस्मिन् गीतवाद्यरवाकुलम्।
विलासिन्योऽतिचार्वङ्ग्यो ननृतुर्लास्यमुत्तमम् ९॥

टी०। और उस हरे भरे व गाने बजाने के शब्द से संयुत नगर में बिलासिनी (वेश्याएं) अत्युत्तम नृत्य करती थीं ९॥

मू० राजा च द्विजमुख्येभ्यो रत्नानि च वसूनि च।
गावोवस्त्राण्यलङ्कारानददद्धृष्टमानसः १०॥

टी०। और महाराज करन्धमने भी हर्षित चित्त होकर उत्तम ब्राह्मणों

को बहुत रत्न और बहुत धन और बहुत गऊ और बहुत वस्त्र और भूषण आदि दिया १० ॥

मू० ततः स बालो ववृधे शुक्लपक्षे यथा शशी ।
पितृणां प्रीतिजनको जनस्येष्टश्च सोऽभवत् ११ ॥

टी० । फिर शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान वह बालक प्रतिदिन बढ़ने लगा और पितरों को प्रीति पैदा करनेवाला. और मनुष्योंको प्रिय हुआ ११ ॥

मू० आचार्य्याणां सकाशात्स प्राग्वेदाञ्जगृहे मुने ।
ततः शस्त्राण्यशेषाणि धनुर्वेदं ततः परम् १२ ॥

टी० । हे मुने ! पहिले उस बालक ने आचार्य्यों से वेदों को पढ़ा फिर सब शस्त्रों को फिर धनुर्वेद को पढ़ा १२ ॥

मू० कृतोद्योगो यदासोऽभूत् खड्गकार्मुककर्मणि ।
अन्येषु च तथा वीरः शस्त्रेषु विजितश्रमः १३ ॥

टी० । जब उस वीर ने खड्ग और धनुष के कर्म्म में उद्यम किया और अन्य शस्त्रों में जब वह बड़ा परिश्रमकर्ता हुआ १३ ॥

मू० ततोऽस्त्राणि स जग्राह भार्गवाद्भृगुसम्भवात् ।
विनयावनतो विप्र गुरोःप्रीतिपरायणः १४ ॥

टी० । तब विनय के साथ शिर झुकाकर और गुरू की प्रीति में परायण होकर भृगु से उपजे हुए शुक्राचर्य से अस्त्र विद्या पढ़ा १४ ॥

मू० गृहीतास्त्रः कृती वेदे धनुर्वेदस्य पारगः ।
निष्णातः सर्व्वविद्यासु स बभूव ततोयुवा १५ ॥

टी० । तब वह बालक सब अस्त्रों को ग्रहण करनेवाला और वेदों में पण्डित और धनुर्वेद का ज्ञाता और सब विद्याओं में निपुण होकर उसके बाद युवा हुआ १५ ॥

मू० विशालोऽपि सुतावार्त्तामुपलभ्याखिलामिमाम् ।
हर्षनिर्भरचित्तोऽभूद्दौहित्रस्य च योग्यताम् १६ ॥

टी०। राजा विशाल भी अपनी कन्या के इस सब वृत्तान्तको और अपने नाती की योग्यता सुनकर बहुत हर्षित हुये १६॥

मू० अथ राजा सुतसुतं दृष्ट्वा प्राप्तमनोरथः।
यज्ञाननेकान् निष्पाद्य दत्त्वा दानानि चार्थिनाम् १७॥

टी०। तत्पश्चात् महाराज करन्धम ने पोते को देखकर अपने मनोरथ को प्राप्त होकर बहुत यज्ञ करके याचकों को बहुत कुछदान दिया १७॥

मू० कृताशेषक्रियो युक्तः सर्वैर्धर्म्मतो महीम्।
परिपाल्यारिविजयी बलबुद्धिसमन्वितः १८॥

टी०। और सब कर्म करके छोटे राजाओं से युक्त होकर धर्म्मपूर्व्वक पृथ्वी का पालन किया और बल और बुद्धि से संयुत उन्होंने शत्रुओं को जीता १८॥

मू० स यियासुर्व्वनं पुत्रमवैक्षितमभाषत।
पुत्रवृद्धोऽस्मि गच्छामि वनं राज्यं गृहाण मे १९॥

टी०। कुछ काल व्यतीत होने पर वन में तपस्या करने को जाने की इच्छा वाले करन्धमने अवैक्षित से कहा कि हे पुत्र! अब मैं वृद्ध हुआ वन बास करूँगा तुम मेरी इस राज्य को ग्रहण करो १९॥

मू० कृतकृत्योऽस्मि नास्त्यन्यत् किञ्चित्त्वदभिषेचनात्।
सुनिष्पन्नमतो राज्यं त्वं गृहाण मयार्पितम् २०॥

टी०। मैं कृतकृत्य होचुका हूँ अब केवल राज्यतिलक तुमको देना यही एक काम बाकी है और सब करचुका इसवास्ते यह निष्कण्टक राज्य मैं तुम को देता हूँ ग्रहण करो २०॥

मू० इत्युक्तः पितरं प्राह सोऽवैक्षिन्नृपनन्दनः।
प्रश्रयावनतो भूत्वा यियासुं तपसे वनम् २१॥

टी०। इसप्रकार कहने पर राजकुमार अवैक्षित विनय युक्त नम्र होकर अपने वनवासाभिलाषी पिता से बोले २१॥

मू० नाहं तात करिष्यामि पृथिव्याः परिपालनम्।
नापैति ह्रीर्मे मनसो राज्येऽन्यं त्वं नियोजय २२॥

टी०। कि हे तात ! मैं पृथ्वी पालन नहीं करूँगा क्योंकि मेरे मनसे लज्जा नहीं जाती है इसलिये यह राज्य करने के वास्ते किसी दूसरे को आज्ञादीजिये २२॥

मू० तातेन मोक्षितोबद्धोनात्मवीर्य्यादहं यतः।
ततः कियत्पौरुषं मे पुरुषैः पाल्यते मही २३॥

टी०। जब मुझे समर में जीतकर राजाओं ने बांधलिया था तब आप जाकर छुड़ालाये थे जिससे मैं अपने बल से नहीं छूटा था इससे मेरे क्या पौरुष है जो पुरुष होते हैं वही पृथ्वीपालन करतेहैं २३॥

मू० योऽहं न पालनायालमात्मनोऽपि वसुन्धराम्।
सकथं पालयिष्यामि राज्यमन्यत्र विक्षिप २४॥

टी०। जो मैं अपनी आत्मा के पालन करने में समर्थ नहीं हूँ तो फिर पृथ्वीपालन किस प्रकार करूँगा इस वास्ते यह राज्य दूसरे किसी को देदीजिये २४॥

मू० सस्त्रीसधर्म्मःपुरुषोयश्चान्येनावद्रुह्यते।
आत्माऽमोहाय भवतोवन्धनाद्येन मोक्षितः॥
सोऽहं कथं भविष्यामि स्त्रीसधर्म्मा महीपतिः २५॥

टी०। वह पुरुष स्त्री के समान है जो दूसरे से हारजावै और आपने अपने पुत्र की ममताकरके मेरा बन्धन छुड़ाया है मैं तो वही स्त्रीधर्म्मा याने स्त्री के समान हूँ तो राज्य किसतरह करूंगा २५॥

पितोवाच॥

मू० न भिन्नएव पुत्रात्तु पिता पुत्रस्तथा पितुः।
नान्येन मोक्षितोवीर यस्त्वं पित्रा विमोक्षितः २६॥

टी०। इतनी बातें अवेक्षित की सुनकर उनके पिता बोले कि पुत्रसे पिता और उसी तरह पितासे पुत्र भिन्न नहीं है अर्थात् दोनों एक हैं हे वीर ! तुमको किसी दूसरे ने नहीं छुड़ाया मैंही तुम्हारे पिता ने तुमको छुड़ाया है २६॥

पुत्रउवाच॥

मू० हृदयं नान्यथा नेतुं मया शक्यं नरेश्वर।
हृदये ह्रीर्ममातीव यस्त्वहं मोक्षितस्त्वया २७॥

टी०। यह बातें पिता से सुनकर अवैक्षित बोले कि हे राजन्! मैं अपने मनको अन्यथा नहीं करसक्ताहूं आपने जो मुझको छुड़ाया इसी वास्ते मेरेरूप में लज्जा बहुत है २७॥

मू० पित्रोपात्तां श्रियं भुंक्ते पित्रा कृच्छ्रात्समुद्धृतः।
विज्ञायते च यः पित्रा मानवः सोऽस्तु नः कुले २८॥

टी०। जो पुरुष अपने पिता के सञ्चय कियेहुये धन से जीवन करता है और पिता के नाम से जानाजाता है और जो पिताके बल से कष्ट से छुड़ायाजाताहै ऐसा पुरुष मेरे कुलमें होवै २८॥

मू० स्वयमर्जितवित्तानां ख्यातिं स्वयमुपेयुषाम्।
स्वयं निस्तीर्णकृच्छ्राणां या गतिःसाऽस्तु मे गतिः २९॥

टी०। जो लोग अपना कमायाहुआ धन भोग करते हैं और अपने नामसे विख्यात होते हैं और अपने बल से अपना कष्ट छुड़ाते हैं ऐसे उन लोगोंकी जो गतिहै वही गति मेरी होवै २९॥

मार्कण्डेयउवाच॥

मू० इत्याह बहुशः पित्रा यदा प्रोक्तोऽप्यसौ मुने।
तदा तस्य सुतं राज्ये मरुत्तमकरोन्नृपः ३०॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे मुने! जब इसप्रकार अवैक्षित ने अपने पिता को बहुत समझाया और उनकी आज्ञा को न माना तब महाराज करन्धम ने अपने पौत्र मरुत्तनाम को राज्य दिया ३०॥

मू० सपित्रा समनुज्ञातं राज्यं प्राप्य पितामहात्।
चकार सम्यक्सुहृदामानन्दमुपपादयन् ३१॥

टी०। मरुत्त ने पिता की आज्ञा से पितामह का दियाहुआ राज्य पाकर मित्रों को आनन्द देतेहुये बहुत अच्छी तरह से राज्य किया ३१॥

मू० राजाकरन्धमश्चापि वीरामादाय तां तदा।
वनं जगाम तपसे यतवाक्कायमानसः ३२॥

टी०। और उससमय महाराज करन्धम भी अपनी वीरा महारानी को साथ लेकर वचन और शरीर और मन को रोंक तप करने के लिये वन को चलेगये ३२॥

मू० तत्र वर्षसहस्रं सतपस्तप्त्वा सुदुश्चरम्।
विहाय देहं नृपतिः शक्रस्याप सलोकताम् ३३॥

टी०। और उस वन में हजारवर्ष तक बड़ीकठिन तपस्या करके समय आने पर अपने शरीरको त्याग इन्द्रलोक में चलेगये ३३॥

मू० सास्य पत्नी तदा वीरा वर्षाणामपरं शतम्।
तपश्चचार विप्रर्षे जटिलामलपङ्किनी ३४॥

टी०। और हे विप्रर्षे! इनमहाराजकी भार्य्या वीरा महारानीने उस समय जटा धारणकर निर्मलहो सौवर्ष तक और भी तपस्याकिया ३४॥

मू० सालोक्यमिच्छती भर्त्तुः स्वर्गतस्य महात्मनः।
फलमूलकृताहारा भार्गवाश्रमसंश्रया॥
द्विजातिपत्नीमध्यस्था द्विजशुश्रूषणादृता ३५॥

टी०। फिर स्वर्ग में गयेहुये अपने महात्मा स्वामी के लोक में जाने की इच्छाकरके फल मूल आहार करतीहुई भार्गव मुनि के आश्रम पर जाकर ब्राह्मणियोंके बीच में रहकर और ब्राह्मणों की सेवा में आदर से प्रवृत्त रहकर तपस्या किया ३५॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेमरुत्तचरित्रेनामाष्टात्रिंशाधिक
शततमोऽध्यायः १२८॥

अथ एकसौउन्तीसवां अध्याय॥

क्रौष्टुकिरुवाच॥

मू० भगवन् विस्तरात् सर्व्वं ममैतत्कथितं त्वया।

करन्धमस्य चरितमवैक्षिच्चरितञ्च यत् १ ॥

टी०। इतनी कथा सुनकर क्रौष्टुकिजीने मार्कण्डेय मुनिसे कहा कि हे भगवन्! महाराज करन्धम और राजकुमार अवैक्षित का चरित्र तो आपने विस्तारपूर्वक मुझसे वर्णन किया १ ॥

मू० आवैक्षितस्य नृपतेर्मरुत्तस्य महात्मनः ।
श्रोतुमिच्छामि चरितं श्रूयते सोऽतिचेष्टितः २ ॥

टी०। परन्तु अब मैं अवैक्षित के पुत्र महाराज मरुत्त महात्मा की कथा को सुनना चाहता हूं कहिये मैं सुनता हूं कि महाराज मरुत्त बड़े कीर्तिमान् हुयेथे २ ॥

मू० चक्रवर्त्ती महाभागः शूरः कान्तोमहामतिः ।
धर्म्मविद्धर्म्मकृच्चैवं सम्यक्पालयिताभुवः ३ ॥

टी०। और उनमहाभाग व चक्रवर्त्ती व बड़े शूर तेजस्वी महाबुद्धिमान् और धर्म्म के ज्ञाता व धर्म्मकर्त्ता ने सम्यक्प्रकार से पृथ्वी का पालन किया था ३ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० सपित्रा समनुज्ञातं राज्यं प्राप्य पितामहात् ।
धर्म्मतः पालयामास पिता पुत्रानिवौरसान् ४ ॥

टी०। यह प्रश्न क्रौष्टुकिजी का सुनकर मार्कण्डेयजी बोले कि हे द्विज! उस मरुत्त ने अपने पितामह का दियाहुआ राज्य पिताकी आज्ञा से ग्रहणकरके पिताहो औरस पुत्रके समान धर्म्मयुक्त प्रजा का पालन कियाथा ४ ॥

मू० इयाज सुबहून् यज्ञान् यथावत्स्वाप्तदक्षिणान् ।
ऋत्विक्पुरोहितादेशरस्यचित्तोमहीपतिः ५ ॥

टी०। और उस मरुत्त महाराजने ऋत्विक् व पुरोहित के आदेश से हर्षपूर्व्वक बहुतसे यज्ञ करके ब्राह्मणों को बहुत सा दक्षिणा दिया ५ ॥

मू० तस्याप्रतिहतं चक्रमासीद्द्वीपेषु सप्तसु ।
गतिश्चास्य न विच्छिन्ना खपातालजलादिषु ६ ॥

टी०। और सातों द्वीप में उस मरुत्त महाराज का राज्य अभंग रहा और उस मरुत्त महाराज की गति आकाश, व पाताल इत्यादि सब जल थल में नहीं रुकती थी ६॥

मू० ततः प्राप्य धनं विप्रायथावत्स्वक्रियापराः।
अयजत् समहायज्ञैर्देवानिन्द्रपुरोगमान् ७॥

टी०। और उन्होंने महायज्ञ करके इन्द्रादिक देवताओं का पूजन किया और उन मरुत्त से धन पाकर ब्राह्मणलोग यथायोग्य अपने कर्म करते थे ७॥

मू० इतरे च तथा वर्णाःस्वे स्वे कर्म्मण्यतन्द्रिताः।
तदुपात्तधनाश्चक्रुरिष्टापूर्त्तादिकाःक्रियाः ८॥

टी०। और उनके राज्य में अन्य चारों वर्ण अपने२ वर्णाश्रम धर्म्ममें निरालसी होकर महाराज मरुत्त से धन लेकर यज्ञादिक व पूर्त याने कूप बावली की क्रिया करते थे ८॥

मू० पाल्यमाना मही तेन मरुत्तेन महात्मना।
पस्पर्द्ध त्रिदशावासवासिभिर्द्विजसत्तम ९॥

टी०। हे द्विजसत्तम! उस मरुत्त महात्माने सम्यक्प्रकार से पृथ्वी का पालनकिया और इन्द्रादिक सम्पूर्ण देवताओं को अपने ऐश्वर्य्य के आगे तुच्छ करकिया ९॥

मू० तेनातिशायिताः सर्वे केवलं न महीक्षितः।
यज्विना देवराजोऽपिशतयज्ञोपशङ्कितः १०॥

टी०। और उन मरुत्त ने केवल सब राजाओं को नहीं अपने ऐश्वर्य्य से हीन करदिया किन्तु यज्ञ करके इन्द्रको भी हीन करदिया १०॥

मू० ऋत्विक्तस्य तु संवर्तोबभूवाङ्गिरसः सुतः।
भ्राता बृहस्पतेर्विप्र महात्मा तपसां निधिः ११॥

टी०। और ऐ विप्रजी! उस महाराज मरुत्त की यज्ञ में ऋत्विक् अंगिरामुनिके पुत्र बृहस्पतिके भाई महात्मातपोनिधि संवर्त्तमुनि हुयेथे ११॥

मू० सौवर्णोमुञ्जवान्नाम पर्व्वतः सुरसेवितः

पातितं तेन तच्छृङ्गं हृतं तस्य महीपतेः १२॥

टी०। और महाराज मरुत्त मुञ्जवान्नाम पर्व्वत जो सुवर्ण का है औ जिसपर देवतालोग रहते हैं उस पर्व्वत का श्रृंग तोड़कर अपने यज्ञ में ले आये थे १२॥

मू० तेन यस्याखिलं यज्ञे भूमिभागादिकं द्विज।
प्रासादाश्च कृताः शुभ्रास्तपसा सर्व्वकाञ्चनाः १३॥

टी०। हे द्विज! उसी से स्वर्णमयी यज्ञभूमिभाग इत्यादि बनवाया और उसी सोनेसे अपनी यज्ञ की भूमि और उत्तम अटारियां बनवाईं १३॥

मू० गाथाश्चाप्यत्र गायन्ति मरुत्तचरिताश्रयाः।
सातत्येनर्षयः सर्व्वे कुर्व्वन्तोऽध्ययनं यथा १४॥

टी०। मरुत्त के इन चरित्रों को देखकर ऋषिलोग उसतरह बयानकरते थे कि जिसतरह ब्राह्मणलोग वेदपाठ करते हैं १४॥

मू० मरुत्तेन समोनाभूद्यजमानोमहीतले।
सदः समस्तं यद्यज्ञे प्रासादाश्चैव काञ्चनाः १५॥

टी०। यह कहते थे कि महाराज मरुत्त के समान यज्ञकरनेवाला कोई दूसरा इस पृथ्वी में नहीं हुआ कि जिसकी यज्ञ में सब यज्ञभूमि और अटारियां इत्यादि सब सुवर्ण की बनी हुईथीं १५॥

मू० अमाद्यदिन्द्रः सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः।
विप्राणां परिवेष्टारः शक्राद्यास्त्रिदशोत्तमाः १६॥

टी०। और जिसकी यज्ञ में इन्द्र सोमपान करके उन्मत्त होगये और ब्राह्मणोंको परसनेवाले इन्द्रादिक सुरोत्तमथे और ब्राह्मणलोग दक्षिणाओं से तृप्त होगये थे १६॥

मू० यथा यज्ञो मरुत्तस्य तथा कस्य महीपतेः।
सुवर्णमखिलं त्यक्तं रत्नपूर्णगृहैर्द्विजैः १७॥

टी०। जिसतरह मरुत्त के यज्ञ में ब्राह्मणों को दक्षिणा दियागया वैसा किसी राजा के समय में नहीं दियागया कि जिस दान करके ब्राह्म-

णों का घर रत्न से भरगया और सवर्ण को उसी यज्ञस्थान में सब ब्राह्मणों ने छोड़दिया १७॥

मू० प्रासादादिसमस्तञ्च सौवर्णं तस्य यत्कृतौ।
त्रयोवर्णाह्यलभन्त तस्मात्केचित्तथा ददुः १८॥

टी०। और उस यज्ञ में कोठे आदि जो सुवर्ण के बने थे उन्हीं सब यज्ञस्थानों का सुवर्ण और और वर्ण के लोग ढो ढो कर लेआये जिससे वे धनवान् होगये और उससे अनेक प्रकार के दान पुण्य किये १८॥

मू० तस्यैवं कुर्वतोराज्यं सम्यक्पालयतः प्रजाः।
तपस्वी कश्चिदभ्येत्य तमाह मुनिसत्तम १९॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे मुनिसत्तम! इस प्रकार उस महाराज मरुत्त के सम्यक्प्रकार से प्रजापालन व राज्य करतेहुये एक समय कोई तपस्वी आकर उनसे बोला १९॥

मू० पितुर्माता तवाह्वेदं दृष्ट्वा तापसमण्डलम्।
विषाभिभूतमुरगैर्मदोन्मत्तैर्नरेश्वर २०॥

टी०। कि हे महाराज! तुम्हारे पिता की माता अर्थात् तुम्हारी आजी ने तापसमण्डली को मदसे उन्मत्त सर्पों के विष से व्याकुल देखकर मेरे द्वारा जो कुछ तुमसे कहा है वह सुनो २०॥

मू० पितामहस्ते स्वर्यातः सम्यक् सम्पाल्य मेदिनीम्।
तपश्चरणशक्ताहमिहचौर्व्वाश्रमेस्थिता २१॥

टी०। कि तुम्हारे पितामह महाराज करन्धम सम्यक् प्रकारसे पृथ्वीपालन करके स्वर्ग को चलेगये और मैं और्व्वजी के आश्रम पर रहकर तप करतीहूं २१॥

मू० साऽहं पश्यामि वैकल्यं तव राज्यं प्रशासतः।
पितामहस्य तेनाभूद्यत्पूर्वेषाञ्च ते नृप २२॥

टी०। और हे राजन्! यहभी कहाहै कि तुम्हारे राज्य करतेहुये मैं उस विकलताको देखतीहूं जोकि तुम्हारे बाबा व पहलेवालोंके समयमें नथी २२

मू० नूनं प्रमत्तोभोगेषु सक्तोवाऽविजितेन्द्रियः।

भारान्धतेयं ततस्ते दुष्टादुष्टं न वेत्सि यत् २३ ॥

टी०। आप निश्चय करके भोग विलास में प्रमत्त हो या इन्द्रियों के वश्य होकर सदा भोग में आसक्त रहते हैं आप के भेदिहारूप नेत्र अन्धे होगये हैं क्योंकि साधु और दुष्ट को नहीं पहचानते हैं २३॥

मू० पातालादभ्युपेतैस्तु भुजगैर्मदशालिभिः।
दष्टामुनिसुताः सप्त दूषिताश्च जलाशयाः २४॥

टी०। और पाताललोक से मद से मस्त नागों ने आकर सात मुनिकुमारों को काटखाया है और सम्पूर्ण जलाशयों को विष से दूषित कर रक्खा है २४॥

मू० स्वेदमूत्रपुरीषेण दूषितञ्च हुतं हविः।
अपराधं समुद्दिश्य दत्तोनागबलिश्चिरात् २५॥

टी०। जोकि मुनिलोग बहुतदिनों से नागबलि देते हैं उसी अपराध के ऊपर नागों ने मुनियों के कियेहुये होम में और हविष्यान्नों में पसीना और मूत्र और विष्ठा डालकर सबको दूषित करादिया है २५॥

मू० एते समर्थामुनयोभस्मीकर्त्तुं भुजङ्गमान्।
किन्त्वेषान्नाधिकारोऽत्र त्वमेवात्राधिकारवान् २६॥

टी०। यद्यपि ये मुनिलोग सर्पों को भस्म करने की सामर्थ्य रखते हैं परन्तु उन लोगों को उनके भस्मकरने का अधिकार नहीं है इसमें अधिकार आपही को है २६॥

मू० तावत् सुखं भूपतिजैर्भोगजं प्राप्यते नृप।
अभिषेकजलं यावन्न मूर्द्ध्नि विनिपात्यते २७॥

टी०। हे नृप! राजकुमारलोगों को उसी समय तक भोग से उपजाहुआ सुख होता है जबतक उनको राजतिलक नहीं होता २७॥

मू० कानि मित्राणि कः शत्रुर्मम शत्रोर्बलं कियत्।
के हि मे मन्त्रिणः पक्षे के वा भूपतयोमम २८॥

टी०। राजतिलक होजाने पर राजा को यह समझनाचाहिये कि कौन मेरा शत्रु है और कौन मित्र है और मेरे शत्रुओं के पास कितनी सेना

है और मेरे पक्ष में कौन मंत्री हैं और मेरेसहायक कितने राजालोग हैं २८॥

मू० विरक्तोवापरैर्भिन्नः परेषामपि कीदृशः।
कः सम्यगत्र नगरे विषये वा जनोमम २९॥

टी०। और मेरे नगर व देश में कौन शत्रुओं में मिलाहै और कौन विरक्त है और शत्रुओं के मध्य में भी कौन कैसा मनुष्यहै २९॥

मू० धर्म्मकर्म्माश्रयी मूढः कः सम्यगपि वर्त्तते।
कोदण्ड्यः परिपाल्यः कः के वोपेक्ष्या नरा मया ३०॥

टी०। और कौन धर्म्म के कर्म्म में प्रवृत्त है और कौन मूढ़ है और कौन दण्ड देनेयोग्य है और कौन पालनकरनेयोग्य है और किन मनुष्यों को मुझे छोड़ना चाहिये ३०॥

मू० मन्त्रभेदभयादत्र देशकालमवेक्षता।
चारांश्चचारयेदन्यैरज्ञातान् भूपतिश्चरैः ३१॥

टी०। व देश व समय को देखतेहुये राजाको मंत्र (सलाह) के भेद के डर से ये सब बातें विचारना चाहिये व दूसरे भेदिहों से न जानेहुये चरों को राजा देश में फिरावै ३१॥

मू० सचिवादिषु सर्व्वेषु चरान्दद्यान्महीपतिः।
इत्यादौ भूपतिर्नित्यं कर्म्मण्यासक्तमानसः ३२॥

टी०। और दीवान् और मन्त्री इत्यादि की भी खबर लेने के वास्ते भेदिहा मनुष्योंको नियत करनाचाहिये और इन सब कामों में राजा लोगों को सदैव जी लगाना चाहिये ३२॥

मू० नयेद्दिनं तथा रात्रिं न तु भोगपरायणः।
राज्ञां शरीरग्रहणं न भोगाय महीपते ३३॥

टी०। और राजा इन्हीं कामों में दिन रात व्यतीत करै व राजा को भोग में आसक्त न रहना चाहिये हे महाराज! राजालोगों को शरीर धारण करना भोग करने के वास्ते नहीं है ३३॥

मू० क्लेशाय महते पृथ्वी स्वधर्म्मपरिपालने।
सम्यक् पालयतः पृथ्वीं स्वधर्म्मञ्च महीपतेः ३४॥

टी०। अपने धर्मके परिपालनमें पृथ्वी बड़े क्लेशके लिये होती है व पृथ्वी तथा अपने धर्मको पालन करतेहुये राजा को ३४॥

मू० इह क्लेशोमहान्स्वर्गे परमं सुखमक्षयम्।
तदेतदवबुध्य त्वं हित्वा भोगान्नरेश्वर ३५॥

टी०। हे महाराज! इसलोकमें बड़ा क्लेशहोताहै परन्तु स्वर्गमें बहुत सुख होता है और वह सुख सदा बना रहता है इससे आपको चाहिये कि भोगको त्यागकरके इन बातों को सदा समझे रहिये ३५॥

मू० पालनाय क्षितेः क्लेशमङ्गीकर्त्तुमिहार्हसि।
इतिवृत्तमृषीणां यद्व्यसनं त्वयि शासति ३६॥

टी०। और पृथ्वी के पालन के लिये आपको क्लेश उठाना चाहिये यही वृत्तान्त है व आप के राज्य करतेहुये जो ऋषिलोगों को कष्ट हुआ है ३६॥

मू० भुजङ्गहेतुकं भूप चारान्धोनापि वेत्सि तत्।
बहुनात्र किमुक्तेन दुष्टे दण्डोनिपात्यताम् ३७॥

टी०। हे महाराज! उसका कारण सर्पहै आप राज्य की खबर रखने में भेदिहों से अन्धे हो क्योंकि सर्पों के काटने से मुनि पुत्रों के उस वृत्तान्त को नहीं जानते हो अब मैं और कहांतक कहूं यही कहताहूं कि दुष्टों को दण्डदीजिये ३७॥

मू० शिष्टान्पालय राजेंस्त्वं धर्म्मषड्भागमाप्स्यसि।
अरक्षं पापमखिलं दुष्टै रविनयात्कृतम् ३८॥

टी०। व हे राजन्! अच्छेलोगों को पालनकीजिये जिससे उनलोगों के कियेहुये धर्म्म में से छठा भाग आपको भी मिलै और जो आप उन लोगों की रक्षा न कीजियेगा तो दुष्ट लोग विनय छोड़कर जो जो पाप करेंगे वह सब पाप ३८॥

मू० समवाप्स्यस्य संदिग्धं यदिच्छसि कुरुष्व तत्।
एतन्मयोक्तं सकलं यत्तवाह पितामही॥
कुरुष्वैवं स्थिते यत्ते रोचते वसुधाधिप ३९॥

टी०। आपको प्राप्त होगा इसमें कुछ सन्देह नहीं है अब इसमें जैसा

जी चाहै वैसा कीजिये आपकी पितामही ने जो कुछ मुझको आप से कहदेने को कहाथा वह मैं ने आप से कहदिया है राजन्! ऐसा स्थित होनेपर अब आपको अख्तियारहै जो तुमको भला मालूमहो वहकरो ३६॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेमरुत्तचरित्रेनामैकोनत्रिंशाधिकशत तमोऽध्यायः॥ १२६॥

अथ एकसौ तीसका अध्याय॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० इति तापसवाक्यं सश्रुत्वा लज्जापरो नृपः।
धिङ्मां चारान्धमित्युक्त्वा निश्वस्य जगृहे धनुः १॥

टी०। मार्कण्डेय मुनि कहतेहैं कि हे क्रौष्टुकि! यह सब बातें तपस्वी के मुख से सुनकर महाराज मरुत्त लज्जित होकर बोले कि मुझ चारान्ध को धिक्कार है यह कह और लम्बी श्वास लेकर धन्वा उठालिया १॥

मू० ततः स त्वरितं गत्वा तमौर्व्वस्याश्रमं प्रति।
ववन्दे शिरसा वीरां मातरं पितुरात्मनः २॥

टी०। उसके बाद शीघ्रही वहांसे चलकर औव्वेमुनि के आश्रम पर पहुँचकर अपनी पितामही वीरा को शिर झुकाकर प्रणाम किया २॥

मू० तापसांश्च यथान्यायं तैश्चाशीभिरभिष्टुतः।
दृष्ट्वा च तापसान् सप्तनागैर्दष्टान्सुतान्भुवि ३॥

टी०। और तपस्वीलोगों को भी न्यायपूर्व्वक प्रणाम किया तपस्वी लोगों ने इनको आशीर्व्वाद देकर इनकी स्तुति की तत्पश्चात् मरुत्त महाराज ने वहां पर सात तपस्वी कुमारों को सर्प के काटने से मरे हुये भूमि में पड़े देखकर ३॥

मू० निनिन्दात्मानमसकृत् पुरस्तेषां महीपतिः।
उवाच चैतदद्याहं महीय्यमवमन्यताम् ४॥

टी०। उनके आगे बारम्बार अपने को धिक्कार किया और राजाने यह कहा कि आज मेरे बल और पराक्रम को निरादर करने वाले ४॥

मू० यत्करोमि भुजङ्गानां दुष्टानां ब्राह्मणद्विषाम् ।
तत्पश्यतु जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ५ ॥

टी० । व ब्राह्मणों के द्रोही दुष्ट नागों की जो दशा करता हूं उसको देवता और असुर और मनुष्यों समेत सब जगत् देखै ५ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० इत्युक्त्वा जगृहे कोपादस्त्रं संवर्त्तकं नृपः ।
नाशायाशेषनागानां पातालोर्व्वीविचारिणाम् ६ ॥

टी० । मार्कण्डेय मुनि कहते हैं कि यह क्रोध से कहकर महाराज मरुत ने पाताल और पृथ्वी में फिरने वाले नागों को नाश करनेके वास्ते संवर्त्त नाम हथियार उठा लिया ६ ॥

मू० ततो जज्वाल सहसा नागलोकसमन्ततः ।
महास्त्रतेजसा विप्र दह्यमानो निवारितः ७ ॥

टी० । हे विप्रजी ! महाराज मरुत्त के अस्त्र उठाते ही अचानक उस बड़े अस्त्र के तेज से नागलोक में जो बहुत विस्तारित था आग लग गई यद्यपि नागलोगों ने उस आगके बुझाने का बहुत यत्न किया परन्तु वह आग न बुझसकी किन्तु चारोंओर से नागलोक जलने लगा ७ ॥

मू० हा हा तातेति हा मातर्हाहा वत्सेति सम्भ्रमे ।
तस्मिन्नस्त्रकृते वाचः पन्नगानामथाभवन् ८ ॥

टी० । उस समय अस्त्र के तेज के भय से सब नाग घबरा कर हाय तात ! हाय माता ! हाय वत्स ! ऐसा कह कह कर चिल्लाने लगे ८ ॥

मू० केचिज्ज्वलद्भिः पुच्छाग्रैः फणैरन्यभुजङ्गमाः ।
गृहीतपुत्रदाराश्च त्यक्ताभरणवाससः ९ ॥

टी० । और उस अग्नि से किसी नाग की पूँछ और किसी का फण जल गया तब भूषण और वस्त्र छोड़कर नंगे होकर अपने अपने पुत्र औ स्त्रियों को साथ लेकर ९ ॥

मू० पातालमुत्सृज्यययुः शरणं भामिनीं तदा ।
मरुत्तमातरं पूर्वं ययादत्तं तदाऽभयम् १० ॥

टी० । उस वक्त पाताल से निकलकर मरुत्त महाराज की माता अर्थात् भामिनी की शरण में प्राप्त हुये जिसने उस समय अपने पुत्र से रक्षा कराने का वचन सब नागों को दिया था १० ॥

मू० तामुपेत्योरगाः सर्व्वे सप्रणामं भयातुराः ।
सगद्गदमिदं प्रोचुः स्मर्य्यतां नः पुरोदितम् ११ ॥

टी० । उनकी अर्थात् भामिनी की शरण में प्राप्त होकर भयसे आतुर सब नाग लोग यह गद्गद वचन बोले कि आपने जो वचन पहिले हम लोगों से कहा था उसको स्मरण कीजिये ११ ॥

मू० प्रणम्याभ्यर्च्चितं पूर्व्वं यदस्माभी रसातले ।
तस्य कालोऽयमायातस्त्राहिवीर प्रजायिनि १२ ॥

टी० । हे वीर को पैदा करने वाली ! जब हमलोगों ने आप को रसातल में लेजाकर आपकी स्तुति और पूजा की थी और अपना सब वृत्तान्त कहाथा तब आप ने अपने पुत्र से अभय रहने को हमलोगों को वचन दिया था अब आप के उस वचन पूरा करने का यह समय आया है हम सब की रक्षा कीजिये १२ ॥

मू० पुत्रो निवार्य्यतां राज्ञि प्राणैः साय्योज्यमस्तु नः ।
दह्यते सकलो लोको नागानामस्त्रवह्निना १३ ॥

टी० । हे महारानी ! अब आप अपने पुत्र (अर्थात् मरुत्त) को मना कीजिये और हम सब के प्राण बचाइये क्योंकि उनके अस्त्र की अग्नि से सब नागलोक भस्म हुआजाता है १३ ॥

मू० एवं संदह्यमानानामस्माकं तनयेन ते ।
त्वामृते शरणं नान्यत् कृपां कुरु यशस्विनि १४ ॥

टी० । इस प्रकार आप के पुत्र से जलते हुये हमलोगों को सिवाय आप के और कोई बचानेवाला नहीं है इस लिये ! हे महारानी ! हम लोगों पर कृपा कीजिये १४ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० इति श्रुत्वा वचस्तेषांसंस्मृत्यादौ च भाषितम् ।
भर्त्तारमाह सा साध्वीससम्भ्रममिदंवचः १५ ॥

टी०। मार्कण्डेय मुनि कहतेहैं यह वचन नागों का सुनकर और उन सभों से जो वचन आगे कहाथा उसको स्मरण करके महारानी भामिनी अपने स्वामी अवेक्षित से बोलीं १५॥

मू० पूर्व्वमेव तवाख्यातं पाताले यद्भुजङ्गमैः।
प्रोक्तमभ्यर्थनापूर्व्वं ममासीत्तनयं प्रति १६॥

टी०। कि पाताल में नागों के मांगने से जो वचन मैं उन सभों को दे आई हूं उसको पहले ही आप से कह चुकी हूं कि मेरे पुत्र से उन लोगों को भय न होगा १६॥

मू० त इमेऽभ्यागता भीता दह्यन्ते तस्य तेजसा।
मामेते शरणं पूर्व्वं दत्तमेभ्यो मयाऽभयम् १७॥

टी०। अब वही ये नागलोग मेरे पुत्र के तेज से जलते हैं उसी डर से मेरी शरण में आये हैं व पहले भी शरण में आये थे क्योंकि मैंने उन लोगों से कहा था कि तुम लोग अभय रहो १७॥

मू० ये मां शरणमापन्नास्तेत्वां शरणमागताः।
अपृथग्धर्म्मचरणा याताहं शरणं तव १८॥

टी०। जो लोग मेरी शरण में हैं वह आप की भी शरण में हैं और मैं भी तो आपही की शरणमेंहूं व आपका और मेराधर्म्माचरण एकहीहै १८॥

मू० तन्निवारयपुत्रंत्वं मरुत्तं वचनात्तव।
मयाचाभ्यर्थितोऽवश्यं शममभ्युपयास्यति १९॥

टी०। इसलिये आप मरुत्त को मना कर दीजिये आपका कहना वह मानैं गे और आप के कहने पर जब मैं भी याचना करूंगी तो अवश्य उनका क्रोध शान्त होजायगा १९॥

राजोवाच॥

मू० महापराधे नियतं मरुत्तः क्रोधमागतः।
दुर्निर्व्वर्त्यमहं मन्ये तस्य क्रोधं सुतस्य ते २०॥

टी०। अवेक्षित ने कहा कि यह निश्चय है कि नागों का बड़ा अपराध देखकर मरुत्त को क्रोध हुआ है तुम्हारे उस पुत्रका वह क्रोध मना करने से शान्त नहीं होसक्ता मैं यह मानती हूं २०॥

नागा ऊचुः ॥

मू० शरणागतास्तव वयं प्रसादः क्रियतां नृप।
क्षतस्यार्त्तपरित्राणे निमित्तं शस्त्रधारणम् २१॥

टी०। नागलोग बोले कि हे महाराज! हमलोग आप की शरण में आये हैं आर्त्तजन की रक्षा करने के वास्ते क्षत्रीलोग शस्त्र धारण करते हैं २१॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० नागानां तद्वचः श्रुत्वा भीतानां शरणैषिणाम्।
तया चाभ्यर्थितः पत्न्या प्राह वैक्षिन्महायशाः २२॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि शरण में आये व डरे हुये नागों का वह वचन सुनकर अपनी स्त्री से कहे हुये बड़े यशस्वी अवैक्षित बोले २२॥

मू० गत्वा ब्रवीमितं भद्रे तनयं त्वरयातव।
परित्राणाय नागानां न त्याज्याः शरणागताः २३॥

टी०। कि हे भद्रे! मैं अभी जल्दी से जाकर नागों की रक्षा के वास्ते मरुत्त से कहता हूं कि जो कोई अपनी शरण में आवै उसको त्याग न करना चाहिये २३॥

मू० नोपसंहरते शस्त्रं यदि मद्वचनान्नृपः।
तदस्त्रैर्व्वारयिष्यामि तस्यास्त्रं तनयस्यते २४॥

टी०। यदि राजा मरुत्त मेरे कहने से अपने संवर्त्तक अस्त्र को नहीं खींच लेंगे तो मैं अपने अस्त्र से तुम्हारे पुत्र मरुत्त के अस्त्र को शान्त कर दूंगा २४॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० ततो गृहीत्वा सधनुरवैक्षित् क्षत्रियोत्तमः।
भार्य्यया सहितः प्रायात्त्वरावान् भार्गवाश्रमम् २५॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि इसके उपरान्त बेगवान् अवैक्षित धन्वा लेकर अपनी स्त्री अर्थात् भामिनी सहित और्व्वमुनिके आश्रमपर गये २५॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेमरुत्तचरितेनामत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः १३०॥

अथ एकसौ इकतीसका अध्याय ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० सतु तत्र सुतं दृष्ट्वा गृहीतवरकार्मुकम् ।
धनुष्यस्त्रं च तस्योग्रं ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् १ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि महाराज मरुत्तको उत्तम धनुष लिये हुये और ज्वालासे सब दिशाओं को व्याप्त करते हुये उनके धनुषमें उग्र अस्त्र को देख कर १ ॥

मू० उद्गिरन्तं महावन्हिं दीपिताखिलभूतलम् ।
पातालान्तर्गतं प्राप्तमसह्यं घोरभीषणम् २ ॥

टी०। जो अस्त्र कि महा अग्नि उगलता और पृथ्वी को प्रकाशित करता हुआ व पाताल के भीतर तक प्राप्त और दुस्सह और बड़ा भयानक था २ ॥

मू० स तं दृष्ट्वा महीपालं भ्रुकुटी कुटिलाननम् ।
माक्रुधस्त्वं मरुत्तास्त्रमुपसंह्रियतामिति ३ ॥

टी०। और महाराज का मुख अत्यन्त क्रोध से टेढ़ी भ्रुकुटी के साथ देखकर अवीक्षित महाराज मरुत्तसे यह बोले कि हे मरुत्त! क्रोध मत करो अपना अस्त्र खींचलो ३ ॥

मू० प्राहासकृत् त्वरालुप्तवर्णक्रम मुदारधीः ।
स निशम्य गुरोर्वाक्यं दृष्ट्वा तञ्च पुनःपुनः ४ ॥

टी०। उदार बुद्धि वाले अवीक्षित् ने जल्दी के सबबसे लुप्त अक्षरों के क्रम वाले वचनको बार २ कहा यह बात पिताकी सुनकर और पिताको बार २ देखकर महाराज मरुत्त ४ ॥

मू० गृहीतकार्मुकः पित्रोः प्रणिपत्य सगौरवम् ।
प्रत्युवाचापराद्धामे सुभृशं पन्नगाः पितः ५ ॥

टी०। धन्वा लिये हुये अपने पिता और माता के चरणों को गौरव समेत प्रणाम करके बोले कि हे पिता जी! इन नागों ने मेरा बड़ा अपराध किया है ५ ॥

मू० शासतीमां मयि महीं परिभूय बलं मम ।
सप्ताश्रममुपागम्य दष्टा मुनिकुमारकाः ६ ॥

टी० । इसपृथ्वी को मुझे पालन करते हुये मेरे पराक्रम का कुछ भय न करके मुनियों के अश्रम में आकर सात मुनि कुमारों को नागों ने काट खाया है ६ ॥

मू० ऋषीणामाश्रमस्थानाममीषामवनीपते ।
मयि शासति दुर्वृत्तैर्दूषितानि हवींषि च ७ ॥

टी० । सिवाय इसके मेरे राज्य करते हुये इन आश्रमवासी ऋषियों के हविष्यों को इन दुष्टों ने मूत्र इत्यादि से दूषित कर दिया है ७ ॥

मू० जलाशयास्तथाप्येतैः सर्व्व एव हि दूषिताः ।
तदेतत्कारणं किञ्चिन्नवक्तव्यं त्वया पितः ॥
न निवारयितव्योऽहं ब्रह्मघ्नान् प्रतिपन्नगान् ८ ॥

टी० । और इन्हों ने सबही जलाशयों को अपने विष से दूषित कर दिया है इन नागों को भस्म कर देने का यही कारण है हे पिता जी ! इसमें आप कुछ न बोलिये और इनब्रह्मघाती नागोंको मारनेसे मुझे मना न करना चाहिये ८ ॥

अवीक्षिदुवाच ॥

मू० यद्येभिर्निहता विप्रा यास्यन्ति नरकं मृताः ।
ममैतत्क्रियतां वाक्यं विरमास्त्रप्रयोगतः ९ ॥

टी० । इतना कहनामहाराज मरुत्तका सुनकर अवीक्षित बोले कि जब नागों के डसने से सब ब्राह्मण नरक में जायँगे तो तुमको उन नागों के मारने से क्या फल मिलेगा ऐसा उपाय करना चाहिये कि जिसमें ये सब मुनिकुमारजी उठैं मेरा कहना मानों कि अपना अस्त्र अब तुम खींचलो ९ ॥

मरुत्त उवाच ॥

मू० नाहमेषां क्षमिष्यामि दुष्टानामपराधिनाम् ।
अहमेव गमिष्यामि नरकं यदि पापिनाम् ॥
न निग्रहे यतान्ध्येषां मां निवारय मा पितः १० ॥

टी०। यह सुनकर मरुत्त महाराज बोले कि जो मैं भी नरकमें जाऊँ तो जाऊँ परन्तु इन दुष्ट अपराधी नागों का अपराध मैं क्षमा नहीं कर सक्ता और इनके पकड़ने की भी यत्न नहीं करताहूँ इन सभों को अवश्य मारूँगा आप मुझको मना न कीजिये १० ॥

अवैक्षिदुवाच ॥

मू० मामेते शरणं प्राप्ताः पन्नगा मम गौरवात् ।
उपसंह्रियतामस्त्रमलं कोपेन ते नृप ११ ॥

टी०। अवैक्षित् ने कहा कि ये नाग लोग मेरी शरण में आये हैं हे राजन्! मेरे गौरव से अब तुम अपना अस्त्र खींच लो वृथा कोप क्यों करते हो ११ ॥

मरुत्त उवाच ॥

मू० नाहमेषां क्षमिष्यामिदुष्टानामपराधिनाम् ।
स्वधर्म्ममुल्लंघ्य कथं करिष्यामि वचस्तव १२ ॥

टी०। मरुत्त ने कहा कि मैं इन दुष्ट अपराधियों का अपराध क्षमा न करूँगा और अपना धर्म्म छोड़कर आपकी बात किसतरह करूँगा १२ ॥

मू० दण्ड्ये निपातयन् दण्डं भूपः शिष्टांश्च पालयन् ।
पुण्यलोकानवाप्नोति नरकांश्चाप्युपेक्षकः १३ ॥

टी०। राजा का यही धर्म्म है कि दण्ड देनेयोग्य को दण्ड दे और साधुका पालन करै जो राजा ऐसा करता है उसको पुण्यलोक प्राप्त होता है और जो ऐसा नहीं करता है वह नरक में जाता है १२ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० एवं स बहुशः पित्रा वार्य्यमाणो यदा सुतः ।
नोपसंहरते सोऽस्त्रं ततोऽसौ पुनरब्रवीत् १४ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि जब इसतरह राजा अवैक्षित् से बहुत मना कियेहुए महाराज मरुत्त ने अपना अस्त्र नहीं खींचलिया तब फिर अवैक्षित् बोले १४ ॥

मू० हिंससे पन्नगान् भीतान् ममैतान्च्छरणं गतान् ।
वार्य्यमाणोऽपि तस्मात्ते करिष्यामि प्रतिक्रियाम् १५ ॥

टी० । कि यदि तुम मेरे मना करने पर भी मेरी शरण में आये हुये नागों को मारते हो तो मैं तुम्हारे वास्ते भी ऐसा उपाय करूंगा कि जिस- में नाग लोग न मरें १५ ॥

मू० मयाप्यस्त्राण्यवाप्तानि न त्वमेकोऽस्त्रविद्भुवि ।
ममाग्रतः सुदुर्वृत्त पौरुषञ्च कियत्तव १६ ॥

टी० । मैंभी अस्त्रविद्या जानता हूँ कुछ एक तुम्हीं अस्त्रविद्या के ज्ञाता पृथ्वी पर नहीं हो हे दुष्ट ! हमारे आगे तेरा कितना बल है १६ ॥

मू० ततः कार्मुकमारोप्य कोपताम्रविलोचनः ।
अवीक्षिदस्त्रं जग्राह कालस्य मुनिपुङ्गव १७ ॥

टी० । उसके बाद हे मुनि श्रेष्ठ ! अवेक्षित् के दोनोंनेत्र क्रोध से ताम्र सदृश लाल होगये और शीघ्रता से धन्वा को चढ़ाकर कालास्त्र उठालिया १७ ॥

मू० ततो ज्वालापरीवारमरिसंघघ्नमुत्तमम् ।
कालास्त्रन्तु महावीर्य्यं योजयामास कार्मुके १८ ॥

टी० । फिर महाज्वाला युक्त व शत्रुसमूह के संहार करनेवाले व बड़े पराक्रमवाले उत्तम कालास्त्र को धन्वा पर चढ़ा लिया १८ ॥

मू० ततश्चुक्षोभ जगती संवर्त्तास्त्रप्रतापिता ।
साब्धिशैलाखिलाविप्र कालस्यास्त्रे समुद्यते १९ ॥

टी० । हे विप्र ! उसकेबाद अवेक्षित् के कालास्त्र उठाने पर संवर्त्तक अस्त्र से तप्त हुई सम्पूर्ण पृथ्वी समुद्र और पर्व्वत सहित कांप उठी १९ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० कालास्त्रमुद्यतं पित्रा मरुत्तः सोऽपिवीक्ष्य तत् ।
प्राहोच्चैरस्त्रमेतन्मे दुष्टशास्ति समुद्यतम् २० ॥

टी० । इतनी कथा कहकर मार्कण्डेयजी फिर कहनेलगे कि हे क्रौष्टुकि! अपने पिता को कालास्त्र उठाये हुये देखकर वे महाराज मरुत्तभी ऊंचे स्वर से बोले कि मैंने दुष्ट के मारने के वास्ते यह अस्त्र चलाया है २० ॥

मू० न त्वद्वधाय कालास्त्रं मयि मुञ्चति किं भवान् ।

सद्धर्मचारिणि सुते सदैवाज्ञाकरे तव २१ ॥

टी०। आपके मारने केवास्ते नहीं चलाया है आप क्यों मुझको मारने के वास्ते कालास्त्र चलाते हैं जो मैं आपका पुत्र सदा आपकी आज्ञा मानता आयाहूं और उत्तम धर्मकारी हूँ २१ ॥

मू० मया कार्य्यं महाभाग प्रजानां परिपालनम्।
त्वयैवं क्रियते कस्मान्मद्वधायास्त्रमुद्यतम् २२ ॥

टी०। हे महाभाग ! मुझको प्रजाओं का पालन करना है आप ऐसा क्यों करते हैं कि मुझको मारने केवास्ते कालास्त्र किसलिये उठातेहैं २२ ॥

अवेक्षिदुवाच ॥

मू० शरणागतसंत्राणं कर्त्तुं व्यवसिता वयम्।
तस्य व्याघातकर्त्ता त्वं न मे जीवन्विमोक्ष्यसे २३ ॥

टी०। अवेक्षित् ने कहा कि मैं शरण आये हुये नागों की रक्षा करना चाहता हूँ और तुम उनके मारने से बाज नहीं आते तो तुमभी मुझसे जीते न छूटोगे २३ ॥

मू० मां वा हत्वास्त्रवीर्य्येण जहि दुष्टानिहोरगान्।
त्वां वा हत्वाऽहमस्त्रेण रक्षिष्यामि महोरगान् २४ ॥

टी०। या तो पहले मुझको अपने अस्त्र के बलसे मारकर फिर यहां दुष्ट नागोंको मारो या मैं तुमको कालास्त्र से मारकर नागों की रक्षाकरूंगा २४॥

मू० धिक्तस्य जीवितं पुंसः शरणार्थिनमागतम्।
यो नार्त्तमनुगृह्णाति वैरिपक्षमपि ध्रुवम् २५ ॥

टी०। जो शत्रु पक्षवाला भी शरण में आवै तो उसपर अनुग्रह करना चाहिये जो कोई ऐसा न करै तो उस पुरुष के जीने पर धिक्कार है २५ ॥

मू० क्षत्रियोऽहमिमे भीताः शरणं मामुपागताः।
अपकर्त्ता त्वमेवैषां कथं वध्यो न मे भवान् २६ ॥

टी०। मैं क्षत्री हूँ और ये सबनाग भयभीत होकर मेरी शरण में आये हैं और तुम इन सबको मारना चाहते हो तो क्योंकर तुम मेरेमारने योग्य नहीं हो २६ ॥

मरुत्त उवाच ॥

मू० मित्रं वा बान्धवो वाऽपि पिता वा यदि वा गुरुः ।
प्रजापालनविघ्नाय यो हन्तव्यः स भूभृता २७ ॥

टी० । मरुत्त ने कहा कि प्रजापालन करने में मित्र या भाई या पिता या गुरू जो कोई विघ्न करै उसे राजाको मारना उचित है २७ ॥

मू० सोहन्ते प्रहरिष्यामि न क्रोद्धव्यं त्वया पितः ।
स्वधर्म्मः परिपाल्यो मे न मे क्रोधस्तवोपरि २८ ॥

टी० । हे पिताजी ! मैं इसीवास्ते तुम्हारे ऊपर प्रहार करूंगा आप क्रोध न कीजिये मुझको अपना धर्म्म पालन करना है आप पर मेरा क्रोध नहीं है २८ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० ततस्तौ निश्चितौ दृष्ट्वा परस्परवधं प्रति ।
समुपेत्यान्तरे तस्थुर्मुनयो भार्गवादयः २९ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी कहते हैं कि उसके बाद राजा अवेक्षित् और महाराज मरुत्त को आपस में मरने और मारने पर निश्चयकिये देखकर भार्गव आदि मुनिलोग उस जगह आकर बीचमें खड़े होगये २९ ॥

मू० ऊचुश्चैनन्न मोक्तव्यं त्वयास्त्रं पितरं प्रति ।
त्वयाच नायं हन्तव्यः पुत्रः प्रख्यातचेष्टितः ३० ॥

टी० । और कहने लगे कि हे मरुत्त ! तुमको इस पिता के ऊपर अस्त्र चलाना न चाहिये और अवेक्षित् को भी समझाया कि विख्यात कीर्ति वाले इस पुत्रको न मारना चाहिये ३० ॥

मरुत्त उवाच ॥

मू० मया दुष्टा निहन्तव्याः सन्तो रक्ष्या महीक्षिता ।
इमे च दुष्टा भुजगाः कोऽपराधोऽत्र मे द्विजाः ३१ ॥

टी० । यह बात मुनियों से सुनकर मरुत्त बोले कि हे मुनिलोगो ! मैं राजाहूं मुझको साधुओं की रक्षा करना और दुष्टों को मारना उचित है और ये नाग लोग दुष्ट हैं इनको मैं मारता हूँ तो भला आपही बतलाइये कि इस में मेरा क्या अपराध है ३१ ॥

अवैक्षिदुवाच ॥

मू० शरणागतसन्त्राणं मयाकार्यमयञ्च मे।
अपराधी सुतो विप्रा योहन्ति शरणागतान् ३२॥

टी०। मरुत्त के इतना कहने पर अवैक्षित् भी मुनि लोगों से बोले कि हे मुनि लोगो! शरण में आनेवालों की रक्षा करना मुझको अवश्य है और यह मेरा पुत्र उन शरणागतों को मारता है इसवास्ते मैं भी इस अपराधी को मारना चाहता हूं ३२॥

ऋषय ऊचुः॥

मू० इमे वदन्ति भुजगास्त्रासलोलविलोचनः।
संजीवयामस्तान् विप्रान् ये दष्टा दुष्टपन्नगैः ३३॥

टी०। राजा अवैक्षित् और महाराज मरुत्त का कहना सुनकर ऋषि लोग बोले कि यह सब नागलोग भयसे चंचल नेत्र होकर कहते हैं कि जो ब्राह्मण लोग दुष्ट नागों के काटने से मर गये हैं उनको हम अभी जिलाये देते हैं ३३॥

मू० तदलं विग्रहेणोभौ राजवर्य्यौ प्रसीदताम्।
उभावपि विनिर्मूढ प्रतिज्ञौ धर्म्मकोविदौ ३४॥

टी०। तो राजाओं में श्रेष्ठ आप लोग किस वास्ते आपुस में लड़तेहैं प्रसन्न हूजिये आप दोनों भी राजपुत्र धर्म्मज्ञानी हैं परन्तु मूर्खता से प्रतिज्ञा किये हुये हैं ३४॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० सा तु वीरा समभ्येत्य पुत्रमेतदभाषत।
मद्वाक्यादेष ते पुत्रो हन्तुं नागान् कृतोद्यमः ३५॥

टी०। इतनी कथा कहकर मार्कण्डेयजी बोले उस समय अवैक्षित्की माता वीरा महारानी भी वहां आकर पुत्रसे कहने लगीं कि तुम्हारे पुत्र मरुत्त मेरे कहने से नागों के मारने पर उपस्थित हुये हैं ३५॥

मू० तन्निष्पन्नं यदा विप्रास्ते जीवन्ति यथा मृताः।
संजीवनात्ते मुच्यन्ते येयुष्मच्छरणं गताः ३६॥

टी० । जिस तरह से वे मरे हुये ब्राह्मण लोग जी उठें वह यत्न जब सिद्ध होवे तब वे नाग लोग जो तुम्हारी शरण मेंहैं जीते हुये छोड़ दिये जावें ३६ ॥

भामिन्युवाच ॥

मू० अहमभ्यर्थिता पूर्व्वमेभिः पातालसंश्रयैः ।
तन्निमित्तमयं भर्त्ता मयात्र विनियोजितः ३७ ॥

टी० । तत्पश्चात् भामिनी भी उस जगह आकर अपने पुत्र मरुत्त से बोली कि इन नाग लोगों ने पाताल में मुझ से याचना करके तुमसे क्षमा करानेका वचन ले लिया है इस वास्ते तुम्हारे पिताको मैं यहां लेआईहूँ ३७॥

मू० तदेतदार्ये निवृत्तमुभयोरपि शोभनम् ।
मम भर्त्तुश्च पुत्रस्य त्वत्पौत्रस्यात्मजस्य च ३८ ॥

टी० । हे आर्ये ! इसलिये मेरे स्वामी और पुत्रको अर्थात् तुम्हारे पुत्र और पौत्र को युद्ध से निवृत्त होजाना दोनों को भी अच्छा है ३८ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० ततः संजीवयामासुस्तान् विप्रांस्ते भुजङ्गमाः ।
दिव्यैरौषधिजातैश्च विषसंहरणेन च ३९ ॥

टी० । मार्कण्डेयमुनि कहते हैं कि तत्पश्चात् नागलोगों ने मरेहुये ब्राह्मणों को दिव्य औषधियों का रस पिलाकर और विष संहरण मन्त्र से झाड़ कर जिला दिया ३९ ॥

मू० पित्रोर्ननाम चरणौ स ततो जगतीपतिः ।
मरुत्तश्च सुतं प्रीत्या परिष्वज्येदमब्रवीत् ४० ॥

टी० । तत्पश्चात् महाराज मरुत्त ने अपने माता और पिता के चरणों के ऊपर शिर रखकर प्रणाम किया और अवीक्षित् ने भी मरुत्तपुत्र को प्रीति पूर्व्वक अंगमें लगाकर यह कहा कि ४० ॥

मू० मानहा भव शत्रूणां चिरं पालय मेदिनीम् ।
पुत्रपौत्रैश्च मोदस्व मा च ते सन्तु विद्विषः ४१ ॥

टी० । तुम शत्रुओं के घमण्ड तोड़नेवाले होगे और बहुत दिन तक

पृथ्वी का पालन करोगे और पुत्र और पौत्र के साथ बहुत दिनों तक रह कर आनन्द से रहोगे और तुम्हारा कोई शत्रु नहीं रहेगा ४१ ॥

मू० ततोद्विजैरनुज्ञातौ वीरया च नरेश्वरौ।
समारूढौ रथं सा च भामिनी स्वपुरं गताः ४२ ॥

टी०। तत्पश्चात् ब्राह्मणों से और वीरा से आज्ञा लेकर नरेश्वर मरुत्त और अवेक्षित् और भामिनी रथ पर चढ़कर अपने नगर में चले आये ४२ ॥

मू० वीराऽपि कृत्वा सुमहत्तपोधर्म्मभृतां वरा।
भर्त्तुः सालोकतां प्राप्ता महाभागा पतिव्रता ४३ ॥

टी०। और वीरा पतिव्रता व महाभागा और धर्म्माओंमें श्रेष्ठ महा तप करके अपने स्वामी के लोक में पहुँच गई ४३ ॥

मू० मरुत्तोऽपि चकारोर्व्या धर्म्मतः परिपालनम्।
विनिर्जितारिषड्वर्गो भोगांश्च बुभुजे नृपः ४४ ॥

टी०। और महाराज मरुत्त धर्म्म पूर्व्वक पृथ्वी का पालन करने लगे और शत्रुओं के षड्वर्ग (कामादि) को जीतकर भोगों को भोगकरनेलगे ४४॥

मू० तस्य पत्नी महाभागा विदर्भतनया तथा।
प्रभावती सुवीरस्य सौवीरी चाभवत्सुता ४५ ॥

टी०। और विदर्भ की कन्या बड़ी भाग्यवती प्रभावती और सुवीरा की कन्या सौवीरी उनकी भार्य्या हुई ४५ ॥

मू० सुकेशी केतुवीर्य्यस्य मागधस्यात्मजाभवत्।
सुता च सिन्धुवीर्य्यस्य मद्रराजस्य केकयी ४६ ॥

टी०। और मगध देशके राजा केतुवीर्य्य की कन्या सुकेशी और मद्र देश के राजा सिन्धुवीर्यकी कन्या केकयी की भी उनकी भार्य्याहुई ४६ ॥

मू० केकयस्य च सैरन्ध्री सिन्धुभर्त्तुर्व्वपुष्मती।
चेदिराजसुता चाभूद्भार्या तस्य सुशोभना ४७ ॥

टी०। और राजा केकय की कन्या सैरन्ध्री और सिन्धुपति की कन्या वपुष्मती और सुशोभना चेदि राजा की कन्या भी उनकी भार्य्या हुई ४७ ॥

मू० तासां पुत्रास्तस्य चासन् भूभृतोऽष्टादश द्विज।

तेषां प्रधानो ज्येष्ठश्च नरिष्यन्तः सुतोऽभवत् ४८ ॥

टी०। हे द्विज ! उन स्त्रियों के महाराज मरुत्त से अठारह पुत्र उत्पन्न हुये उनमें सबसे बड़े और प्रधान नरिष्यन्त पुत्र हुये ४८ ॥

मू० एवंवीर्यो मरुत्तोऽभून्महाराजो महाबलः।
तस्याप्रतिहतं चक्रमासीद्द्वीपेषु सप्तसु ४९ ॥

टी०। महाराज मरुत्त ऐसे पराक्रमी और बड़े बली हुये और उनका सातों द्वीप में अखण्ड चक्र हुआ ४९ ॥

मू० यस्य तुल्योऽपरो राजा न भूतो न भविष्यति।
सत्त्वविक्रमयुक्तस्य राजर्षेरमितौजसः ५० ॥

टी०। और जिन मरुत्त के तुल्य दूसरा कोई राजा न हुआ है न होगा और वे महाराज सत्त्व व विक्रम से युक्त और राजाओं में ऋषि और अमितपराक्रमी हुये ५० ॥

मू० तस्यैतच्चरितंश्रुत्वा मरुत्तस्य महात्मनः।
जन्मचाग्र्यं द्विजश्रेष्ठमुच्यते सर्वकिल्बिषैः ५१ ॥

टी०। हे द्विजश्रेष्ठ ! उन मरुत्त महात्मा का यह चरित्र व उत्तम जन्म सुनने से मनुष्य के सब पाप नाश होजाते हैं ५१ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेमरुत्तचरितंनामैकत्रिंशाधिकशततमो ऽध्यायः ॥ १३१ ॥

अथ एकसौबत्तीसका अध्याय ॥

क्रौष्टुकिरुवाच ॥

मू० मरुत्तचरितं कृत्स्नं भगवन् कथितं त्वया।
तत्सन्ततिमशेषेण श्रोतुमिच्छा प्रवर्त्तते १ ॥

टी०। मार्कण्डेय मुनिसे इतनी कथा सुन कर क्रौष्टुकि मुनि बोले कि ऐ भगवन् ! आप महाराज मरुत्त की सब कथा हम से कह आये अब उनके सन्तानकी सब कथा सुननेकी इच्छा है १ ॥

मू० तत्सन्ततौ क्षितीशा ये राज्यार्हा वीर्य्यशालिनः ।
तानहं श्रोतुमिच्छामि त्वयाख्यातान्महामुने २ ॥

टी० । और हे महामुने ! उनकी औलादों में जो राजा लोग राज्य के योग्य व पराक्रमी हुये हैं उनकी कथा आप के मुखसे सुना चाहताहूँ २ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० नरिष्यन्त इति ख्यातो मरुत्तस्याभवत्सुतः ।
अष्टादशानां पुत्राणां स ज्येष्ठः श्रेष्ठएव च ३ ॥

टी० । यह प्रश्न क्रौष्टुकि मुनि की सुन कर मार्कण्डेय मुनि कहने लगे कि महाराज मरुत्त के अठारहों पुत्रों में बड़े और प्रधान नरिष्यन्तथे ३ ॥

मू० वर्षाणां च सहस्राणि सप्ततिं दश पञ्च च ।
बुभुजे पृथिवीं कृत्स्नां मरुत्तः क्षत्रियर्षभः ४ ॥

टी० । क्षत्रियों में श्रेष्ठ महाराज मरुत्त पचासी हज़ार वर्ष तक सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य किया ४ ॥

मू० कृत्वा राज्यं स्वधर्म्मेण इष्ट्वा यज्ञाननुत्तमान् ।
नरिष्यन्तं सुतं ज्येष्ठमभिषिच्य ययौ वनम् ५ ॥

टी० । और धर्म्मपूर्व्वक बहुत उत्तम यज्ञों को करके उसी बड़े लड़के नरिष्यन्त को राजगद्दी पर बिठाकर वनको चले गये ५ ॥

मू० एकाग्रचित्तः स नृपस्तप्त्वा तत्र तपो महत् ।
आरुरोह दिवं विप्र यशसाऽऽवृत्य रोदसी ६ ॥

टी० । और ऐ विप्रजी ! वे राजा मरुत्त एकाग्रचित्त हो वनमें जा महातपस्या कर स्वर्ग व भूमि में अपना यश फैलाकर स्वर्गलोक को चलेगये ६ ॥

मू० नरिष्यन्तः सुतः सोऽस्य चिन्तयामास बुद्धिमान् ।
पितुर्वृत्तं समालोक्य तथान्येषाञ्च भूभृताम् ७ ॥

टी० । पश्चात् इसके इनके पुत्र बुद्धिमान् नरिष्यन्त ने अपने पिता का और दूसरे राजाओं के बीते हुये हाल पर दृष्टि करके विचारकिया ७ ॥

मू० अत्र वंशे महात्मानो राजानो मम पूर्वजाः ।

यज्विनो धर्म्मतःपृथ्वीं पालयामासुरूर्जिताः ८ ॥

टी०। कि इस वंश में हमारे पुरुषों में हमसे पहिले जो बलवान् और महात्मा लोग हुये हैं वे बहुत से यज्ञ करनेवाले हुये व धर्म्म के साथ पृथ्वी को पालन करते भये हैं ८ ॥

मू० दातारश्चापि वित्तानां संग्रामेष्वनिवर्तिनः।
तेषां कश्चरितं शक्तस्त्वनुयातुं महात्मनाम् ९ ॥

टी०। और उन्होंने बहुत धन ब्राह्मणों को दिया और संग्राम में पीछे हटनेवाले कोई नहीं हुये और उन महात्मा के किये हुये चरित्र के अनुसार करने को किसकी सामर्थ्य है ९ ॥

मू० किन्तु तैर्यत्कृतं कर्म्म धर्म्यमाहवनादिभिः।
तदहं कर्तुमिच्छामि तच्च नास्ति करोमि किम् १० ॥

टी०। परन्तु हवनादिकों से जो धर्मवाला कर्म उन लोगों ने किया है वह सब मैं भी करना चाहता हूँ परन्तु मुझसे नहीं होसका क्या करूं १० ॥

मू० धर्मात्पालयतः पृथ्वीं कोऽगुणोऽत्रमहीपतेः।
असम्यक्पालनात्पापी नरेन्द्रो नरकं व्रजेत् ११ ॥

टी०। और धर्म्मपूर्वक पृथ्वी पालन करते हुये राजा को यहां कौन अवगुण होता है और जो राजा अधर्म्म के साथ राज्य करते हैं वे पापी राजा नरक में जाते हैं ११ ॥

मू० सति वित्ते महायज्ञाः कर्त्तव्या एव भूभृता।
दातव्यश्चात्र किञ्चित्रं सीदतामीश्वरो गतिः १२ ॥

टी०। इस वास्ते धनवान् राजा को यज्ञ करना और ब्राह्मणों को दान देना चाहिये इस में क्या आश्चर्य है व जो लोग दुःखी होते हैं उन को केवल ईश्वर ही का भरोसा है १२ ॥

मू० आभिजात्यं तथा लज्जा कोपश्चारिजनाश्रयः।
कारयन्ति स्वधर्मश्च संग्रामादपलायनम् १३ ॥

टी०। उत्तम कुल में पैदा होना और शर्म और शत्रुओं पर क्रोध और अपना धर्म्म ये बातें संग्राम में नहीं भागने देती हैं १३ ॥

मू० एतत्सर्वं यथा सम्यक्प्रत्पूर्वैः पुरुषैः कृतम्।
पित्रा च मे मरुत्तेन तथा तत्केन शक्यते १४॥

टी०। यह सब कर्म्म हमारे पहलेवाले पुरुष लोग जिसतरह करगये हैं और हमारे पिता महाराज मरुत्त ने भी जैसा किया था वह कर्म्म करने को किसको सामर्थ्य है १४॥

मू० तदहं किं करिष्यामि यत्तु तैः पूर्व्वजैः कृतम्।
ये यज्विनो वरा दान्ताः संग्रामाच्चानिवर्तिनः १५॥

टी०। पहले पैदा हुये उन पुरुषों ने जो कर्म किया है उसको मैं क्या करूंगा जो लोग कि यज्ञ करनेवाले और श्रेष्ठ और इन्द्रियजित् और संग्राम में नहीं हटनेवाले थे १५॥

मू० महत्संग्रामसंमर्देष्वविसंवादिपौरुषाः।
कर्म्मणेहं यतिष्यामि कस्मैतानभिसन्धितुम् १६॥

टी०। और बड़े बड़े युद्ध करनेवाले थे जिन लोगों की बहादुरी का वर्णन नहीं किया जासका है उन लोगों की बराबरी के लिये कौन कर्म्म करने की हम युक्ति करें १६॥

मू० अथवा तैः स्वयं यज्ञाः कृताः पूर्व्वजनेश्वरैः।
अविश्रमद्भिर्नान्यैस्तु कारितास्तत्करोम्यहम् १७॥

टी०। अथवा हमारे पुरुषों ने विना परिश्रम आपही सबयज्ञ कियेथे दूसरे दूसरे लोगोंसे यज्ञ नहीं करवाये थे वैसा मैं भी करूंगा १७॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० इति सञ्चिन्त्य यज्ञं स चकारैकं नरेश्वरः।
यादृशं न चकारान्यो वित्तोत्सर्गोपशोभितम् १८॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहतेहैं कि इतना विचार मन में करके उन नरिष्यन्त महाराज ने बहुत सा धन देने से शोभित एक बहुत बड़ी यज्ञकिया जैसी दूसरे ने नहीं किया १८॥

मू० द्विजानां जीवनायालं दत्त्वा तु सुमहाधनम्।
ततः शतगुणं तेषां यज्ञार्थमददन्टपः १९॥

टी०। ब्राह्मणों के जीवन के वास्ते परिपूर्ण बहुत धन देकर फिर उस से सौगुणा अधिक धन यज्ञ के लिये राजाने उनको दिया १६ ॥

मू० गावो वस्त्राण्यलङ्कारं धान्यागारादिकं तथा।
प्रत्येकमददत्तेषां सर्वपृथ्वीनिवासिनाम् २० ॥

टी०। सब पृथ्वी के रहनेवाले ब्राह्मणों को गाइयां व वस्त्र व आभूषण व अन्न व मंदिर आदि हरएक को दिया २० ॥

मू० ततस्तेन यदा यज्ञः प्रारम्भो भूभुजा पुनः।
प्रारम्भे सं मखे यष्टुं ततो नालभत द्विजान् २१ ॥

टी०। पश्चात् महाराज नरिष्यन्त ने जब फिर दूसरा यज्ञ आरम्भ किया तब उस यज्ञ के प्रारम्भ में दान इत्यादि देनेके वास्ते और भोजन कराने के वास्ते महाराज को कहीं ब्राह्मण न मिले २१ ॥

मू० यान् यान् वृणोति स नृपो विप्रानार्त्विज्यकर्मणि।
ते ते तमूचुर्यज्ञाय वयमन्यत्र दीक्षिताः २२ ॥

टी०। जिस जिस ब्राह्मण को ऋत्विक् बनाने वास्ते महाराज वरण देने लगे वे सब ब्राह्मण उनसे कहने लगे हम लोग दूसरी जगह यज्ञ कराने वास्ते नियत हुये हैं २२ ॥

मू० अन्यं वरय यद्वित्तं त्वयास्माकं विसर्ज्जितम्।
तस्यान्तो नास्ति यज्ञेषु दद्यास्त्वं नृपते कथम् २३ ॥

टी०। दूसरे किसी ब्राह्मण को ढूंढ़ लीजिये ऐ महाराज! जो धन आपने पहले यज्ञ में हम लोगों को दिया है उसका अन्त नहींहै तुम कैसे अन्य धन को दोगे २३ ॥

मार्कण्डेय उवाच।

मू० न चाप ऋत्विजो विप्रान्यदाशेषक्षितीश्वरः।
बहिर्वेद्यां तदा दानं स दातुमुपचक्रमे २४ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि जब सम्पूर्ण पृथ्वी के स्वामी महाराज नरिष्यन्त को ऋत्विज् ब्राह्मण न मिले तब वे नरिष्यन्त बाहरी वेदी में दान देने लगे २४ ॥

मू० तथापि जगृहुर्नैव धनसम्पूर्णमन्दिराः।
द्विजाय दातुं भूयोऽसौ निर्विण्णः इदमब्रवीत् २५॥

टी०। तौ भी कोई ब्राह्मण उनके दिये हुये धन को नहीं ग्रहण किया क्योंकि उन लोगों के घर धन से खाली न थे कहां रक्खें फिर महाराज ब्राह्मण को दान देने के लिये दुःखी होकर यह बोले २५॥

मू० अहोऽतिशोभनं पृथ्व्यां यद्विप्रो नाधनः क्वचित्।
अशोभनञ्च यत्कोशो विफलोऽयमयज्विनः २६॥

टी०। कि यह बात बहुत अच्छी है जो इस पृथ्वी में निर्धन ब्राह्मण कहीं नहीं हैं लेकिन यह बात अच्छी नहीं है जो कि विना यज्ञ करने वाले का खज़ाना निष्फल होता है २६॥

मू० नार्त्विज्यं कुरुते कश्चिद्यजमानोऽखिलो जनः।
द्विजानां नं च नो दानं ददतां सम्प्रतीच्छते २७॥

टी०। क्योंकि सब कोई मनुष्य यजमान याने यज्ञकर्ता हैं इस लिये ऋत्विक्का नहीं करते हैं और देतेहुये हम लोगोंका दान ब्राह्मणों के मध्य में कोई नहीं लेता है २७॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० ततः कांश्चिद्द्विजान् भक्त्या प्रणिपत्य पुनः पुनः।
स्वयज्ञे ऋत्विजश्चक्रे ते प्रचक्रुर्महामखम् २८॥

टी०। मार्कण्डेय मुनि बोले कि पश्चात् इसके महाराज नरिष्यन्त ने किसी दूसरे दूसरे ब्राह्मणों को भक्तिपूर्वक बार बार प्रणाम करके अपने यज्ञमें लाकर ऋत्विज् बनाया उन्हीं ब्राह्मण लोगोंने महाराजकी महायज्ञ का साधन किया २८॥

मू० अत्यद्भुतमिदञ्चासीद्यदा तस्य महीपतेः।
सयज्ञोऽभूत्तदापृथ्व्यां यजमानोऽखिलोजनः २९॥

टी०। यह बात बड़े आश्चर्य की हुई जब कि महाराजकी वह यज्ञहुई है तब पृथ्वीमें ब्राह्मणों के बीचमें से सब जन यज्ञकर्ता हुये २९॥

मू० द्विजन्मनामभून्नासीत् सदस्यस्तत्र कश्चन।

यजमाना द्विजाः केचित् केचित्तेषां तु याजकाः ३० ॥

टी०। इससे उस यज्ञस्थान में बैठनेवाला कोई न ठहरा क्योंकि कोई ब्राह्मण तौ यजमान हुये और कोई उनको यज्ञ करानेवाले हुये ३० ॥

मू० नरिष्यन्तो नरपतिरियाज स यदा तदा।
तत्प्रदातुर्धनैर्यागं कुर्य्युः पृथ्व्यामशेषतः ३१ ॥

टी०। जब महाराज नरिष्यन्त ने यज्ञ किया है तब उन्हीं दाताने जो धन दिया उसी धनसे सब ब्राह्मण लोग धनी होकर यज्ञ करते भये ३१ ॥

मू० प्राच्यां कोट्यस्तु यज्ञानामासन्नाष्टदशाधिकाः।
प्रतीच्यां सप्त वै कोट्यो दक्षिणायां चतुर्दश ३२ ॥

टी०। पूर्व दिशा में एक करोड़ अठारह और पश्चिम में सातकरोड़ और दक्षिण दिशा में चौदह करोड़ ३२ ॥

मू० उत्तरस्यां च पञ्चाशदेककाले तदाऽभवन्।
मुने ब्राह्मणयज्ञानां नरिष्यन्तोयदाऽयजत् ३३ ॥

टी०। और उत्तर दिशा में पचासकरोड़ यज्ञ तब एकही समय में हुई याने जिस समय महाराज नारिष्यन्तने यज्ञ किया उसी काल में ब्राह्मणों ने भी यज्ञ किया ३३ ॥

मू० एवं स राजा धर्मात्मा नरिष्यन्तोऽभवत्पुरा।
मरुत्ततनयो विप्र विख्यातबलपौरुषः ३४ ॥

टी०। ऐ विप्र! इस प्रकारसे मरुत्त के पुत्र धर्म्मात्मा महाराजनरिष्यन्त पूर्व्व काल में हुये हैं जो कि अपने बल और पौरुष से प्रसिद्ध थे ३४ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेनरिष्यन्तचरित्रेद्वित्रिंशाधिकशततमोध्यायः १३२ ॥

अथ एकसौतेंतीसका अध्याय ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० नरिष्यन्तस्य तनयो दुष्टारिदमनो दमः।
शक्रस्येव बलन्तस्य दयाशीलं मुनेरिव १ ॥

टी०। मार्कण्डेय जी कहते हैं ऐ क्रौष्टुकि ! महाराज नरिष्यन्त के पुत्र दुष्टों व शत्रुओं के नाश करनेवाले दम नाम हुये जिनका बल इन्द्र के समान और दया और शील मुनियों के समान हुआ १ ॥

मू० बाभ्रव्यामिन्द्रसेनायां स जज्ञे तस्य भूभृतः ।
नववर्षाणि जठरे स्थित्वा मातुर्महायशाः २ ॥

टी०। यह दम महायशस्वी बभ्रु की कन्या इन्द्रसेना माताके उदर में नव वर्ष तक रहकर उत्पन्न हुयेथे २ ॥

मू० यद्ग्राहयामास दमं मातरं जठरेस्थितः ।
दमशीलश्च भविता यतश्चायं नृपात्मजः ३ ॥

टी०। जिस लिये कि यह राजकुमार अपने माता के उदरमें नव वर्ष तक रहकर उसको दम (शान्ति) ग्रहण कराया और उत्पन्न होने पर दम-शील होनेवाले थे ३ ॥

मू० ततस्त्रिकालविज्ञानः स हि तस्य पुरोहितः ।
दम इत्यकरोन्नाम नरिष्यन्तसुतस्य तु ४ ॥

टी०। इसलिये त्रिकाल के जाननेवाले पुरोहितने उन नरिष्यन्त के पुत्रका नाम दम ऐसा रक्खा ४ ॥

मू० स दमो राजपुत्रस्तु धनुर्वेदमशेषतः ।
जगृहे नरराजस्य सकाशाद्वृषपर्वणः ५ ॥

टी०। उन राजकुमार दमने वृषपर्वा महाराजकेपास जाकर उनसे सब धनुर्विद्या प्राप्तकी ५ ॥

मू० दुन्दुभेर्दैत्यवर्यस्य तपोवननिवासिनः ।
सकाशाज्जगृहे कृत्स्नमस्त्रग्रामञ्च तत्वतः ६ ॥

टी०। और तपोवनके रहनेवाले दैत्यवर्य्य दुन्दुभी के पास जाकर उससे तत्त्वपूर्वक अस्त्रसमूह को ग्रहण किया ६ ॥

मू० शक्तेः सकाशाद्वेदांश्च वेदाङ्गान्यखिलानि च ।
तथार्ष्टिषेणाद्राजर्षेर्जगृहे योगमात्मवान् ७ ॥

टी०। और बुद्धिमान् दमने शक्तिसे सम्पूर्ण वेद और वेदाङ्ग पढ़ा और अर्ष्टिषेण राजर्षि से योग सीखा ७॥

मू० तं स्वरूपं महात्मानं गृहीतास्त्रं महाबलम्।
स्वयंवरे कृते पित्रा जगृहे सुमना पतिम् ८॥

टी०। पश्चात् इसके स्वरूपवान् व बड़े बलिष्ठ महात्मा दम अस्त्रधारी को सुमना नाम कन्या ने अपने पिताके रचे हुये स्वयंवरमें आप अपना पति बनाया ८॥

मू० सुता दशार्णाधिपतेर्वलिनश्चारुकर्मणः।
पश्यतांसर्व्वभूतानां ये तदर्थमुपागताः ९॥

टी०। वर्णन उसका यहहै कि वह सुमना दशार्ण देशके बलिष्ठराजा चारुकर्मा की कन्याथी उस कन्या के ग्रहण करने की इच्छा करके जितने लोग उस स्वयंवरमें आयेथे उन सबोंके देखते हुये ९॥

मू० तस्याऽच सानुरागोभून्मद्रराजस्य वै सुतः।
सुमनायां महानादो महाबलपराक्रमः १०॥

टी०। मद्रराज के पुत्र महाबली और पराक्रमी महानाद उस सुमना कन्या पर मोहित होगये १०॥

मू० तथा विदर्भाधिपतेः पुत्रः संक्रन्दनस्य च।
वपुष्मान् राजपुत्रश्च महाधनुरुदारधीः ११॥

टी०। उसी तरह विदर्भ देशके राजा संक्रन्दनके पुत्र और उदारबुद्धि वाले बड़े धनुर्धारी राजकुमार वपुष्मान् भी मोहित होगये ११॥

मू० ते तया तं वृतं दृष्ट्वा दुष्टारिदमनं दमम्।
मन्त्रयामासुरन्योन्यं तत्राऽनङ्गविमोहिताः १२॥

टी०। कामसे मोहित यह सबलोग दुष्टों के दमन करनेवाले दम को स्वयंवर में उससे ग्रहण किये हुये देखकर आपुसमें सलाह किया १२॥

मू० एतामस्य बलात्कन्यां गृहीत्वा रूपशालिनीम्।
गृहं प्रयामस्तस्येयमस्माकं यं ग्रहीष्यति १३॥

टी०। कि इस सुन्दरी कन्याको जबर्दस्ती ग्रहण कर अपने घर लेचलैं और उन दम की यह स्त्री हम सबों में से जिसको ग्रहण करैगी १३॥

मू० भर्तृबुद्ध्या वरारोहा स्वयंवरविधानतः ।
तस्येच्छया नो भवित्री भार्य्या धर्म्मोपपादिता १४ ॥

टी० । याने यह सुन्दरी स्वयंवरकी विधि से पतिकी बुद्धि करके अपनी इच्छासे जिसको स्वीकार करै धर्म से सिद्ध उसी की भार्य्या होगी १४ ॥

मू० अथ नेच्छति साकञ्चिदस्माकं मदिरेक्षणा ।
ततस्तस्य भवित्री सा यो दमं घातयिष्यति १५ ॥

टी० । अथवा हम सबों में से किसी को वह सुन्दरी पति बनाना चाहै तो हम सबों में से जो कोई राजकुमार दम को मारैगा उसी की यह सुन्दरी भार्य्या होगी १५ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० इति ते निश्चयं कृत्वा यत्रःपार्थिवनन्दनाः ।
जगृहुस्तां सुचार्वङ्गीं दमपार्श्वानुवर्तिनीम् १६ ॥

टी० । मार्कण्डेय मुनि बोले ऐ क्रौष्टुकि ! वे तीनों राजकुमार आपुस में ऐसा निश्चय करके राजकुमार दमके पास जो सुन्दर अंगोंवाली सुमना कन्या बैठी हुई थी उसको पकड़ लिया १६ ॥

मू० ततः केचिन्नृपास्तेषां ये तत्पक्षा विचुक्रुशुः ।
चुक्रुशुश्चापरे भूपाः केचिन्मध्यस्थतांगताः १७ ॥

टी० । उसके बाद उन राजाओंमें जो कोई राजालोग दमके सहायक थे और अन्य जो लोग मध्यस्थ थे उन सबों ने हाहा करके कहा कि इन लोगों को पकड़ो यह बात बहुत अनीति होती है १७ ॥

मू० ततो दमस्तान् भूपालानवलोक्य समन्ततः ।
अनाकुलमनावाक्यमिदमाह महामुने १८ ॥

टी० । उसके उपरान्त हे महामुने ! बिन विकल मन वाले राजकुमार दम चारोंतरफ़ देखकर राजाओं से यह बात बोले १८ ॥

दम उवाच ॥

मू० भो भूपा धर्म्मकृत्येषु यद्वदन्ति स्वयंवरम् ।
अधर्म्मोवाथवा धर्म्मो यदेभिर्गृह्यते बलात् १९ ॥

टी० । दम बोले कि ऐ राजा लोगो ! जो स्वयंवर को सबलोग धर्म्म कार्य्यों में गिनते हैं तौ अब आपलोग कहिये कि जबर्दस्ती जो यह लोग कन्या को पकड़तेहैं यह धर्म्म है या अधर्म्म है १६ ॥

मू० अथधर्म्मो न मे कार्य्यमन्यभार्य्या भविष्यति ।
धर्म्मो वा तदलं प्राणैर्ये रक्ष्यन्तेविलङ्घने २० ॥

टी० । यदि अधर्म्महै दूसरेकी स्त्री यहकन्या होजायगी इसमें मेराकुछ कार्य्य नहीं है और जो स्वयंवरमें यही धर्म्म होय तो धर्म्म के उल्लंघनमें जो प्राण बचाये जावैं उनको धिक्कार है २० ॥

मू० ततो दशार्णाधिपतिश्चारुधर्मा नराधिपः ।
निःशब्दंकारयित्वा तत् सदः प्राह महामुने २१ ॥

टी० । पश्चात् इसके हे महामुने ! उत्तम धर्मवाले दशार्ण देश के महाराज चुपकराके सब सभावासियों से बोले २१ ॥

मू० दमेन यदिदं प्रोक्तं धर्माधर्माश्रितं नृपाः ।
तद्वदध्वं यथा धर्मो ममास्य च न लुप्यते २२ ॥

टी० । कि ऐ राजा लोगो ! राजकुमार दम जो धर्म्म अधर्म्म की यह बात पूछतेहैं सो कहते जाइये कि जिस तरहसे हमारे और दम के धर्म्म की हानि न होय २२ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० ततः केचिन्महीपालास्तमूचुर्व्वसुधाधिपम् ।
परस्परानुरागेण गान्धर्वो विहितो विधिः २३ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी बोले ऐ क्रौष्टुकि ! पश्चात् इसके उन राजाओंमें से कोई उस राजासे बोले कि आपुस के अनुराग होजाने से गान्धर्व विवाह की विधि कही है २३ ॥

मू० क्षत्रियाणां परमयं न विट्शूद्रद्विजन्मनाम् ।
दममाश्रित्य निष्पन्नःस चास्या दुहितुस्तव २४ ॥

टी० । परन्तु यह केवल क्षत्रियों के वास्ते उत्तम है वैश्य शूद्र और ब्राह्मण के वास्ते नहीं है इस समय तुम्हारी कन्याका अनुराग राजकुमार दम में सिद्ध होचुकाहै २४ ॥

मू० इति धर्मोद्दमस्यैषा दुहिता तव पार्थिव।
योऽन्यथा वर्त्तते मोहात् कामाद्वा संप्रवर्त्तते २५॥

टी०। हे राजन्! इस धर्म्म से आपकी यह कन्या दम की भार्य्या हो चुकी अब जो कोई मोह या काम से तुम्हारी कन्या को भार्य्या बनानेके लिये प्रवृत्त होताहै वह अधर्म्म करताहै २५॥

मू० तथापरे तदा प्रोचुर्महात्मानो हि भूभृताम्।
पक्षे ये भूभृतो विप्र दशार्णाधिपतेर्वचः २६॥

टी०। वैसेही हे विप्रजी! उस समय दूसरे महात्मा राजा लोग जो कि दशार्णदेश के स्वामी के सहायक थे वे बोले २६॥

मू० मोहात् किमाहुर्धर्मोऽयं गान्धर्व्वः क्षत्रजन्मनः।
नत्वेषएवशस्तोन्यो राक्षसः शस्त्रजीविनाम् २७॥

टी०। कि क्षत्रियों के वास्ते जिन लोगों ने गान्धर्व्व विवाह कहा है मिथ्या कहाहै किन्तु क्षत्रियों के वास्ते राक्षसी विवाह उचितहै २७॥

मू० बलादिमां यो हरति हत्वा तु परिपन्थिनः।
तस्यैवासौ राक्षसेन विवाहेनावनीश्वरः २८॥

टी०। कि शत्रुओं को मारकर जो जबर्दस्ती कन्या को हरण करले ऐ राजाओ! राक्षसी विवाह से वह कन्या उसी की भार्य्या होजावेगी २८॥

मू० प्रधानतर एषोऽत्र विवाहद्वितये मतः।
क्षत्रियाणामतो धर्म्मो महानन्दादिभिः कृतः २९॥

टी०। इन दोनों विवाहों मे यही राक्षसी विवाह क्षत्रियों के वास्ते बहुत मुख्य है इसी वास्ते महानन्द आदिकों ने इस धर्म्म को किया है २९॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० अथ प्रोचुर्पुनर्विप्र यैःपूर्व्वमुदिता नृपाः।
परस्परानुरागेण जातिधर्माश्रितं वचः ३०॥

टी०। मार्कण्डेयजी बोले कि हे विप्रजी! पश्चात् इसके जिनराजाओं ने पहले गान्धर्व विवाह की बात कही थी वे लोग फिर आपुसमें अनुराग करके जातिधर्म्म युक्त वचन बोले ३०॥

मू० सत्यं शस्तो राक्षसोऽपि क्षत्रियाणां परो विधिः।
किन्त्वसौ जनकस्त्वाम्ये कुमार्य्यानुमतो वरः ३१॥

टी०। कि क्षत्रियों के वास्ते जो राक्षसी विवाह उत्तम कहाहै यह सत्य है परन्तु राजकुमार दमको सुमनाने अपने पिता के जान में पसन्द किया है ३१॥

मू० हत्वा तु पितृसम्बन्धं बलेन ह्रियते हि या।
स राक्षसो विधिः प्रोक्तो नान्यभर्तृकरे स्थिता ३२॥

टी०। उसके पिता के सम्बन्धको तोड़कर जो कन्या जबर्दस्ती हरण की जाती है वही राक्षसी विवाह कहलाताहै दूसरे के हाथ पर जाने से जो कन्या हरण होती है वह राक्षसी विधि नहीं है ३२॥

मू० पश्यतां सर्व्वभूपानामनया यद्वृतो दमः।
गान्धर्व्वस्येह निष्पत्तौ विवाहो राक्षसोऽत्रकः ३३॥

टी०। सबराजा लोग देखते थे कि इस कन्याने दम को अपना पति बनाने वास्ते पसन्द किया तो गान्धर्व विवाह होचुका इस में राक्षसी वि-वाह कौन होगा ३३॥

मू० विवाहितायाः कन्यायाः कन्यात्वं नैव विद्यते।
कन्यायाश्च विवाहेन सम्बन्धः पृथिवीश्वराः ३४॥

टी०। ऐ राजा लोगो! विवाहिता कन्या को कन्या का धर्म्म बाक़ी नहीं रहताहै व कन्याका विवाह होने से सम्बन्ध होजाताहै अर्थात् वह भार्य्या कहलाती है और उसका पुरुष पति कहाजाताहै ३४॥

मू० त इमे ये बलादेनां दमादादातुमुद्यताः।
बलिनस्ते यदि ततः कुर्व्वन्तु न तु साधु तत् ३५॥

टी०। वे लोग जो जबर्दस्ती इस कन्या को छीन लेना चाहते हैं यदि वे बली लोग ऐसा करें तो यह बात उचित नहीं है ३५॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० तच्छ्रुत्वाऽसौ दमः कोपकषायीकृतलोचनः।
आरोपयामास धनुर्वचनञ्चेदमब्रवीत् ३६॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं ऐ क्रौष्टुकि! राजकुमार दमकी आंखें यह बात सुनकर मारे क्रोध के लाल होगई और धन्वाको चढ़ाया व यह बात बोले ३६॥

मू० ममाद्य भार्य्या बलिभिः पश्यतो ह्रियते यदि।
तत्कुलेन भुजाभ्यां वा को गुणः क्लीबजन्मनः ३७॥

टी०। कि मेरी भार्य्याको जो बली शत्रुलोग मेरेसामने हरणकरते हैं तो मुझ ऐसे नपुंसक को क्षत्रिय कुलमें जन्म लेने से और मेरे भुजाके बल से क्या गुण हुआ याने कुछ नहीं ३७॥

मू० धिङ्ममास्त्राणि धिक् शौर्य्यं धिक् शरान्धिक्शरासनम्।
धिग्व्यर्थं मे कुले जन्म मरुत्तस्य महात्मनः ३८॥

टी०। मेरे अस्त्रों को और मेरी बहादुरी और मेरे बाण और धनुषको धिक्कारहै और मेरा जन्म लेना महाराज मरुत्त के कुलमें व्यर्थ है उस जन्मको भी धिक्कारहै ३८॥

मू० यदि भार्य्यामिमे मूढाः समादाय बलान्विताः।
प्रयान्ति जीवतो धिक् तां मम व्यर्थमनुष्यताम् ३९॥

टी०। यदि मेरी भार्या को ये मूढ़ राजालोग ज़बर्दस्ती छीन कर मेरे जीते जी ले जावें तौ मेरे इस पुरुषत्व को धिक्कारहै ३९॥

मू० इत्युक्त्वा तान्महीपालान् महानन्दमुखान् बली।
अथाब्रवीत्तदा सर्व्वान् महारिदमनो दमः ४०॥

टी०। इसतरह कहकर इसके बाद बड़े शत्रुवों के नाशक राजकुमार दमने महानन्द इत्यादि सब राजाओं से कहा ४०॥

मू० एषातिशोभना बाला चार्व्वङ्गी मदिरेक्षणा।
किन्तस्य जन्मना भार्य्या न यस्येयं कुलोद्भवा ४१॥

टी०। कि कुलमें उपजी हुई यह सुन्दर अंगोंवाली अतिसुन्दरी कन्या जिस की स्त्री न होगी उसका महाराज कुलमें जन्म लेना व्यर्थहै ४१॥

मू० इति सञ्चिन्त्य भूपालास्तथा यतत संयुगे।
यथानिर्जित्य मामेतां पत्नीं कुरुत मानिनः ४२॥

टी०। ऐ मानी राजा लोगो ! इन सब बातों को विचार करके संग्राम में ऐसी यत्न करते जाइये कि जिसतरह मुझको जीतकर इस कन्या को अपनी भार्य्या बनाइये ४२ ॥

मू० इत्याभाष्य ततस्तत्र शरवर्षममुञ्चत।
छादयन् पृथिवीपालांस्तमसेव महीरुहान् ४३ ॥

टी०। इसतरह राजाओं से कहकर जिसतरह अन्धकार वृक्षको छालेताहै उसीतरह राजकुमार दमने शरों की वर्षा करके सब राजाओं को शरों से घेरलिया ४३ ॥

मू० तेपि वीरा महीपालाः शरशक्त्यृष्टिमुद्गरान्।
मुमुचुस्तत्प्रयुक्तांश्च दमश्चिच्छेद लीलया ४४ ॥

टी०। फिर उन वीरराजाओं ने भी जो शर और शक्ति और ऋष्टि और मुद्गर उनपर चलाये उसको राजकुमारदम ने खेलकीतरहकाटडाला ४४॥

मू० तेपि तत्प्रहितान् बाणांस्तेषाञ्चासौ शरोत्करान्।
चिच्छेद पृथिवीशानां नरिष्यन्तात्मजो मुने ४५ ॥

टी०। ऐ मुने ! राजाओं ने भी दमके चलाये हुये बाणों को काटडाला और उनके चलाये हुये बाणों को नरिष्यन्त के पुत्र ये दम काट डालते थे ४५ ॥

मू० वर्त्तमाने तदा युद्धे दमस्य क्षितिपात्मजैः।
प्रविवेश महानन्दः खड्गपाणिर्यतो दमः ४६ ॥

टी०। जिस समय राजकुमार दम उन राजाओं से युद्ध करते थे उस समय महानन्द हाथ में तलवार लेकर जिस जगह राजकुमार दम थे वहां गये ४६ ॥

मू० तमायान्तं दमो दृष्ट्वा खड्गपाणिं महामृधे।
मुमोच शरवर्षाणि पयांसीव पुरन्दरः ४७ ॥

टी०। उस महासमर में तलवार लियेआतेहुये महानन्द को देख कर जिसतरह इन्द्र पानीकी वर्षाकरते हैं उसीतरह दमने तीरोंकी वर्षाकी ४७॥

मू० तदस्त्राणि ततस्तानि शरजालानि तत्क्षणात्।

महानन्दः प्रविच्छेद खड्गेनान्यानवञ्चयत् ४८ ॥

टी०। फिर तो दम के चलाये हुये उन बाणोंको उसी दम महानन्दने खड्ग से काट दूसरे अस्त्रों को तुच्छ कर दिया ४८ ॥

मू० ततो रोषात्समारुह्य तन्दमस्य तदा रथम्।
महानन्दो महावीर्यो दमेन युयुधे सह ४९ ॥

टी०। उसके बाद उस वृक्त दम के ऊपर क्रोध कर रथ पर सवार हो वह पराक्रमी महानन्द दम के साथ युद्ध करनेलगा ४६ ॥

मू० बहुधा युध्यमानस्य महानन्दस्य लाघवात्।
दमो मुमोच हृदये शरं कालानलप्रभम् ५० ॥

टी०। फिर राजकुमार दम ने शीघ्रता से बहुत प्रकार का युद्ध करते हुये उस महानन्द की छाती पर कालरूप अग्नि के समान बाण मारा ५० ॥

मू० तं लग्नमात्मनोत्कृष्य विभिन्नेन ततो हृदि।
दमंप्रतिविचिक्षेप महानन्दोऽसिमुज्ज्वलम् ५१ ॥

टी०। वह बाण महानन्द के हृदय से पार होगया परन्तु महानन्दने उसको जल्दी से खींच कर दमके ऊपर उजली तलवार चलाया ५१ ॥

मू० पतन्तं चैनमुल्काभं शक्त्या चिच्छेद तं दमः।
शिरोवेतसपत्रेण महानन्दस्य चाच्छिनत् ५२ ॥

टी०। परन्तु राजकुमार दम ने उस तलवारको लूकी तरह आकाश से आतेहुये देखकर अपनी शक्ति से फेंक दिया व अपनी तलवार से महानन्द का शिर काटलिया ५२ ॥

मू० तस्मिन्हते महानन्दे प्राचुर्य्येण पराङ्मुखाः।
बभूवुः पार्थिवास्तस्थौ वपुष्मान् कुण्डिनाधिपः ५३ ॥

टी०। महानन्द के मरतेही बहुतसे राजा लोग समरसे पीठ दिखलाकर भाग गये परन्तु कुण्डिनदेशका राजा वपुष्मान् दृढ़ता के साथ रण में खड़ा होगया ५३ ॥

मू० दमेन युयुधे चासौ बलगर्व्वमदान्वितः।
दाक्षिणात्यमहीपालतनयो रणगोचरः ५४ ॥

टी० । और समरमें प्राप्त वह दक्षिणी राजकुमार घमण्डके मदमें मस्त होकर दमसे लड़ने लगा ५४ ॥

मू० युध्यमानस्य तस्योग्रं करवालं स वै लघु ।
चिच्छेद सारथेश्चैव शिरः संख्ये तथा ध्वजम् ५५ ॥

टी० । और लड़ते हुये उस राजकुमार दमने वपुष्मान्की उग्र तलवार को और उसके रथकी ध्वजा और सारथिके शिर को शीघ्रही समरमें काट कर गिरादिया ५५ ॥

मू० छिन्नखड्गो गदां सोऽथ जग्राह बहुकण्टकाम् ।
तामप्यस्य स चिच्छेद करस्थामेव सत्वरः ५६ ॥

टी० । तलवार कट जाने पर वपुष्मान् ने बहुकण्टक गदा उठा लिया परन्तु हाथमें आईहुई उसकीगदाको भी शीघ्रतासमेत दमनेकाटडाला ५६

मू० यावदन्यत् समादत्ते स वपुष्मान् वरायुधम् ।
तावच्छरेण तं भित्त्वा दमो भूमावपातयत् ५७ ॥

टी० । व जबतक अन्य उत्तम अस्त्रको वपुष्मान् लेवै तब तक दमने उस वपुष्मान् को भी बाणसे घायल करके पृथ्वी पर गिरादिया ५७ ॥

मू० स पातितस्ततो भूमौ विह्वलाङ्गस्सवेपथुः ।
विनिवृत्तमतिर्युद्धाद्बभूव क्षितिपात्मजः ५८ ॥

टी० । व विह्वल अंगवाला वपुष्मान् पृथ्वी पर गिरकर कांपने लगा और वह राजकुमार युद्धसे निवृत्त होगया ५८ ॥

मू० तमालोक्य तथाभूतमयुद्धमतिमात्मवान् ।
उत्सृज्यादाय सुमनां सुमनाः प्रययौ दमः ५९ ॥

टी० । उस समय वपुष्मान् को युद्धसे हटाहुआ देखकर बुद्धिमान् राजकुमार दम उसका जान छोड़ कर सुमना कन्या को ग्रहण करके आनन्द के साथ वहांसे चले गये ५९ ॥

मू० ततो दशार्णाधिपतिः प्रीतिमानकरोत्तयोः ।
दमस्य सुमनायाश्च विवाहं विधिपूर्व्वकम् ६० ॥

टी० । पश्चात् दशार्णदेश के राजा ने प्रसन्न होकर सुमनाका विवाह दमके साथ विधिपूर्वक करदिया ६० ॥

मू० कृतदारो दमस्तत्र दशार्णाधिपतेः पुरे।
स्थित्वाऽल्पकालं प्रययौ सभार्य्यो निजमन्दिरम् ६१॥

टी०। तब विवाह किये हुये राजकुमार दम दशार्णदेश के राजा के नगरमें कुछदिन रहकर फिर अपनी भार्य्या सुमना को साथले अपने घर को चलेआये ६१॥

मू० दशार्णाधिपतिश्चास्मै दत्त्वानागांस्तुरङ्गमान्।
रथगोश्वखरोष्ट्रांश्च दासीदासांस्तथा बहून् ६२॥

टी०। और दशार्णदेशके राजा ने इनके लिये बहुत हाथी, घोड़े, रथ, गऊ, खच्चर, ऊंट व दास दासी दहेज में दिया ६२॥

मू० वस्त्रालङ्कारचापादिवरोपस्करमात्मनः।
अन्यैस्तैश्च तथाभाण्डैः परिपूर्णं व्यसर्जयत् ६३॥

टी०। और बहुत सा वस्त्र भूषण धन्वा इत्यादि अपनी उत्तम सामग्री और बर्तन आदि से उनको प्रसन्न करके बिदा किया ६३॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेदमचरित्रेत्रयस्त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः १३३॥

अथ एकसौचौंतीसका अध्याय॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० स तां लब्ध्वा तथा पत्नीं सुमनां सुमहामुने।
प्रणम्य स पितुः पादौमातुश्च क्षितिपात्मजः १॥

टी०। फिर मार्कण्डेय जी बोले कि ऐ महामुने! उनराजकुमार दमने सुमना भार्य्या को पाकर अपने माता पिता के चरण वन्दन किया १॥

मू० सा च तौ श्वशुरौ सुभ्रूर्नतामसुमना तदा।
ताभ्यां तौ च तदा विप्र आशीर्भिरभिनन्दितौ २॥

टी०। उसी तरह सुमना सुन्दरीभी खुशीके साथ अपने श्वशुर व सासु को प्रणाम किया व हे विप्रजी! उस समय आनन्दपूर्वक उन्होंने उनदोनों को आशीर्वाद दिया २॥

मू० महोत्सवश्च संजज्ञे नरिष्यन्तस्य वै पुरे।
कृतदारे च सम्प्राप्ते दशार्णाधिपतेः पुरात् ३॥

टी०। जब वह दम राजकुमार दशार्णदेशके मालिक की कन्या का विवाह कर उसके नगरसे घर आये उस वक्त महाराज नरिष्यन्त के पुर में अत्यन्त उत्सव हुआ ३॥

मू० सम्बन्धिनं दशार्णेशाजितांश्च पृथिवीश्वरान्।
श्रुत्वा पुत्रेण मुमुदे नरिष्यन्तो महीपतिः ४॥

टी०। व दशार्णदेशके राजा को सम्बन्धी (समधी) व पुत्रसे जीतेहुये राजाओं को सुनकर नरिष्यन्त राजा प्रसन्न हुये ४॥

मू० सोऽपि रेमे सुमनया महाराजसुतो दमः।
वरोद्यानवनोद्देशप्रासादगिरिसानुषु ५॥

टी०। पश्चात् वह राजकुमार दमभी सुमनाके साथ अच्छी फुलवारियों में और बगीचोंमें व वनमें और अटारियों और पहाड़ोंपर मनमाना विहार करनेलगे ५॥

मू० अथ कालेन महता रममाणा दमेन सा।
अवाप गर्भं सुमना दशार्णाधिपतेः सुता ६॥

टी०। इसके उपरान्त बहुत काल बीते तक दमके साथ विहार करतीहुई दशार्णाधिपकी कन्या वह सुमना गर्भवती हुई ६॥

मू० सोपि राजा नरिष्यन्तो भुक्तभोगो महीपतिः।
वयःपरिणतिं प्राप्य दमं राज्येभिषिच्य च ७॥

टी०। और उन महाराज नरिष्यन्त ने भी भोगों को भोगकर बूढ़े होने पर राजगद्दी दम को देकर ७॥

मू० वनं जगामेन्द्रसेना पत्नी चास्य तपस्विनी।
वानप्रस्थविधानेन स तत्र समतिष्ठत ८॥

टी०। आपने तपस्या करनेके वास्ते वनवास को अंगीकार किया और उनकी भार्य्या इन्द्रसेना भी उसी तरह तपस्विनी हो साथ गई और वे नरिष्यन्त उस वनमें वानप्रस्थ के विधान से टिके ८॥

मू० दाक्षिणात्यः सुदुर्वृत्तः संक्रन्दनसुतो वने।

वपुष्मान्स मृगान् हन्तुं ययाल्पपदानुगः ९ ॥

टी० । उसी वनमें एकदिन दुष्टआचारणवाला दक्षिणात्य संक्रन्दन का पुत्र वपुष्मान् थोड़े पैदलों को संग लिये उसी वनमें मृगों को मारने के लिये गया ९ ॥

मू० स तं दृष्ट्वा नरिष्यन्तं तापसं मलपङ्किनम् ।
इन्द्रसेनाञ्च तत्पत्नीं तपसातिसुदुर्बलाम् १० ॥

टी० । और उसनेवहां महाराज नरिष्यन्तको तपस्वीरूप व शरीरमेंभस्म आदि लगाये और उनकी भार्य्या इन्द्रसेनाकोभी तपसे दुर्बल देखकर १० ॥

मू० पप्रच्छ कस्त्वं भो विप्रः क्षत्रियो वा वनेचरः ।
वानप्रस्थमनुप्राप्तो वैश्यो वा मम कथ्यताम् ११ ॥

टी० । पूँछा कि तुम कौन हो ब्राह्मण या क्षत्री या वैश्य हो जो वन में आकर वानप्रस्थ धर्म्म में प्राप्तहो यह मुझसे कहो ११ ॥

मू० ततो मौनव्रती भूपो न हि तस्योत्तरं ददौ ।
इन्द्रसेना च तत्सर्व्वमाचष्टास्मै यथातथम् १२ ॥

टी० । उसकेबाद राजा तो मौन व्रत धारण किये थे इससे उसको उत्तर नहीं दिया परन्तु इन्द्रसेनानें वह सबवृत्तान्त इनसे सचसच कहदिया १२ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० ज्ञात्वा तञ्च नरिष्यन्तं वपुष्मान् पितरं रिपोः ।
प्राप्तोऽस्मीति वदन् कोपाज्जटासु परिगृह्य च १३ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी कहतेहैं ऐ क्रौष्टुके ! उस वपुष्मान् ने अपने शत्रु के पिता नरिष्यन्त को जानकर आपहुँचा यहकहतेहुये कोपसंयुक्त उनकी जटा को पकड़ लिया १३ ॥

मू० हाहेति चेन्द्रसेनायां रुदन्त्यां बाष्पगद्गदम् ।
चकर्ष कोपात् खड्गञ्च वाक्यं चेदमुवाच ह १४ ॥

टी० । उससमय तो इन्द्रसेना हाय हाय करके व्याकुल हो रोनेलगी परन्तु वह दुष्टात्मा खड्ग खींचकर कोपकरके यह कहनेलगा १४ ॥

मू० निर्जितः समरे येन येन मे सुमना हता ।

दमस्य तस्य पितरं हनिष्येऽवतु तन्दमः १५॥

टी०। कि जो दम मुझे समर में जीतकर मेरी सुमना को भी हरले-गया उसके पिता को मैं मारताहूं वह दम इसकी रक्षा करे १५॥

मू० येनाखिलमहीपालपुत्राः कन्यार्थमागताः।

अवधूता हनिष्येहं पितरं तस्य दुर्मतेः १६॥

टी०। और स्वयंवर में कन्या के वास्ते जो राजकुमारलोग आये थे उन सभों को जीतकर जो दम ने समरसे भगादिया उस दुर्मति के पिता को मैं मारताहूं १६॥

मू० योधनेषु स्वरूपेण दमो यस्य दुरात्मनः।

सदमो वारयत्वेष हन्मि तस्य रिपोर्गुरुम् १७॥

टी०। और जिस दुरात्मा दम के स्वभावही से संग्राम में गर्व होता है वह दम आकर मना करे मैं उस शत्रु के पिता को मारताहूं १७॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० इत्युक्त्वा स दुराचारो वपुष्मानवनीपतिः।

क्रन्दन्त्यामिन्द्रसेनायां शिरश्चिच्छेद तस्य च १८॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि इसी तरह तीन बार कहकर उस दुरात्मा वपुष्मान् राजा ने रोतीहुई इन्द्रसेना के सामने महाराज नरिष्यन्त का शिर काटलिया १८॥

मू० ततोधिग्धिङ्मुनिजना अन्ये च वनवासिनः।

तमूचुः सच तं दृष्ट्वाजगाम स्वपुरं वनात् १९॥

टी०। पश्चात् इसके उस वन के रहनेवाले मुनि आदि सब कोई उस दुष्टात्मा को धिक्कारकिया पश्चात् राजा को मराहुआ देखकर वपुष्मान् वन से अपने नगर को चलागया १९॥

मू० गते तस्मिन् विनिश्श्वस्य सेन्द्रसेना वपुष्मति।

प्रेषयामास पुत्रस्य समीपं शूद्रतापसम् २०॥

टी०। उस वपुष्मान् के जाने उपरान्त इन्द्रसेना ने शोक से लम्बी श्वास लेकर एक तापस शूद्र को अपने पुत्र के पास भेजा २०॥

मू० गच्छ गच्छाशु मे पुत्रं दमं ब्रूहि वचो मम।
अभिज्ञोऽसि मद्भर्तृवृत्तान्ते प्रोच्यतेऽत्र किम् २१॥

टी०। और उस से कहदिया कि तुम जल्दी मेरे पुत्र दमके पास जा-वो व मेरा वचन कहो और मेरे स्वामीके हालको तुम जानतेहो इसमें क्या कहा जावै २१॥

मू० तथापि वाच्यः पुत्रो मे यद्ब्रवीम्यतिदुःखिता।
लब्धनामीदृशीं प्राप्तां विलोक्यैतां महीपतेः २२॥

टी०। परन्तु तौ भी राजा को ऐसी इस दशा को प्राप्त देखकर अति-दुःखित होती हुई मैं जो कहती हूं उसको मेरे पुत्र से मेरी तरफ से कहना २२॥

मू० मद्भर्त्राऽभिकृतो राजा चतुर्णांवरिपालकः।
स्वमाश्रमाणां किं युक्तं तापसान् यन्निरीक्षसि २३॥

टी०। और यह भी कहना कि मेरे स्वामी ने चारों आश्रम के पालन के लिये तुमको राज्य दियाहै और जो तपस्वियों की रक्षा नहीं करते हो तो क्या यह बात योग्य है २३॥

मू० भर्त्ता मम नरिष्यन्तस्तापसस्तपसि स्थितः।
विलपन्त्यास्तथा नाथो यथा नाथे तथा त्वयि २४॥

टी०। और स्वामी मेरे तपस्वी होकर तप में रहते थे और जैसे नाथ की अपेक्षा कीजाती है वैसेही तुम्हारे नाथ के होने पर मैं विलाप कर-ती रही २४॥

मू० आकृष्य केशेषु बलादपराधं विना ततः।
हतो वपुष्मता ख्यातिमिति ते भूपतिर्गतः २५॥

टी०। और मेरे सामने तुम्हारे पिता महाराज नरिष्यन्त को विना अपराध वपुष्मान् ने बल से केश पकड़कर मारडाला इस तरह तुम्हारे पिता राजा प्रसिद्धिता को प्राप्त होगये २५॥

मू० एवं स्थिते तत्र क्रियतां यथा धर्म्मो न लुप्यते।
तथाचर न वक्तव्यमतोहं तापसी यतः २६॥

टी०। और यह भी कहना कि यहां का तो हाल ऐसा है परन्तु तुम जिसमें धर्म्म का लोप न हो वह उचित बात करो और वैसाही करो यह मुझको इस से न कहनाचाहिये जिस लिये कि मैं तपस्विनी हूं २६॥

मू० पिता वृद्धस्तपस्वी च नापराधेन दूषितः।
निहतो येन यत्तस्य कर्त्तव्यन्तद्विचिन्त्यताम् २७॥

टी०। और तुम्हारे वृद्ध पिता तपस्वी को विना अपराध जिस वपुष्मान् ने मारा है जो उसके लिये करनाचाहिये वहबात विचार करो २७॥

मू० सन्ति ते मन्त्रिणो वीराः सर्व्वशास्त्रार्थवेदिनः।
तैः सहालोच्य यत्कार्य्यमेवं भूते कुरुष्व तत् २८॥

टी०। और तुम्हारे मंत्रीलोग वीर व सब शास्त्र के जाननेवाले हैं उन सभों की सम्मत और विचार से ऐसा होने पर जो करने योग्य हो वह करो २८॥

मू० नास्माक मधिकारोऽत्र तापसानां नराधिप।
कुरुष्वैतदितीत्थं त्वमे वं भूयोऽभिभाषितुम् २९॥

टी०। और ऐ राजन्! इस में अधिकार हम सब तपस्वियों का नहीं है कि तुम इस प्रकार ऐसा करो और ऐसा फिर कहने का भी अधिकार नहीं है २९॥

मू० विदूरथस्य जनको यवनेन यदा हतः।
तदा यवनपुत्रस्य कुलन्तेन विनाशितम् ३०॥

टी०। जब विदूरथ के पिता को यवन ने माराथा तब उन विदूरथ ने यवन पुत्रके कुल का नाश करडाला ३०॥

मू० जम्भस्यासुरराजस्य पितादष्टो भुजङ्गमैः।
तेनाप्यखिलपातालवासिनः पन्नगा हताः ३१॥

टी०। फिर असुरराज जंभ के पिता को नागों ने डसा था इस वास्ते जंभ ने भी सम्पूर्ण पातालवासी नागों को मार डालाथा ३१॥

मू० पराशरेण पितरं शक्तिं तं रक्षसा हतम्।
श्रुत्वाग्नौ पातितं कृत्स्नं राक्षसानां महत्कुलम् ३२॥

टी०। इसी तरह पराशरजी के पिता शक्ति को राक्षस ने मारडाला था तब पराशरजी क्रोधित होकर राक्षस के बड़ेभारी कुल को आग में डालकर भस्म करदिया ३२॥

मू० अन्यस्यापि स्वपक्षस्य लङ्घना क्रियते हि या।
तां नालं क्षत्रियः सोढुं किं पुनः पितृमारणम् ३३॥

टी०। अपने पक्षवाले अन्यभी पुरुषकी जो लघुता कीजातीहैउस को क्षत्री नहीं सहसक्ता है फिर पिता का मारना किसतरह सहैगा ३३॥

मू० नायं पिता ते निहतो नास्मिञ्छस्त्रं निपातितम्।
त्वामत्र निहतं मन्ये त्वयि शस्त्रं निपातितम् ३४॥

टी०। और तुम्हारे इस पिता को न माराहै और न उनपर हथियार चलाया है किन्तु इस में मैं यही मानती हूं कि यह सब तुम्हारे ऊपर गुज़रा है ३४॥

मू० बिभेत्यस्य हि कः शास्त्रं न्यस्तं येन वनौकसाम्।
तव भूपस्य पुत्रस्य मा बिभेतु बिभेतु वा ३५॥

टी०। और जिसने वनवासी तपस्वियों के ऊपर शस्त्र चलाया है इस को कौन डरता है परन्तु तुम्हें राजपुत्र को भय जनक हो या न हो ३५॥

मू० तवेयं लङ्घना युक्ता यदस्मिंस्तत्समाचर।
वपुष्मति महाराज समृत्यज्ञातिबान्धवे ३६॥

टी०। और ऐ महाराज! यह लघुता तुम्हीं में युक्तकी गई है इससे नौकर चाकर, कुटुम्ब व भाई समेत इस वपुष्मान् में जो करने योग्यहो उसको कीजिये ३६॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० इति संक्रान्तसन्देशमिन्द्रसेना विसृज्य तम्।
पतिदेहमुपाश्लिष्य विवेशाग्निं मनस्विनी ३७॥

टी०। मार्कण्डेय जी कहतेहैं कि इस प्रकार सन्देश समझाकर उस तापस दूतको अपने पुत्रकेपास भेजकर मनस्विनी इन्द्रसेना अपने स्वामी के शरीर को लिपटाकर अग्निमें प्रवेश करगई ३७॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेदमचरित्रेनामचतुस्त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः १३४॥

अथ एकसौ पैंतीस का अध्याय ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० तापसेन समाख्यातं दमस्तेन पितुर्वधम्।
क्रोधेनातीवजज्वाल हविषेवाग्निरुद्धतः १ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी बोले कि ऐ क्रौष्टुके! इन्द्रसेना का भेजा हुआ जो तापस दूतथा उसने जब दमके पास जाकर पिताके वधका यथार्थ हाल कहा तब सुनकर दम अत्यन्त क्रोधसे जाज्वल्यमान होगये जिस तरह हविष्य परने से आग्नि प्रज्वलित हो उठती है १ ॥

मू० स तु क्रोधाग्निना धीरो दह्यमानो महामुन।
करङ्करेण निष्पिष्य वाक्यमेतदुवाचह २॥

टी०। ऐ महामुने! उस समय क्रोधाग्नि से जलतेहुये बुद्धिमान् दम हाथसे हाथ मींजकर यह वचन कहने लगे २॥

मू० अनाथ इव मे तातो मयि पुत्रे तु जीवति।
घातितः सुनृशंसेन परिभूय कुलं मम ३॥

टी०। कि अनाथ के समान मेरे पिता को जिनका पुत्र मैं जीताहुआ वर्तमानहूं वपुष्मान् दुष्टात्माने मेरे कुलका अनादर करके मारडालाहै३ ॥

मू० नापवादोजनेनस्यादेष क्लैब्यात्क्षमाम्यहम्।
दुर्वृत्तशान्तौ शिष्टानां पालनेऽधि कृता वयम् ४॥

टी०। यह मैं नहीं सहसक्ताहूं क्योंकि इसके सहजाने से सब लोग हमारा अपवाद करैंगे व नामर्द कहैंगे और हमारा अधिकार दुष्टोंके नाश और साधुलोगों की रक्षा करने का है ४ ॥

मू० पितरं चापि निहतं दृष्ट्वाजीवत्यसत्तमः।
तत्किमेतेन बहुना हा तातेति च किंपुनः ५ ॥

टी०। और मारे हुये पिता को देखकर बड़ा दुष्टजन जीताहै इसलिये हा तात! हा तात!! यह बारबार मेरा बहुत कहना क्याहै ५॥

मू० विलापेनात्र यत्कृत्यं तदेषोऽत्र करोम्यहम्।
यदाहं तस्य रक्तेन देहोत्थेन वपुष्मतः॥
न करोमि गुरोस्तृप्तिं तत्प्रवेक्ष्ये हुताशनम् ६॥

टी०। और मेरे बहुतही विलाप करने से क्या होगा इस समयमें जो उचित करनाहै उसको मैं करूंगा व यह प्रतिज्ञा करताहूं कि जो उस वपुष्मान्‌के शरीरके रक्तसे पिताकी तृप्ति न करूं तौ अग्निमें पैठ जाऊंगा६॥

मू० तच्छोणितेनोदककर्मतस्य मांसेन सम्यग्द्विजभोजनञ्च।
कुर्यांपितुस्तस्यचपिण्डदानंनचेत्प्रवेक्ष्यामिहुताशनंतत् ७

टी०। फिर उस वपुष्मान्‌के रुधिरसे पिता का तर्पण न करूं और वपूष्मान्‌के शरीर का मांस ब्राह्मणों को न खिलाऊं और उसीसे उस पिता का पिंडदान न करूं तौ भी अग्नि में प्रवेश करके जल जाऊंगा ७॥

मू० साहाय्यमस्यासुरदेवयक्षगन्धर्वविद्याधरसिद्धसङ्घाः।
कुर्वन्ति चेत्तानपि चास्त्रपूगैर्भस्मीकरोम्येषरुषासमेतः८

टी०। जो वपुष्मान् की सहाय यक्ष व गंधर्व व विद्याधर और देवगण व दैत्य व सिद्धगण करेंगे तो उन लोगों को भी क्रोध समेत मैं अस्त्रोंसे भस्म कर दूंगा ८॥

मू० निःशूरमाधार्मिकमप्रशस्तं तं दाक्षिणात्यं समरे निहत्य।
भोक्ष्ये ततोऽहं पृथिवीं च कृत्स्नां वह्निं प्रवेक्ष्याम्यनिहत्यतंवा९

टी०। और उस कादर व अधर्मी और दुष्ट दाक्षिणात्य वपुष्मान् को समर में मार कर पीछे मैं सम्पूर्ण पृथ्वी का भोग करूंगा या उसको न मारकर अग्नि में पैठ जाऊंगा ९॥

मू० सुदुर्मतिंतापसवृद्धघातिनं वनस्थगंसाधुविधिंविदग्धम्।
हन्ताहमद्याखिलबन्धुमित्रपदातिहस्त्यश्वबलैःसमेतम् १०॥

टी०। और अतिदुष्ट बुद्धि व वृद्ध तपस्वीको मारनेवाले वनवासियोंमें प्राप्त उत्तम विधि को नाशनेवाले उस वपुष्मान् को सहित सब भाई बन्धु व मित्र हाथी घोड़ा और सेना आदि के जरूर मार डालूंगा १०॥

मू० एषोऽहमादाय धनुः सखड्गो रथी तथैवारिबलं समेत्य।

करोमिवैयत्कदनंसमस्ताःपश्यन्तुमेदेवगणाःसमेताः ११

टी०। इसी समय हाथमें धनुष व तलवार ले रथ पर सवार होकर मैं शत्रु की सेनामें जाकर जिसतरह सबको नाश करताहूं उसको देवतालोग भी आकर देखें ११॥

मू० यो यः सहायो भविताद्य तस्य मया समेतस्य रणाय भूपः।
तस्याशु निःशेषकुलक्षयाय समुद्यतोऽहंनिजबाहुसैन्यः १२॥

टी०। और फिर मुझ समेत उस दुष्टात्मा वपुष्मान् के सहाय वास्ते युद्धके लिये जो जो राजा लोग आवैंगे उन लोगों के भी सब वंश विनाशने के लिये अपनी बाहुरूपी सेनावाला मैं तैयारहूं १२॥

मू० यदि कुलिशकरोऽस्मिन् संयुगे देवराजः
पितृपतिरथचोग्रं दण्डमुद्यम्य कोपात्।
धनपतिवरुणार्का रक्षितुम्तं यन्तते
निशितशरवरौघैर्घातयिष्ये तथापि १३॥

टी०। जो इस समरमें वज्र को हाथ में लेकर इन्द्र और कोप से उग्र दण्ड लेकर यमराज और कुबेर और वरुण या सूर्य्य आकर इसकी रक्षा वास्ते यत्न करेंगे तौ भी अपने पैने तीरों से उसको जरूर मारूंगा १३॥

मू० नियतमतिरदोषः काननाखण्डलौको–
निपतितफलभक्षः सर्व्वभूतेषु मैत्रः।
प्रभवति मयि पुत्रे हिंसितो येन तातः
पिशितरुधिरतृप्तास्तस्यसन्त्वद्य गृध्राः १४॥

टी०। और मेरे समान पुत्रके होने पर ज्ञानी व निर्दोष वनवासी और गिरे हुये फलोंके खानेवाले व सबप्राणियों के मित्र हमारे पिता को जिस दुष्टात्मा वपुष्मान्ने माराहै इससमय उसका मांस खाकर और रुधिर पीकर गृध्र सब तृप्त होंगे १४॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेदमचरित्रेनामपञ्चत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः १३५॥

अथ एकसौ छत्तीस का अध्याय ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० इति प्रतिज्ञाय तदा वधन्तस्य दुरात्मनः ।
कोपामर्षविघूर्णिताक्षोनरिष्यन्तसुतो दमः १ ॥

टी० । फिर मार्कण्डेयजी बोले ऐ क्रौष्टुकि! उसवक्त इसतरह उस दुरात्मा वपुष्मान् के मारने की प्रतिज्ञा करके कोप और अमर्ष से घूमते हुये नेत्रोंवाले नारिष्यन्त के पुत्र दम बोले १ ॥

मू० हा हतोऽस्मीति पितरं ध्यात्वा दैवं विनिन्द्य तान् ।
प्रोवाच मन्त्रिणः सर्वानानिनाय पुरोहितम् २ ॥

टी० । कि हाय मैं हत होगया और पिता का ध्यान करके व अपने भाग्यकी निन्दा करके सब मंत्री और पुरोहित को बुलाकर कहा २ ॥

दम उवाच ॥

मू० यदत्र कृत्यं तद्ब्रूत ताते प्राप्ते सुरालयम् ।
श्रुतंभवद्भिर्यत्प्रोक्तं तेन शूद्रतपस्विना ३ ॥

टी० । दम बोले कि वपुष्मान् ने मेरे पिता को मारडाला है वह स्वर्ग वासी हुये यह बात एक शूद्र तपस्वी आकर कह गया है आप लोगों ने भी सुना होगा अब इसमें मुझको क्या करना उचित है सो आप लोग कहते जाइये ३ ॥

मू० वृद्धस्तपस्वी स नृपो वानप्रस्थव्रते स्थितः ।
मौनव्रतधरोशस्त्रोमन्मात्राचेन्द्रसेनया ४ ॥

टी० । हमारे वह वृद्ध तपस्वी पिता वन में वानप्रस्थ व्रत में टिके मौन होकर और शस्त्र इत्यादि छोड़ कर तप करते थे वहां पर वपुष्मान् ने इन्द्रसेना मेरी माता से ४ ॥

मू० प्रोक्तः संसृष्टयास्वात्म्याद्याथातथ्यं वपुष्मते ।
तेनापि खड्गमाकृष्य जटां सव्येन पाणिना ५ ॥

टी० । पूछा तब समीप में बैठी हुई मेरी माता ने अपनी तदात्मता

के सम्बन्ध से सच सच वपुष्मान् से कहदिया कि यह महाराज नरिष्यन्त हैं तब उस वपुष्मान् ने भी तलवार खींच कर व बायें हाथसे उनकी जटा पकड़ कर ५॥

मू० कृत्वा जघान दुष्टात्मा लोकनाथमनाथवत्।
माता च संदिश्य च मां धिक् शब्दं ब्रुवती सती ६॥

टी०। अनाथ की तरह लोकनाथ महाराज नरिष्यन्त को उस दुष्टात्मा ने मारडाला है मेरी माता ने मुझे धिक्कार करके संदेशा भेजकर ६॥

मू० मन्दभाग्यश्च निःश्रीकं प्रविष्टा हव्यवाहनम्।
हस्त्यश्वरथपादातं सैन्यञ्च परिकल्प्यताम् ७॥

टी०। जो मैं कि मन्दभाग्य व शोभारहित हूं फिर आप आग में प्रवेश कर गईं इस से रथ व हाथी और घोड़े और पैदल सेना तैयार की जावै ७॥

मू० अनिर्याप्यपितुर्वैरमहत्वा पितृघातकम्।
अकृत्वा तु वचो मातुर्जीवितं किमिहोत्सहे ८॥

टी०। क्योंकि पिता का वैर न निकाल कर व पितृघातक वपुष्मान् को विना मारे और माता का वचन विना सत्य किये इस संसार में जीना नहीं चाहता हूं ८॥

मू० मन्त्रिणस्तद्वचः श्रुत्वा हाहेत्युक्त्वा तथा च तत्।
कृतवन्तो विमनसः समृत्यबलवाहनाः ९॥

टी०। वह बात दम की सुनकर उनके मंत्री हाय हाय करने लगे और उस समय नौकर चाकर सेना व सवारी आदि सारे शोच के घबड़ा गये व मंत्रियों ने उस सेना को तैयार किया ९॥

मू० निर्ययुः सपरीवाराः पुरस्कृत्य दमं नृपम्।
गृहीत्वा चाशिषो विप्रात्त्रिकालज्ञात्पुरोधसः १०॥

टी०। पश्चात् इसके महाराज दम को आगे कर त्रिकाल के जानने वाले पुरोहित ब्राह्मण से आशीर्वाद लेकर परिवार समेत वे मंत्री लोग अपने घर से निकले १०॥

मू० अहिराडिव निःश्वस्य दमः प्रायाद्वपुष्मतम्।

सीमापालादिसामन्तान्निघ्नन् याम्यां दिशं त्वरा ११ ॥

टी०। और शेषनाग की तरह फुफकार मार के सीमा के रक्षकों को मारते हुये जल्द दक्षिण तरफ़ जाकर वपुष्मान् के निकट जापहुँचे ११ ॥

मू० संक्रन्दनसुतेनापि दमो ज्ञातो वपुष्मता।
आयातः सपरीवारः सामात्यः सपरिच्छदः १२ ॥

टी०। व संक्रन्दन के पुत्र वपुष्मान् ने भी यह बात सुनी कि दम अपनी सेना और मंत्रियों और परिवारों समेत मेरे नगर में पहुँचे १२ ॥

मू० अकम्पितेन मनसा ससैन्यानि दिदेश ह।
दूतञ्च प्रेषयामास निर्गम्य नगराद्बहिः १३ ॥

टी०। परन्तु निडर मन होकर अपनी सेना को तैयार होने को आज्ञा दी और नगर के बाहर निकल कर एक दूत भी भेजा और उस से कह दिया कि १३ ॥

मू० त्वं शीघ्रं तरसा गच्छ नरिष्यन्तः प्रतीक्षते।
सभार्य्यःक्षत्रबन्धो त्वं समायाहि ममान्तिकम् १४ ॥

टी०। तुम जल्द जावो व यह कहो कि महाराज नारिष्यन्त अपनी भार्य्या समेत स्वर्ग में तुम्हारी राह देख रहे हैं इस लिये हे क्षत्रबन्धो! तुम जल्द हमारे सम्मुख आवो १४ ॥

मू० इति मद्बाहुनिर्मुक्ताः शिता बाणाः पिपासिताः।
भित्त्वा शरीरं संग्रामे पास्यन्ति रुधिरन्तव १५ ॥

टी०। क्योंकि मेरे हाथ के चलाये हुये पैने बाण सब प्यासे हैं वे संग्राम में तुम्हारा शरीर काट कर रुधिर पीवेंगे १५ ॥

मू० श्रुत्वा दमस्तु तत्सर्व्वं दूतप्रोक्तं ययौ त्वरन्।
स्मृत्वा प्रतिज्ञां पूर्व्वोक्तां निःश्वसन्नुरगो यथा १६ ॥

टी०। महाराज दम तो दूत से कही हुई वपुष्मान् की यह बात सुन कर व पहिले की अपनी प्रतिज्ञा को याद करके सांप की तरह स्वास लेते हुये जल्द चले १६ ॥

मू० आहूतः समरे चैष पुमान् सेनाविकत्थनः।

॥ ततो युद्धमतीवासीद्दमस्य च वपुष्मता १७॥

टी०। और रणमें वपुष्मान् को बुलाया फिर दम से और वपुष्मान् से बहुत युद्ध हुआ १७॥

मू० रथी च रथिना नागी हस्तिना हयिना हयी।
अयुध्यन्त च विप्रर्षे तद्युद्धं तुमुलोऽभवत् १८॥

टी०। हे विप्रर्षे! रथी रथवालों के साथ, और हाथी हथिवालों के साथ और घोड़ेवालों ने घोड़ेवालों के साथ बहुत भारी युद्ध किया १८॥

मू० पश्यतां सर्व्वदेवानां सिद्धगन्धर्व्वरक्षसाम्।
चकम्पे वसुधा ब्रह्मन् युध्यमाने दमे युधि १९॥

टी०। उस समय सब देवता और सिद्ध और गन्धर्व्व और राक्षस युद्ध का कौतुक देख रहे थे ऐ ब्रह्मन्! जब संग्राम में महाराज दम युद्ध करने लगे उस समय धरती कांपने लगी १९॥

मू० न गजो न रथी नाश्वस्तस्य बाणसहस्रयः।
ततो दमेन युयुधे सेनाध्यक्षो वपुष्मतः २०॥

टी०। और रणमें कोई हाथी और रथी और घोड़ा देखने में नहीं आये जो दम के बाण सहसके पश्चात् इसके दम के साथ वपुष्मान् का सेनापति लड़ने लगा २०॥

मू० हृदि विव्याध च दम इषुणागाद्यमान्तिके।
तस्मिन्निपतिते सैन्यं पलायनपरं ह्यभूत् २१॥

टी०। तब उस सेनापति के हृदय में राजपुत्र दम ने बाण मारा कि जिस बाण के लगने से वह रण में गिरपड़ा उस के गिरतेही सब सेना भाग गई २१॥

मू० सस्वामिनं ततः प्राह दमः शत्रुंदमस्तथा।
क यासि दुष्ट पितरं घातयित्वा तपस्विनम् २२॥

टी०। पश्चात् इसके महाराज दम उसके स्वामी वपुष्मान् शत्रु से बोले कि ऐ दुष्ट! मेरे तपस्वी पिता को मारकर कहां जाताहै २२॥

मू० अशस्त्रञ्च तपस्यन्तं क्षत्रियोऽसिनिवर्त्ततम्।

ततो निवर्त्य स दमं योधयामास सानुजः २३ ॥

टी०। जो कि विना शस्त्रथा व तपस्याकर रहाथा तुम क्षत्रियहो इससे लौटो तब वपुष्मान् अपनी भागी हुई सेना को समर में लौटा कर युद्ध करने लगा २३ ॥

मू० सपुत्रः सहसंबन्धी बान्धवैर्युयुधे रथी।
ततः शरासनान्मुक्तबाणैर्व्याप्तास्ततो दिशः २४ ॥

टी०। अर्थात् वपष्मान् अपने भाई बन्धु मित्र व पुत्र सहित रथ पर सवार होकर शरों की वर्षा करने लगा यहां तक कि उसके चलाये हुये शरों से सब दिशा व्याप्त होगई २४ ॥

मू० दमश्च सरथश्चाशु शरजालैरपूरयत्।
ततः पितृवधोत्थेन कोपेन स दमस्तथा।
चिच्छेदतांश्छरांस्तेषां विव्याधान्यैश्च तानपि २५ ॥

टी०। और रथ समेत दमको शरों के समूह से घेर लिया पश्चात् इस के दम जो अपने पिता के मारे जाने से कोप में थे उनलोगों के चलाये हुये शरों को अपने शर से काट कर दूसरे बाणों से उन लोगों को भी मारना आरम्भ किया २५ ॥

मू० एकैकेन बाणेन सप्त पुत्रांस्तथा द्विज।
सम्बन्धिबान्धवान्मित्रान् निनाय यमसादनम् २६ ॥

टी०। ऐ द्विज! एक एक बाण चलाकर सात पुत्रों को उसके और उसके सम्बन्धी व बन्धुवों और मित्रों को मार कर यमराज के घर में भेजदिया २६ ॥

मू० वपुष्मान् सरथी क्रोधान्निहतात्मजबान्धवः।
युयुधे च सतेनाजौ शरैराशीविषोपमैः २७ ॥

टी०। उस समय वपुष्मान् अपने भाइयों व पुत्रों के मारे जाने से कोपसंयुक्त रथ पर सवार हो दम के साथ सांपों के समान बाणों से युद्ध करने लगा २७ ॥